१ੴ वाहिगुरु जी की फतह

गुरमत दर्शन

—अर्थात्—

सिक्ख धर्म के सिद्धांत एवं मार्ग का दार्शनिक विवेचन

मूल लेखक —

स्वर्गीय डाक्टर शेर सिंह

एम० ए०, पी० एच० डी० (लण्डन)

भूतपूर्व प्रिंसीपल, मालवा सैन्ट्रल कालेज आफ एजूकेशन, लुधियाना।

अनुवादक —

चमन लाल नारंग

एम० ए०, एस० एड०

प्राध्यापक, मालवा सैन्ट्रल कालेज आफ एजूकेशन, लुधियाना।

प्रकाशक —

लाहौर बुक शाप, लुधियाना।

प्रथम सस्करण 1970

मूल्य [illegible] रुपये

प्रकाशक —
स० जीवन सिह एम० ए०,
लाहौर बुक शाप, लुधियाना ।

मुद्रक :—
लाहौर आर्ट प्रैस, कालेज रोड,
लुधियाना ।

श्रीमति अमरजीत कौर

सुपत्नी

स्वर्गीय डाक्टर शेर सिंह

को

सादर समर्पित !

प्रस्तावना

(लेखक की ओर से)

सन १६४५ ई० मे मेरी पुस्तक 'फिलासफी आफ सिक्खिज़म' 'Philosophy of Sikhism' प्रकाशित हुई थी। अनेक विद्वानो ने राय दी थी कि यदि इस अग्रेजी पुस्तक का पजाबी मे अनुवाद हो जाए तो सिक्ख धर्म सम्बन्धी साहित्य मे एक विशेष कमी पूरी हो जायेगी। मुझे यह उचित प्रतीत हुआ और १६४७ मे हस्त लिखित प्रति तैय्यार हो गई। प्रस्तुत 'गुरमति दर्शन' नामक पुस्तक मेरी अग्रेजी पुस्तक का केवल मात्र अनुवाद नही है। एक प्रकार से यह स्वतन्त्र अनुवाद है। मुझे स्वय 'गुरमति दर्शन' मेरी 'फिलासफी आफ सिक्खिज़म' से अधिक भावपूर्ण प्रतीत होती है। सम्भवत इसलिए कि यह मेरी अपनी भाषा मे है। इस पुस्तक को लोगो के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है, क्योकि मैं समझता हू कि अकाल पुरुष (परम पिता परमात्मा) की विशेष कृपा से ही मुझे यह सेवा करने का अवसर मिला है।

जत्थेदार उधम सिह जी नागोके तथा स० बसन्त सिह जी मोगा ने इस पुस्तक के प्रकाशन मे विशेष रुचि ली है क्योकि उन्ही के उद्यम एव परिश्रम से शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक कमेटी के बजट मे इस कार्य के लिए विशेष धनराशि स्वीकृत हुई। मैं इनका तथा कमेटी के शेष सदस्यो का आभारी हू। हस्तलिखित प्रति बडी शीघ्रता से लिखी जाती है। मैं अनुभव करता हू कि यदि स० बचन सिह जी, मैनेजर गुरद्वारा प्रिंटिंग प्रैस, इस पुस्तक के प्रूफ पढने मे विशेष सावधानी से काम न लेते तो यह पुस्तक, विशेषतया इसके गुरबाणी प्रमाण, बहुत अशुद्ध छपने थे। इसलिए इस सहायता के लिए स० बचन सिह जी का धन्यवाद करना आवश्यक है।

अन्त मे मैं समस्त सिक्ख धर्म के शोध कर्ताओ एव विद्वानो तथा विचारको से विनम्र प्रार्थना करता हू कि वे इस पुस्तक की न्यूनताओ से सेवक को परिचित कराने की कृपा करें ताकि मेरी सूझ (ज्ञान) मे वृद्धि हो और साथ ही इस पुस्तक के आगामी सस्करण इससे भी परिष्कृत एव परिवर्धित रूप मे छप सकें।

गुरु पन्थ का दास—

शेर सिह

520-L, माडल टाऊन लुधियाना।

अनुवादक की ओर से !

अनुवाद के क्षेत्र मे मेरा यह प्रथम प्रयास है। स्वर्गीय डाक्डर शेर सिंह जी ने विशेष कृपा से मुझे यह भार सौपा और साथ ही आशीर्वाद भी दिया था। उन्हे अपनी पुस्तक 'गुरमति दर्शन' का हिन्दी अनुवाद देखने की उत्कट लालसा थी। वे चाहते थे कि यह पुस्तक श्री गुरु नानक देव जी महाराज के पाच सौ वर्षीय प्रकाशोत्सव पर उनके जन्मदिन पर प्रकाशित हो। परन्तु विधि का विधान कुछ और ही था। समस्त कार्यक्रम सन्तोष जनक ढग से चल रहा था। पुस्तक छप रही थी— यद्यपि धीमी गति मे, कि अचानक डाक्टर साहिब अपनी संसार यात्रा समाप्त कर गए। 25 फरवरी, 1970 का दिन उनके जीवन का अन्तिम दिन था। एक दुर्घटना का शिकार होकर डाक्टर साहिब अकाल पुरुष की गोद मे जा बैठे और अमर हो गए। डाक्टर साहिब चले गए परन्तु उनका आशीर्वाद मेरे साथ रहा। उन्ही की प्रेरणा से कार्य चलता रहा और आज पूर्ण रूप से सम्पन्न हो पाया है। लेखक के निधन से मुझे एक जाती नुकसान हुआ है जो कभी पूरा न हो सकेगा।

प्रस्तुत पुस्तक 'गुरुमत दर्शन' पजाबी पुस्तक 'गुरुमति दशन' का अनुवाद है। यद्यपि मैंने भरसक प्रयत्न किया है कि अनुवाद मे पुस्तक का मूल भाव बना रहे, और मैं इसमे सफल भी हुआ हू, परन्तु फिर भी मैं किसी न्यूनता अथवा कमी के लिए सबसे क्षमा याचना करता हू। भाषा की त्रुटियाँ तथा पजाबी के हिन्दी प्रयायवाची कही कही अखर सकते है। इसके लिए भी मैं विशेष रूप से क्षमा प्रार्थी हू। पुस्तक मे दिए गए समस्त विचार लेखक के हैं। मेरा प्रयास केवल मात्र अनुवाद तक ही सीमित है।

डाक्टर साहिब की मृत्यु के पश्चात् उनकी सुपत्नी श्रीमति अमरजीत कौर ने पुस्तक के प्रकाशन की अनुमति देकर विशेष अनुगृहीत किया है। इसके लिए मैं उनका ऋणी हू।

पुस्तक के प्रकाशन मे आदरणीय सरदार जीवन सिंह, मालिक, लाहौर बुक शाप, लुधियाना ने विशेष रुचि से काम लिया है। अन्यथा यह काम कभी भी पूर्ण नही हो सकता था। उनकी प्रेरणा से ही यह काम सम्पन्न हो पाया है। मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हू। इसके साथ पुस्तक के कम्पोजिंग मे श्री प्रेम लाल बलूनी तथा उनके साथियो ने विशेष परिश्रम तथा साधना से काम लिया है और मेरी सहायता की है। मैं उनका हार्दिक धन्यवाद करता हू। प्रेस मैनेजर श्री कुलभूषण शर्मा जिन्होने मित्र भाव से विशेष रुचि लेकर पुस्तक के मुद्रण की देख भाल की है, विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र है। इसके अतिरिक्त मैं अपने मित्रो एव सहयोगियो का भी धन्यवाद करता हू जिन्हो ने मुझे इस कार्य की पूर्ति के लिए उत्साहित किया एव प्रेरणा दी। अन्त मे एक बार फिर सब से अनुरोध है कि किसी कमी अथवा अशुद्धि के लिए मुझे गुरु पन्थ का सेवक समझ कर क्षमा करें।

चमन लाल नारग
600/21, नारग निवास
कुन्दन पुरी, सिवल लाईन्ज
लुधियाना।

पहला भाग

(उत्थानिका)

पृष्ठ

पहला अध्याय 1-27

दूसरा अध्याय २८-८४

दूसरा भाग

सिक्ख धर्म का दूसरे धर्मों से सम्बन्ध

छटा अध्याय १६३-२०१

सातवा अध्याय २०२-२२०

तीसरा भाग

गुरमति सिद्धान्त अथवा परम सत्य निर्णय

चौथा भाग

गुरुमति दर्शन—गुरमति मार्ग अथवा साधनप्रकाश

पहला भाग

गुरमत दर्शन

उत्थानिका

दार्शनिक साहित्य

पहला अध्याय

१

दर्शन एवं धर्म

मनुष्य जीवन को किस प्रकार व्यतीत किया जाए ? इसका उत्तर धर्म मे से प्राप्त होता है। इस जोवन को उस प्रकार क्यो बिताया जाए ? इसका विचार (समाधान) दर्शन है।* धर्म के मार्ग पर चलने वाला श्रद्धा द्वारा फल प्राप्त करता है। दर्शन की कठिन घाटियो मे से गुजरने वाला भी ज्ञान एव विचार के द्वारा उसी लक्ष्य तक पहुचता है जहा कि धार्मिक यात्री। परन्तु मानव मन मे दर्शन की अपेक्षा धर्म पहले पनपा और प्रफुल्लित हुआ। दार्शनिक विचार बहुत देर के पश्चात् हुआ और होता है। धर्म एक आदर्श है, जिस की नीव हमारे जीवन के उन श्रेष्ट और सूक्ष्मो भावो पर है, जिन्हे हम वर्तमान से भविष्य, इहिलोक से परलोक मे सुख एव शान्ति प्राप्त करने के लिए रखते है। "धर्म मनुष्य की आत्मा मे से उन समस्त वस्तुओ से पहले अस्तित्व मे आता है और फलता फूलता है जो कि बाद मे शब्दो, कर्मो अथवा रीति रिवाजो मे प्रकट होती है"†। जब नियमो मे बधकर धर्म एक आकार धारण कर लेता है तब मनुष्य की बुद्धि अपनी आलोचक एव कार्य-कारण अन्वेषक शक्ति का प्रयोग प्रारम्भ करती है और धार्मिक आदर्शो से सम्बन्धित "क्यो" और "कैसे" आदि प्रश्नो से उनकी गम्भीरता की थाह लेना चाहती है‡। यदि कुछ हाथ लग जाए तो वह धार्मिक दर्शन है।

*'दर्शन' का वास्तविक अर्थ देखना है। सत्य पदार्थ या वस्तु को देखना फिलासफी का काम है, इसलिए फिलासफी के लिए दर्शन शब्द का ही प्रयोग किया जाता है।

† The Living God by Natha Soderblom

‡ देखें भाई वीर सिंह जी की पुस्तक 'लहरा दे हार' मे एक बढिया रुबाई की होया ? ते कीकू होया ?

कभी कभी दर्शन और धर्म धार्मिक रचना मे ताने-बाने की भान्ति मिल जाते है, विशेषत उस समय जब कि गुरु-अवतार विवेक-बुद्धि रखते हुए ज्ञानवेता भी हो। यह बात भारतीय मतो मे विशेष रूप से देखने मे आई है। "यहाँ धर्म एव दर्शन अन्य देशो की अपेक्षा बहुधा परस्पर मिले जुले है"*। इस सम्मिश्रण का परिणाम सदैव अच्छा नही निकलता। खोखली दार्शनिक विचार-धारायें, और परम सत्यवादक गहराइया कई बार धार्मिक जीवन को नष्ट कर देती है। ऐसे समय मे दर्शन और धर्म दो भिन्न भिन्न मार्गो पर चलने लग पडते है। ऐसे धर्मावलम्बियो मे से कुछ तो ज्ञान, बुद्धि और सूझ के बल पर "साहिब की सेवा करके सम्मान प्राप्त करते है।" कुछ प्रेमा-भक्ति एव श्रद्धा-उपासना का मार्ग पकड कर हृदय के कोमल हावो-भावो के द्वारा सहज सुख का आनन्द प्राप्त करते है। भाव यह कि मस्तिष्क और हृदय के दो भिन्न भिन्न मार्ग बन जाते हैं। ये दो मार्ग यद्यपि एक दूसरे से सम्बन्ध विच्छेद तो नही करते परन्तु फिर भी प्रत्येक मार्ग एक पहलु पर अधिकतर बल देता है और दूसरे अग को गौण समझ कर ही छोड देता है।

हम सिक्ख (सिख) धर्म का दार्शनिक विवेचन करने लगे है। इस धर्म का मुख्य प्रयोजन जीवन-मार्ग है, जीवन-पथ विचार नही। मनुष्य जीवन और आचरण को आदर्शमय बनाने का ढग यह धर्म बताता है और जीवन, आचरण या आदर्शो की परम सत्यवादक (Meta-physical) खोजो के चक्र मे जीवन यात्रियो को नही डालता। परन्तु इस धर्म की नीव बहुधा शुद्ध बुद्धि या तर्क-वितर्क की अपेक्षा श्रद्धा एव प्रेम तथा विश्वास पर निर्धारित है। किन्तु श्रद्धा तथा निश्चय को पक्का एव दृढ करने के लिए यह आवश्यक है कि इनकी नीव विवेक बुद्धि पर रखा जाए †।

अन्ध विश्वास बहुत देर तक काम नही देता और वैज्ञानिक (Scientific) कसौटियो पर पूरा नही उतरता। इसलिए वास्तविक

* 'God in Hinduism', by A S Gordon, in Encyclopaedia of Religion and Ethics

† हार परयो सुआमी के दुआर दीजै बुद्धि बिबेका।

(सोरठ महला ५)

लक्ष्य से पहले ही मार्गच्युत कर देता है। प्रत्येक व्यक्ति को, साधारण अवस्था मे, कभी न कभी अपने निश्चय एव विश्वास सम्बन्धी शकापूर्ण विचार उठते है, जिनका उत्तर प्राप्त करना आवश्यक है और उत्तर भी ऐसा जो विचार रूपी कसौटी पर पूरा उतरे। श्री गुरु ग्रथ साहिब जी मे ही कई महावाक्य ऐसे है जिन से अन्धविश्वास का खण्डन प्रकट होता है। जब तक किसी बात को पूरी तरह परख या उसका निश्चय न कर लिया जाए, तब तक उस बात के वास्तविक सत्य का ज्ञान नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति मे धर्म की सहायता के लिए दर्शन प्रस्तुत रहता है। आओ देखे सिक्ख-धर्म की दार्शनिक खोज अब तक कैसे होती रही है?

कभी कभी दर्शन और धर्म धार्मिक रचना मे ताने-बाने की भान्ति मिल जाते है, विशेषत उस समय जब कि गुरु-अवतार विवेक-बुद्धि रखते हुए ज्ञानवेता भी हो। यह बात भारतीय मतो मे विशेष रूप से देखने मे आई है। "यहाँ धर्म एव दर्शन अन्य देशो की अपेक्षा बहुधा परस्पर मिले जुले है"*। इस सम्मिश्रण का परिणाम सदैव अच्छा नही निकलता। खोखली दार्शनिक विचार-धाराये, और परम सत्यवादक गहराइया कई बार धार्मिक जीवन को नष्ट कर देती है। ऐसे समय मे दर्शन और धर्म दो भिन्न भिन्न मार्गो पर चलने लग पडते है। ऐसे धर्मावलम्बियो मे से कुछ तो ज्ञान, बुद्धि और सूझ के बल पर "साहिब की सेवा करके सम्मान प्राप्त करते है।" कुछ प्रेमा-भक्ति एव श्रद्धा-उपासना का मार्ग पकड कर हृदय के कोमल हावो-भावो के द्वारा सहज सुख का आनन्द प्राप्त करते है। भाव यह कि मस्तिष्क और हृदय के दो भिन्न भिन्न मार्ग बन जाते हैं। ये दो मार्ग यद्यपि एक दूसरे से सम्बन्ध विच्छेद तो नही करते परन्तु फिर भी प्रत्येक मार्ग एक पहलु पर अधिकतर बल देता है और दूसरे अग को गौण समझ कर ही छोड देता है।

हम सिक्ख (सिख) धर्म का दार्शनिक विवेचन करने लगे है। इस धर्म का मुख्य प्रयोजन जीवन-मार्ग है, जीवन-पथ विचार नही। मनुष्य जीवन और आचरण को आदर्शमय बनाने का ढग यह धर्म बताता है और जीवन, आचरण या आदर्शो की परम सत्यवादक (Metaphysical) खोजो के चक्र मे जीवन यात्रियो को नही डालता। परन्तु इस धर्म की नीव बहुधा शुद्ध बुद्धि या तर्क-वितर्क की अपेक्षा श्रद्धा एव प्रेम तथा विश्वास पर निर्धारित है। किन्तु श्रद्धा तथा निश्चय को पक्का एव दृढ करने के लिए यह आवश्यक है कि इनकी नीव विवेक बुद्धि पर रखा जाए †।

अन्ध विश्वास बहुत देर तक काम नही देता और वैज्ञानिक (Scientific) कसौटियो पर पूरा नही उतरता। इसलिए वास्तविक

* 'God in Hinduism', by A S Gordon, in Encyclopaedia of Religion and Ethics

† हार परयो सुआमी के दुआरे दीजै बुद्धि विवेका।

(सोरठ महला ५)

बाबा आइया करतारपुर भेख उदासी सकल उतारा।

बाणी मुखहु उचारिग्रे, होइ रुशनाई मिटै अन्धारा।
ज्ञान गोष्ट चरचा सदा अनहद शबद उठे धुनकारा।

इसी पौडी मे ही लिखा है कि प्रात काल जपुजी साहब का पाठ होता था, सायकाल को सोदर रहिरास का और रात को कीर्तन सोहिले का। इस कार्यक्रम का यद्यपि भाई गुरदास ने पहली पातशाही के दरबार मे नही देखा था, परन्तु पाचवी पातशाही के समय गुरु घर की आदि-मर्य्यादा मे अन्तर नही आया था। साथ ही इस मर्य्यादा के, 'ज्ञान गोष्ट चर्चा बाणी' के आखो देखे गवाह (प्रत्यक्ष दर्शी) जिन का जीवन उसी कार्यक्रम के अनुसार ढला था, बाबा बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी के समय अभी जीवित थे।

इस 'ज्ञानगोष्ठी और 'परिचर्चा सवाद' की प्रथा दूसरे गुरुओ के समय भी निरन्तर चलती रही। हम आगे चल कर देखेगे कि किस प्रकार दशमेश पिता श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने साम्प्रदायक ज्ञानियो तथा दार्शनिक पण्डितो–निर्मलयो की दो बडी लहर (आन्दोलन) चलाईं थी। श्री गुरु ग्रथ साहिब जी मे जो बाणी दी गई है उसमे कई पक्तियाँ ऐसी हैं जो प्राय जिज्ञासुओ की शकाओ एव प्रश्नो के प्रत्यक्ष उत्तर प्रतीत होते हैं। कट्टर से कट्टर सिक्ख मण्डल मे भी उचित शकाओ तथा प्रश्नो का 'स्वागत' किया जाता रहा है। सद्‌गुरुओ के साथ हुए ऐसे कई प्रश्न–उत्तर श्री गुरु ग्रथ साहिब जी मैं उल्लिखित है। इस आदि श्री गुरु ग्रथ साहिब जी की प्रथम रचना पाचवें सद्‌गुरु जी की हजूरी मे भाई गुरदास जी ने की थी।

२

खोज विचार का आरम्भ

सिक्ख धर्म के आदर्शों तथा सिक्खी-मार्ग के नियमो को विवेक बुद्धि के आधार पर आलोचना एव निरीक्षण करके सोचने समझने की परिपाटी सद्गुरु नानक देव जी महाराज के समय ही पड गई थी। सदगुरु ने ससार की चार यात्राओ द्वारा इतना भ्रमण किया कि उन से पहले ससार की भलाई के लिए इतनी विदेश यात्रा किसी भी महापुरुष या पैगम्बर ने नही की थी। इन यात्राओ मे कई धार्मिक नेताओ, सन्तो फकीरो और वलियो के साथ परिचर्चा एव गोष्ठी की। यह कैसे हो सकता था, कि सत्य का निश्चय कराने के लिए गुरु महाराज दूसरो के निश्चयो या विश्वासो का तो अच्छी प्रकार निरीक्षण करे और स्वय अपने सिक्खो मे अन्ध विश्वास का प्रचार करें।

गुरु नानक देव जी की सिद्धो के साथ हुई गोष्ठी का सार श्री गुरु ग्रथ साहिब जी मे 'सिद्ध-गोष्ठ' नामक वाणी के रूप मे मिलता है। यह गोष्ठी गुरु जी की खोज-विचार को पैनी दृष्टि को अच्छी प्रकार स्पष्ट करती है। अपनी आयु के पिछले १७ वर्ष उन्होने करतारपुर ज़िला गुरुदासपुर मे रावी के किनारे अपने नये बसाए नगर मे व्यतीत किए। वहा प्रतिदिन सायकाल सभा होती थी और सोदर रहिरास से पहले या पश्चात् सिक्खो के साथ प्रश्नोत्तर किया करते थे और जिज्ञासुओ की शकाओ का निवारण करते थे। मेकालिफ साहिब लिखते है* कि सद्गुरु सदा धार्मिक विषयो पर सिक्खो के साथ विचार किया करते थे। इस बात की पुष्टि भाई गुरदास जी से भी होती है। वे लिखते है †

* Sikh Religion' by M A Macauliff Vol I, Page 181

† वार भाई गुरदास, पहली वार, पौडा ३८।

बाबा आइया करतारपुर भेख उदासी सकल उतारा।

बाणी मुखहु उचारिअै, होइ रुशनाई मिटै अन्धारा।
ज्ञान गोष्ट चरचा सदा अनहद शबद उठे धुनकारा।

इसी पौडी मे ही लिखा है कि प्रात काल जपुजी साहब का पाठ होता था, सायकाल को सोदर रहिरास का और रात को कीर्तन सोहिले का। इस कार्यक्रम का यद्यपि भाई गुरदास ने पहली पातशाही के दरबार मे नही देखा था, परन्तु पाचवी पातशाही के समय गुरु घर की आदि-मर्यादा मे अन्तर नही आया था। साथ ही इस मर्यादा के, 'ज्ञान गोष्ट चर्चा बाणी' के आखो देखे गवाह (प्रत्यक्ष दर्शी) जिन का जीवन उसी कार्यक्रम के अनुसार ढला था, बाबा बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी के समय अभी जीवित थे।

इस 'ज्ञानगोष्ठी और 'परिचर्चा सवाद' की प्रथा दूसरे गुरुओ के समय भी निरन्तर चलती रही। हम आगे चल कर देखेगे कि किस प्रकार दशमेश पिता श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने साम्प्रदायक ज्ञानियो तथा दार्शनिक पण्डितो–निर्मलयो की दो बडी लहर (आन्दोलन) चलाई थी। श्री गुरु ग्रथ साहिब जी मे जो बाणी दी गई है उसमे कई पंक्तियाँ ऐसी है जो प्राय जिज्ञासुओ की शकाओ एव प्रश्नो के प्रत्यक्ष उत्तर प्रतीत होते हैं। कट्टर से कट्टर सिक्ख मण्डल मे भी उचित शकाओ तथा प्रश्नो का 'स्वागत' किया जाता रहा है। सद्गुरुओ के साथ हुए ऐसे कई प्रश्न–उत्तर श्री गुरु ग्रथ साहिब जी मे उल्लिखित है। इस आदि श्री गुरु ग्रथ साहिब जी की प्रथम रचना पाचवे सद्गुरु जी की हजूरी मे भाई गुरदास जी ने की थी।

३

भाई गुरदास जी की सिक्ख धर्म-व्याख्या

श्री आदि ग्रथ मे अब अन्य परिवर्तन नही हो सकता था। सिक्खो के नौवे गुरु, गुरु तेग बहादुर जी की कुछ रचनाये श्री गुरु गोबिन्द सिह जो ने आदि ग्रथ मे सम्मिलित की थी। इस प्रकार पाचवे गुरु के समय से लेकर ससार के सम्मुख ईश्वरीय रचना की एक विशेष पुस्तक आ गई। इन वचनो को पढने, सुनने, विचारने तथा खोज करने का अवसर कई लोगो को मिलने लग पडा। गुरबाणी मे से सिक्ख-धर्म-शिक्षा सम्बन्धी विचार तथा खोज आरम्भ हुई। गुरु अर्जुन देव जी के समय मे ही सिक्ख धर्म के सिद्धान्तो को अलग-अलग करके समझने और विवेचन करने का प्रयत्न उनके निकटवर्ती सिक्ख भाई गुरदास जी ने किया। बाबा बुद्ध सिह जो अपनी पुस्तक "हस चोग' में भाई गुरदास जी को सिक्खो का 'सेट पाल' कह कर सम्बोधित करते हैं। भाई साहिब का देहावसान १६२६ ई० मे अर्थात् श्री गुरु ग्रथ साहिब की रचना के १५ वर्ष पश्चात हुआ।

भाई गुरदास जी को अपनी दो रचनायें हमारे पास हैं। वारा तथा कवित्त-सवैय्ये। वारो की भाषा पजाबी है और कवित्त-सवैय्यो की भाषा हिन्दी। भाई साहिब की रचनाओ मे कई पक्तियो मे तो गुरुबाणी की पक्तियो का गम्भीर अनुवाद है। डाक्टर मोहन सिह जी लिखते है * "इनकी रचनाये आध्यात्मिक खज़ाने का कुजी समझी जाती है और यह एक शुद्ध एव वास्तविक रहतनामा है। भारतीय इतिहास के मध्यमकाल मे सद्गुरुओ को छोड कर भारत का सब से महान् पजाबी कवि भाई साहिब को ही समझा जाता है।" इनकी रचनाओ से ज्ञात होता है कि वे भारत के प्रचलित धर्मो की गम्भीर

* A History of Panjabi Literature, P 47

जानकारी रखते थे। भाई गुरदास जी की लेखनी को चाहे जितनी भी उपमा दी जाए थोडी है, परन्तु यह कहने मे सकोच नही हो सकता कि सिक्ख-धर्म सम्बन्धी जो कुछ उन्होने लिखा है, वह एक श्रद्धा-भावना वाले विशुद्ध सिक्ख के निश्चय से लिखा है। ऐसे लेखक हम प्रत्येक धर्म मे देखेगे। वे अपने धर्म को शेप मत मे उत्तम बताते है। ऐसे लेखक अपने इष्टदेव के प्रकट होने से पूर्व ससार की जो दशा वर्णित करते हैं, वह इतनी भद्दी और पापग्रस्त होती है कि कहा-सुना नही जा सकती। सभी ओर असत्य अधर्म अन्याय एव पाप का बोल बाला होता है। जब इष्टदेव प्रकट होता है तो बस देखते ही देखते समस्त पुण्य, सत्य और धर्म व्याप्त हो जाता है। यदि यह अलौकिक परिवर्तन किसी इष्टदेव के जन्म से नही होता तो फासी पर लटकने अथवा अन्य कई प्रकार के जगत-हेतु दु ख सहन करने से हो जाता है।

वास्तविक बात यह होती है कि ऐसे श्रद्धालु लेखक अपने इष्टदेव के स्पर्श या शिक्षा से स्वय तो अडिग स्वच्छ तथा पूर्ण सन्त बन जाते है। फिर अपनी आन्तरिक स्वच्छता तथा सन्तताई को ससार मे सभी ओर व्याप्त देखते है। है भी ठीक। ससार चोर को चोर दिखाई देता है और साधु को साधु। कुछ भी हो भाई गुरदास जी का प्रयत्न महान् प्रयत्न था। उनकी रचना मे सिक्ख-धर्म के सिद्धान्त सूर्य की भान्ति चमकते हैं। उनकी रचना की यह चमक दमक और भी बहुमूल्य प्रतीत होती है जब हम इस बात का विचार करते हैं कि सिक्खी रगमच पर अभी पाँच और गुरुओ के दर्शन होने थे तथा गुरु गोबिन्द सिह जी जैसे महान् पुरुष के हाथो सिक्खी मन्दिर का अभी पूर्ण निर्माण होना शेप था।

३

भाई गुरदास जी की सिक्ख धर्म-व्याख्या

श्री आदि ग्रथ मे अब अन्य परिवर्तन नही हो सकता था। सिक्खो के नौवे गुरु गुरु तेग बहादुर जी की कुछ रचनाये श्री गुरु गोबिन्द सिह जो ने आदि ग्रथ मे सम्मिलित की थी। इस प्रकार पाचवे गुरु के समय से लेकर ससार के सम्मुख ईश्वरीय रचना को एक विशेष पुस्तक आ गई। इन वचनो को पढने, सुनने विचारने तथा खोज करने का अवसर कई लोगो को मिलने लग पडा। गुरबाणो मे से सिक्ख-धर्म-शिक्षा सम्बन्धी विचार तथा खोज आरम्भ हुई। गुरु अर्जुन देव जी के समय मे ही सिक्ख धर्म के सिद्धान्तो को अलग-अलग करके समझने और विवेचन करने का प्रयत्न उनके निकटवर्ती सिक्ख भाई गुरदास जी ने किया। बाबा बुद्ध सिह जो अपनी पुस्तक "हस चोग' में भाई गुरदास जी को सिक्खो का 'सेंट पाल कह कर सम्बोधित करते है। भाई साहिब का देहावसान १८२९ ई० मे अर्थात् श्री गुरु ग्रथ साहिब की रचना के १५ वर्ष पश्चात हुआ।

भाई गुरदास जी को अपनी दो रचनाये हमारे पास है। वारा तथा कवित्त-सवैय्ये। वारो की भाषा पजाबी है और कवित्त-सवैय्यो की भाषा हिन्दी। भाई साहिब की रचनाओ मे कई पक्तियो मे तो गुरुबाणी को पक्तियो का गम्भीर अनुवाद है। डाक्टर मोहन सिह जी लिखते है * 'इनको रचनाये आध्यात्मिक खजाने का कुजी समझी जाती है और यह एक शुद्ध एव वास्तविक रहतनामा है। भारतीय इतिहास के मध्यमकाल मे सद्गुरुओ को छोड कर भारत का सब से महान् पजाबी कवि भाई साहिब को ही समझा जाता है।" इनकी रचनाओ से ज्ञात होता है कि वे भारत के प्रचलित धर्मो को गम्भीर

* A History of Panjabi Literature, P 47

जानकारी रखते थे। भाई गुरदास जी की लेखनी को चाहे जितनी भी उपमा दी जाए थोडी है, परन्तु यह कहने मे सकोच नही हो सकता कि सिक्ख-धर्म सम्बन्धी जो कुछ उन्होने लिखा है, वह एक श्रद्धा-भावना वाले विशुद्ध सिक्ख के निश्चय से लिखा है। ऐसे लेखक हम प्रत्येक धर्म मे देखेंगे। वे अपने धर्म को शेष सब से उत्तम बताते है। ऐसे लेखक अपने इष्टदेव के प्रकट होने से पूर्व ससार की जो दशा वर्णित करते हैं, वह इतनी भद्दी और पापग्रस्त होती है कि कहा-सुनी नही जा सकती। सभी ओर असत्य, अधर्म अन्याय एव पाप का बोल बाला होता है। जब इष्टदेव प्रकट होता है तो बस देखते ही देखते समस्त पुण्य, सत्य और धर्म व्याप्त हो जाता है। यदि यह अलौकिक परिवर्तन किसी इष्टदेव के जन्म से नही होता तो फासी पर लटकने अथवा अन्य कई प्रकार के जगत-हेतु दुख सहन करने से हो जाता है।

वास्तविक बात यह होती है कि ऐसे श्रद्धालु लेखक अपने इष्टदेव के स्पर्श या शिक्षा से स्वय तो अडिग, स्वच्छ तथा पूर्ण सन्त बन जाते हैं। फिर अपनी आन्तरिक स्वच्छता तथा सन्तताई को ससार मे सभी ओर व्याप्त देखते है। है भी ठीक। ससार चोर को चोर दिखाई देता है और साधु को साधु। कुछ भी हो भाई गुरदास जी का प्रयत्न महान् प्रयत्न था। उनकी रचना मे सिक्ख-धर्म के सिद्धान्त सूर्य की भान्ति चमकते हैं। उनकी रचना की यह चमक दमक और भी बहुमूल्य प्रतीत होती है जब हम इस बात का विचार करते हैं कि सिक्खी रगमच पर अभी पाँच और गुरुओ के दर्शन होने थे तथा गुरु गोबिन्द सिंह जी जैसे महान् पुरुष के हाथो सिक्खी मन्दिर का अभी पूर्ण निर्माण होना शेष था।

४

श्री गुरु गोबिन्द सिंह का उद्यम

धार्मिक कवि भाई गुरदास जी के पश्चात् पचास वर्ष तक हमे सिक्ख-धर्म के निश्चयो का निणय करने वाला कोई उत्कृष्ट लेखक नही मिलता। पचास वर्ष पश्चात् हम बाल सद्गुरु, गुरु गोविन्द सिंह जी को सस्कृत के पण्डितो, अरबो के मौलवियो तथा फारसी के विद्वानो का दरबार सजाए देखते है। महाकवियो तथा विद्वानो की सभा सद्गुरु के हजूर मे लगी रहती थी। अब उस पुरानी 'ज्ञान-गोष्ठी सवाद" को चार चाँद लग गये थे। श्री दशम ग्रथ को पढने पर ज्ञात होता है कि श्री दशमेश जी को हिन्दु शास्त्रो दर्शनो तथा पौराणो आदि का पूर्ण ज्ञान था और तत्कालीन देशी विदेशी सब मत मतान्तरो की गम्भीरता (सूक्ष्मताओ) से वे परिचित थे। इस प्रकार से श्री आदि ग्रथ जी को समझने समझाने के लिए वे भली प्रकार इलमो-फजल के साथ परिपूर्ण थे।

'पथ प्रचुर करबे' के लिए गुरु गोविन्द सिह जी ने सिक्खी मण्डल मे दो आन्दोलन चलाए, सिक्खी प्रचार तथा गुरमत प्रकाश के साथ इन दोनो सस्थाओ का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। पहला आन्दोलन तो खालसा धर्म की नीव रख कर पथ को निश्चित नियमो के अनुसार चलाना था। इस नियमित सगठन ने खालसे को वह प्रगतिपूर्ण बल दिया कि ससार को यह एक आश्चर्यचकित करने वाली अलौकिक क्रिया अथवा करामात प्रतीत हुई। परन्तु पथ के सगठन की नीव दृढ करने के लिए यह आवश्यक था कि सिक्खी सिद्धान्त एव मार्ग को दार्शनिक रूप मे लोगो तक पहुचाया जाए और सिक्ख-धर्म के सिद्धान्तो को विवेक बुद्धि द्वारा प्रकाशित किया जाए। पहले आन्दोलन का विचार हमारे वर्तमान लक्ष्य से बाहर है।

५

निरमले

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने गुरबाणी प्रचार तथा दार्शनिक विचार के लिए दो प्रयत्न किए। एक तो गुरबाणी के टकसाली अर्थों के लिए साम्प्रदायिक ज्ञानियो की प्रणाली को प्रचलित करना था और दूसरे सिक्खो मे धार्मिक एव दार्शनिक अन्वेषक पण्डितो का सम्प्रदाय निरमलो के रूप मे खडा करना था। ये दोनो प्रयत्न सिक्ख इतिहास मे एक महान् साहित्यिक आन्दोलन की दो शाखाये है।

दशमेश पिता जी ने पाँच* सिक्ख चुन कर काशी जी (वाराणसी) भेजे, ताकि वे प्रत्येक सम्भव विधि से वहाँ के माननीय पण्डितो से वेद शास्त्रो की गूढ शिक्षा प्राप्त करके आयें।

वहा के पण्डितो का यह सिद्धान्त था कि वे किसी गृहस्थो को अपनी गूढ विद्या का दान नही देते थे। दशमेश गुरु जी यह नही चाहते थे कि भारत की पुरातन विद्या और विचार-कोष किसी मनुष्य के लिए इसलिए बन्द रहे कि वह गृहस्थी है या जन्म से किसी नीच जाति का है। गुरु साहिब ने उन्हे आदेश दिया कि जो भी पण्डितो के रीति रिवाज है वे सब करो, परन्तु विद्या अवश्य प्राप्त करके आओ। उन्होने हिन्दु साधुओ वाले गेरुए वस्त्र पहन लिए तथा ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर ली। काशी जी मे विद्या-प्राप्ति के लिए उन्हे कोई बाधा न हुई। वेद शास्त्रो के पूर्ण ज्ञाता होकर वे गुरु जी के सम्मुख

---

* इन पाचो सिक्खो के नाम ये हैं राम सिंह, कर्म सिंह, गडा सिंह, वीर सिंह और सोभा सिंह। इनके जीवन के सम्बन्ध मे देखें 'गुरशब्द रत्नाकर' भाग तीसरा पृष्ठ २१२३, रचयिता भाई कान्ह सिंह, प्रकाशक 'पटियाला दरबार'।

उपस्थित हुए और सद्‌गुर ने उन्हे 'निरमल'* (मल रहित) पदवि से विभूषित किया। आचरण मे भी निरमलो का व्यवहार पजाब के शेष सब भेषो (आचरणो, भेखो) से बहुत अच्छा है† ।

इस सम्प्रदाय ने अधिकतर सस्कृत के विद्वान ही उत्पन्न किए। शङ्कराचार्य को भान्ति ये सब वेदान्ती थे। भले ही उसकी तरह स्नातनी मूर्तियो की पूजा तथा जाति-पाति बन्धनो से रहित थे, बल्कि खिक्खी भक्ति-भावना मे रगे हुए थे। चूकि पुरातन दार्शनिक विचार-धारा ने इनके मन-मस्तिष्क पर गहन प्रभाव डाला हुआ था इसलिए इनके विचार तथा रचनाये विशुद्ध सिक्खी मार्ग को प्रकट नही करते। आरम्भ से लेकर ही वे वेदान्त सम्बन्धी विचारो के प्रचार तथा सिक्ख धर्म को भी उसी पुरातन दार्शनिक रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास करते रहे। नए धर्म के वे प्रचारक तथा पण्डित थे। अपनी विद्वता के बल पर उन्होंने बडे गूढ ग्रथो की रचना की। ये ग्रथ केवल धार्मिक ही नही थे, अपितु कई विषयो पर इन्होने लिखा जैसे—ज्योतिष हिकमत, वैद्यक, आदि‡ ।

इस सम्प्रदाय की दार्शनिक रचना पण्डित गुलाब सिह, जिनका जन्म सेखव ग्राम जिला लाहौर मे सन् १७३२ ई० मे हुआ था से आरम्भ होती है। पण्डित गुलाब सिह ने सन्त मान सिह से शिक्षा प्राप्त की थी। सन्त मान सिह जी दशमेश जी के शिष्य (सिक्ख) एव उनके समकालीन थे। पण्डित जी की कई पुस्तकें गुरुमुखी मे प्रसिद्ध है। जैसे—भावर स्मृति,(१७७७ ई०), मोख पथ (१७७८ ई०), आध्यात्म रामायण (१७८२ ई०) प्रबोध चन्द नाटक (१७६२ ई०)। इन पुस्तको पर वेदान्त का प्रभाव स्पष्ट था। इनके पश्चात् पण्डित साधु सिह जी हुए है। ये पण्डित गुलाब सिह गिडबडी (हुशियारपुर) के शिष्य थे। पण्डित साधु सिह एक उच्चकोटि के विद्वान थे। अपनी रचना मे

---

* सत्यार्थ प्रकाश' के रचयिता स्वामी दयानन्द जी निरमलो का आरम्भ चतुर्थ गुरु रामदास जी से बताते हैं। यह सवथा असगत है। देखें पृष्ठ ४१० अग्रेजी अनुवाद, अनुवादक चिरजीव भारद्वाज।

† 'ऐनसाईक्लोपेडिया आव रिलेजन एण्ड ऐथिक्स ।

‡ हिस्ट्री आफ पजाबी लिटरेचर, पृष्ठ ६० (डा० मोहन सिंह) इन विद्वानो के सक्षिप्त जीवन परिचय के लिए देखें "गुर शब्द रत्कनाकर"।

पण्डित गुलाब सिंह सेखव की अपेक्षा पण्डित साधु सिंह ने सिक्खी आशय को अधिकतर मुख्य रखा है। इन्होने कई ग्रंथ लिखे। इनमे गुरशिक्षा-प्रभाकर तथा श्री मुखवाक सिद्धान्त ज्योति निरमलो मे विशेष रूप से माननीय है*। ये पुस्तके उस समय के पटियाला नरेश ने प्रकाशित करवाई तथा अधिकारियो को बिना मूल्य देने का आदेश दिया। इनके 'प्रभाकर' मे तो दार्शनिक विचार है तथा 'सिद्धान्त ज्योति' मे गुरबाणी के चुने हुए शब्दो का सविस्तार विवेचन है। लेखक का विचार है कि यदि इन शब्दो की इस टीका (विवेचन)को समझ लिया जाए तो समस्त गुरबाणी के अर्थो का ज्ञान हो सकता है†।

पण्डित साधु सिंह के गुरु भाई पण्डित तारा सिंह भी बडे

---

*ये पुस्तकें साधारण पुस्तकालयो मे नही मिलती यही कारण है कि पजाबी साहित्य के इतिहासो मे लेखको ने इनका प्रसग नही दिया। दास (लेखक) ने इन पुस्तको को अपने स्वर्गवासी ताया ज्ञा० हरदित सिंह जी के पुस्तकालय मे देखे थे।

†कई निरमले पण्डितो ने अपनी रचनाओ (पुस्तको) को किसी भी मूल्य पर नही बेचा "धृग तिना का जीविआ लिखि लिखि वेचहि नाउ"। श्लोक २०, सारग की वार महला-२-पृष्ठ १२४५) के महा वाक् के अनुसार वह इस प्रकार करने पर पाप समझते है। कई महात्मा अपनी रचना को प्रकाशित ही नहीं करते। प्रकाशित करवा कर मुफत बाँटने मे अनाधिकारी के हाथो मे ग्रन्थ चला जाता है। ऐसे महात्मा अपने लिखे हुए नुसखे बहुत सभाल कर रखते हैं और परीक्षा मे पूर्ण रहने वाले शिष्य को यह 'गुप्त' खजाना बताते है। कई छपवा कर मुफत बाँटने के लिए भी कडी परीक्षा रखते हैं। श्रीमान ज्ञानी हरदित सिंह जी ने एक बार एक परीक्षा का वर्णन किया था जिसके द्वारा उन्हे कुछ ग्रंथ मिले थे। पहले वे महात्मा के डेरे पर गए। एक कुटिया मे आसन लगाया गया। उनके आचार-व्यवहार को देखा गया। तीन दिन पश्चात् महापुरुष ने स्मरण किया। वचन आदि लिये गए। विचार हुआ। अधिकारी समझकर अपने हाथो खाना खिलाया और जूठे बर्तन साफ किए। हाथ धोकर, धुलाकर, पुस्तक सिर पर रख कर लाई गई और दोनो हाथो से सत्कार सहित पकडा कर चरण वन्दना भी की।

विद्वान हुए है। इन्होने भी महाराजा नरेन्द्र सिह पटलेश्वर* (३) के सरक्षण मे कार्य किया। इन्होने कई पुस्तके लिखी जिनमे कई तो टीकाये तथा व्याख्या है। परन्तु 'गुरमत निर्णय सागर' दार्शनिक खोज से परिपूर्ण है। यह पुस्तक १८८७ ई० मे प्रकाशित हुई।

भाई अवतार सिह वहोरिये न बावा खेम सिह जी से प्रभावित होकर दो सिक्ख-मीमासाये पूर्व तथा उत्तर प्रकाशित की। परन्तु इनके विचार सिक्ख धर्म (गुरमत) के मूल सिद्धान्तो से विपरीत है, इसलिए इनका प्रसग यहा आवश्यक (अपेक्षित) नही। अब बोसवी शताब्दी मे निरमले पण्डितो की ओर से कोई दार्शनिक साहित्य नही रचा जा रहा। सम्भवत यह पश्चिमी सभ्यता एव शिक्षा के प्रभाव स्वरूप जिस नए ढग की खोज आरम्भ हो गई है उसके कारण ही से रुक गई है।

पश्चमी सभ्यता तथा अग्रेजी शिक्षा का प्रभाव सिक्खो मे एक नई लहर (आन्दोलन) के रूप मे सिह सभा के नाम से प्रकट हुआ। सन् १८७३ ई० मे सिह सभा की नीव अमृतसर मे रखी गई। १८७६ मे लाहौर मे प्रो० गुरमुख सिंह तथा भाई दित सिह जी के परिश्रम से एक और सिंह सभा स्थापित की गई तथा किसी मतभेद के कारण कुछ वर्ष पश्चात् अमृतसर के खालसा दिवान से भिन्न एक खालसा दिवान लाहौर की स्थापना हुई। बाद मे अमृतसर वालो ने एक अलग दिवान बना लिया जिसका नाम चीफ खालसा दिवान रखा गया। चीफ खालसा दिवान† अभी तक स्थित है और नरम विचार वाले सिक्खो

---

*महाराजा नरेन्द्र सिंह जी की उदारता से ही निरमल अखाडा भी अस्तित्व मे आया, इस अखाडे का सगठन करके हिन्दू तीर्थों पर निरमले साधुओ ने कई अच्छी अच्छी सस्थाए चलाई हुई हैं। वर्तमान महाराजा यादवेन्द्र सिंह महाराजा नरेन्द्रसिंह से चौथे स्थान पर हैं। इनके पिता महाराजा सर भूपेन्द्र सिंह जो १९३८ मे ससार त्याग गए थे, ने बडे उत्साह स भाई कान्ह सिंह नाभा जी द्वारा रचित "गुरशब्द रत्नाकर" अथवा 'सिक्ख साहित्य' का ऐनसाईक्लोपेडिया' प्रकाशित करवाया था। इन स पहले महाराजा नाभा ने भाई कान्ह सिंह जी के दो ग्रथ गुरमति प्रभाकर और गुरमति सुधाकर अपने व्यय पर प्रकाशित करवाये थे।

†देखें ऐज इन सिक्खीज़म रचयिता प्रो० तेजा सिंह—१९४४

का एक अच्छा प्रभावशाली दल (सगठन) है।

इस दिवान ने सिक्खो मे विद्या प्रचार के लिए बडा सराहनीय काम किया है। इस पश्चिमी ढग के विद्या प्रचार का परिणाम यह निकला कि सिक्खो मे पूर्ण जागृति आ गई उनमे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र (पहलू) मे उन्नति करने का भाव उत्पन्न हुआ। इसी चाव के कारण पजाबी बोली की उन्नति हुई तथा हो रही है, इसी जागृति से धर्म स्थानो तथा सस्कारो का सुधार हुआ तथा प्रेस एव प्लेट फार्म के द्वारा जातीय एवं देश प्रेम का भाव उत्पन्न हुआ और फला फूला। इन सभी कारणो के प्रभाव स्वरूप ही अकाली लहर का जन्म हुआ। इस समस्त परिवर्तन एव जागृति के कारण निरमलो का प्रचार तथा पुस्तके जिन के मूल मे पुराने हिन्दु विचारो का प्रभाव था, विशेष लोकप्रिय न रहे*।

---

*कई पश्चिमी विद्वान निर्मले विद्वानो के इसलिए कृतज्ञ हैं, कि इन्होने उन्हें गुरवाणी का परिचय कराया। जिस प्रकार कि १८०५ ई० मे सर जान मैलकोम ने कलकत्ते मे किसी निरमले पण्डित से गुरवाणी के अर्थ सुने। इसी प्रकार अमृतसर के सत आत्मा सिंह ने १८७७ मे आदि ग्रन्थ डाक्टर टरम्प को पढाया। अपने समय मे डाक्टर टरम्प ने भी निरमलो का हिन्दुओ की ओर हो रहा झुकाव देखा था और टरम्प लिखता है कि हिन्दु शास्त्रो एव वेदो के प्रभाव स्वरूप वे भी अब हिन्दुत्व के प्रभाव मे बहते जा रहे है। गुरद्वारा आन्दोलन (१६२५-३५) मे निरमले सिंहो से और भी दूर हो गए थे। परन्तु अब आपस मे पर्याप्त मेल मिलाप है। सम्भव है कि इन पण्डितो की कृपा से नई परिस्थितियो के अनुसार एक नया साहित्य सिक्ख-दर्शन का पथ-प्रदशन करने के लिए उत्पन हो जाए।

६

पश्चिमी प्रभाव

पश्चिमी विचारो ने सिक्ख विद्वानो के मन-मस्तिष्क को प्रभावित किया तथा गुरमत के आदर्शो का अलग होना नए ढग से आरम्भ हुआ। सिंह सभा का जोर हो गया तथा सिक्ख हिन्दुओ से अलग होने लग पडे। इस अलग करने वाली रुचि ने ज्ञानी दित्त सिंह जैसे महान लेखक को जन्म दिया। उन्होने अपनी लेखनी द्वारा सिक्खी सस्कारो एव निश्चयो मे से हिन्दु रीतियो तथा विचारो को बडी सफलता से निकाला। प्लेटफाम पर उनका आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द से जबरदस्त सामना हुआ। इस अलग करने वाली रुचि के परिणाम-स्वरूप ही 'हम हिन्दु नही' तथा 'गुरु साहिब एव वेद' आदि पुस्तको की रचना हुई। हिन्दु रग मे रगे हुए सिक्खो ने भी अपनी डिफैंस (सुरक्षा पुष्टि) मे कुछ एक पुस्तकें लिखी तथा नये आन्दोलन की आलोचना भी की और अपने ऊपर किए गए आक्रमणो अथवा लगाये गए आरोपो के उत्तर भी दिए।

यदि सिक्ख हिन्दु नही थे तो उस समय सबसे बडी आवश्यकता यह सिद्ध करने की थी कि सिक्ख कौन है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए सरदार साधु सिंह तथा डाक्टर चरण सिंह ने मिल कर सेवा आरम्भ की और 'खालसा ट्रैक्ट सोसायटी' अमृतसर की नीव रखी। भाई साहिब भाई वीर सिंह जो सिक्खो के सन्त कवि थे ने बडी सफलता के साथ इस सस्था को चलाया। अब तक इस सोसाइटी की ओर से कई अच्छे अच्छे ऐतिहासिक तथा धार्मिक ग्रथ प्रकाशित किए जा चुके है।

सिक्खी मार्ग को चमकाने और दमकाने अथवा उन्नति की ओर ले जाने के चाव पूर्ण परिश्रम के कारण ही भाई कान्ह सिंह जी नाभा ने दो उत्तम पुस्तको की रचना की। इनमे 'गुरमत प्रभाकर'

१८६६ मे प्रकाशित हुई और गुरमत सुधाकर १६०० ई० मे। इसी प्रकार एक अन्य पुस्तक सिक्खी मार्ग नामक है। यह पुस्तके एक प्रकार से गुर-मत के विषयो पर गुरशब्दो की प्रमाण सहित सुसज्जित विपयसूचि हैं। कोई क्रमिक एव नियमित दार्शनिक विचार-धारा इनमे नही है। अपने अपने स्थान पर ये अत्यन्त लाभदायक पुस्तके है। गुरमुखी जानने वाले के लिए ये एक बडे "रैडी रैफरैंस" तत्पर प्रसग ढूढने का काम देती है। इन जैसी ही परन्तु इनसे अच्छे ढग से लिखी हुई प्रो० जोध सिंह जी की पुस्तक 'गुरमति निर्णय' है। यह १६३२ ई० मे पहली बार प्रकाशित हुई थी।

जो काम खालसा ट्रैक्ट सोसायटी ने गुरमुखी मे किया है, उस प्रकार का अग्रेजी मे काम करने के लिए ग्रैजुएट सिक्खो ने लाहौर मे सिक्ख ट्रैक्ट सोसायटी की नीव रखी। इस सोसायटी की ओर से अभी तक अग्रेजी मे कोई विशेष ठोस काम नही हुआ। प्रो० तेजा सिंह जी के कुछ एक लेख तो ट्रैक्ट सोसायटी ने प्रकाशित किये थे, अब कुछ वर्षो से इस सोसायटी का काम बहुत धीमा पड गया है। स सरदूल सिंह जी कवीशर की 'सिक्ख स्टडीज' तथा प्रो० तेजा सिंह जी की पुस्तक, 'सिक्खीजम—इटस आईडियलज एण्ड इन्स्टीच्यूशनज' तथा 'साम आफ पीस' और 'ऐसेज़', सर जोगिन्दर सिंह जी की रचनाये तथा भाई साहिब भाई शेर सिंह जी एम० एल० सी० की पुस्तके धार्मिक साहित्य मे प्रशसनीय वृद्धिया है। (भाव-कृतिया है।)

७

साम्प्रदायिक ज्ञानी

हम लिख आये है कि श्री गुरु गोविन्द सिह जी ने सिक्खी प्रचार आन्दोलन दो आधार पर चलाया। एक तो निरमलो की दार्शनिक विचारधारा द्वारा तथा दूसरा साम्प्रदायिक ज्ञानियो की गुरबाणी के अर्थ-बोध एव व्याख्या द्वारा। ऊपर सक्षिप्त रूप मे थोडा सा वर्णन दार्शनिक पक्ष मे हुए प्रयत्नो का था। धार्मिक प्रचार के लिए ज्ञानियो ने क्या कुछ किया ? यह हमने अब देखना है। ज्ञानियो की परम्परा भाई मनि सिह जी, जिनकी मृत्यु १७३७ मे हुई, से चलती है। भाई मनि सिह ने गुरबाणी की व्याख्या श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के मुखारविन्द मे सुनी। भाई साहिब श्री दरबार साहिब अमृतसर के मुख्य ग्रथी भी रहे। जिज्ञासु सिक्खो को गुरबाणी के अर्थ भी सुनाते रहे। उन्होने गुरु नानक देव जी की एक 'जन्म-साखी' (जीवन वृत्तान्त) भी लिखी। जन्म-साखियाँ दो तीन और भी है, जैसे—भाई बाले वाली, हाफजाबाद वाली आदि। इन जन्म साखियो मे ऐतिहासिक घटनाओ को पौराणिक ढग से लिखा गया है। 'पुरातन जन्म साखी' मे (पृष्ठ १४४) इनके सम्बन्ध मे भाई वीर सिंह जी ने श्रेष्ठ एव खोजपूर्ण विचार लिखे है। इन साखियो एव अन्य पुस्तको के आधार पर महाकवि सन्तोख सिंह जी ने श्री नानक प्रकाश तथा गुर-प्रताप सूरज अथवा सूरज-प्रकाश लिखे। समस्त सद्गुरुओ की जीवन-कथा इन्ही पुस्तको मे मिलती है। ये सिक्खो की रामायण-महाभरत का काम देती है। कविता के गुणो मे, विचारो की उडान तथा सगीत के रस की दृष्टि से भाई सन्तोख सिह जी की दो पुस्तके रामायण-महाभारत की अपेक्षा बहुत उत्कृष्ट है। भाई रत्न सिंह जी का पथप्रकाश और ज्ञानी ज्ञान सिंह जी की 'तवारीख खालसा' (History

of Khalsa) पुस्तक ऐतिहासिक पुस्तको की लडी के अन्तिम मनके है। अर्थात् उस परम्परा की अन्तिम पुस्तके है।

हम वर्णन कर रहे थे साम्प्रदायिक ज्ञानियो का परन्तु प्रसग चल पडा इतिहासकारो का। वास्तव मे ज्ञानी गुरबाणी व्याख्या के साथ ऐतिहासिक व्याख्या भी करते रहे है। साधारण गुरुद्वारो तथा धर्मशालाओ मे इस नित-नियम को कि प्रात श्री गुरुग्रथ साहिब की कथा हो और साय जन्म साखियो या सूरज प्रकाश का विवेचन हो, आजकल भी पूरा किया जाता है। साम्प्रदायिक व्याख्या भाई मनि सिंह से चली थी और उस के पश्चात आगे वशपरम्परा के रूप मे बराबर अब तक चली आ रही है। इन ज्ञानियो की कई वशगत परम्परायें बन गई हैं। परन्तु इनके प्रधान मुख्य केन्द्र दो ही है श्री दमदमा साहिब तथा श्री अमृतसर जी।*

श्री दमदमा साहिब, रियासत पटियाले को दशमेश जी ने 'गुरु की काशी' का वर दिया था कि सिक्ख धर्म सम्बन्धी विद्या का निरन्तर प्रवाह यहा चलेगा। इन दोनो स्थानो से कई सन्त ज्ञानी

---

*इनमे से अमृतसर वाली एक पीढी (परम्परा) का क्रम 'कोश' मे इस प्रकार लिखा है

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी साहिब— भाई मनि सिंह जी—भाई दिवान सिंह जी— भाई कौल सिंह जी— भाई जस्सा सिंह जी—

गुरवाणी का प्रचार हिन्दु सन्यासियो की भान्ति करते देखे जाते थे। इस प्रकार से लोगो को ग्रामो मे बैठे वठे सिक्ख धर्म पर भाषण तथा उपदेश मिल जाते थे। कई लोग घर गृहस्थी के बोझ के कारण बाहर जाकर विद्या प्राप्त नही कर सकते थे। उनके लिए ये सन्त-मण्डलियाँ चलती फिरती यूनीवर्सिटियो का काम देती थी। आज भी यदाकदा ऐसे सन्त देखे जाते है।*

एक एक मण्डली मे अभी भी सौ से डेढ सौ विद्यार्थी देखे जाते है। पश्चिमी विद्या से प्रभावित हमारा दृष्टि-कोण (out look) धर्म के सम्बन्ध मे बडा सकुचित तथा व्यवहार मे वडा स्वार्थी होने के कारण ऐसी मण्डलियो की गिनता तथा भ्रमण दिन-प्रति दिन घट रहे है।

इन साम्प्रदायिक ज्ञानियो की ओर से जो धार्मिक साहित्य रचा गया, वह भी निरमलो के साहित्य से किसो भी प्रकार से कम नही। साधारणतया इनकी पुस्तके गुरवाणी के अर्थो या टीका टिप्पणियो के रूप मे ही है। रियासत फरीदकोट के राजा विक्रम सिह जो (१८४२-१८६८) के उद्यम से कुछ एक ज्ञानियो ने मिल कर श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी की टीका लिखी।†

---

*सत ज्ञानी सुन्दर सिह जी भिडराँ वालो ने इसी प्रकार ही प्रचार किया और अब ज्ञानी गुरवचन सिह जी भी उसी प्रकार बहुमूल्य सेवा कर रहे हैं।

†यदि टरम्प और मैलकौम को गुरवाणी का परिचय निरमलो मे हुआ तो मैकालिफ साहिब का पथ-प्रदशन (नेतृत्व) साम्प्रदायिक ज्ञानियो ने किया।

८.

सिक्ख-धर्म सम्बन्धी फारसी में पुस्तकें

सिक्ख लेखकों ने और भी बहुत पुस्तके लिखी है,* परन्तु व साहित्यिक है धार्मिक नही है। ऐसे पजाबी साहित्य का वर्णन न करते हुए हमे अब उन पुस्तको पर दृष्टि-पात करना है जो फारसी मे हिन्दुओ, सिक्खो एव मुसलमानो आदि ने सिक्खो के सम्बन्ध मे लिखी। इन लेखको का समय भी एक नही। गुरु साहिब के समय से लेकर अब तक ये पुस्तके लिखी जाती रही हैं। इन लेखको मे एक दो मुगल सम्राट भी सम्मिलित हैं। इन सम्राटो की डायरियो या रचनाओ मे सिक्खो के सम्बन्ध मे कही कही सकेत मिलता है, परन्तु इन फारसी की पुस्तको मे से बहुत सी ऐतिहासिक ही है। दबसिताने मजाहब (१८४५) भी ऐतिहासिक है। भाई नन्दलाल जी की पुस्तके जैसे कि ज्योति-विकास, जिन्दगी नामा तौसीठौ सना, जग नामा, इन्सान दस्तूर अरूजल अलफज तथा खातिमा अदि साहित्यक पुस्तके है। भाई जी भारत से बाहर गजनी मे १६३३ ई० मे उत्पन्न हुए थे। फारसी तथा अरबी के उच्चकोटि के विद्वान थे। इन्हे अपनी धर्मपत्नी के पवित्र जीवन से सिक्ख धर्म से प्यार हो गया। यह महान् स्त्री मुलतान के एक सिक्ख परिवार की सुपुत्री थी। दशमेश जी के प्यार का आकर्षण इन्हे आनन्द पुर ले गया और वहा जाकर कलगीधर जी के खडे का इन्होने अमृत पान किया। ये दशमेश जी के सच्चे प्रेमी (आशिक) तथा

*खालसा कालेज अमृतसर के हिस्ट्री शोध विभाग की ओर से स० गडासिंह 'केवल' ने कुछ एक शोधपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसी प्रकार सिक्ख नैशनल कालेज वाले भी कुछ प्रयत्न करने लगे हैं, परन्तु अभी भी बहुत से साहस की आवश्यकता है। 'सिक्ख हिस्ट्री सोसायटी' भी बन चुकी है और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने भी १६४६ से इस ओर ध्यान दिया है।

पक्के सिक्ख (भक्त) हुए हैं। इनकी प्यार के भाव मे रगी रसमय कविता सुन कर श्री गुरु जी के स्वरूप एव साक्षात्कार के लिए वह आकर्षण तथा वलवले पैदा होते है कि सुनने वाले अपने आप मस्त हो जाते है। कभी स्वर और लय मे गाई गई इन पक्तियो का प्रभाव श्रोतो पर पडता देखो तो एक अजीब समा बेधा होता है —

"दीन दुनिया दर कमन्दे आ परी रुखसारे मा,
हर दो आलम कीमते यक तारे मूई यारे मा।"

भाई साहिब की इन पुस्तको मे रस तो पगा है ये पाठक को भक्ति-भावना और सिक्खी के स्वाद का आनन्द भी प्रदान करती है। परन्तु ये सिक्खी सिद्धान्त का दार्शनिक विवेचन नही है। इनका 'जिन्दगी नामा' तो सिक्खी जीवन के रहत-नामे है और सिक्खो के सामाजिक निर्माण (सगठन) के दार्शनिक विवेचन के लिए काम आ सकते है।

९

सिक्ख राज्य के समय

सम्भवत पाठक का विचार हो कि जैमे बुद्ध-धर्म महाराजा अशोक के परिश्रम से दूर-निकट सभी स्थानो पर फैल गया उसी प्रकार महाराजा रणजीत सिंह (परलोक-गमन १८३९) तथा सिक्ख-राज्य उत्थान के समय भी सिक्ख धर्म के प्रचार के लिए बडा भारी काम हुआ होगा। प्रथम बात तो यह है कि सिक्खो को राजनैतिक झगडो से कभी समय मिला ही नही जिससे कि वे उस समय अपने धर्म-प्रचार के लिए यत्न करने के लिए ढग सोचते या अपने रीति-रिवाजो तथा नियमो (सिद्धान्तो' को खोजते विचारते तथा इन को अलग-अलग करते। महाराजा रणजीत सिंह और अन्य सिक्ख राजाओ तथा सरदारो का जीवन बहुधा हिन्दु साचे मे ही ढला हुआ था। वे अपने कार्य-व्यवहार के समय ऐसे सस्कार तथा रीति-रिवाज अपनाते थे, जो या तो वास्तव मे हिन्दु थे और बाद मे उन्हे सिक्ख-धर्म का जामा पहनाया गया अथवा रूप दिया गया या वे प्रारम्भ मे शुद्ध रूप मे सिक्ख थे तथा समय पाकर अब हिन्दु रग मे रगे गए थे।

हिन्दु धर्म, जैसा कि ऐतिहासिक घटनाओ से ज्ञात होता है, बडी सहनशीलता तथा धीमो रुचि वाला दूरदर्शी सगठन है। किसी नए धर्म अथवा मत को पहले तो सहन किया जाएगा, और फिर यदि नए धर्म वाले बहुत सावधान न रहे तो उस मत को अपनाया भी जाएगा तथा अन्त मे वह मत हिन्दु धर्म रूपी महान सागर मे लुप्त हो जाएगा। डाक्टर बैंटी रायमन के कथनानुसार यह हिन्दु धर्म की समाविष्ट करने वाली शक्ति है, हिन्दु धर्म का यह महान गुण है। सैकडो मत उत्पन्न हुए, पर्याप्त प्रयत्न करने पर भी अन्त मे वे लुप्त हो गए। प्राचीन भारतवासियो के विश्वास और निश्चय अलग अथवा

शुद्ध रूप मे कही भी देखने मे नही आते। भारत मे बुद्ध मत के साथ भी धीरे-धीरे ऐसा ही हो रहा है। और तो और, वे धर्म तथा मत जो भारत से बाहर उत्पन्न हुए तथा फले फूले, जब भारत मे आए तो हिन्दु-धर्म के रग मे रगे जाने मे बच न पाये। क्या पता समय पाकर वे भी हिन्दु धर्म का शाखायें बन जाय। भारतीय इस्लाम, भारतीय ईसाइ-धर्म भारतीय पारसियो के विश्वास, निश्चय एव रहन सहन देखे तो यह आश्चर्यपूर्ण लीनता तथा प्रभावशाली शक्ति स्पष्ट हो जायेगी। सिक्खो पर हिन्दुत्व का प्रभाव दशमेश जी के पश्चात शीघ्र ही पडना आरम्भ हो गया था। उस समय से लेकर अब तक सिक्ख अपने जीवन-सग्राम मे ही जूझे रहे है। इसका स्वभाविक प्रभाव यह पडा कि वे सैद्धान्तिक पक्ष (आशयो) को भली प्रकार से अलग नही कर पाये और अपने सिक्खी जीवन का दार्शनिक आधार पाने मे असमर्थ रहे है। सर ए० सी० लायल अपनी पुस्तक 'एशियाटिक स्टडीज' मे लिखते है "सिक्ख जैसे जैसे राजनैतिक तथा व्यावहारिक जीवन मे आगे बढ रहे है वैसे वैसे वे अपने आप को हिन्दुओ से अलग करने के लिए कम प्रयत्न करते हैं। (पृष्ठ १४४)

महाराजा रणजीत सिह का हिन्दुत्व से प्रभावित सिक्ख धर्म मे जन्म और पालन-पोषण हुआ और वे उन्ही रूढीगत परिपाटियो के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते रहे। उनके जन्म तथा मृत्यु के समय हिन्दु तथा सिक्ख दोनो प्रकार के क्रिया-क्लाप किए गए। यहा तक कि सति-प्रथा जैसी घृणित क्रिया जो कि गुरु साहिब की ओर से अत्यन्त वर्जित थी, उनकी (रणजीत सिह) की चिता पर सम्पन्न की गई। एक फ्रासीसी लेखक जान मार्टन हानीजरगर ने अपनी "पूर्व मे ३५ वर्ष" (१८४२ ई० पृष्ठ १०२) नामक पुस्तक मे महाराजा रणजीत सिह जी की चिता पर उनकी राणियो के सति होने के आखो देखे हृदय विदारक दृश्य का वर्णन किया है। हिन्दुत्व का इतना प्रभाव होने पर भी रणजीत सिह के मन मे सिक्ख-धर्म को उन्नति के शिखर पर देखने की बडी लालसा थी। वे स्वय सम्राट थे तथा अपने धर्म को भी उन्होने राजसी शान अथवा शाही रूप देना चाहा। गुरुद्वारो के लिए जागीरें, जमीनें, सगमरमर तथा राजसी शामियाने आदि जुटाना या प्रबन्ध करना उनके विचार मे सिक्ख-धर्म के प्रचार का

मुख्य साधन था। एक प्रकार से तो यह बात बडी दूर-दूर्शिता वाली थी। इन बातो से लाभ अब ताज रहित निराली तथा पराधीन सिक्ख जाति धर्म-प्रचार करने के लिए उठा रही है। ये समस्त प्रयत्न सिक्ख-धर्म को आर्थिक (भौतिक) कला देने के थे।

इन प्रयत्नो को बदलने के लिए एक अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति तथा महान् भजनीक बाबा राम सिंह जी ससार रूपी रगमच पर आए। उन्होने नामधारी अथवा कूको का आन्दोलन चलाया। सादगी, सहृदयता, विचार, शब्दवाणी तथा 'सदगुरु' दीक्षा पर बडा जोर दिया। दिखावा, (प्रदर्शन) पक्के मन्दिरो के शाही ठाठ बाठ आदि को भजन वाणी के लिए विघ्न समझा गया। ईश्वर चिन्तन और ईश्वर-प्राप्ति के लिए नामरूपी बाणी का जाप और गुरबाणी का कीर्तन एव पाठ ही सबसे उत्तम साधन गिना गया, भाषणो, कथाओ तथा दार्शनिक खोजो को अधिक लाभदायक तथा आवश्यक नही समझा गया था परन्तु नामधारियो मे अधिकतर रहन-सहन, आचार-व्यवहार तथा रीति रिवाज हिन्दुओ वाले ही रहे और इस नई लहर का सारा ढाचा हिन्दु नीव पर ही खडा किया गया था। न ही महाराजा रणजीत सिंह जी की राजसी ठाठ बाट वाली धर्म सेवा ने तथा न ही नाम-धारियो के केवलमात्र भजन-वाणी के पाठ ने सिक्ख धर्म को स्वच्छ एव विशुद्ध गति को भिन्न करके दिखाया। महाराजा को तो एक सौ वर्ष से अधिक बीत चुके है और इस ससाररूपी रगमच से लुप्त हो चुके है। उन्हे धार्मिक क्षेत्र (मण्डल) मे न सिक्खो का अशोक और न ही मुसलमानो का औरंगजेब कहकर स्मरण किया जायेगा। बाबा राम सिंह जी के विचारो को एक सगठन (जत्थेबन्दी) के रूप मे नामधारी सम्प्रदाय के नाम पर अपने विचारो के अनुसार चला रहे है। सिक्ख धर्म सम्बन्धी यह सम्प्रदाय क्या साहित्यिक सेवा करेगा, या नामरूपी सिद्धान्त की दार्शनिक एव वैज्ञानिक खोज कुछ करेगा या नही, ये सब भविष्य की बाते है।

शुद्ध रूप मे कही भी देखने मे नही आते। भारत मे वुद्ध मत के साथ भी धीरे-धीरे ऐसा ही हो रहा है। और तो और, वे धर्म तथा मत जो भारत से बाहर उत्पन्न हुए तथा फले फूले, जब भारत मे आए तो हिन्दु-धर्म के रग मे रगे जाने मे बच न पाये। क्या पता समय पाकर वे भी हिन्दु धर्म को शाखाये बन जाये। भारतीय इस्लाम, भारतीय ईसाइ-धर्म भारतीय पारसियो के विश्वास, निश्चय एव रहन सहन देखे तो यह आश्चर्यपूण लीनता तथा प्रभावशाली शक्ति स्पष्ट हो जायेगी। सिक्खो पर हिन्दुत्व का प्रभाव दशमेश जी के पश्चात शीघ्र ही पडना आरम्भ हो गया था। उस समय से लेकर अब तक सिक्ख अपने जीवन-सग्राम मे ही जूझे रहे है। इसका स्वभाविक प्रभाव यह पडा कि वे सैद्धातिक पक्ष (आशयो) को भली प्रकार से अलग नही कर पाये और अपने सिक्खी जीवन का दार्शनिक आधार पाने मे असमर्थ रहे है। सर ए० सी० लायल अपनी पुस्तक 'एशियाटिक स्टडीज़' मे लिखते है "सिक्ख जैसे जैसे राजनैतिक तथा व्यावहारिक जीवन मे आगे बढ रहे है वैसे वैसे वे अपने आप को हिन्दुओ से अगल करने के लिए कम प्रयत्न करते है। (पृष्ठ १४४)

महाराजा रणजीत सिह का हिन्दुत्व से प्रभावित सिक्ख धर्म मे जन्म और पालन-पोषण हुआ और वे उन्ही रूढीगत परिपाटियो के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते रहे। उनके जन्म तथा मृत्यु के समय हिन्दु तथा सिक्ख दोनो प्रकार के क्रिया-क्लाप किए गए। यहा तक कि सति-प्रथा जैसी घृणत क्रिया जो कि गुरु साहिब की ओर से अत्यन्त वर्जित थी, उनकी (रणजीत सिह) की चिता पर सम्पन्न की गई। एक फ्रासीसी लेखक जान मार्टन हानीजरगर ने अपनी "पूर्व मे ३५ वर्ष' (१८४२ ई० पृष्ठ १०२) नामक पुस्तक मे महाराजा रणजीत सिह जी की चिता पर उनकी राणियो के सति होने के आखो देखे हृदय विदारक दृश्य का वर्णन किया है। हिन्दुत्व का इतना प्रभाव होने पर भी रणजीत सिह के मन मे सिक्ख-धर्म को उन्नति के शिखर पर देखने की बडी लालसा थी। वे स्वय सम्राट थे तथा अपने धर्म को भी उन्होने राजसी शान अथवा शाही रूप देना चाहा। गुरुद्वारो के लिए जागीरे, जमीने, सगमरमर तथा राजसी शामियाने आदि जुटाना या प्रबन्ध करना उनके विचार मे सिक्ख-धर्म के प्रचार का

मुख्य साधन था। एक प्रकार से तो यह बात बडी दूर-दूर्शिता वाली थी। इन बातो से लाभ अब ताज रहित निराली तथा पराधीन सिक्ख जाति धर्म-प्रचार करने के लिए उठा रही है। ये समस्त प्रयत्न सिक्ख-धर्म को आर्थिक (भौतिक) कला देने के थे।

इन प्रयत्नो को बदलने के लिए एक अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति तथा महान् भजनीक बाबा राम सिंह जी ससार रूपो रगमच पर आए। उन्होने नामधारी अथवा कूको का आन्दोलन चलाया। सादगा, सहृदयता, विचार, शब्दवाणो तथा 'सदगुरु' दीक्षा पर बडा जोर दिया। दिखावा, (प्रदर्शन) पक्के मन्दिरो के शाही ठाठ बाठ आदि को भजन वाणी के लिए विघ्न समझा गया। ईश्वर चिन्तन और ईश्वर-प्राप्ति के लिए नामरूपी वाणी का जाप और गुरुवाणी का कीर्तन एव पाठ ही सबसे उत्तम साधन गिना गया, भाषणो, कथाओ तथा दार्शनिक खोजो को अधिक लाभदायक तथा आवश्यक नही समझा गया था परन्तु नामधारियो मे अधिकतर रहन-सहन, आचार-व्यवहार तथा रीति रिवाज हिन्दुओ वाले ही रहे और इस नई लहर का सारा ढाचा हिन्दु नीव पर ही खडा किया गया था। न ही महाराजा रणजीत सिंह जी की राजसी ठाठ बाट वाली धर्म सेवा ने तथा न ही नाम-धारियो के केवलमात्र भजन वाणी के पाठ ने सिक्ख धर्म को स्वच्छ एव विशुद्ध गति को भिन्न करके दिखाया। महाराजा को तो एक सौ वर्ष से अधिक बीत चुके है और इस ससाररूपो रगमच से लुप्त हो चुके हे। उन्हे धार्मिक क्षेत्र (मण्डल) मे न सिक्खो का अशोक और न ही मुसलमानो का औरजेब कहकर स्मरण किया जायेगा। बाबा राम सिह जी के विचारो को एक सगठन (जत्थेबन्दी) के रूप मे नामधारी सम्प्रदाय के नाम पर अपने विचारो के अनुसार चला रहे हैं। सिक्ख धर्म सम्बन्धी यह सम्प्रदाय क्या साहित्यिक सेवा करेगा, या नामरूपी सिद्धान्त की दार्शनिक एव वैज्ञानिक खोज कुछ करेगा या नही, ये सब भविष्य की बाते हैं।

१०

यूरोपीय विद्वानों की पुस्तकें

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उन पुस्तकों का भी वर्णन कर दिया जाए जो सिक्खो के सम्बन्ध मे पश्चिमी विद्वानो ने लिखी। ये पुस्तके दो चार के सिवाय शेष सब अग्रेजी मे ही प्रकाशित हैं। अग्रेजी साहित्य मे सिक्खो के सम्बन्ध मे हुआ सब से पहला वर्णन जो अब तक प्राप्त हुआ है एक पत्र है जो कि अग्रेजी राजदूतो ने १० मार्च १७१६ को लिखा था। इन अग्रेजो ने दिल्ली मे ७८० सिक्ख कैदियो का एक जलूस देखा, जो कि सरकारी कर्मचारियो की देख-रेख मे बाजारो मे से होकर जा रहा था और साथ ही दो हजार सिहो के शीश काट कर नेजो मे पिरो कर आगे लिए जा रहे थे। लिखा है कि प्रत्येक सिक्ख चाव से दौड दौड कर एक दूसरे से आगे होकर मरने के लिए उपस्थित होता था। इस पत्र के अन्तिम वाक्य ये है "प्रतिदिन एक सौ कतल किए जाते है, यह कोई कम आश्चर्य वाली बात नही कि वे किस धैर्य एव शान्ति से असह्य बात को सहे जा रहे है और अन्त मे एक भी ऐसा नही निकला जिसने इस नए धर्म से मुह मोडा हो।"*

यह मुगल सम्राट फरुखशियार का समय था, अर्थात् श्री गुरु गोबिन्द सिह जी के स्वर्गारोहण के लगभग आठ वर्ष पश्चात् की यह घटना है। हमरे लिए इस लेख की कोई महत्ता नही और न ही जार्ज फास्टर का १७९८ का प्रकाशित सफरनामा (यात्रा सस्मरण) या जार्ज थामस के सस्मरण जो कि विलियम थैकलिन ने सन् १८०८ मे पुस्तक रूप मे प्रकाशित किए। सिक्खी सिद्धातो की दार्शनिक खोज

*Early Records of British India by J T Wheeler, London, 1878, P 180

करने वाला सिक्खो से सम्बन्धित राजसी तथा ऐतिहासिक पुस्तको को बिना हाथ लगाए भी आगे जा सकता है। ऐसी पुस्तको मे सब से पहली सर जान मैल्कम की १८१२ की प्रकाशित पुस्तक है।* परन्तु सिक्खो से सम्बन्धित सब से बढिया ऐतिहासिक ग्रथ जे जी० कैनिघम का है जो कि पहली बार सन् १८४६ मे प्रकाशित हुआ था।†

सिक्ख धर्म सम्बन्धी यदि किसी ने कुछ लिखने का प्रयत्न किया तो वह एच० एच० विल्सन का एक लेख था जो रायल एशियाटिक सोसायटी के पत्र के नौवे भाग मे सन् १८४८ मे प्रकाशित हुआ था।‡ पीछे विल्सन ने हिन्दू मतो से सम्बन्धित एक पुस्तक लिखी जिसमे सिक्खो की अवस्था का भी वर्णन किया।"§

डाक्टर टरम्प ने विल्सन के इन लेखो के सम्बन्ध मे अपना मत प्रकट करते हुए लिखा, "सिक्ख-धर्म के सम्बन्ध मे विल्सन ने बडी सावधानी तथा झिझक के साथ लिखा है तथा कुछ प्रचलित एव शुष्क वचनो से आगे नही बढ सका। वास्तविकता यह है कि इनमे से किसी ने भी स्वय गुरुग्रथ साहिब का पाठ (अध्ययन) तथा विवेचन नही किया था और जैसा कही से सुना वैसा ही लिख दिया। ये प्रयत्न जहा दोषपूर्ण तथा अपूर्ण है वहा गलत तथा सत्य से दूर भी है।"

डाक्टर टरम्प के ये शब्द, उसकी अग्रेजी पुस्तक "आदि-ग्रथ" मे से लिए गए हैं। यह पुस्तक सन् १८७७ मे प्रकाशित हुई थी। वास्तव मे यह गुरुग्रथ का आरम्भ से लेकर लगभग तीसरे भाग तक का अनुवाद है। टरम्प लिखता है कि मैंने इस पुस्तक की रचना मे सात वर्ष लगाये है तथा मेरा काम मेरे अनुमान से बहुत अधिक कठिन सिद्ध हुआ है। टरम्प के इस कार्य (रचना) के सम्बन्ध मे कुछ एक वर्ष पश्चात् मैकालिफ ने अपनी पुस्तक मे यह राय लिखी "गुरुग्रथ के एक भाग का अनुवाद जर्मनी के एक पादरी ने इण्डिया आफिस की छत्र-छाया मे (सरक्षण) मे सरकारी खर्च पर किया, परन्तु उसका सारा ही अनुवाद अशुद्ध तथा क्रमबद्ध नही था। उल्टा उसने अपनी रचना

* Sketch of the Sikhs

† History of the Sikhs

‡ Accounts of the Civil and Religious Institutions of the Sikhs

§ Sektch of the Religious Sects of the Hindus

द्वारा सिक्खो के अनुवेगो (भावनाओ) पर गहरी ठेस पहुचाई और सिक्ख-धर्म सम्बन्धी कुछ एक अपशब्दो का प्रयोग किया। इस पादरी को जहाँ कही भी गुरुओ की, गुरु ग्रथ की या सिक्ख-धर्म को निन्दा करने का अवसर मिला, उसने कोई कसर न छाडी।

इससे अगली पुस्तक मेकालिफ साहिब की अपनी है, जिसमे से ऊपर दिए शब्द अनुवाद किए गए है। यह पुस्तक उस ने बडे चाव एव प्यार से लिखनी आरम्भ की और इसमे उसको अपनी नौकरी भी छोडनी पडी। यह ग्रथ, "दी सिक्ख रिलेजन" के नाम पर छ भागो मे आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस ने प्रकाशित किया। जर्मनी के सस्कृत के महान् विद्वान मैक्समूलर ने मैकालिफ की इस कृति के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा था "कितने खेद का विषय है कि हमे सिक्ख गुरुओ के सम्बन्ध मे बहुत कम जानकारी है। सिक्खो की धार्मिक-पुस्तक प्रस्तुत है,बल्कि उसका अनुवाद भी स्वर्गवासी डाक्टर टरम्प ने किया था। परन्तु अब ज्ञात होता है कि वह अनुवाद बहुत अशुद्ध था। गुरुग्रथ की बाणी पुरानी पजाबी मे लिखी हुई है और यह विचार किया गया था कि जो विद्वान वर्तमान पजाबी सीख लेगा, वह गुरबाणी की आज से चार सौ वर्ष पहले की बोली को भी समझ सकेगा, परन्तु यह विचार गलत निकला। मैकालिफ साहिब, जो सिक्खो मे कई वर्ष रह कर आए हैं तथा जिन्होने ग्रथियो एव विद्वानो से गुरबाणी समझने का प्रयत्न किया है, ने हमारे सम्मुख गुरबाणी के बहुत अच्छे नमूने रखे है।"

डाक्टर टरम्प तथा मिस्टर मैकालिफ की पुस्तको ने यूरोपीय विद्वानो के सिक्ख धर्म सम्बन्धी मत स्थापित करने मे विशेष काम किया है। इन दोनो लेखको ने सिक्ख धर्म को दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से देखा है, इसीलिए हमे यूरोपीय विद्वानो मे सिक्ख-धर्म सम्बन्धी दो धडे दिखाई देते हैं। कोई डाक्टर टरम्प को आगे रख लेता है और कोई मैकालिफ को, मिस डारोथी फील्ड, बारथ, कार्पेन्टर, ब्लूम फील्ड, मैकनीकौल तथा विडगरी आदि विद्वानो के नाम उदाहरण के रूप मे दिए जा सकते है। परन्तु इनमे से न टरम्प और न ही मैकालिफ हमारी दार्शनिक भूख की तृप्ति करते हैं। ब्लूम फील्ड अपनी पुस्तक "स्टडीज़ आफ दी हिस्ट्री आफ रिलैजन्ज"

मे लिखता है "आने वाली सिक्ख सन्ताने (पीढिया) मेकालिफ की पुस्तकें पढ कर उस का धन्यवाद तो करेगी, परन्तु यह धन्यवाद इसलिए होगा कि मैकालिफ साहिब ने सिक्ख-धर्म को अग्रेजी जानने वालो मे प्रकट किया और उन्हे इससे परिचित होने के लिए साधन जुटाये, परन्तु इन पुस्तको मे सिक्ख धर्म की कोई दार्शनिक खोज नही है और न ही इस धर्म की उन्नति एव विकास का धर्म-निर्पेक्ष इतिहास है ।"

इस लेखनी के वर्तमान प्रयत्न से पूर्व जो कुछ हो चुका है उसका सक्षिप्त इतिहास ऊपर दिया गया है । इतने महान् एव विशाल सिक्ख धर्म सम्बन्धी साहित्यिक माला मे यदि कही इस मनके (माला) को भी कोई स्थान मिल जाए तो धन्य समझूगा ।

दूसरा अध्याय

सिक्ख धर्म के प्रवर्तक

(अ) सिक्ख गुरुओ तथा गुरुनानक देव जी के समय की परिस्थितिया ।

मानव जीवन सम्बन्धी मनुष्य के दृष्टि-कोण को किसी साचे के अनुरूप ढालने के लिए उसके वातावरण का बडा हाथ होता है। परन्तु मनुष्य चेतन सत्ता रखता हुआ स्वय कर्ता है और अपने वातावरण मे घटित-घटनाओ का दास या उनके अधीन नही है। ईश्वरीय रचना मे प्रतिदिन निरन्तर घटित-घटनाओ की अटूट लडी मे मनुष्य कोई निष्क्रिय शक्ति नही है। प्राकृतिक नियमो के बन्धन मे शेष बातें अवश्य हो रही हैं। मानव मन तथा हमारी आत्मा इन जड वस्तुओ की भाति प्राकृतिक नियमो मे बद्ध नही है। यह कर्ता (स्रष्टा) पुरुष के शुद्ध स्वरूप के समीप होने के कारण प्राकृतिक घटनाओ के कई ब धनो से मुक्त है और अपनी सत्ता के बल पर अपने वातावरण का सामना करता है। यदि तो उचित आत्मबल वाला हो तब तो अपने वातावरण को अपने वश मे कर लेता है और यदि किसी अदृष्ट कठिनाई से अपने शारीरिक निर्माण मे किसी प्राकृतिक कमी के कारण वह अपने आस-पास की घटनाओ को प्रबल देखता है तो उनके साथ एक रस होकर सुख भोगने का प्रयत्न करता है। यदि किसी समय किसी मानव-आत्मा मे पहले से ही अपार शक्ति निहित हो और साधारण प्राकृतिक न्यूनताओ से उसे रचयिता ने बचाया हो, जैसा कि पैगम्बरो, अवतारो तथा महापुरुषो मे इस बल

का अस्तित्व माना जाता है, तो ऐसी महान् आत्मा के कार्यो तथा उद्यमो मे युग चेतनता तथा क्रांति देखने मे आते है। परन्तु ऐसे महापुरुष चाहे पहले से कितने हो बलवान होकर आए हो, उनके विचारो कर्मो तथा वचनो मे उनके वातावरण का प्रभाव अवश्य होता है। क्योकि यदि वातावरण से अलग होना असम्भव है तो उनके मन-वाणी-कर्म मे से आसपास के प्रभाव का न होना भो असम्भव है। इसलिए अब हमने देखना है कि उस वातावरण के क्या लक्षण (परिस्थितिया) थे, जिनमे सिक्खो के गुरु ससार मे आए, जीवित रहे तथा अपनी जीवन रूपी युद्ध यात्रा के सग्राम रचे। इन बातो से सम्बन्धित हमे उस समय की पुस्तके (तत्कालीन साहित्य) गुरबाणी एव गुरु साहिब की जीवनियो मे कई बातो का पता चलता है। वातावरण मे विशेष प्रभावशाली शक्तिया किसी समय की धार्मिक, राजनैतिक एव सामाजिक परिस्थितिया होती है, जिनका अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन हम इस प्रकरण मे करेगे।

---

१. सद्गुरु के समय की धार्मिक स्थिति [दशा]

अपने समय मे बाबर के आक्रमण का वर्णन करते हुए अपने सिक्ख, भाई लालो के पास उस समय के लोगो के धार्मिक एव सदाचारक जोवन के सम्बन्ध मे गुरु नानक देव जी बताते है कि लोगो के जीवन मे न लज्जा है न धर्म। काजी एव ब्राह्मण अपने कर्तव्य-पालन से विमुख है —

तिलग महला १

सरमु धरमु दुइ छपि खलोए,
कूडु फिरै परधानु वे लालो ॥
कजिया बामणा की गल थकी,
अगदु पडै सैतानु वे लालो ॥

एक अन्य स्थान वार माझ मे सद्गुरु बताते है कि ससार मे से सत्य इस प्रकार लुप्त हो गया है जिस प्रकार अमावस की रात मे से चाद। अमावस की रात के अन्धकार को भाति चारो ओर असत्य ही प्रधान है। अच्छाई और बुराई से बचने के लिए कोई नियम नही तथा कोई आधार नही है।

वर्तमान लेखको मे से डा० सर गोकलचन्द नारग (दिवगत) ने अपनी अग्रेजी की पुस्तक* मे हिन्दु जनता की साधारण दशा इस प्रकार लिखी है पजाब मे (गुरु नानक के अवतरण के समय) हिन्दुओ की दशा अत्यत घृणास्पद थी। जन-साधारण मे बस इसी बात का नाम धर्म था कि एक विशेष प्रकार से चौके अगीठी आदि बनाकर रसोई पकाई और खाई अथवा तोर्थो पर स्नान कर लिया, या माथे पर तिलक लगा लिया या अन्य इस प्रकार के फीके रीति एव सस्कार कर लिये। उस समय हिन्दू धर्म जन-साधारण के विचार मे क्या था? बस यही कि यदि कही मूर्तियां हैं तो मूर्ति पूजा कर ली, यदि गगा जो या

*Transformation of Sikhism—P—5

अन्य तीर्थों पर स्नान का आदेश मिला है तो वह कर आए अथवा अन्य जन्म एव मृत्यु समय के सस्कार कर लिए। ब्राह्मणो की आज्ञा-पालन तथा उन्हे दान देने आदि का काम कर लिया। केवल पण्डित और अध्यापक वेद शास्त्र पढ सकते थे। शास्त्रीय विचार का आनन्द केवल वही ले सकते थे और वे ही सत्य को प्राप्त कर सकते थे। उधर ये ब्राह्मण एव पण्डित-आदि इतने गिर चुके थे कि बस क्रियाकलाप उनका पेशा हो गया था। कुछ एक धर्मशास्त्र जबानी याद थे परन्तु वास्तविक जीवन मे वे धर्म-शास्त्रो की शिक्षा के सर्वथा विपरीत चलते थे। उनके लिए अपेक्षित तो था भेडो के अच्छे रखवाले बनना परन्तु वे रखवालो का एक ही कर्त्तव्य निभाते थे, वह यह कि उनकी ऊन उतारनी। उन्होने आध्यात्मिक भोजन तो कहा देना था। बेचारी भूखी भेडे मूह खोलती परन्तु खाने को कुछ न मिलता। लोगो की उदासीनता (लापरवाही), पुजारियो की स्वार्थान्विता, व्यर्थ क्रिया-कलाप (रस्मे) और लज्जापूर्ण भ्रॉतियो ने सच्चे धर्म को जडो मे तेल दे दिया था। अयथार्थ ने यथार्थ को दवा लिया था और हिन्दु-धर्म के उच्च आध्यात्मिक भाव बाह्य दिखावे के नीचे दबे जा चुके थे। शताब्दियो के आक्रमण, विदेशी राज्यो के हाथो लूट-मार ने लोगो के दिलो को मृत-प्राय -कर दिया और खडे पानी के सड जाने की भाति जनता का नैतिक स्तर बहुत ही नीचे गिर चुका था। गुरु नानक ने अवतरित हो कर हिन्दुओ को ऐसी अवस्था मे गिरते देखा।

सिरी आसा जी की वार मे गुरु नानक जी बताते है कि हिन्दुओ के आचार-व्यवहार मे इतनी दासता आ गई थी कि उन्होने नीले वस्त्र पहन कर तुर्कों, पठानो के पीछे लग कर उसी प्रकार रहना आरम्भ कर दिया। वास्तव मे बलपूर्वकता के कारण लोगो के मन मे मक्कारी, धोखा, कमजोरी तथा अप्रत्याशित दासता रूपी नम्रता घर कर गई थी।

उधर दूसरी ओर इस्लाम के तथा-कथित्त मुसलमान राज्य के नशे मे बडे ही सकुचित दृष्टि-कोण वाले तथा धर्मान्ध हो गये थे। बसत राग मे गुरु जी बताते है कि ईश्वर के मन्दिरो पर भी कर लगाए जाते हैं। मेकालिफ ने मुसलमान लेखक का प्रमाण देकर अलाउदीन के सम्बन्ध मे लिखा है कि एक बार उस ने

अपने काज़ी से पूछा कि हिन्दुओ के लिए हमारा धर्म क्या आदेश देता है ? उसने उत्तर दिया हिन्दु पृथ्वी की भाति है। यदि उनसे चान्दी मांगी जाए तो उन्हे बडे नम्र भाव से सोना भेंट करना चाहिए। यदि कोई मुसलमान हिन्दु के मुह मे थूकना चाहे तो हिन्दु को एकदम अपना मुह खोल देना चाहिए। ईश्वर ने हिन्दुओ को मुसलमानो के गुलामो के रूप मे उत्पन्न किया है। पैगम्बर साहिब ने आज्ञा दी है कि यदि हिन्दु इस्लाम धर्म को न अपनाये तो उन्हे कैद करो (बन्दी बनाओ) पीडित करो तथा अन्त मे कतल कर दो।"

यह बात सुन कर सम्राट हस पडा और कहने लगा कि मैंने मुसलमान धर्म के आदेश की प्रतीक्षा नही की। पहले से ही आज्ञा दे दी है कि हिन्दु छ मास के गुजारे के लिए गेहु और शरीर के साधारण वस्त्रो के सिवाय और कुछ भी अपने पास नही रख सकते।* यह खिलजी राज्य के समय की बात है। लोधियो के समय दशा (स्थिति) कोई विशेष अच्छी नही हुई थी। गुरु ग्रथ मे नामदेव तथा कबीर पर हुए अत्याचारो का वर्णन उनकी अपनी वाणी मे मिलता है। इन सन्त भक्तो के स्वतत्र विचारो को इब्राहीमलोधी सहन नही कर सकता था।

इसी प्रकार भाई गुरदास जी लिखते है कि मन्दिरो को गिरा कर उनके स्थान पर मस्जिदें बनाई गई —

ठाकुर द्वारे ढाहिके, तिहठ उडी मसीत उसारा। ५—२०—१

अन्य स्थान पर लिखते है कि हिन्दु मुसलमान दोनो अपना धर्म छोड कर शैतान के वश मे हो चुके है —

वेद कतेब भुलाऽके मोहे लालच दुनी शैताणे। ६—२१—१

लोगो के बीच स्वार्थपरता, चुगली निन्दा, तथा लडाई झगडे प्रतिदिन होते थे —

खुदो बखीलो तकब्बरी, खिचोताण करेनि धिगाणे। १—२१—१

बस धर्म केवल दिखावा मात्र ही रह गया था' धर्म के मार्ग पर चल कर धर्मावलम्बी सत्य तथा नेकी को प्राप्त नही कर सकते थे। ससार की यह दशा देख कर गुरु नानक पुकार उठे —

न कोई हिन्दु रहा है न मुसलमान।

---

*हिन्दुओ पर हुए अत्याचारो के सम्बन्ध मे देखें—मेकालिफ की पहली पुस्तक पृष्ठ उत्थानिका ४१-५० तथा ज्ञान सिंह की तवारीख खालसा आदि।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उस समय की दोनो जातियो की मानसिक अवस्था के सम्बन्ध मे हम यह कह सकते है कि दोनो ही जातिया पशुवृत्तियो का शिकार हो रही थी। एक मे तो बलात्कार तथा शक्ति की प्रबलता थी तथा दूसरी मे नम्रता दासता की सीमा तक पहुच चुकी थी।

विदेशियो के अत्याचार एव बलात्कार का शिकार होने के कारण एक जाति तो अपने स्वाभिमान की दृढता एव आत्मविश्वास और अपने इष्टदेव मे श्रद्धा खो चुकी थी। दूसरी जाति के लोग अपने आप को ही सब कुछ समझते थे। या तो दूसरे धर्म तथा मत के लोगो से जीवन अधिकार ही इन्होने छीन लिया था और यदि उन्हे जीवित रहने भी दिया था तो इसलिए कि वे शासकवर्ग के किसी स्वार्थमय प्रयोजन की सिद्धि के लिए एक साधन या कारणरूप मे काम देते थे। वह बात जिसे महर्षि काट ने अपनी सदाचार सम्बन्धी योजना मे, या नीति-विषारद ऋषि रूसो ने अपनी राजनैतिक कसौटी पर अत्यन्त वर्जित समझी थी वही बात शासक वर्ग ने ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए सबसे बडा पुण्य समझ लिया था। पुरुप मात्र को निज साध्य सिद्धि का साधन ही समझा हुआ था तथा उसके किसी स्वतन्त्र प्रयोजन सिद्धि का किसी को विचार तक भी नही आया था। खेद का विषय तो यह था कि लोग दूसरो की मनोकामना पूर्ति के लिए अपने आपको एक साधन के रूप मे प्रयुक्त होने मे प्रसन्नता अनुभव करते थे। फ्रासीसी नीतिवेता ऋषि के कथनानुसार वे अपने आपको मनुष्य कहलाने का अधिकार भी खो रहे थे। जैसे आजकल, वैसे ही उस समय भी, एक ऐसे धर्म की आवश्यकता थी जो क्राँति पैदा करे। ऐसा धर्म जो वर्तमान परिस्थितियो से असन्तुष्ट होकर अत्याचारियो को ऊपर से उठा कर नीचे गिरा दे तथा विनम्र एव पीडितो को तखते से उठा कर तखत पर विठा दे, समस्त सभ्यता के ढाचे को बदल दे तथा समस्त सामाजिक व्यवस्था को पूर्ण रूपेण अस्त-व्यस्त कर दे। यह कैसे हो सकता था? लोगो की मानसिक अवस्था को बदल कर, उनके विचारो तथा सकल्पो मे क्राति ला कर* ताकि वे सोच सके

*देखें डीन आफ सेंट पाल का १९३९ का क्रिसमस सन्देश।

कि वे पराधीन नही स्वाधीन हैं, गीदड नही शेर है। वे उस प्रकार की चिडिया नही, जिन्हे बाज खा जाते है, वे ऐसी है जो बाज़ो का मुह तोडती हैं।

---

२. सद्गुरु के समय की सामाजिक अवस्था

१६वी शताब्दी मे भारतीय सामाजिक जीवन उस समय के ऊपर बताए गए धार्मिक जीवन से किसी प्रकार अच्छा नही था। वही ब्राह्मण जो मौलवी साहिब से डरता हुआ तो उसका पानी भरता था, परन्तु अपने शूद्र भाई के सम्मुख निर्दयी अत्याचारी का रूप धारण कर लेता था। मध्यकालीन कवि तुलसीदास जी अपने ग्रथ "रामचरित-मानस मे (इस पुस्तक के सम्बन्ध मे डाक्टर फरकूहर लिखते है — इस पुस्तक ने पिछली तीन शताब्दियो मे जितना हिन्दु जनता के मन को प्रभावित किया है उतना किसी अन्य पुस्तक ने नही) लिखते हैं कि ब्राह्मण चाहे बिल्कुल गुणहीन तथा पापी हो तो भी उसका आदर करना आवश्यक है, और शूद्र चाहे कितना ही पुण्यवान एव विद्वान क्यो न हो उसका आदर नही करना चाहिए।* अपने मुसलमान मुल्ला भाई की भाति ब्राह्मण ने हाथ मे तलवार पकड कर अत्याचार (बलात्कार) कम ही किया है, चाहे तलवार के प्रयोग किये जाने की घटना भी कही कही घटित हुई थी - जैसे कि श्री रामचन्द्र जी ने एक शूद्र को इसलिए मार डाला था कि वह ऐसी धार्मिक-क्रिया कर रहा था जो शूद्रो के लिए वर्जित थी।† परन्तु चतुर एव शांति प्रिय ब्राह्मण ने और भी भयानक शस्त्र शूद्रो के लिए प्रयुक्त किया था, वह था, शूद्र को समाज मे सबसे नीचा स्थान देना, घृणा और वीभत्सता से दूर दूर रहने के लिए कहना, यहाँ तक कि चण्डाल के साथ कुत्ते से भी बुरा व्यवहार होता था।‡

स्त्रियो की दशा बेचारे शूद्रो से कोई अच्छी नही थी। केवल इसलिए कि ईश्वर ने उन्हे स्त्री का रूप दिया है। वह स्वर्ग मे मानो

* ng Religions of India P 67

† Religion of India Brath P-135

‡ Abid P-119

मुक्ति-प्राप्ति से वर्जित की गई थी। चौरासी के आवा-गमन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए स्त्रियो को पति की भक्ति करके पुरुष के रूप मे जन्म लेना आवश्यक था। मुसलमानो ने तो अपनी पत्नियो को घर की चारदिवारी मे बन्द कर दिया था। बाहर की वायु और प्राकृतिक आनन्द या तो वे प्राप्त ही नही कर सकती थी यदि कही अवकाश मिलता भी था तो पर्दे की कडी देख रेख मे। घर मे कन्या का जन्म दुर्भाग्य का चिह्न था। इसलिए माता-पिता छोटो लडकियो को ही मार डालते थे। सति-प्रथा—विधवा हुई स्त्री का जोवित ही पति की चिता मे जल मरना—प्रचलित थी। भले ही शायद काई यदा-कदा घटना ही हो परन्तु जहागोर के समय किसी किसो मुसलमान वश मे भी सति प्रथा चलतो थो।*

---

*Ibid.

३. सद्गुरु के समय की राजनैतिक अवस्था

लोधियो तथा अन्तिम मुगलो के राज्य-काल के समय भारत की राजनैतिक स्थिति बहुत शोचनीय थी। यद्यपि कुछेक प्रजा-पालक कार्य भी राजाओ की ओर से हुए, परन्तु ये आटे मे नमक की भांति था। अन्तिम मुगलो के समय तो भारत का राज्य प्रबन्ध बहुत ही प्रजा-घातक था। सैय्यद मुहम्मद लतीफ तत्कालीन राजनैतिक स्थिति इस प्रकार बताता है रिश्वत (घूस) नीचता तथा धोखेबाजी देश मे आम प्रचलित थी। सम्पूर्ण देश के ओर छोर मे कुप्रबन्धता, तथा बेचैनी फैली हुई थी। देश बरबाद हो चुका था तथा पाप, अधर्म, अत्याचार, अतिव्ययता, आदि ने देश को कलंकित किया हुआ था। लडाई झगडे क्षय रोग की भांति पाव जमा चुके थे और लूट खसूट अत्याचार प्रत्येक स्थान पर उभर रहे थे। देश के निर्धन लोगो से रुपये छीन कर सरकारी खजाने मे भेजे जाते थे ताकि दरबारी एव शासकवर्ग अपने मन भाते ऐश्वर्य उडा सके। भूमि ठेकेदारो को दी जाती थी और वे अपने ऐश्वर्य के लिए खेतीहारो से मन-मानी करते थे। इन ठेकेदारो को या तो दरबारी कर्मचारियो को घूस देनी पडती थी और या राजकीय कोष मे अपनी ठग्गी मे से कुछ भेंट देनी पडती थी। बडे भयानक कतल तथा रोंगटे खडे कर देने वाले लज्जाजनक डाके नित प्रति देखने मे आते थे। आदर, सम्मान, न्याय तथा स्तर एव पदवियां खरीदे और बेचे जाते थे। शासक वर्ग बूचडो का रूप धारण कर पाताल मे गिर गए थे और भ्रष्टाचार तथा व्याभिचार रूपी गन्दगी मे सड रहे थे।*

यह अवस्था दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह जी के समय की थी। इन्ही परिस्थितियो का सामना करने के लिए अन्त मे गुरु साहिब को तलवार उठानी पडी थी। गुरु नानक देव जी के शब्दो मे से उनके

*H P S Page-493

समय को राजनैतिक अवस्था का थोडा ज्ञान होता है। अपने समय को साधारण स्थिति का वे इस प्रकार चित्रण करते हैं —

सारग की वार सलोक महला १ ॥
कलि होइ कुते मुही खाजु होया मुरदारु ॥
कूड़ु बोलि बोलि भउकणा चूका धरमु बीचारु ॥
जिन जीवदिआ पति नही मुइआ मदी सोइ ॥
लिखिआ होवै नानका करता करे सु होइ ॥१॥

भाव यह कि लोग कुत्तो की भाति दूसरो का अधिकार छीनने लग पडे हैं। असत्य, अविश्वास और अधर्म लोगो का स्वभाव बन गए है। अपनें देश की राजनैतिक अवस्था को कोई इससे अधिक कठोर शब्दो मे कैसे वर्णन कर सकता है, जिस प्रकार गुरु जी वार मलार मे बताते हैं —

राजे सीह मुकदम कुते ॥ जाइ जगाइनि बैठे सुते ॥
चाकर नहदा पाइनि घाऊ॥ रतु पितु कुतिहो चटि जाहु ॥

भाव यह कि राजाओ ने मानव भक्षक शेरो का रूप धारण कर लिया है और अधिकारियो ने कुतो का। वे मदान्ध है और अधिकरी मन-मानी करते है तथा लोगो का खून पीते है। इसी प्रकार वार-माझ मे लिखते है —

कलि काती राजे कासाई धरमु पख करि उडरिआ ॥
कूड़ु अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चडिआ ॥

भाव यह कि धर्म पख लगा कर उड गया है और राजे कसाइयो को भान्ति प्रजा घातक बन गए है तथा असत्य प्रधान है और सत्य लुप्त हो गया है।

गुरु नानक देव जी स्वय कुछ दिन बाबर के आक्रमण के समय उसकी कैद मे बन्दी रहे थे। उन्होने स्वय अपनी आखो से देखा था कि उस समय देश मे उस आक्रमण के कारण किस प्रकार विनाश एव महाविनाश हुआ था। उस समय का चित्र सद्गुरु ने आसा राग मे इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

राग आसा महला १ असटपदी आघर ३।

जिनि सिरि सोहनि पटीआ मागो पाइ सन्धूरु ॥
सो सिर कातो मुनीअनि गल विचि आवै धूड़ि ॥
महला अन्दरि होदि आ हुणि वहणि न मिलनि हदूरि ॥१॥
आदेसु बाबा आदेसु ।
आदि पुरख तेरा अन्त न पाइआ—
करि करि देखहि वेस ॥१॥ रहाउ ॥
जदहु सीआ विआहीआ लाडे साहनि पासि ॥
हीडोली चडि आईआ दद खड कीते रासि ॥
उपरहु पाणी वारीऐ झले झिमकनि पासि ॥२॥
इकु लखु लहनि बहिठीआ लखु लहनि खडीआ ॥
गरी छुहारे खादीआ माणनि सेजडिआ ॥
तिन गलि सिलका पाईआ तुटनि् मोतसरीआ ॥३॥
धनु-जोबनु दुइ वैरी होए जिनी रखे रगु लाइ ॥
दूता नो फुरमाइआ लै चले पति गवाइ ॥
जे तिसु भावै दे वडिआई जे भावै दे सजाइ ॥४॥
अगो दे जे चेतीऐ ता काइतु मिलै सजाइ ॥
साहा सुरति गवाईआ रग तमासै चाइ ॥
बाबरवाणी फिरि गई कुइरु न रोटी खाइ ॥५॥

मन को क्रीडा है। जब मनुष्य इतने थोडे समय मे इतना अधिक विनाश देखता है, जान एव माल की इतनी अधिक हानि, अकारण ही इतना दुख एव कष्ट, यह सब कुछ देख कर सचमुच "जिव-जिव हुकम तिवे तिव कार' 'जो तिस भावै सोई होइ' आदि विचार मन को सात्वना प्रदान करते हैं। सद्गुरु ने जब दृष्टिपात करके देखा तो कह उठे— कहा हैं वे अमीरी ठाठ, घोडे, भेरिया, शहनाइया, तेग बन्द लगाने वाले और रणभूमि के योद्धे। ये सब कहा हैं? सुन्दर भवन, सेज और शैया। वह रूप एव यौवन जिसे देख कर नीद हराम होती थी। युद्ध तो मगलो और पठानो के होते है और कष्ट-अत्याचार दूसरो को भी झेलनें पडते हैं। परन्तु —

आपे करे कराय करता किसनो आख सुणाईऐ ॥

यह सब कुछ देख कर कह कर गुरु साहिब चुप नही कर

गए। एक सच्चे देश भक्त को भान्ति वे अपना शुद्ध क्रोध ईश्वर के सामने प्रकट करते है जिस प्रकार एक सुपुत्र अपने पिता के किसी ऐसे कार्य को जो उसकी सूझ से बाहर होता है, सहन न करके रोष मे आकर उससे उसका कारण पूछता है। उसी प्रकार यदि सब कुछ करने वाला ईश्वर है और बाबर गैबी शक्ति मे एक कठपुतली था तो गुरु साहिब उस गैबी शक्ति के स्वामी को चेतावनी देते है। यह एक नया विचार था जो सामाजिक दर्शन के सर्वथा विरुद्ध था। प्रत्येक अच्छे बुरे काम को ईश्वर के नाम मडकर (लगाकर) स्वय भाग्य पर निर्भर रह कर निष्क्रिय बन जाने को सद्गुरु मुर्दे का जीवन समझते थे। इसी लिए इस विनाश तथा आक्रमण के सम्बन्ध मे सारा विवरण देते हुए एक अन्य स्थान पर बताते हैं

आसा महला १

खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तान डराइआ ॥
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चडाइआ ॥
एती मार पई कुरलाणे तै की दरदु न आइआ ॥१॥
करता तू सभना का सोई ॥
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई ॥१॥
रहाउ ॥
सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई ॥

भाव यह कि जब शेर निरीह गऊओ पर आक्रमण कर दे तो फिर गऊओ के स्वामी को भी कुछ हाथ पाव हिलाने चाहिए। क्या पता यदि गुरु नानक देव जी के समय की जाति का निर्माण उसी प्रकार हो गया होता जिस प्रकार का निर्माण एव विकास गुरु गोबिन्द सिह जी के समय हो गया था तो गुरु नानक देव जी भी परिस्थितियो का सामना उसी प्रकार ही करते जिस प्रकार अपने समय मे गुरु गोबिन्द सिह जी ने किया।

(ख) गुरुओ के जोवन सम्बन्धी कुछ शंकाओ पर विचार

सिक्ख धर्म के प्रवर्तक दस गुरु है। सिक्ख धर्म रूपी मन्दिर को नीव प्रथम गुरु श्री गुरु नानक देव जी ने रखी और इस मन्दिर को श्री गोबिन्द सिंह जी (दसवे गुरु) ने पूर्ण करके अन्तिम रूप दिया। नीचे एक तालिका के रूप मे सारे गुरुओ के नाम, जन्म-स्थान, अवतार-धारण करने और दिवगत होने के वर्ष आदि दिए जाते हैं। यह थोडा परिवर्तन करके चीफ खालसा दिवान की ओर से प्रकाशित गुरुपर्व पत्र के आधार पर है —

नाम	जन्म स्थान और वर्ष	गुरु रूप	दिव्य ज्योति मे समाये (शरीर त्यागना)
१ गुरु नानक देव	तलवंडी ननकाना साहिब १४६६ ई०	सुलतान पुर १४६० ई०	करतापुर १५३६ ई०
२ गुरु अगद देव	नागे की सराय १५०४	करतापुर १५३६	खडूर १५५२
३ गुरु अमरदास	बासर के १४६६	खडूर १५५२	गोइन्दवाल १५७४
४ गुरु राम दास	लाहौर १५३४	गोइन्दवाल १५७४	गोइन्दवाल १५८१
५ गुरु अर्जुन देव	गोइन्दवाल १५६३	गोइन्दवाल १५८१	लाहौर १६०५
६. गुरु हर गोबिन्द	वडाली १५९५	अमृतसर १६०६	कीरतपुर १६४५
७ गुरु हर राय	कीरत पुर १६३०	कीरत पुर १६४५	कीरत पुर १६६१
८ गुरु हरि कृष्ण	कीरत पुर १६५६	कीरत पुर १६६१	दिल्ली १६६४

९.	गुरु तेग बहादुर	अमृतसर १६२१	बाबा बकाला १६६४	दिल्ली १६७५
१०	गुरु गोबिन्द सिंह	पटना १६६६	आनन्दपुर १६७५	नदेड १७०७
	ग्रन्थ साहिब	१६०४ मे अमृतसर मे बीड बाधी	नदेड १७०७	सदा के लिए
	खालसा पथ	आनन्द पुर १६९९	नदेड १७०७	सदा के लिए

हमारा आशय गुरुओ की जन्मसाखी लिखने का नही है। हमने यहा केवल उन कुछेक बातो पर विचार करना है,जिनके विषय मे कुछ शकाए प्रकट की जाती हैं।

१. गुरु नानक देव जी

(अ) जन्म

श्री गुरु नानक देव जी अप्रैल १४६९ को वैसाखी (वैसाख सुदी ३) को राय भोई की तलवंडी जिसे अब ननकाना साहिब कहते हैं, उत्पन्न हुए थे। आजकल गुरु साहिब का जन्म-दिवस सभी स्थानों पर कार्तिक पूर्णमासी को मनाया जाता है। जन्म दिवस के आगे पीछे मनाए जाने मे कोई आपत्ति नही। यह तो लोगो के अवकाश, तथा ऋतु की अनुकूलता को सम्मुख रख कर आगे पीछे हो सकता है। उदाहरणार्थ प्रति वर्ष बादशाह (सम्राट) के जन्मदिन की छुट्टी अदल बदल कर आती है। यह आवश्यक नही कि जिस दिन बादशाह उत्पन्न हुआ हो उसी दिन ही छुट्टी हो। गुरु साहिब का जन्म दिन बैसाख ही है। श्री मनि सिंह, मैकालिफ, भाई कर्म सिंह हिस्टोरियन* आदि सब शोधकर्ताओ ने बैसाख ही ठीक जन्म का महीना निर्धारित किया है।

ननकाना साहिब लाहौर से रावी के उत्तर की ओर लगभग ४० मील की दूरी पर है और आजकल जिला शेखूपुरा (पाकिस्तान) की एक चहल-पहल वाली तहसील है। मैल्कम साहिब† लिखते हैं कि गुरु जी तलवंडी मे उत्पन्न हुए थे और इसको अब रायपुर कहते हैं। यह व्यास नदी के किनारे स्थित है। मैल्कम साहिब की गलती तो बिल्कुल स्पष्ट है। इसलिए ठीक जन्म स्थान ननकाना साहिब तथा ठीक महीना बैसाख और सम्वत् १५२६ विक्रमी है।

---

*देखिए पुस्तक "कत्तक कि बैसाख?" लेखक कर्म सिंह हिस्टोरियन।

†Sketch of the Sikhs Page 23

(ब) शिक्षा

गुरु जी, मेहता कालू जो कि हिन्दु थे, के घर उत्पन्न हुए थे। इसलिए शिक्षा प्राप्ति के लिए सबसे पहले इन्हे एक पण्डित के पास भेजा गया। कुछ समय पढने के पश्चात् बालक अध्यापक से सन्तुष्ट न हो सका। अध्यापक अक्षर ज्ञान से ऊपर नही जा सकता था। गुरु जी का मन तत्व-ज्ञान का खोजी था। अध्यापक से उद्देश्य की पूर्ति न होते देख कर पिता ने बालक को एक मौलवी के पास पढने के लिए भेजा। फारसी के एक हस्तलिखित लेख से भी पता चलता है कि नानक का पहला अध्यापक एक मौलवी था। सियारु मुताखरीन' मे लिखा है कि किसी सैय्यद हसन ने नानक को अच्छी प्रकार पढाया था। यह सैय्यद मेहता कालू का पडौसी था और बालक नानक का स्नेहपूर्वक सत्कार करता था। यह बडा धनी था परन्तु उसके कोई सन्तान नही थी। यह भी उसी पुस्तक मे लिखा है कि नानक ने इस्लाम की सब प्रामाणिक पुस्तके पढी थी। मैल्कम लिखता है कि जरत मुसलमान कहते थे कि नानक को समस्त ज्ञान-विज्ञान और कला की शिक्षा खिजर ने दी थी। मुसलमानो द्वारा लिखित पुस्तको मे यह प्राय वर्णित है कि नानक ने अपने अध्यापको से 'अलफ के अर्थ पूछ कर उन्हे सोच मे डाल दिया था। कैनिंघम लिखता है कि इसी प्रकार हजरत ईसा ने बाला-वस्था मे (१२ वर्ष की आयु से पहले) अपने अध्यापको को गिनती के अक्षरो के गम्भीर अर्थ बता कर आश्चर्य चकित किया था। "इस बात का प्रमाण प्राप्त है कि नानक ने अपनी युवावस्था मे हिन्दु मुसलमान धर्मो के आदर्शो को अच्छी प्रकार समझ लिया था तथा कुरान एव शास्त्रो का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था।"* पहली पातशाही की गुरु ग्रथ मे वर्णित वाणी के विचार से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन शब्दो मे उस समय के मत-मतान्तरों के सम्बन्ध मे जो विचार दिए हैं उनमे लेखक का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। यह जानकारी धार्मिक पुस्तको से ही प्राप्त की हुई प्रतीत होती है। केवल मात्र जन साधारण से विचार-विश्लेपण करने पर यह नही मिलती।†

---

*देखो कैनिंघम का इतिहास।

†प्रो० तेजा सिंह जी ने एक सुन्दर लेख इस विषय पर लिखा था तथा उसे प्रसारित भी किया था।

गुरु नानक देव जी को विद्या-प्राप्ति के प्रयत्नो से दूर, अर्थात् उन्हे अनपढ बताने वाले दो प्रकार के लोग है। एक तो है गुरु जी के चरणो मे रहने वाले उनके प्रिय शिष्य, इन्ही मे ही पुराने जीवन-वृत्तात लिखने वाले सम्मिलित है। ये कहते है कि गुरु जी को पण्डित तथा मुल्ला के पास पढने तो भेजा गया, परन्तु वे उन्हे पढा नही सके। भाव यह कि गुरु जी को किसी ने शिक्षा नही दी। किसी के पास पढने मे वे समझते है कि उनके गुरु का निरादर होता है।

ऐसे श्रद्धालु लेखको की रचनाओ से कुछेक असिक्ख लेखको ने अनुचित लाभ उठाया। इन्होने भी गुरु नानक को अनपढ कहना आरम्भ कर दिया। आर्य समाज के प्रचारक और लेखक भी इन्ही मे से हैं।* इनका कहना है कि गुरु नानक देव जी को वेद शास्त्रो का पूर्ण ज्ञान नही था क्योकि वे पढे हुए तो थे नही। उन्होने अपने विचार सुन-सुना कर बना लिए थे।

वास्तव मे बात यह है कि गुरु नानक ने हिन्दी, सस्कृत तथा फारसी आदि की प्रारम्भिक शिक्षा तो अपने गाव के मौलवियो एव पण्डितो से प्राप्त की और फिर सन्तो, महापुरुषो तथा फकीरो की सगति से उन्होने वेदो, शास्त्रो पुराण एव कुरान आदि की गम्भीरता को समझा।

उनके अपने नगर के आस-पास उस समय जगल तथा आरक्षण थे। इन आरक्षणो मे प्राय साधु सन्त आकर कई महीने डेरे लगाए रहते थे। इन्ही जगलो मे 'सच्चे सौदे' वाली घटना हुई। इन्हीं जगलो मे उन्होने ज्ञान-ध्यान प्राप्त किया।†

मैं विद्या प्राप्ति और सत्य की प्राप्ति को एक नही समझता। विद्या प्राप्ति मे सासारिक पदार्थो का ज्ञान, वेदो-शास्त्रो का ज्ञान, तथा अन्य सब प्रकार का ज्ञान सम्मिलित है जो बुद्धि द्वारा हम

*देखें स्वामी दयानन्द जी का सत्यार्थ प्रकाश तथा डाक्टर गोकल चन्द नारग की पुस्तक Transformation of Sikhism स्वामी जी की रचनाओ का बडा योग्य उत्तर 'दम्भ-निवारण' मे भाई दित्त सिंह जी ने दिया था।

†हमारी बीसवी सदी की ईंट चूने की बनी यूनिवर्सिटिया उन पुरानी जगल-यूनिवर्सिटियो को अब तक नही हटा सकी और न ही अब तक उस तरह का आचरण निर्माण करने वाली आन्तरिक-ज्योति को ज्वलित करने वाली विद्या ही

पुस्तको के अध्ययन, अथवा पुस्तको मे प्रतिपादित विचारो से प्रभावित विचारवानो, विद्वानो तथा पण्डितो से ग्रहण करते हैं। यह विद्या बिना किसी की सहायता से नही मिल सकती। यह विद्या गुरु नानक देव जी ने अन्य लोगो से प्राप्त की। जहा तक सत्य प्राप्ति का सम्बन्ध है उनके लिए यह ईश्वरीय देन थी। उनका आन्तरिक सत्य बाह्य सत्य से एकरूप होने के कारण, इस सम्बन्ध मे वे किसी शिक्षा या प्रयत्नो पर निर्भर नही थे। यह नाम की देन थी, जो वे ईश्वर से लेकर आए और हमारे लिए लेकर आए। इसी प्रकार शेष सब पैगम्बर अवतार समय-समय पर ससार की आवश्यकतानुसार कोई ईश्वरीय सन्देश लाते रहते है। विडगरी के कथनानुसार यह सब कुछ गुरुओ ने अपनी आत्मा को अकाल पुरुख और उसकी रचना से एक स्वर होकर प्राप्त किया।* जो बात डा० टैगोर ने ज़रतुश्त के सम्बन्ध मे कही थी, वह प्रत्येक गुरु अवतार के लिए उपयुक्त है वह सत्य जिससे उनका मन परिपूर्ण था, उन्होने किसी पुस्तक अथवा किसी अध्यापक से नही लिया था और न ही प्राचीन रूढियो पर चल कर उस सत्य की प्राप्ति की थी। वह तो कहीं प्रारब्ध से एक सर्व-जीवन ज्योति के रूप मे उन्हे प्राप्त हुआ, जैसे कही उनके आन्तरिक निजत्व और वाह्य सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक निजत्व को एक रूपता से उत्पन्न हुआ हो।†

दे सकती हैं। हां, बुद्धि को इन्होने काफी तीव्र कर दिया है। यह तीव्रता (तीखापन) अब उल्टी क्रिया भी करने लग गई है। भौतिकता स्वार्थ और अहभाव आदि वर्तमान शिक्षा के कुछ परिणाम हैं। सबसे कुरूप बात यह है कि हमारे आचरण मे उच्च गुणो का तथा गुणवानो का प्यार विलुप्त हो गया है। प्राचीन जगत-विश्वविद्यालयो मे इतने अवगुण नही थे। यह सच है कि तब परलोक और मृत्यु से सम्बन्धित संस्कारो का बोझ विद्यार्थी के मन पर आवश्यकता से अधिक डाला जाता था। गुरु नानक देव जी के विचार उनका जीवन और उनकी शिक्षा इस बात का प्रमाण है कि वे इस अवगुण को देख पाये थे और उन्होने इस बोझ को कम कर, जीवन प्रेम, देश प्रेम और मानव प्रेम तथा इन सब से श्रेष्ठ नाम-प्रेम का प्रचार किया। काश कि हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली किसी नये गुण को पूरा करने वाले साचे में ढाली जाये।

*Living Religions and Modern Thought by Widgery P-97

†Riligion of Man, P-76

(ज) विचार सग्राम

इस प्रकार भौतिक एव आध्यात्मिक शुद्धता के पश्चात् गुरु नानक देव जो रण-भूमि मे उतर आए और संसार के मत-मतान्तरो के विपरीत-निश्चयो तथा दिखावे के रूप मे आचरणो के विरोध के लिए विचार सग्राम मे जुट गए। डाक्टर नारग के कथनानुसार पुजारियो द्वारा दलित, भ्रमो एव अन्धविश्वासो मे ग्रस्त, आचरणहीन जाति को ऊपर उठाने के लिए घर से निकल पडे। वे हिन्दु तथा मुसलमानो का ध्यान उस उच्चतम शुद्ध आदर्श की ओर दिलाना चाहते थे। जो कि प्रेमा-भक्ति तथा मानव-मात्र के प्रेम को दृढ करता है। मैल्कम साहिब लिखते है कि इस कार्य मे गुरु नानक को एक ओर तो एक जाति के धार्मिक अत्याचारो का और दूसरी ओर दूसरी जाति के गहरे अन्धविश्वासो का सामना करना पडा। परन्तु गुरु नानक ने ऐसी समस्त कठिनाइयो को प्रेम एव विचार के बल पर वश मे करने का प्रयत्न किया।* अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होने चार यात्राओ के रूप मे ससार का भ्रमण किया और इसी धुन मे लका, काश्मीर तथा शायद रूस, तुर्किस्तान और मक्के तक भी पहुचे।

कनिंघम के विचारानुसार "गुरु नानक देव जी ने गुरु-कार्य अर्थात् लोगो को शिक्षा देने का काम इन चार यात्राओ के बाद आरम्भ किया।† भाव यह कि करतारपुर बसाने से पहले का चालीस वर्ष का समय गुरु नानक ने सत्य की खोज मे और अपने मन के ताने बाने को सुधारने मे व्यतीत किया। जैसा कि अफलातून, बेकन, डेकार्ट तथा गजाली ने किया था। इन ससार यात्राओ मे गुरु जी अनुभव प्राप्त करते रहे तथा फिर उस अनुभव के आधार पर श्री करतापुर मे शिक्षा देनी आरम्भ की और सिक्ख-धर्म की नींव रखी।" सब इतिहासकार इस विषय मे सहमत हैं कि गुरु जी ने अपने मिशन का प्रचार बाल्य अवस्था से ही आरम्भ कर दिया था और सुलतानपुर की घटना के पश्चात उन्होने मरदाने को साथ लेकर यात्रा के रूप मे "सति नाम" का चक्र चलाया। इन यात्राओ मे उन्होने अनेक प्राणियो

*Sketch of the Sikhs by Malcalm

†A History of the Sikhs P 41

को उपदेश देकर उनका उद्धार किया और सिक्ख बनाया। दश देशान्तरो मे जाकर उन्होने अपने मिशन का प्रचार किया। दूसरे अर्थो मे ये यात्राए सद्गुरु ने गुरु की हैसियत मे ससार को मर्य्यादा को बनाए रखने के लिए, सज्जन तथा शिवनाभ जसो को उपदेश देने के लिए की थी न कि उन से अनुभव प्राप्त करने और उपदेश लेने के लिए। यह ससार का चक्कर लगाने वाला नानक सद्गुरु था न कि गुरु की खोज मे घूमता फिरता एक नानक विद्यार्थी।

गुरु नानक को "गुरु' किस ने बनाया और उन्हे गुरु पदवी कब मिली, या उनका गुरु कौन था ? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जिन के सम्बन्ध मे कभी न कभी वाद-विवाद चलता रहता है।* सारे इतिहास-कार इस बात पर सहमत है कि सुलतानपुर से बाहर जगल मे एक नदी के किनारे—कई इस घटना को वेई नदी की साखी कहा करते हैं और जन्म साखियो मे इसी नाम से सकलित है—गुरु नानक को अकाल पुरुष ने अपनी हजूरी मे ससार को उपदेश देने के लिए आदेश दिया और उस समय 'मूलमन्त्र' " ੧ੳ गुरु प्रसादि अकाल पुरुष के मुख से उन्हे प्राप्त हुआ। यह गौतम बुद्ध वाला वोध प्रकाश था या अपने स्वरूप के ज्ञान की झलक। मैकालिफ लिखता है कि अपनी कल्पना की उडान मे वे अकाल पुरुष के पास पहुचे और उन्हे ससार का उद्धार करने का काम सौपा गया था। डाक्टर टरम्प को इस बात का गिला है कि इस साखी (घटना) का समर्थन गुरु ग्रथ साहिब मे नही मिलता।†

डाक्टर टरम्प की शका का समाधान यही है कि गुरु ग्रथ साहिब कोई ऐतिहासिक या पौराणिक ग्रथ नही है। गुरबाणी का विषय केवल अकाल पुरुष का यश है जिससे कि पाठ करने वाले के मन को शान्ति ईश्वर भक्ति एव आत्म-सुधार को अनुभूति हो अथवा प्रेरणा मिले। कोई कोई गुप्त सकेत ऐतिहासिक घटनाओ तथा

---

*देखें 'गुरु नानक का गुरु कौन था ?" लेखक प्रो० गगा सिंह फिलासफर।

†देखें टरम्प का 'आदिग्रन्थ' उत्थानिका पृष्ठ ११ और मैकालिफ की पहली जिल्द पृष्ठ ८४।

पौराणिक साखियो को ओर मिलता है। जैसे कि बाबर का आक्रमण या ध्रुव-प्रह्लाद की प्रचलित पौराणिक कथाओ की ओर सकेत है। सत्ता बलवडा, बाबा सुन्दर और भाटो के बिना हमे किसी वाणी मे 'नानक' के अतिरिक्त अन्य किसी गुरु के नाम का भी पता नही चलता। केवल 'महलो' की ओर सकेत है। गरबणी मे किसी गुरु की किसी जीवन-झाकी (जीवन वृत्तांत) को ऐतिहासिक रग मे नही दिया गया। इसी लिए गुरबाणी मे से किसी ऐतिहासिक घटना का प्रमाण ढूढना असगत माग करनी है। गुरु ग्रथ मे भी और अन्यत्र भी बाबा नानक जी का जन्म से ही गुरु होने का प्रमाण मिलता है। भाई गुरदास, गुरु गोबिन्द सिंह तथा अन्य सब इतिहासकार अकाल पुरुष को ही गुरु नानक का गुरु मानते है। गुरु नानक जी वाणी मे स्वय बताते हैं कि मैं स्वय कुछ नही कर रहा, मैं तो अकाल पुरुष की आज्ञा से बोलता हू और जिस प्रकार मेरा पति (खसम) वाहिगुरु बाणी भेजता है मैं वही बोलता हू अथवा भाषित करता हू। यथा तिलग महला १ (पृष्ठ ७२२)।

जैसी मैं आवै खसम की बाणी,
तैसडा करी गियानु वे लालो ।। २—३—४

इसी प्रकार शेष गुरुओ ने भी कहा है —

२ गउडी की वार महला ४ (पृ० ३०६ श्लोक १२)

इहु अखरु तिनि आखिआ जिनि जगतु सभु उपाइआ ।।

३ गउडी की वार महला ४ (पृ० ३०८ श्लोक १४)

सतिगुरु की बाणी सति सति करि जाणहु गुरु-
सिक्खहु हरि करता आपि मुहहु कढाये ।।

४ सूही महला ४ पृ० ७३४

जेहा तू कराइहि तेहा हउ करि वखिआनु ।।—४—४—११।।

श्री गुरु नानक देव के प्रचार को कई लेखको ने हिन्दु धर्म के प्रचार का ही एक नया रूप बताया है और गुरु जी को एक हिन्दु दार्शनिक की पदवी देते है। परन्तु गुरु जी का भारत वर्ष से बाहर-जाकर देश-देशान्तरो मे जहा बौद्ध-धर्म के सिवाय इस्लाम, ईसाई, यहूदी तथा फारसी आदि धर्मों का जोर था, प्रचार करना सिद्ध करता है कि

*Cf Transformation of Sikhism by G C Narang

वे हिन्दु-धर्म के घेरे (सीमा) से बाहर निकल कर उसकी सीमा को पार कर गए थे ।* इन देश-देशान्तरो मे जाकर गुरु नानक ने कई शिष्य बनाये और निरकारी मत का प्रचार किया । हिन्दु धर्म मे शुद्धि आन्दोलन वर्तमान समय की एक प्रथा (रीति) से उत्पन्न और परिस्थितियो से विवशता का परिणाम है । गुरु साहिब के समय या उससे पहले कोई मुसलमान का ईसाई हिन्दु नही बन सकता था । हिन्दु अथवा ब्राह्मण धर्म कोई प्रचारक (Missionary) धर्म नही था । इसी लिए कोई मन्दमति मलेच्छ इतना ऊचा नही हो सकता था कि वह हिन्दु बन सके । हा, एक हिन्दु इतना नीचे गिर सकता था कि वह मुसलमान या ईसाई बन जाए । यही कारण है कि वर्तमान शुद्धि आन्दोलन को कट्टर ब्राह्मणो तथा उच्च जातियो ने अभी तक स्वीकृति नही दी और वे इस आन्दोलन को हिन्दु धर्म के विरुद्ध समझते हैं। भाव यह कि हिन्दु नानक भारत से बाहर जाकर इस्लामी देशो मे जहा मुसलमानो का पकाया भोजन खाना पडता था मुसलमान पानी पीना पडता था, अपना प्रचार नही कर सकता था । कारण यह कि मुसलमानो के हाथो खाना पीना शास्त्रो के अनुसार वर्जित है और पश्चिमी सभ्यता ने भी बहुत से अग्रेजी पढे हिन्दुओ के मन से अभी तक मुसलमानो के हाथो खाने पीने की घृणा नही निकाली । अब हमारी सरकार ने स्टेशनो से 'हिन्दु पानी' तथा 'मुस्लिम पानी' की आवाजें आदेश देकर बन्द कर दी है ।

गुरु नानक देव जी ने कई मुसलमानो को सिक्ख धर्म सम्बन्धी उपदेश देकर उन्हे सिक्ख मण्डल मे सम्मिलित किया । जन्म से मुलसमान भाई मरदाना गुरु जी का सबसे पहला शिष्य था । मेकालिफ साहिब लिखते हैं† शेख ब्राह्मण तथा उसके इलाके के लोगो मे गुरु साहिब ने अपना प्रचार किया और वहा बहुत प्राणियो को सिक्ख बनाया । वहा से फिर इसी धुन मे बुशहर चले गए । फिर सुल्तानपुर होते हुए वैरोवाल जलालाबाद आदि स्थानो मे से होते

*हिन्दु धर्म मे आशय ब्राह्मणी धर्म है । आगे चल कर इस पुस्तक मे इस भेद को स्पष्ट किया गया है ।

†The Sikh Religion Vol I P-98 & 108 मुसलमानो से सिक्ख बनने के अन्य उदाहरणो के लिए देखें प्रो० तेजा सिह जी की पुस्तक 'सिक्खिज़्म' ।

हुए वे वर्तमान अमृतसर के जिले मे किडो पठानको नामक स्थान पर पहुचे। यहा बहुत से पठानो को सिक्ख बनाया। सिक्ख धर्म के प्रचार तथा बिना मत के लागो को सिक्ख धर्म मे दाक्षित करने का आन्दोलन दूसरे गुरुओ के समय और भी बल पकड गया था। गुरुओ के समय के पश्चात राजनैतिक आन्दोलनो और सामायिक राज्यो के बलात्कार एव अत्याचारो ने सिक्खो के अस्तित्व को खतरे मे डाल दिया, और सिक्खो को अब दूसरो को सिक्ख बनाने के स्थान पर अपने अस्तित्व को नष्ट होने से बचाने की चिन्ता पड गई तथा उन्हे जगलो मे छिप छिप कर दिन काटने पडे। इन परिस्थितियो मे मतहीनो को सिक्ख बनाना कहा सूझ सकता था, और प्रचार आन्दोलन घटते-घटते बिल्कुल बन्द हो गया। ब्राह्मणो विचारो ने साधारण ग्रामीण लोगो के मन पर पुन अधिकार जमा लिया और सिक्खो पर ब्राह्मणो प्रभाव पडना आरम्भ हो गया। वर्तमान शताब्दी मे पुन प्रयत्न आरम्भ हुए हैं ताकि सिक्खी सिद्धान्तो को अलग किया जाय और सिक्खो को विशुद्ध (निरोल) रखा जाए जिससे इनकी प्रसन्नता, उच्चता, स्वच्छता एव महानता इन्हे पुन मिल जाए।

वे हिन्दु-धर्म के घेरे (सीमा) से बाहर निकल कर उसकी सीमा को पार कर गए थे।* इन देश-देशान्तरो मे जाकर गुरु नानक ने कई शिष्य बनाये और निरकारी मत का प्रचार किया। हिन्दु धर्म मे शुद्धि आन्दोलन वर्तमान समय की एक प्रथा (रीति) से उत्पन्न और परिस्थितियो से विवशता का परिणाम है। गुरु साहिब के समय या उससे पहले कोई मुसलमान का ईसाई हिन्दु नही बन सकता था। हिन्दु अथवा ब्राह्मण धर्म कोई प्रचारक (Missionary) धर्म नही था। इसी लिए कोई मन्दमति मलेच्छ इतना ऊचा नही हो सकता था कि वह हिन्दु बन सके। हा, एक हिन्दु इतना नीचे गिर सकता था कि वह मुसलमान या ईसाई बन जाए। यही कारण है कि वर्तमान शुद्धि आन्दोलन को कट्टर ब्राह्मणो तथा उच्च जातियो ने अभी तक स्वीकृति नही दी और वे इस आन्दोलन को हिन्दु धर्म के विरुद्ध समझते है। भाव यह कि हिन्दु नानक भारत से बाहर जाकर इस्लामी देशो मे जहा मुसलमानो का पकाया भोजन खाना पडता था मुसलमान पानी पीना पडता था, अपना प्रचार नही कर सकता था। कारण यह कि मुसलमानो के हाथो खाना पीना शास्त्रो के अनुसार वर्जित है और पश्चिमी सभ्यता ने भी बहुत से अग्रेजी पढे हिन्दुओ के मन से अभी तक मुसलमानो के हाथो खाने पीने की घृणा नही निकाली। अब हमारी सरकार ने स्टेशनो से 'हिन्दु पानी' तथा 'मुस्लिम पानी' की आवाजें आदेश देकर बन्द कर दी हैं।

गुरु नानक देव जी ने कई मुसलमानो को सिक्ख धर्म सम्बन्धी उपदेश देकर उन्हे सिक्ख मण्डल मे सम्मिलित किया। जन्म से मुलसमान भाई मरदाना गुरु जी का सबसे पहला शिष्य था। मेकालिफ साहिब लिखते हैं† शेख ब्राह्मण तथा उसके इलाके के लोगो मे गुरु साहिब ने अपना प्रचार किया और वहा बहुत प्राणियो को सिक्ख बनाया। वहा से फिर इसी धुन मे बुशहर चले गए। फिर सुलतानपुर होते हुए वैरोवाल जलालाबाद आदि स्थानो मे से होते

*हिन्दु धर्म मे आशय ब्राह्मणी धर्म है। आगे चल कर इस पुस्तक मे इस भेद को स्पष्ट किया गया है।

†The Sikh Religion Vol I P-98 & 108 मुसलमानों से सिक्ख बनने के अन्य उदाहरणो के लिए देखें प्रो० तेजा सिह जी की पुस्तक 'सिक्खिज़म'।

हुए वे वर्तमान अमृतसर के जिले मे किडो पठानको नामक स्थान पर पहुचे। यहा बहुत से पठानो को सिक्ख बनाया। सिक्ख धर्म के प्रचार तथा बिना मत के लोगो को सिक्ख धर्म मे दाक्षित करने का आन्दोलन दूसरे गुरुओ के समय और भी बल पकड गया था। गुरुओ के समय के पश्चात राजनैतिक आन्दोलनो और सामायिक राज्यो के बलात्कार एव अत्याचारो ने सिक्खो के अस्तित्व को खतरे मे डाल दिया, और सिक्खो को अब दूसरो को सिक्ख बनाने के स्थान पर अपने अस्तित्व को नष्ट होने से बचाने की चिन्ता पड गई तथा उन्हे जगलो मे छिप छिप कर दिन काटने पडे। इन परिस्थितियो मे मतहीनो को सिक्ख बनाना कहा सूझ सकता था, और प्रचार आन्दोलन घटते-घटते बिल्कुल बन्द हो गया। ब्राह्मणो विचारो ने साधारण ग्रामीण लोगो के मन पर पुन अधिकार जमा लिया और सिक्खो पर ब्राह्मणो प्रभाव पडना आरम्भ हो गया। वर्तमान शताब्दी मे पुन प्रयत्न आरम्भ हुए हैं ताकि सिक्खी सिद्धान्तो को अलग किया जाय और सिक्खो को विशुद्ध (निरोल) रखा जाए जिससे इनकी प्रसन्नता, उच्चता, स्वच्छता एव महानता इन्हे पुन मिल जाए।

(स) अवतार अथवा मनुष्य ?

क्या गुरु नानक देव जी अथवा शेष नौ गुरु अवतार थे या मनुष्य ? अर्थात् क्या वे हिन्दु मत के अनुसार स्वय ईश्वर-अकाल पुरुष मनुष्य रूप मे आए थे या अन्य सभी मनुष्यो की भान्ति ईश्वरीय अश रखते हुए मनुष्य थे ? इस प्रश्न के उत्तर मे सभी सिक्ख धर्म अनुयायी किसी एक विचार पर सहमत नही है। इस सम्बन्ध मे साधारणतया तीन प्रमुख विचार प्रचलित है। एक श्रेणी तो उन धर्मविज्ञो की है जो कहते है कि गुरु जी अवतार थे। हिन्दु ग्रथो मे अवतारो की कई श्रेणिया दी है। यदि किसी अवतार मे अधिक कलाए अथवा गुण थे तो वह अधिक सम्पूर्ण अवतार था। इस प्रकार कोई १२ कला सम्पूर्ण अवतार, कोई १४ तथा कोई १६ कला सम्पूर्ण। हिन्दुओ मे १६ कला सम्पन्न अवतार सबसे अधिक सम्पूर्ण होता है। श्रीकृष्ण जी १६ कला सम्पूर्ण अवतार थे। निरमले पण्डितो ने हिन्दु वेद-शास्त्रो, हिन्दु सस्कारो तथा सिद्धातो की अच्छी प्रकार परख की थी अथवा विवेचन किया था और वे नही चाहते थे कि उनके गुरु तुलना मे किसी हिन्दु अवतार से कम सम्पूर्ण हो। उन्होने प्रत्येक उक्ति और युक्ति से यह सिद्ध किया है कि गुरु नानक देव जी तथा उनके अन्य नौ स्वरूप १८ कला सम्पूर्ण थे और वे प्रत्येक बडे से बडे हिन्दु अवतार से न केवल समानता ही रखते थे अपितु कई बातो मे श्रेष्ठ थे। एक प्रधान निश्चय अथवा विश्वास तो यह है। हमे कला के विस्तार और उसकी नैयायिक छान-बीन मे जाने की आवश्यकता नही है।

दूसरी श्रेणी मे वे विद्वान है जो विज्ञान और व्यावहारिक शिक्षा के प्रभाव स्वरूप कार्य-कारण की सीमा से बाहर कुछ नही सोच सकते और भौतिक ससार के कार्य कारण की व्यवस्था को आध्यात्मिक क्षेत्र मे मानते है। इनका मत है कि गुरु साहिब साधारण मनुष्यो की भान्ति मनुष्य है। अपने उद्यम एव परिश्रम से इन्होने अपने आपको ऊचा उठाया और ऊची से ऊची आध्यात्मिक मजिल तक पहुचे। उस गन्तव्य स्थान पर पहुच कर उन्होने देखा कि ससार के साधारण जीव अन्धकार-ग्रस्त है और आध्यात्मिक मार्ग से हट कर कमार्ग पर चल रहे है। इसलिए गुरुजनो ने प्रचार का कार्य-भार

उठाया अथवा मार्ग अपनाया और जन-साधारण को अन्धकार से निकाल कर प्रकाश मे लाने का यत्न किया। यह उच्चता सब कोई प्राप्त कर सकता है और उसी मजिल नर पहुच सकता है।

ऊपर के दो मत तो एक दूसरे से दूर और न मिलने वाले किनारो वाले मत है। कुछेक विद्वान ऐसे भी हे जो इन दानो के बीच की अवस्था मे विश्वास रखते है। उनका कहना है कि श्री गुरु जी थे तो मनुष्य ही परन्तु मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप मे वे जन्म से ही परिपूर्ण थे। वे सम्पूर्ण थे अपूर्ण नही। उनके प्रयत्न ईश्वर प्रदत्त पूर्णतया को प्रकट करने के लिए थे न कि ईश्वर प्रदत्त अपूर्णता को पूर्ण करने के लिए। दूसरे शब्दो मे मानसिक उच्चता तथा आध्यात्मिक प्रफुल्ता के लिए जो विघ्न और सीमाए एव रुकावटे साधारण सासारिक जीवो के मार्ग मे पूर्व जन्मो के सस्कारो के कारण या इस जन्म की न्यूनताओ के कारण स्वत होती है, वे स्वाभाविक रूप मे गुरु जी के लिए नही थी। वे स्वाभाविक रूप मे ही सम्पूर्ण थे। फिर उनका इस ससार मे जन्म लेने का क्या प्रयोजन ? दूसरो को सम्पूर्ण बनाना। सम्पूर्णता के बीज प्रत्येक मनुष्य मे है, परन्तु उन बीजो के पनपने, फलने फूलने के लिए किसी अच्छे माली की अश्यकता है जो इनके पनपने, तथा फलने फूलने को सरल एव शीघ्र बना दे। वे स्वय तो उद्धरित थे परन्तु दूसरो का उद्धार करने के लिए वे यहा आए थे।

श्री गुरु जी ईश्वरीय अश को बिना किसी मल एव परीक्षण के धारण करते थे, परन्तु वे स्वय ईश्वर नही थे। ईश्वर से भिन्न भी नही थे, जल और जल तरग भिन्न भी है तथा नही भी। इसी भेद और अभेद को सद्गुरुओ ने गुरुबाणी मे कई प्रकार से प्रकट किया है। परन्तु वे उस प्रचलित हिन्दु विचार को कि ईश्वर सचमुच माता के गर्भ मे से होकर, जन्म लेकर अवतरित होता है और अवतार कहलाता है, बहुत घृणास्पद और न सुनने तथा कहने के योग्य बात समझते थे। गुरु गोविन्द सिंह जी ने 'विचित्र नाटक' मे अपने जन्म लेने के विचार को भली प्रकार स्पष्ट किया है तथा उपर्युक्त तीनो मतो मे से तीसरे मत की पुष्टि की है। वे परम परमात्मा (अकाल पुरुष) के दास बनकर आए थे और

धर्म प्रचार एव पापो का सहार उनका उद्देश्य (मिशन) था। यही मिशन अकाल पुरुष ने गुरु नानक देव जी को सौपा था। जोवन चरित्र (साखीकार) लिखने वाला लिखता है गुरु नानक देव जो ने अकाल पुरुष का साक्षात्कार किया और वहा उन्हो ने "सोदर राग आसा महला १" वाला शब्द सम्मुख होकर उच्चरित किया और अकाल पुरुष ने मूलमन्त्रद्वारा ससार को धर्म का उपदेश देने के लिए और सत्य नाम (सतिनाम) का चक्र चलाने का आदेश दिया।

भिन्न भिन्न धर्मो के प्रवर्तको अथवा पैगम्बरो के अकाल पुरुष के साथ सम्बध को परखने से हमारे सम्मुख तोन मत विचार करने के लिए दृष्टिगोचर होते है। श्रद्धालु धर्मावलम्बियो ने अपने अपने धर्म के प्रवर्तक को किसी न किसो प्रकार ईश्वरीय अश के परिवार से सम्बधित किया है इस सम्बध को वर्णन करने को एक विधि तो हिन्दू अथवा ब्राह्मण मत के अनुसार है। जब कभी ससार मे उपद्रव होते है या किसी रूप मे भगवान के प्रकट होने की आवश्यकता होती है तो विष्णु भगवान अवतार धारण करके मनुष्य के रूप मे अवतरित होते है। इस मत से भिन्न ईसाई धर्म हजरत ईसा मसीह के ईश्वर से सम्बद्ध होने का है। हजरत यीशू न तो हजरत मूसा को भाति पैगम्बर थे और न हो श्री कृष्ण की तरह अवतार। योशू प्रभु का पुत्र था। ईश्वर स्वय योनि मे नही आ सकता, परन्तु अपने जैसो, अपने पुत्र के रूप मे वह एक अन्य शक्ति उत्पन्न कर सकता था। वह ईश्वर का पुत्र हजरत ईसा था। हजरत मूसा ईश्वर का पुत्र नही था, परन्तु ईश्वर ने पृथ्वी पर प्रकट होकर उसे दर्शन दिए और मूसा को उपदेश दिया*। मूसा ने पृथ्वो के प्राणियो से कहा -मुझे 'जाहवे' ने, 'अहं' "मैं हू" ने तुम्हारे पास भेजा है। इस प्रकार से ईसाई पिता-पुत्र का सम्बध यहूदी ईश्वरीय पैगम्बरो से भिन्न प्रकार का है। अजील की कई पुस्तको मे विशेषतया मै थयू, जाहन तथा मार्क आदि मे हजरत ईसा जी के ईश्वर पुत्र होने के विचार का पुष्टि होती है। आकाश बाणी हाती है —"यह मेरा प्रिय पुत्र है और मैं इस पर बहुत प्रसन्न हू।" यह भी ठीक है कि अजील को कई पक्तियो मे ईसा के ईश्वर† के समरूप होने और कई पक्तियो मे

*देखें बाईबल की Exdus नामक पुस्तक ३--८

† ईश्वर के साथ समानता के लिए देखें पुस्तक जाहन ५-१७, ५-२३, १०-३०, ३८ १६-१५, और अन्य कई पुस्तकें भी।

ईसा के ईश्वर होने को वात सिद्ध होती है।* परन्तु ये समस्त विचार अलकारक तथा आत्मिक एकता या समानता को प्रकट करने वाले हैं। ईसा मसीह की देह को पूर्णत ईश्वर नही वताते। इन्ही पुस्तको मे मे ही कई-कई पक्तियो से इस विचार की प्रौढता (पुष्टि) होती है। जैसे —"जो मेरे दर्शन करता है वह उसके दर्शन करता है, जिसने मुझे भेजा है" या 'ईश्वर का पुत्र स्वय कुछ नही कर सकता, जो कुछ ईश्वर को करते देखता है वही करता है।"

तीसरा मत इन उपरिलिखित मतो से सर्वथा विपरीत है। कुरान शरीफ मे ईश्वर के पुत्र होने वाले विचार की घोर निन्दा की गई है। "भला जब ईश्वर की कोई पत्नी नही है तो उसका कोई पुत्र कैसे हो सकता है?"(देखे कुरान शरीफ का अध्याय मातवा ६-२-१०२) परन्तु कोई दीन धर्म प्रचलित नही हो सकता जव तक कि उसके प्रवर्तक को किसी न किसी प्रकार ईश्वर के साथ सम्वद्ध न किया जाए। इसलिए इस्लाम के प्रवर्तक महापुरुष ने अपने आपको "पैगम्बर' ईश्वर का दूत अथवा कासिद कहलवाया। परन्तु पैगाम अथवा ईश्वर से कोई सन्देश लेने के लिए किसी विधि का होना आवश्यक था। या तो ईश्वर पृथ्वी पर अवतार के रूप मे अवतरित होकर लोगो को स्वय सन्देश दे या फिर पृथ्वी के किसी विशिष्ट महापुरुष को नीचे उतर कर स्वय सन्देश दे और वह महापुरुष फिर जन साधारण तक उस सन्देश को पहुचाये। किन्तु हजरत मुहम्मद का ईश्वर बहुत महान्—"अल्ला ताला' था। वह देव लोक (आकाश) से पृथ्वी पर आकर "सन्देश' नही दे सकता था। न ही उसका कोई पुत्र हो सकता था। पैगाम लेने के लिए अब एक नया ढग अपनाया गया। वह यह कि महापुरुष स्वय देवलोक जाकर श्रेष्ट और पवित्र स्वामी से सन्देश लाये। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए हजरत मुहम्मद स्वय देवलोक गये। यह मिअराज' अर्थात् पैगम्बर साहिब की स्वर्ग पर चढाई थी। (कुरान शरीफ का ५३वां अध्याय—अडजम)। चीनी अवतार टाउ ने अवतार भावना की निन्दा की है, परन्तु उसका स्वर्ग मे (देवलोक) ईश्वर से मिलने जाना कई स्थानो पर वर्णित है।

---

*एकता या अभेदता के लिये देखें—जाहन १०-२०, १७-१०,

भारत मे सिक्ख गुरु सबसे पहले महापुरुष हुए है जिन्होंने अवतार-भावना का विरोध (खण्डन) किया है। वे अपने आप को अवतार, पैगम्बर या ईश्वर का पुत्र कहलाने के पद का लोभ नही करते। गुरबाणी के कई महावाक्यो मे सदगुरुओ ने पैगम्बरो और अवतारो को साधारण मनुष्यो के अश रूप मे दिखाया है। वे ईश्वर से अभिन्न होते हुए भी अपने आपको मनुष्यो से भिन्न नही समझते थे और मानुष रूप मे न कोई भिन्न हो सकता है। इसमे कोई सन्देह नही है कि जिस प्रकार बाईबल की कई पक्तियो मे ईश्वर और ईश्वर पुत्र ईसा की अभिन्नता प्रकट होती है उसी प्रकार कई गुरु वाक्यो से भी गुरु तथा अकाल पुरुष का एक रूप होना सिद्ध होता है। यह अभेदता लाक्षणिक और यथार्थ भी है। सूक्ष्म रूप मे यह विचार वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराता है और स्थूल रूप मे इसके अर्थ अलकारक एव रहस्यमय (Mystic) है। गुरु साहित्य के अपने महावाक्यो के होने पर भी उनके श्रद्धालुओ ने उन्हे मनुष्य स्तर पर नही रहने दिया। जिस प्रकार महात्मा बुद्ध के शिष्यो ने गौतम बुद्ध को मनुष्य से देवता बनाकर अपना चाव पूरा किया था, उसी प्रकार गुरु जी के श्रद्धालुओ ने भी गुरु साहिब को अवतार मानकर मनुष्य मण्डल से निकाल कर देवताओ से ऊपर हिन्दु विचार के अनुरूप अवतारो के साथ सम्बद्ध किया है। वैसे तो 'ब्रह्म ज्ञानी आप परमेशर", "गुरु अरजन प्रतख हरि", "हरि हरिजन दुई एक है", "गुरु परमेशर एको जान आदि वाक्य सद्गुरुओ को अवतारो से भी महान हस्ती बताते है और वास्तव मे सब पैगम्बरो अवतारो से महान भी थे परन्तु यह महानता उन्हे अमानुष नही बनाती क्योकि गुरु साहिब की बाणी के अनुसार सब पैगम्बर अवतार मनुष्य ही थे। मनुष्यो और उनमे Kind जाति भेद नही हैं, हा Degree दर्जा (स्तर) — ऊचो नीची अवस्था का भेद अवश्य है। बात यह कि साधारणतया जीवन चरित्र लेखको ने गुरु साहिब को दूसरे पैगम्बरो, अवतारो से कम नही बताया और अवसर मिलने पर उन्हे भी उन्ही मार्गो तथा आदर्शो पर चलाया है और उन्ही रगो मे रगा है। हजरत मुहम्मद 'साहिब की भान्ति गुरु साहिब भी देवलोक अथवा सत्यलोक को गए और वहा अकाल-पुरुष ने उन्हे उपदेश दिया, अथवा गुरु नानक देव जी को एक विशेष

मिशन सौपा। यद्यपि इसका भाव रहस्यवाद के दृष्टिकोण से (Mystic ढग मे) मैकालिफ की भान्ति (सिक्ख इतिहास भाग,१ पृ० ३८) यह भी लिया जा सकता है कि गुरु नानक देव जी ने समाधि लगाई और महात्मा बुद्ध की भाँति उन्हे बोध हुआ। निराकार परमात्मा के साथ एक स्वर हुए तो ससार को ज नता देखा और संसार का उद्धार करने के मिशन का उन्हे प्रकाश हुआ। परन्तु जीवन चरित्र लेखकों की रचनायें बिल्कुल स्पष्ट है। भाई गुरदास जी पहली वार मे लिखते है :—

"बाबा पैधा सच्चखड नउ निध नाम गरीबी पाई"

(१–२४–४)

श्री गुरु नानक देव जी का विवाह माता पिता की इच्छानुसार हुआ और उन्होने गृहस्थ जीवन को मानव जीवन मे विशेष महत्व दिया। उन्होने एक नया नगर बसाया और एक सच्चे राजयोगी* का जीवन व्यतीत करते हुए अपनी इसी रावी के किनारे नई बसाई हुई बस्ती करतारपुर मे १५३६ ई० मे परमधाम सिधार गए। (अर्थात ज्योति जोत समाए)। इस नई बसती मे लोगो के साथ मिल कर स्वय अपने हाथो कार्य करते, कमाते तथा लोगो की सेवा करते और करवाते थे। उनके दो पुत्र हुए— श्री चन्द और लक्ष्मी चन्द। श्री चन्द जी उदासी बन गए अर्थात् सन्यास धारण कर लिया और इससे उदासी सम्प्रदाय की नीव रखी गई। इस सम्प्रदाय की धार्मिक पुस्तक (ग्रथ) श्री गुरु ग्रथ साहिब ही है।† बाबा श्री चन्द जी का जीवन-मार्ग

*भटो के सवैय्ये २—३—४—५—६ गुरु नानक राजयोग जिन माणिउ।

†'गुर उदासीन मत दर्पण' के लेखक ने गुरु नानक देव का गुरु सत रेण बताया है। इसका उत्तर प्रिंसिपल गगा सिंह ने अपनी पुस्तक 'गुरु नानक का गुरु कौन था' से विस्तार से दिया है। १६२०-२५ ई० मे चली गुरुद्वारा सुधार लहर के अन्तर्गत पजाब के कई गुरुद्वारो के गद्दीदार उदासी महन्तो को भारी माली नुकसान हुआ, क्योकि गुरुधामो के नाम लिखी जागदाद उन से छीनी जा कर कानूनाधीन गुरु पथ के चुने हुए प्रतिनिधियो की शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के प्रबन्ध मे आ गई। पजाब से बाहर अनेक गुरुधामो के उदासी महन्तो को भी फिकर हो गया। इस आन्दोलन का यह प्रभाव हुआ

उदास— गुरु नानक देव जी के मन तथा उनके जीवन सिद्धान्त के अनुकूल नही था और सिक्ख धर्म के विरुद्ध था। इसलिए उन्होने श्री चन्द को गुरु-मिशन चलाने के योग्य न समझा अर्थात् उन्हे अपना योग्य उत्तराधिकारी न समझा तथा न ही उनकी परीक्षा मे उनका दूसरा पुत्र बाबा लक्ष्मी चन्द पूर्ण उतरा। गुरु कसौटी के अनुसार भाई लहणा जी पूरे उतरे और श्री गुरु नानक देव जी ने अकाल पुरुष द्वारा सौपे मिशन को जारी रखने के लिए सब से बढ कर श्री लहणा जी को योग्य समझा। गुरु गददी सौपते समय श्री गुरु नानक देव जी ने बाबा लहणा जी का नाम गुरु 'अगद' देव जा रखा। भाव यह कि वे गुरु नानक के ही अग मे से है, वे गुरु नानक देव जो का हिस्सा तथा उन्ही का ही स्वरूप हैं। शेष आठो गुरुओ तथा गुरु परम्परा की सूची इसी पुस्तक मे किसी अन्य स्थान पर दी गई है।

हमारा अभिप्राय यहा सद्गुरु की जीवनी लिखने का नही है। हा उनके जीवन सम्बन्धी कुछ एक मुख्य भ्रातियो को दूर करने का अवश्यहै। गुरु नानक देव जी के मिशन का प्रचार बाद मे नौ गुरुओ ने किया। इस प्रचार के वेग मे दो एक बार तलवार भी चमकी। श्री साहिब की धारा की चमक का आत्मिक हिलोरे के साथ क्या सम्बन्ध! हिंसा और अहिंसा का क्या मेल। कहा राम राम! और कहा टै टै!! यह एक प्रमुख तथा आम प्रचलित भ्राँति है। यह अत्र हमारे विचार का अगला विषय है।

कि उदासियो ने अपने आप को सिक्ख कहलवाना वर्जित कर दिया। इस आशय से उन्होने पुस्तकें लिखी और प्रचार किया। इसी प्रकार की एक 'गुरु उदासीन मति दर्पण नामक पुस्तक पण्डित ब्रह्मानन्द ने लिखी और उदासीमत का प्रारम्भ ब्रह्मा से बताया जिसने सृष्टि की रचना के समय ही यह मत चलाया था। इस सूचि मे काफी देर बाद गुरु नानक को उदासी बताया है तत्पश्चात् श्री चन्द को और फिर बाबा गुरुदित्ता को।

(देखें गुरुशब्द रत्नाकर रचित भाई कान्ह सिह जिल्द १ पन्ना २७)।

खड्ग (तलवार) तथा आत्मिक उन्नति

छटे तथा दसवे गुरु—श्री गुरु हरगोबिन्द तथा श्री गुरु गोविन्द सिंह ने अपने मिशन के प्रचार मे तलवार का प्रयोग किया तथा दोनो सदगुरुओं ने समय की आवश्यकता को अनुभव करके सैनिक जीवन-विधि को अपनाया। छटे गुरु तो मुगल सम्राट जहांगीर के समकालीन* थे तथा दशम गुरु जहांगीर के पौत्र औरंगजेब के समकालीन थे।

गुरु गोबिन्द सिंह जी का श्री साहिब के साथ इतना प्यार हो गया था कि इस प्यार (अनुरक्ति) के कारण उनकी रचना मे श्री साहिब की, की गई उपमा (प्रशसा) इतने महान सत्कार को बताती है कि कई स्थानो पर वह एक इष्टदेव की पूजा का स्थान लेती हुई प्रतीत होती है। मनुष्य का स्वभाव है कि जो वस्तु किसी मनुष्य-कार्य मे सफलता का मुख्य साधन बन जाए वह उसको स्वाभाविक रूप मे ही धारण तथा सत्कार करने लग जाता है। कई निर्णायक तथा लेखक अपनी लेखनियो को धूप देते और प्रणाम करते देखे गए है। परन्तु गुरु गोबिन्द सिंह जी की श्री साहिब के लिए उपमा केवल मात्र उसके लाभदायक होने तक ही सीमित नही थी। उनके लिए तलवार एक शक्ति (Energy, Force, Power) का चिन्ह (Symbol) थी। तलवार के लिए श्री गुरु जी का प्यार तथा सत्कार एक महान परम सत्यवादक विचार तथा गम्भीर दर्शन पर आधारित था। क्योंकि प्रत्यक्ष ससार तथा इसके अस्तित्व का मूल कारण प्रत्येक वस्तु मे छिपी Energy (शक्ति) है। इस शक्ति का मूल स्रोत सर्वशक्तिमान अकाल पुरुष है तथा शक्ति का युग युगान्तरो से प्रचलित चिन्ह श्री साहिब है। पिस्तौल, बम्ब चाहे ऐटामिक हो और विनाशक अथवा अन्य कोई कितना भी घातक हथियार (शस्त्र) मानव मस्तिष्क क्यो न बना ले, इन सबके होते हुए शक्ति तथा मनुष्य के स्वाभिमान का चिन्ह तलवार ही है और रहेगी। इसी कारण श्री गुरु जी ने तलवार को धारण किया तथा अपने सिक्खो को धारण करने का आदेश दिया।

गुरु साहिब के समय की राजनैतिक अवस्था तथा कई मुगल

---

*गुरु हर गोबिन्द साहिब तथा जहाँगीर के परस्पर सम्बन्ध के लिए देखें—अन्तिका १ मार्च, ४६ 'सन्त सिपाही मे।'

राज्य के अत्याचारो की ओर सकेत पहले हो चुका है। गुरु गोबिन्द सिंह के समकालीन सम्राट औरगजेब के समय का इतिहासकार खाफी खाँ मुहम्मद हाशिम अपनी फारसी तारीख 'मुनतखिबुल लुबाव' मे 'पृष्ठ ४१८—ऐलियट तथा डासन का अग्रेजो अनुवाद लडन—१८७७। लिखता है — औरगजेब ने सिखो के गुरुद्वारो को गिराने का आदेश दिया।" पृष्ठ ४२५—एक सरकारी आदेश दिया गया कि सब हिन्दु दाढ़िया काट दे। इस प्रकार से कई लोगो को यह अपमान सहन करना पडा और अपनी आन छोडनी पडी। इस कार्य मे बाल काटने वाले नाइयो को कई दिन बहुत काम रहा।

हिन्दुओ की ऐसी मानसिक दशा देख कर गुरु गोबिन्द सिंह जी ने यह अनुभव किया कि हिन्दु जनता (Inferiority complex) हीनता की भावना का शिकार होकर अपने अन्दर से आन स्वाभिमान तथा पुरुषाथ खो चुकी है। ऐसी हताश, निर्जीव जाति को ऊपर उठाना सरल कार्य नही था। यदि जर्मन दार्शनिक नीतशे के प्रचार से निर्दयता, बलात्कार निकाल दे तो उसकी कई बातो की उस समय आवश्यकता थी। निर्भीक तथा निधडक होकर जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति उस समय अपेक्षित थे। युद्ध करने वाले तथा युद्ध को धर्म के आदर्शों पर लडने वाले शूर वीरो की आवश्यकता थी। इसीलिए श्री दशमेश जी ने कहा - "धन जीउ तिह को जग मैं मुख ते हरि चित्त मे जुध विचारै।" ऐसी शूरवीरता के स्वभाव को दृढ करने के लिए उन्होने सिक्खो को झटका खाने को भी आज्ञा दे दी। वे जानते थे कि भोजन का प्रभाव मन पर पडता है। केवल मात्र खीर तथा कडाह खाने वाले रणभूमि का स्वप्न लेकर ही काप जाते है।

अब सन्देह इस बात का होता है कि तलवार का प्रयोग अथवा युद्ध करने या मास भक्षण करने से जो हिसा (जीव हत्या का पाप) होती है, वह एक आध्यात्म पुरुष तथा तत्त्ववेता के महान पुरुषार्थ से किस प्रकार तुलना कर सकती है? हमारे वर्तमान समय के शान्ति स्थापना के प्रमुख प्रचारक महात्मा गांधी ने अपनी बनाई हुई अहिंसा

*For Inferiority Complex see Alfred Adlers' Individual Psychology' Kegan Paul, London

को कसौटी पर परख कर श्री गुरु गोविन्द सिंह जी को एक लेख में "विस्मृत देश भक्त" कह कर सम्बोधित किया था।* गांधी जी ने अपने अहिंसा धर्म का पालन करते हुए एक बार एक बीमार गऊ द्वारा उत्पन्न बछडे को मरवा दिया था, ताकि वह मर कर असाध्य रोग के दुखो से छुटकारा प्राप्त कर ले। परन्तु क्या यह असाध्य-रोग का नियम हमारे, आपके अथवा शूरवीर योद्धो तथा महापुरुषो के कारनामो पर नही घट सकता ?

गुरु गोविन्दसिंह जी ने श्री साहिब तथा खण्डे को ग्रहण करते समय श्री कृष्ण जी महाराज के अर्जुन को दिए गए उपदेश को सम्मुख नही रखा था कि आत्मा अमर है इसलिए मित्रो एव सम्बन्धियो पर रणभूमि मे प्रहार करना तथा उनका वध करना पाप नही है। वे गीता के इस उपदेश से प्रेरित नही हुए थे। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने तथा उनसे पहले कई गुरुओ ने अधर्म एव पाप को नष्ट करने के लिए सभी शातमय प्रयत्न किए। एक प्रमुख राज्य प्रबन्ध के रूप मे गुरु जी के सम्मुख अधर्म तथा अत्याचार दलबद्ध होकर भयानक रूप धारण किए था। इसलिए आवश्यक था कि तुलना मे धर्म एव सदाचार भी सगठित रूप मे उसी प्रकार सामना करते। इस कार्य के लिए उन्होने धार्मिक तथा सदाचारी मनुष्यो का सगठन किया और उनका नाम "खालसा" रखा। गुरु जी ने उन्हे शस्त्रो से सुसज्जित किया तथा 'पंचककार' की वर्दी उनके शरीर का अग बना दी। इस वर्दी मे श्री साहिब (तलवार—खड्ग) उनके लिए स्वाभिमान, आन, तथा शक्ति का सदा के लिए चिन्ह बना दिया गया।

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने औरगजेब को फारसी भाषा मे लिखे गये पत्र द्वारा चेतावनी देकर बता दिया था कि अब तक समस्त शातमय ढग अपनाये जा चुके हैं और ऐसे साधनो से समस्या सुलझाई नही जा सकती। मैं श्री साहिब पकड कर रणभूमि में जूझने के लिए विवश हो गया हू। श्री दशम ग्रथ का महाकाव्य है जफर नामा मुखवाक् पातशाही १० पृष्ठ १२ ०।

*इसके सविस्तार उत्तर के लिए इसी लेखनी का लिखा लेख "अमृत" मे देखें 'की जोधे दी तलवार हिंसक है ?" (जोधा नम्बर)

राज्य के अत्याचारो की ओर सकेत पहले हो चुका है। गुरु गोबिन्द सिंह के समकालीन सम्राट औरगजेब के समय का इतिहासकार खाफी खाँ मुहम्मद हाशिम अपनी फारसी तारीख 'मुनतखिबुल लुबाव' मे 'पृष्ठ ४१८—ऐलियट तथा डासन का अग्रेजो अनुवाद लडन—१८७७' लिखता है — औरगजेब ने सिखो के गुरुद्वारो को गिराने का आदेश दिया।" पृष्ठ ४२५—एक सरकारी आदेश दिया गया कि सब हिन्दु दाडिया काट दे। इस प्रकार से कई लोगो को यह अपमान सहन करना पडा और अपनी आन छोडनी पडी। इस कार्य मे बाल काटने वाले नाइयो को कई दिन बहुत काम रहा।

हिन्दुओ की ऐसी मानसिक दशा देख कर गुरु गोबिन्द सिंह जी ने यह अनुभव किया कि हिन्दु जनता (Inferiority complex) हीनता की भावना का शिकार होकर अपने अन्दर से आन स्वाभिमान तथा पुरुषाथ खो चुकी है। ऐसी हताश, निर्जीव जाति को ऊपर उठाना सरल कार्य नही था। यदि जर्मन दार्शनिक नीतशे के प्रचार से निर्दयता, बलात्कार निकाल दें तो उसकी कई बातो की उस समय आवश्यकता थी। निर्भीक तथा निधडक होकर जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति उस समय अपेक्षित थे। युद्ध करने वाले तथा युद्ध को धर्म के आदर्शो पर लडने वाले शूर वोरो की आवश्यकता थी। इसीलिए श्री दशमेश जी ने कहा — "धन जीउ तिह को जग मैं मुख ते हरि चित्त मे जुध विचारै।" ऐसो शूरवीरता के स्वभाव को दृढ करने के लिए उन्होने सिक्खो को झटका खाने को भी आज्ञा दे दी। वे जानते थे कि भोजन का प्रभाव मन पर पडता है। केवल मात्र खीर तथा कडाह खाने वाले रणभूमि का स्वप्न लेकर ही काप जाते है।

अब सन्देह इस बात का होता है कि तलवार का प्रयोग अथवा युद्ध करने या मास भक्षण करने से जो हिंसा (जीव हत्या का पाप) होती है, वह एक आध्यात्म पुरुष तथा तत्ववेता के महान पुरुषार्थ से किस प्रकार तुलना कर सकती है? हमारे वर्तमान समय के शान्ति स्थापना के प्रमुख प्रचारक महात्मा गाँधी ने अपनी बनाई हुई अहिंसा

*For Inferiority Complex see Alfred Adlers' Individual Psychology' Kegan Paul, London

को कसौटी पर परख कर श्री गुरु गोविन्द सिह जी को एक लेख मे "विस्मृत देश भक्त" कह कर सम्बोधित किया था ।* गांधी जी ने अपने अहिंसा धर्म का पालन करते हुए एक बार एक बीमार गऊ द्वारा उत्पन्न बछडे को मरवा दिया था, ताकि वह मर कर असाध्य राग के दुखो से छुटकारा प्राप्त कर ले। परन्तु क्या यह असाध्य-रोग का नियम हमारे, आपके अथवा शूरवोर योद्धो तथा महापुरुषो के कारनामो पर नही घट सकता ?

गुरु गोविन्दसिह जी ने श्री साहिब तथा खण्डे को ग्रहण करते समय श्री कृष्ण जी महाराज के अर्जुन को दिए गए उपदेश को सम्मुख नही रखा था कि आत्मा अमर है इसलिए मित्रो एव सम्बन्धियो पर रणभूमि मे प्रहार करना तथा उनका वध करना पाप नही है। वे गीता के इस उपदेश से प्ररित नही हुए थे। गुरु गोबिन्द सिह जी ने तथा उनसे पहले कई गुरुओ ने अधर्म एव पाप को नष्ट करने के लिए सभी शातमय प्रयत्न किए। एक प्रमुख राज्य प्रबन्ध के रूप मे गुरु जी के सम्मुख अधर्म तथा अत्याचार दलबद्ध होकर भयानक रूप धारण किए था। इसलिए आवश्यक था कि तुलना मे धर्म एवं सदाचार भी सगठित रूप मे उसी प्रकार सामना करते। इस कार्य के लिए उन्होने धार्मिक तथा सदाचारी मनुष्यो का सगठन किया और उनका नाम "खालसा" रखा। गुरु जी ने उन्हे शस्त्रो से सुसज्जित किया तथा 'पंचकक्कार' की वर्दी उनके शरीर का अग बना दी। इस वर्दी में श्री साहिब (तलवार—खड्ग) उनके लिए स्वाभिमान, आन, तथा शक्ति का सदा के लिए चिन्ह बना दिया गया।

गुरु गोबिन्द सिह जी ने औरगजेब को फारसी भाषा मे लिखे गये पत्र द्वारा चेतावनी देकर बता दिया था कि अब तक समस्त शातमय ढग अपनाये जा चुके है और ऐसे साधनो से समस्या सुलझाई नही जा सकती। मैं श्री साहिब पकड कर रणभूमि में जूझने के लिए विवश हो गया हू। श्री दशम ग्रथ का महाकाव्य है जफर नामा मुखवाक् पातशाही १० पृष्ठ १३ ०।

*इसके सविस्तार उत्तर के लिए इसी लेखनी का लिखा लेख "अमृत" मे देखें 'की जोधे दी तलवार हिंसक है ?" (जोधा नम्बर)

कि पैमाँ शिकन बेदरग आमदद ।।
मर्यां तेग तीरो तफग आमदम ।।
ब लाचारगी दरमियां आमदम ।।
ब तदबीरा तीरो तफग आमदम ।।
चू कार अज़ हमाह हीलते दरगुजश्त ।।
हलाल अस्त बुरदन ब शमशीर दस्त ।।
चिह कमसे कुरा मन कुनम अहितआर ।।
बगरनाह तु गोई मनी रहि चिहकार ।।

गुरु गोविन्द सिंह जी ने धर्म तथा शान्ति को बनाए रखने के लिए तलवार उठाई थी। गुरु साहिब के मतानुसार अधर्म तथा पाप को जिस प्रकार भी हो सके नष्ट करना धर्म तथा महान एवं वास्तविक अहिंसा थी। अहिंसक साधनों से पाप को तुम रोक न सको और फीकी हिंसा की भ्रांति में फंस कर तुम तलवार न चलाओ और अधर्म एवं पाप के सम्मुख 'अहिंसा परमो धर्म' का जाप करके झुक जाओ तो तुम बड़े अत्याचार के भागी तथा निर्दयतापूर्ण हिंसा के करने वाले समझे जाओगे। धार्मिक शूरवीर योद्धा की तलवार एक सर्जन के औज़ार की भान्ति है। यदि किसी के पेट में ज़ख्म या रसौली हो जाए तो उसका उपचार करना प्रत्येक प्राणी का धर्म है। यदि कोई जन्त्र-मन्त्र के साथ, अपने आत्मबल के साथ उस रसौली का उपचार कर दे तो बहुत अच्छा, नहीं तो फिर मरहम अथवा मालिश का प्रयोग करना पड़ेगा। या फिर खाने के लिए दवाई दी जाएगी। यदि समस्त साधन व्यर्थ सिद्ध हो जाए तो फिर औज़ार (अस्त्र) के साथ चीरफाड करनी ही अभीष्ट है। यही दशा मानसिक सदाचारक तथा आत्मिक घावों एवं रसौलियों की है। जब यह छूत की बीमारी के रूप में किसी सम्पूर्ण जाति को चिपट जाए तो साधन और भी कठिन तथा पेचीदा हो जाते हैं। पांचवें पातशाह, नौवें पातशाह तथा अन्य अनगिणत सिक्खों ने शान्त रह कर बलिदान दिए। श्री दशमेश जी के माता जी परिवार, पिता जी अबोध बच्चे सब अधर्म को दूर करने के हेतु शांत रह कर बलिदान हो गए। सभी अहिंसक साधनों का प्रयोग किया जा चुका था। तलवार की परीक्षा शेष थी। आत्मा अमर है। जीवन आध्यात्मिक उन्नति के इतिहास में पौड़ी का एक

चरण है। मनुष्य उत्पन्न होता है, मरता है, उत्पन्न होता है। बस एक जीवन व्यतीत करके दूसरे मे। अथवा एक डण्डे से दूसरे डण्डे पर जाता है यदि जीवन सत्य धर्म के आदर्शों के अनुसार व्यतीत होता है तो वह जीव अगले जन्म मे ऊपर वाले डण्डे पर चढेगा और यदि असत्य और अधर्म की ओर जा रहा है तो फिर नीचे की ओर होकर वह हानि की ओर जायेगा। इसलिए कोई ऐसा जीव अधर्म, असत्य एव अन्याय के सहारे अत्याचार तथा पाप करके न केवल अपना भविष्य बिगाड रहा है अपितु वह दूसरो की उन्नति के मार्ग मे भी रोडे अटका रहा है। वह स्वय नीचे गिर रहा है और दूसरो को पाताल मे फेंक रहा है। ऐसे मनुष्यो अथवा उनके सगठन को जितना शीघ्र नष्ट किया जाए उतना ही अच्छा है। यह मार्ग अहिंसा तथा सत्य धर्म का मार्ग है। तलवार के साथ ऐसे अधर्मी पापियो का सुधार करना और ऐसे सगठन को समूल नष्ट करना दुगना परोपकार है। एक तो पापी मनुष्यो के जीवन को समाप्त करके उसको आत्मा को और गिराने से बचाना है तथा साथ ही शीघ्र एक अन्य जीवन का नया अवसर देना है। दूसरी ओर दूसरे जीवो की उन्नति के मार्ग मे से कठिनाइयो को दूर करके उनको सहायता करना है। एक तो मरने वाले पर उपकार और साथ ही उन पर जो उसके अत्याचार व बलात्कार के शिकार थे। मन, वचन, कर्म के साथ पहले हमे अपने आप को सुधारना है और फिर इन्ही तीनो साधनो के साथ दूसरो को भी सुधारना है। तलवार का प्रयोग भी एक कर्म है और सुधार का एक आखरी यत्न है। जब अन्य सभी साधन प्रयुक्त हो चुके थे तो तलवार का यत्न ही था जिसका प्रयोग करना आवश्यक था। गुरु साहिब ने अपने मुखारविन्द से भी जैसे ऊपर वर्णित है, स्वय तलवार के प्रयोग को इसी प्रकार स्पष्ट किया है तथा पुष्टि की है।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के सम्मुख यह एक महान कार्य था। पाप, अन्याय तथा अत्याचार पर आधारित राज्य को नष्ट करना एक या दो खाली-हाथ मनुष्यो का काम नही था। इस काम के लिए पूरी तरह से शस्त्रबद्ध तथा बलिदान की भावना से ओत-पोत सेना की आवश्यकता थी। यह सब कुछ तभी हो सकता था यदि

कि पैमाँ शिकन बेदरग आमदद ।।
मयाँ तेग तीरो तफग आमदम ।।
ब लाचारगी दरमिया आमदम ।।
ब तदबीरो तोरो तफग आमदम ।।
चू कार अज हमाह हीलते दरगुजश्त ।।
हलाल अस्त बुरदन ब शमशीर दस्त ।।
चिह् कसमे कुरा मन कुनम अहितबार ।।
वगरनाह तु गोई मनी रहि चिहकार ।।

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने धर्म तथा शान्ति को बनाए रखने के लिए तलवार उठाई थी। गुरु साहिब के मतानुसार अधर्म तथा पाप को जिस प्रकार भी हो सके नष्ट करना धर्म तथा महान एव वास्तविक अहिंसा थी। अहिंसक साधनो से पाप को तुम रोक न सको और फीकी हिंसा की भ्राति मे फस कर तुम तलवार न चलाओ और अधर्म एव पाप के सम्मुख 'अहिंसा परमो धर्म' का जाप करके झुक जाओ तो तुम बडे अत्याचार के भागी तथा निर्दयतापूर्ण हिंसा के करने वाले समझे जाओगे। धार्मिक शूरवीर योद्धा को तलवार एक सर्जन के औजार की भान्ति है। यदि किसी के पेट मे जख्म या रसौली हो जाए तो उसका उपचार करना प्रत्येक प्राणी का धर्म है। यदि कोई जत्र-मत्र के साथ, अपने आत्मबल के साथ उस रसौलो का उपचार कर दे तो बहुत अच्छा, नही तो फिर मरहम अथवा मालिश का प्रयोग करना पडेगा। या फिर खाने के लिए दवाई दी जाएगी। यदि समस्त साधन व्यर्थ सिद्ध हो जाए तो फिर औजार (अस्त्र) के साथ चारफाड करनी ही अभीष्ट है। यही दशा मानसिक सदाचारक तथा आत्मिक घावो एव रसौलियो की है। जब यह छून की बीमारी के रूप मे किसी सम्पूर्ण जाति को चिपट जाए तो साधन और भी कठिन तथा पेचीदा हो जाते हैं। पाचवे पातशाह, नौवे पातशाह तथा अन्य अनगिणत सिक्खो ने शान्त रह कर बलिदान दिए। श्री दशमेश जी के माता जी परिवार, पिता जी अबोध बच्चे सब अधर्म को दूर करने के हेतु शांत रह कर बलिदान हो गए। सभी अहिंसक साधनो का प्रयोग किया जा चुका था। तलवार की परीक्षा शेष थी। आत्मा अमर है। जीवन आध्यात्मिक उन्नति के इतिहास मे पीडो का एक

चरण है। मनुष्य उत्पन्न होता है, मरता है, उत्पन्न होता है। बस एक जीवन व्यतीत करके दूसरे मे। अथवा एक डण्डे से दूसरे डण्डे पर जाता है यदि जीवन सत्य धर्म के आदर्शो के अनुसार व्यतीत होता है तो वह जीव अगले जन्म मे ऊपर वाले डण्डे पर चढेगा और यदि असत्य और अधर्म की ओर जा रहा है तो फिर नीचे की ओर होकर वह हानि की ओर जायेगा। इसलिए कोई ऐसा जीव अधर्म, असत्य एव अन्याय के सहारे अत्याचार तथा पाप करके न केवल अपना भविष्य बिगाड रहा है अपितु वह दूसरो की उन्नति के मार्ग मे भी रोडे अटका रहा है। वह स्वय नीचे गिर रहा है और दूसरो को पाताल मे फेंक रहा है। ऐसे मनष्यो अथवा उनके सगठन को जितना शीघ्र नष्ट किया जाए उतना ही अच्छा है। यह मार्ग अहिंसा तथा सत्य धर्म का मार्ग है। तलवार के साथ ऐसे अधर्मी पापियो का सुधार करना और ऐसे सगठन को समूल नष्ट करना दुगना परोपकार है। एक तो पापी मनुष्यो के जीवन को समाप्त करके उसकी आत्मा को और गिराने से बचाना है तथा साथ ही शीघ्र एक अन्य जीवन का नया अवसर देना है। दूसरी ओर दूसरे जीवो की उन्नति के मार्ग मे से कठिनाइयो को दूर करके उनको सहायता करना है। एक तो मरने वाले पर उपकार और साथ ही उन पर जो उसके अत्याचार व बलात्कार के शिकार थे। मन, वचन, कर्म के साथ पहले हमे अपने आप को सुधारना है और फिर इन्ही तीनो साधनो के साथ दूसरो को भी सुधारना है। तलवार का प्रयोग भी एक कर्म है और सुधार का एक आखरी यत्न है। जब अन्य सभी साधन प्रयुक्त हो चुके थे तो तलवार का यत्न ही था जिसका प्रयोग करना आवश्यक था। गुरु साहिब ने अपने मुखारविन्द से भी जैसे ऊपर वर्णित है, स्वय तलवार के प्रयोग को इसी प्रकार स्पष्ट किया है तथा पुष्टि की है।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के सम्मुख यह एक महान कार्य था। पाप, अन्याय तथा अत्याचार पर आधारित राज्य को नष्ट करना एक या दो खाली-हाथ मनुष्यो का काम नही था। इस काम के लिए पूरी तरह से शस्त्रबद्ध तथा बलिदान की भावना से ओत-पोत सेना की आवश्यकता थी। यह सब कुछ तभी हो सकता था यदि

लोक मन गुरु साहिब के हित मे हो और उनके 'काज' के साथ जनता को महानुभूति हो। अधिक सहायता तथा सेना के लिए लोग हिन्दु जनता से आते थे। सिक्ख तो गिनती के ही थे। मुसलमान हृदय की सकीरणता के कारण बहु-गिनती मे नही हो सकते थे। जिन मुसलमानो ने गुरु साहिब के प्रयोजन की सत्यता तथा स्पष्टता को न्याय एव उदारता की दृष्टि से देखा वे गुरु साहिब के साथ थे तथा साथ होकर सरकारी सेना के विरुद्ध लडे भी (विवरण के लिए देखें मैकालिफ का सिक्ख इतिहास (अग्रेजी) पाचवा भाग पृष्ठ ३६–३८)। परन्तु ऐसे उदार तथा सहानुभूति रखने वाले मुसलमानो की सख्या अधिक नही थी। इसलिए श्री गुरु जी को अधिकतर सहायता हिन्दु जनता से ही प्राप्त होनी थी। हिन्दु मन उस समय कमजोर हो चुका था। राजकीय अत्याचारो के आगे सिर झुका कर ब्राह्मण पुरोहितो के कहे हुए 'अहिंसा परमो धर्म' का जाप कर रहा था। साधारण हिन्दु मन ने शस्त्रो से कटिबद्ध होकर युद्ध क्या करना था वह तो तलवार के दर्शन से ही काप उठता था, अहिंसा को बडा धर्म मान कर उसने कमर से तलवार उतार कर सूत्र के यज्ञोपवीत पहन लिए थे। झटका, महाप्रसाद (मास आदि) का आहार छोड कर सात्विक भोजन खीर व मूग की दाल को ही उत्तम भोजन समझ लिया था। आवश्यकता थी कि जनता को हिलोरा दिया जाए, जनता के मानसिक चित्र बदल दिए जाए, मानसिक मानचित्र बदल दिए जाएं, जीवन के भाव तथा दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाया जाए। आदर्श बदले जाये, नये लक्ष्य, नये मार्ग तथा नये मनोभाव उत्पन्न किए जाए।

यह था सबसे कठिन तथा प्रमुख कार्य। इसे पूरा करने के लिए किसी एक या अधिक कौतुको का आवश्यकता थी। गुरु साहिब ने अनुभव किया कि जब तक लोगो के मन पर ब्राह्मण का प्रभाव है, जब तक लोकमत ब्राह्मण के निर्बल आदर्शो को नही छोडता, तब तक सफलता कठिन है। जहा एक ओर सगठित राजकीय शक्ति का सामना था, वहा दूसरी ओर एक ब्राह्मण के जादु को तोड कर एक गिरी हुई जाति को ऊपर उठाने का महान् काम था। पहले से दूसरा काम कठिन था।

इस काम को पूरा करने के लिए गुरु साहिब ने दो क्रीडाये की। एक दुर्गा की पूजा और दूसरी अमृत पिलाने का। पहले कौतुक का भाव तो लोगो के मन से ब्राह्मण द्वारा खडे किए गए सन्देहो, भ्रांतियो तथा पाखण्डो को दूर करना था। दूसरे कौतुक द्वारा लोगो के व्यक्तित्व बदल कर उनके सम्मुख नए जीवन लक्ष्य तथा दृष्टिकोण रख कर कायरता के स्थान पर शूर वीरता भरना था। लोगो के मन से ब्राह्मणो के जाल को हटाने के लिए तथा उनके कुप्रभाव को नष्ट करने के लिए गुरु साहिब ने ब्राह्मणो के निश्चय तथा धर्म-कर्म के ढोल के पोल को लोगो के सम्मुख रखना चाहा। एक दिन झटका महाप्रसाद (माँस की तरकारी) तैयार करके गुरु साहिब ने इलाके के ब्राह्मणो को प्रसाद खाने का निमन्त्रण दिया। उस समय के ब्राह्मण-निश्चय के अनुसार मास खाना धर्म विरुद्ध था। गुरु साहिब ने प्रसाद बाटने से पूर्व यह घोषणा की थी कि जो ब्राह्मण मास खाएगा उसको दात घसाई दक्षणा सोने की पाच मोहरें दी जाएगी और जो मास न खायेगा उसको केवल पाच रुपये दिये जाएगे। इस मोह मे फस कर अधिकाश ब्राह्मणो ने माँस का आहार किया और बहुत थोडो नें अहिंसा के सिद्धान्त को मान कर केवल वैष्णव भोजन पर सन्तोष किया। ब्राह्मणो का लालच मे फस कर अपने अहिंसा धर्म को छोडकर माँस खा लेने का प्रभाव जनता पर वैसा ही हुआ जैसा कि गुरु साहिब चाहते थे। अधिकाँश लोग ब्राह्मणो के पाखण्ड पूर्ण धर्म को निस्सार समझकर सिक्ख धर्म के आदर्शों की ओर झुक गये।

लोगो के निश्चय को दृढ करने के लिये अभी और भी परिश्रम तथा ढोल का पोल खोलने की आवश्यकता थी। जिन थोडे से ब्राह्मणो ने मास का आहार नही किया था गुरु साहिब ने उन्हे विशेष रूप मे तथा शेष को भी एकत्रित किया और अपना कार्यक्रम उन के सम्मुख रखा। उन्होने गुरु साहिब को टालना चाहा और बहाना बनाया कि आपके कार्यक्रम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि दुर्गा मा की आराधना की जाए। दुर्गा शक्ति को जगाया जाए, जैसे प्राचीन युग मे भीम तथा अर्जुन आदि ने दुर्गा को प्रगट किया था। यद्यपि गुरु साहिब को पता था कि यह पाखण्ड रचे जा रहे

है तथा वे टाल मटोल करना चाहते है परन्तु उन्होने भली प्रकार अनुभव कर लिया था कि जनता मे से ब्राह्मणो के पाखण्ड को तोड़ने और उनके सन्देह निवारण करके अपने पीछे लगाने का दूसरा कोई तरीका नही था सिवाय इस बात के कि उनके निश्चयो तथा धर्म कर्मो को उनके सामने निर्मूल एव पाखण्डपूर्ण सिद्ध किया जाए।

ब्राह्मणो* के आदेशानुसार सब सामग्री तैय्यार की गई बनारस (वाराणसी, से योग्य और प्रसिद्ध केशोदास (केशव दास। जैसे पण्डित बुलाये गये।

श्री आनन्दपुर से ऊपर की ओर नैणादेवी के ऊचे पर्वत पर सन् १६९५ ई० को होली के दिन ब्राह्मणो ने दुर्गा प्रकट करने का ढौग आरम्भ किया। गुरु साहिब के आदेश से, वे जो वस्तु भी मागते थे मिलती थी। सारे इलाके मे दूर दूर तक इस हवन की ख्याति हो गई। साधारण लोग तथा ब्राह्मण प्रतिदिन सैकडो की सख्या मे आते। छ सात मास अनगिणत धन तथा सामग्री इस हवन पर खर्च किये गये। पण्डित केशवदास तथा अन्य ब्राह्मणो ने गुरु के कोष से खूब धन लुटाया। अन्त मे सन १६९८ ई० के नवरात्रो (रामनौमी) मे केशवदास तथा उसके साथी दुर्गा प्रकट करने मे असमर्थ तथा निराश होकर चुपचाप ही रात को भाग गए। उनके इस प्रकार जाने पर ब्राह्मणो के विरुद्ध बहुत चर्चा हुई। जब गुरु साहिब को पता चला तो उन्होने आदेश दिया कि शेष जितनी भी सामग्री है सब की सब एक ही बार हवन-कुण्ड मे डाल दो। उस सामग्री को आग मे फेंकने की देर थी कि बहुत बडी व ऊची आग की ज्वाला (लपट) नैणादेवी के पर्वत पर उठी। दूर दूर तक इस ज्वाला को लोगो ने देखा। सब ने अनुभव किया कि दुर्गा प्रकट हो गई है। दर्शनार्थ हजारो की सख्या मे लोगो ने नैणादेवी की ओर जाना आरम्भ कर दिया।

लोगो के इस अथाह समूह मे गुरु गोविन्द सिह जी ने ऊचे स्थान पर खड़ होकर लोगो को दर्शन दिये तथा ब्राह्मणो के ढोल का पोल

*ब्राह्मण स भाव ब्राह्मण जाति के लोग हैं तथा ब्राह्मण से भाव हिन्दुओं से अन्य है।

खोला। म्यान मे से श्री साहिब निकाल कर चमकाई और कहने लगे—"यह है वास्तविक शक्ति भवानी। यह है सच्ची दुर्गा। यह श्री साहिब (कृपाण) वे सब कारनामे चमत्कार एव करामातें कर दिखाएगा जो ब्राह्मण लोग दुर्गा से व्यर्थ मागते है।' इस समस्त कौतुक का जन साधारण पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। ब्राह्मण भ्रातियो तथा अन्ध विश्वासो से मुक्त होकर लोग गुरु साहिब से वास्तविक स्वतन्त्रता तथा अत्याचार से मुक्ति की आशा करने लगे।

ऊपर के ये दो कौतुक (चमत्कार) तो ब्राह्मणो के प्रभाव की निन्दा के लिए थे। ये दोनो शस्त्र अच्छे सफल हुए। अब आवश्यकता थी कुछ 'पाजेटिव' कार्यक्रम की। किसी ऐसे चमत्कार की जो साधारण लोगो को सगठित करके उनमे बलिदान की भावना पैदा करता, नये रक्त का सचार करता। ऐसा कदम उठाने के सम्बन्ध मे गुरु साहिब पाच छ मास विचारने और सोचने मे लगे रहे। अन्त मे उन्हे खालसा पथ सजाने का आदेश ईश्वर से उनके ईश्वरीय अनुभव द्वारा मिला। यह अप्रैल सन् १६९९ की बात है। बैसाखी वाले दिन हजारो लोगो से भरे हुए मण्डप मे उन्होने एक एक करके पाच शीश मागे तथा उन पाच प्यारो को अमृत पान करा कर, स्वय भी उन्ही से अमृत पान किया। यह 'सिर धर तली' विदेह शूरवीरो के सगठन की नीव थी जो 'खालसा पथ' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस अमृत ने सिक्खो का रूप, अन्तर मन तथा बाह्य शरीर सर्वथा बदल दिया। उनका नया जन्म हुआ। पिछली कायरता, सन्देह भ्रान्तियो तथा निराशापूर्ण जीवन की समाप्ति हुई और नया जीवन, नए स्वप्न, नए लक्ष्य, नए स्वरूप के साथ ही आ गए। गीदडो से शेर बन गए तथा चिडिया बाजो मे बदल गई।

यह 'अमृतपान' का दृश्य था। लोगो के मन को बदल देने का इससे अच्छा साधन बडे से बडा मनोवैज्ञानिक भी नही निकाल सकता। भले ही अमृत का विचार ईश्वरीय आदेश था, अथवा पूर्व प्रचलित रीति 'पाहुल' को ही दशमेश जी ने एक नई भव्य शूरवीरता के रूप मे प्रस्तुत किया। परन्तु यह एक महान चमत्कार था। मुसलमानो मे 'पाहुल' जैसी कोई रीति (सस्कार) नही हैं। उनमे

सुन्नत का रिवाज है। ईसाइयो मे बैपतिस्मा है। अमृत तथा बैपतिस्मा मे कई बातें मिलती जुलती है। परन्तु अमृत का विचार बिल्कुल विदेशी नही है। भारत मे धार्मिक सगठन मे प्रविष्ठ होने का अमृतरूपी सस्कार कई रूपो मे प्रचलित था। सिक्खो मे भी पाहुल की प्रथ प्रारम्भ से चली आ रही थी। दक्षिण भारत के हिन्दुओ मे यज्ञोपवीत सस्कार के समय पाहुल की रीति होती है। कुछ भी था परन्तु जिस प्रकार श्री दशमेश जी ने अमृत तय्यार किया वह बिल्कुल नया, अदभुत तथा सम्मन पूर्वक था। यह अमृत खालसा सगठन मे प्रविष्ट होने की आवश्यक रीति बनाई गई। इस अमृत-सस्कार ने जन साधारण पर जादू का असर किया। डारोथी फील्ड लिखती हैं कि खण्डे धार पाहुल ने जन्म जन्मान्त्रो के नीच, पतित तथा डरपोक लोगो को महान शूरवीर योद्धा बना दिया। सिक्ख गुरुओ के नया जीवन देने से पूर्व ससार के किसी बडे से बडे सेना नायक का भी यह साहस नही था कि उन निराशाग्रस्त, निष्क्रिय, अछूत तथा नीच मनुष्यो की कोई सेना खडी कर सकता। फिर ऐसी स्थिति मे जब कि हिन्दुधर्म की भ्रातियो तथा अन्धविश्वासो की शृखलाओ ने सबको जकडा हुआ था। इस अमृत की कृपा के कारण गुरु के लालो (सपूतो) ने औरगजेब को उसके अपने दरबार मे चेतावनी दी,* शेर बब्बरो के मुह तोड दिए गए। इस अमृत ने ऊच नीच का भेद मिटा कर सब मे बराबरी का भाव सचारित किया। चार वर्णो तथा चार धर्मों वाले खालसा सज कर (सुधर कर) एक हो गए तथा एक ही बरतन मे खाना पीना आरम्भ कर दिया †

गुरु गोविन्द सिह जी के अमृत की महत्ता सदा ही बनी रही है। गैर सिक्ख इतिहासकारो के रचे हुए इतिहासो के पृष्ठ तथा हमारी आखो देखी घटनाए इस बात की साक्षी है। सन् १८२९ मे सर टर्नर ने लिखा, सिक्खो का शौर्य, धैर्य तथा दृढता निश्चय की सीमा पार कर जाती है। (पृष्ठ ११९) भारतीयो मे से सिक्ख सब से बहादुर हैं। (पृष्ठ १२) गफ व इन्नज ने सिक्खो के युद्धो के

---

*डा० नारग की पुस्तक Transformation of Sikhism पृष्ठ २२१।

†कनिंघम का सिक्ख इतिहास पृष्ठ ७१।

बारे मे अपनी पुस्तक मे लिखा (पृष्ठ ४२) — 'किसी भी भारतीय फौज ने, सख्या मे कम होने पर भी ऐसी बहादुरी के साथ कोई युद्ध नही लडा जैसा कि सिक्खो ने अग्रेजो के साथ फेरू नगर मे लडा था। इस युद्ध का परिणाम पता नही क्या निकलता यदि सिक्ख सेना के सेनापति पूरी योग्यता के साथ सिक्ख सेना से काम न लेते। इसी प्रकार गार्डन साहिब, (पृष्ठ ३) लिखते हैं —"कोई भी जाति इतनी बहादुरी एव शूरवीरता के साथ हमारे विरुद्ध और फिर उतनी ही स्वामीभक्त तथा वफादारी के साथ हमारी सहायता के लिए नही लडी जितना कि सिक्ख जाति।" आगे चल कर फिर लिखते हैं —"जहाँ कही भी और जब कभी भी जीवन घातक युद्ध लडने की आवश्यकता पडी, सिक्ख योद्धा सबसे प्रथम पक्ति मे रहे है। उन्होने भयानक समय मे भी अपनी निर्भीकता, स्थिरता, दृढता तथा अडिग शूरवीरता को शुभ तथा अमर रहने वाली विशेषताओ को कलक नही लगने दिया।" ये विशेषताये तथा चमत्कार पिछले महान युद्ध १९१४–१९१८ मे, गुरुद्वारा सुधार आन्दोलन मे असहयोग तथा सिवल ना फुरमानी की देश की आज़ादी के लिए चले आन्दोलन मे और फिर अब दूसरे महायुद्ध मे बडी सुन्दरता से दिखाये गए हैं। यह सन्त सेनानियो का स्वभाव कैसे बना? उसी अमृत पान से जो आज से तीन सौ तीन वर्ष, पहले ससार मनोवैज्ञानिक ने पाच शीश रहित सिक्खो को बैसाखी के दिन पिलाया था। यह अमृत वही टकसाल है जिसका सकेत श्री जपुजी की अन्तिम पौडी (चरण) मे है। इस टकसाल मे मन को शुद्ध करके सचखण्ड रूपी खालसा धर्म की मोहर लगती है तथा अशुद्ध और शुद्ध बनते है।

अब लगभग चार पक्तिया गुरु हरगोबिन्द तथा गुरु गोबिन्द सिंह जी के युद्धो के सम्बन्ध मे लिखनी हैं। इन दोनो सद्गुरुओ ने किसी जर, जन, जमीन (धन, स्त्री सम्पत्ति)के पीछे युद्ध नही लडे थे। किसी वैर विरोध अथवा धार्मिक सकीर्णता मे आकर नही किये थे। ये सब धर्मयुद्ध थे और "धरम जुध के चाह" के साथ वे रणभूमि मे कूदे थे।

छटे पातशाह गुरु हर गोबिन्द का समकालीन मुहसन फानी

अपनी पुस्तक "दबस्ताने मजाहब" मे लिखता है कि गुरु हर गोबिन्द ने कभी क्रोध मे आकर तलवार नही चलाई थी (देखे पृष्ठ २३१)। दोनो सद्गुरुओ ने कई बार लोगो के बीच कहा था कि वे कभी भी शत्रु पर पहले आक्रमण नही करेंगे। उनका तलवार सदा डीफेंस अर्थात आत्म रक्षा मे प्रयुक्त होगी। (देखें मैकालिफ—चौथा भाग पृ० १०८, ११२, ११६ पांचवा भाग पृ० १२५) न ही उन सद्गुरुओ ने कभी किसी से वैर या प्रतिकार लेने के लिए तलवार उठाई थी।(देखे मेकालिफ—पाचवी सैची पृ० १८४ से २०१)। ये युद्ध किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध नही थे। (देखें—चौथी सैची पृ० ६०) हिन्दु तथा मुसलमान मिले जुले ही गुरुओ की सेनाओ मे भरती होकर गुरुओ की ओर से लडे थे। (देखे-सैची पाचवी पृ० १७) इन सेनाओ ने हिन्दु तथा मुसलमान प्रत्येक जाति के अन्यायो, अत्याचारो के विरुद्ध युद्ध किए। (देखे—पाचवी सैची पृ० २६, ४३, १२४, १२७ १३०, १६७) दोनो मे से किसी भी गुरु ने इन युद्धो मे विजय प्राप्त करके तथा सेनाओ का बल दिखा कर कही से कोई राज्य या रियास्त नही छानी और न ही राज्य स्थापित किया या कोई सम्पत्ति बनाई। इसलिए इन तलवार के धनी गुरुओ की सैनिक नीति को कोई साम्प्रदायिक अथवा राजनैतिक रूप देना बडी भूल करना है। धर्म की रक्षा तथा दुष्ट एव धूर्त व्यक्तियो को दण्ड देने के लिए उन्होंने तलवार उठाई और अपने धर्मयुद्ध के चाव को पूरा किया। वे धर्म के किसी विशेष मत या पक्ष को लेकर नही, अपितु सर्वसम्मत धर्म को स्थापित करने के लिए लडे थे।

मिस डारोथी फील्ड लिखती है कि यह विचार कभी नही करना चाहिए कि चूंकि गुरु गोबिन्द सिंह एक शूरवीर एव योद्धा थे इसलिए पहले गुरुओ की अपेक्षा वे कम धार्मिक तथा कम आध्यात्मिक जीवन वाले होगे। उनकी लडाइयो तथा युद्धो की बुनियाद ही धार्मिक भावना तथा आध्यात्मिक उन्नति थी। इस गुरु ने कर्म-योग तथा नाम-योग (भक्ति-योग) को अथवा करुण रस तथा शात रस को इस प्रकार मिला दिया कि ससार चकित रह गया। इस नीति की सफलता इस चमत्कार एव करामात की साक्षी है।

गुरु साहिब की किसी लडाई मे भी किसी मन्दिर या मस्जिद

की एक ईंट को भी नही हिलाया गया और विजय के नगाडो से किसी एक भी मुसलमान अथवा हिन्दू को सिक्ख नही बनाया गया। बल्कि हिन्दू व मुसलमान सैनिको को चाहे वे शत्रु की सेना के भी थे, युद्ध मे मारे जाने पर उनके धार्मिक रीति रिवाजो के साथ उनका अन्तिम सस्कार किया गया या दफनाया गया। गुरु साहिब की सेवा समिति वाले अथवा रैडक्रास के सदस्य भाई कन्हैया जी जैसे लोग यद्धो मे मित्र-शत्रु के भेद भाव के बिना प्रत्येक घायल की सेवा करते थे, मरहम पट्टी करते और सिसकते सैनिको को पानी पिलाते थे। जिस प्रकार उनका सर्व सम्मत उपदेश था उसी प्रकार ही उनका सर्व सम्मत सेवा भाव था। उनका कथन था —

कोउ भइउ मुण्डीआ सनियासी, कोउ जोगी भइउ,
कोउ ब्रह्मचारी कोउ जती, अन मान बो ॥
हिन्दु तुरक कोउ राफजी इमाम— शाफी,
मानस की जात सभै एकै पहिचान बो ॥
करता करीम सोई राजक रहीम उहि,
दूसरो न भेद कोई भूल भरम मान बो ॥
एक ही की सेब सब ही को गुरदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो ॥

•

देहुरा मसीत सोई पूजा औ नमाज उही,
मानस सभै एक पै अनेक को प्रभाउ है ॥
देवता अदेव जच्छ गन्धर्व तुरक हिन्दु,
निआरे निआरे देसन के भेस के प्रभाउ है ॥
एकै नैने एकै कान एकै देह एकै बान,
खाक बाद आतश औ आब को रलाउ है ॥
अल्लाह अभेख सोई पुरान औ कुरान उई,
एक ही सरूप सभै एक ही बनाउ है ॥

इन चमत्कारो, घटनाओ, उपदेशो तथा सिद्धान्तो को सम्मुख रख कर हमे कई लेखको के ऐसे विचार पढ कर आश्चर्य होता है कि गुरु गोबिन्द सिंह जी के समय सिक्ख धर्म की सर्वसादृश्यता, सहृदयता,

सहनशीलता तथा धर्म प्रचार आदि की विशेषताय नहीं रही थी। यह तो सम्भव है कि बाबा बन्दा बहादुर के समय कुछ परिवर्तन का नीति खालसे ने (सिक्खों ने) अपना ली हो, परन्तु गुरुओं के समय न तो आदर्श मे तथा न उसके वास्तविक आचरण मे कोई त्रुटि आती दृष्टिगोचर होती है।

---

४. दस गुरु एक ज्योति-नानक

यद्यपि सिक्ख धर्म के प्रवर्तक श्री गुरु नानक देव जी थे, परन्तु इस धर्म के पूर्ण निर्माण मे लगभग दो सौ वर्ष लग गए थे। इन दो शताब्दियो मे (सोलहवी तथा सतारहवी शताब्दी ई०) दसो गुरुओ ने अपना अपना रोल निभाया तथा इस धर्म की क्रियात्मक उन्नति मे अपनी अपनी मोहर (छाप) लगाई। इन दसो गुरुओ ने क्या कुछ किया तथा अपने जीवन मे सिक्ख धर्म रूपी चोले पर कौन सा रग चढाया यह विचार कुछ लम्बा है।* परन्तु इसके बावजूद इस दो सौ वर्ष के निर्माण मे सिक्ख धर्म के मूल नियम एव सैद्धान्तिक तथ्य आरम्भ से लेकर अन्त तक वही रहे जो गुरु नानक देव जी ने प्रचलित किए थे। उन्नति (विकास) उन तथ्यो को जीवन के प्रवाह मे ढालने के पक्ष मे हुई। डाक्टर अरनैस्ट टरम्प ठीक लिखते है (आदि-ग्रथ अग्रेजी पृष्ठ ६७)।

"बाबा नानक के बनाए हुए सिद्धान्तो को पीछे आने वाले सिक्ख गुरुओ ने बिना किसी स्पष्ट परिवर्तन के ग्रहण कर लिया था। जब गुरु अर्जुन देव ने ग्रथ साहिब की रचना की, उस के पश्चात तो इन सिद्धान्तो पर किसी को सन्देह करने की गुजाइश ही न रही, क्योकि ग्रथ साहिब ईश्वरीय वाणी समझी जाने लगो।" परन्तु शका इस बात की होती है कि यदि जो कुछ गुरु नानक देव जी ने कहा था वह उसी रूप मे प्रत्येक गुरु ने उसी प्रकार बिना किसी परिवर्तन के ग्रहण किया तो फिर पिछले नौ गुरुओ के इस ससार मे आने की क्या आवश्यकता थी? इस शका का समाधान सिक्ख-धर्म-सिद्धान्त-वेता इस प्रकार देते है —

गुरु नानक देव जी इस ससार मे एक परिपूर्ण हस्ती के रूप

*देखें प्रो० तेजा सिह जी की पुस्तक "ग्रोथ आफ रैस्पानसेबिलिटी इन सिक्खिज़म।"

मे आये थे। उनके जीवन का आदर्श इसलिए, अपने आपको पूर्णता तक पहुचाना नही था। उनका ध्येय था हम को और आपको पूर्ण बनाना। हमारा, आपका इस प्रकार पथ प्रदर्शन करना कि हम अपने अन्दर छिपी हुई शक्ति को, सत्य को, ईश्वर को, ब्रह्म को प्रकट कर ले अथवा अपने आपको पहचाने और अपने आन्तरिक ईश्वर को भी पहचाने। इस आकार मे से निराकार खोजे, इस अन्तर मे से निरन्तर को अनुभव करे। दूसरे शब्दो मे वे चाहते थे कि जिस ऊचे शिखर पर वे स्वय खडे है जिस कमाल (पूर्णता) को वे स्वय पहुचे हुए है, उसी स्थान, उसी ध्येय पर हमे और आपको भी ले जाए। उस लक्ष्य को समझना समझाना उनका उद्देश्य नही था, बल्कि उस ध्येय को प्रत्यक्ष दिखलाना तथा वहा पहुचाने की क्रिया सिखला कर वहा पहुचाना था। यह कोई एक दो पुरुषो के लिए मार्ग नही था। समस्त जाति को उठाना तथा उसका उद्धार करना था। वह जाति जो केवल ज्ञानगोष्ठी और मन्त्रो के निस्सार जाप और पाठ पर ही सन्तुष्ट हुई बैठी थी, जिस जाति के पास केवल चर्चा तथा रीति-रिवाजो का अन्धविश्वास से पालन करना ही रह गये थे। उस सम्पूर्ण जाति को सत्य का निर्णय नही कराना था अपितु सत्य का आचरण करवा कर कामल (योग्य विद्वान) मनुष्यो की जाति बनाना था। गुरु साहिब के मिशन का मुख्य अग 'प्रैक्टीकल ट्रेनिंग' क्रियात्मक शिक्षा थी। किसी कला की शिक्षा के पाठ्यक्रम की एक या दो वर्ष के लिए शिक्षा देना और बात है परन्तु उस शिक्षा को वास्तविक प्रयोग मे लाना और बात है। इस शिक्षा के प्रयोग के लिए क्रियात्मक क्षेत्र मे आना पडेगा तथा योग्य अध्यापक की देख रेख मे उस कला का प्रयोग करके देखना पडेगा।

अब विचारणीय बात यह है कि यदि हमारे व्यावहारिक जीवन के एक पहलु की शिक्षा के लिए एक या दो वर्ष के प्रशिक्षण की आवश्यकता है तथा वह भी एक दो मनुष्यो के लिए। और फिर यदि यह प्रशिक्षण व्यावहारिक जीवन के लिए नही अपितु नैतिक तथा आत्मिक जीवन के लिए और एक पहलू के लिए नही वर सम्पूर्ण मानवता के लिए, जीवन के प्रत्येक पहलु के लिए बल्कि समूचे जीवन के लिए जिसमे नाम, दान तथा स्नान, सत्य, पवित्रता तथा दृढता इमानदारी, पुरुषार्थ, तथा शूरवीरता समस्त शुभ गुणो को योग्य स्थान मिला हो, और फिर

यह प्रशिक्षण कुछ गिनती के लोगो के लिए नही अपितु एक पतित, मलीन सम्पूर्ण जाति के लिए हो, एक सम्पूर्ण जाति मे उच्चता, पवित्रता तथा शूरवीरता की लहर चलानी हो, सम्पूर्ण मानवता के साचे की टकसाल स्थापित करनी हो तो फिर एक वर्ष नही, दो नही, दस नही बल्कि एक दो शताब्दियो मे भी यदि यह काम हो जाए तो मानव समाज की उन्नति मे एक महान चमत्कार है। इसलिए गुरु नानक ने दस जामे लिए और दस गुरुओ के रूप मे एक ही गुरु ने अपने कार्य को पूरा किया।

सम्पूर्ण मानवता का साचा स्थापित करके एक नई उन्नत तथा पवित्र जाति खडी करने मे सिक्ख गुरु कितना सफल हुए तथा कितना नही, यह बात तो हमे इतिहासज्ञो पर छोडना पडेगा। परन्तु अपने इस कार्यक्रम तथा प्रयोजन को गुरु साहिब ने कई पक्तियो मे बताया है तथा श्री दशमेश जी ने तो 'बचित्र नाटक' मे स्पष्ट ही कर दिया है। अपने इस उद्देश्य सिद्धि के लिए प्रथम गुरु, गुरु नानक देव जी ने अपने पच भौतिक शरीर के होते हुए जो कुछ सम्भव था किया। परन्तु यह हाड मास नाडी का पिंजर प्राकृतिक नियम के अनुसार थोथा तथा निस्सार होता ही रहता है। आधि-व्याधियो तथा उपाधियो के अधीन एक दिन इस जर्जर शरीर का अन्त अवश्य होता है, सो गुरु नानक देव जी शरीर त्याग गए तथा अपनी ज्योति अपने अग गुरु अगद मे डाल गए। फिर गुरु अगद अथवा नानक के रूप ने उसी काम को जारी रखा। इस प्रकार नानक निरकारी ने दस चोले (शरीर) बदले और दसवें जामे मे अपने आरम्भ किए हुए काम को सम्पूर्ण करके जाति को पाव पर खडा करके, उत्तरदायित्व सम्भालने के योग्य बना कर अपने स्थान पर गुरु ग्रथ पथ की स्थापना कर गए।

ज्योति ज्योत समाने अथवा एक ज्योति से दूसरी ज्योति स्थापित करने के सम्बन्ध मे एक प्रचलित दृष्टात का प्रयोग किया जाता है। शका उत्पन्न होती है कि जब निराकार (ईश्वर) ने नानक मे अपनी ज्योति डाल कर नानक निरकारी बनाया तो क्या अकाल पुरुष की ज्योति का स्रोत कम न हो गया? दृष्टाँत दीपक या बत्तियो का दिया जाता है। जिस प्रकार एक जल रही बाती से दूसरी

वाती जला ली जाती है और उस प्रकार से पहली बाती के प्रकाश या ज्योति मे कोई अन्तर नही होता इसी प्रकार दूसरी बाती मे तीसरी जला ले और तीसरी से चौथी। चाहे एक से अनेक जला लो। ठीक यही स्थिति आध्यात्मिक ज्योति की है। "स्वयभू (अपने आप मे प्रकट) वाहिगुरु से नानक निरकारी की ज्योति जली और गुरु नानक ने वही ज्योति भाई लहणा जी के अन्दर जगाई और दूसरी पातशाही गुरु अगद को अपना अग बनाया। यह क्रम जारी रहा तथा वही नानक निरकारी वाली ज्योति श्री दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह जी मे जाकर प्रकट हुई। दसवे पातशाह ने उसी ज्योति के साथ गुरु ग्रथ पथ को परिष्कृत और पराजल किया। प्रत्येक गुरु ने अपने समय मे आवश्यकतानुसार मानवता के किसी विशेष गुणो पर बल दिया और एक समूची जाति का परिपूर्ण मानवता के साचे मे ढालते गए। यह कार्य क्रमश प्रत्येक गुरु ने अथवा वही गुरु नानक देव ने दसो शरीरो मे किया।

जब दशम गुरु श्री गुरु गोविन्द सिंह जी ने यह अनुभव कर लिया कि यह नई सुसज्जित जाति अपने पाव पर आप खडे होकर आगे बढ सकती है तो उन्होने गुरु गद्दी गुरु ग्रथ पथ को दे दी थी, अथवा गुरुवाणी के साचे मे ढले जीवन वाली जाति को समस्त दायित्व सौप दिया था। इस दायित्व के सौपने के काम को उन्होने पाच प्यारे छाट कर पहले अमृत प्रचार के चमत्कार से आरम्भ किया। सिक्ख जाति मे से उन्होने पाच प्रतिनिधि चुने। इस चुनाव के लिए उन्होने एक परीक्षा रखी थी, वह थी शीश भेंट करने की। जब इस प्रकार पाँच शीश-हीन सिंह छाँटे गए तो उनको अमृत पान कराया गया तथा अमृत पान करने वाले जत्थे का नाम 'खालसा' रखा गया। इस बात को दृढ करने के लिए कि खालसा अब सम्पूर्ण रूप से सत्ता सम्पन्न है और उस काम को जो गुरु नानक ने आरम्भ किया था तथा जिस काम को पहले नानक और बाद मे नौ अन्य गुरु चलाते आए थे भली प्रकार निभा सकता है, गुरु गोबिन्द सिंह जी ने स्वय उन पाच प्यारो से अमृत पान किया। ससार के धर्मों की उन्नति तथा विकास के इतिहास मे यह एक अनोखी (अद्वितीय) तथा अपने प्रकार की प्रथम ही घटना थी कि गुरु, गुरु शिष्य का दायित्व निभाये।

यह धार्मिक क्षेत्र मे आध्यात्मिक समाजवाद था। मानवता को ऊचा उठाने मे यह बहुत महान कदम था। इसके महत्व को अभी तक भली प्रकार अनुभव नही किया गया और न ही ठीक ढग से प्रचार किया गया है। प्रत्येक गुरु पैगम्बर–अवतार अपने शिष्यो, अनुयाइयो को किसी निचली मजिल पर खडे हुए अपने से निम्न अपने शिष्य एव अनुयायी ही समझता है। परन्तु जब गुरु गोविन्द सिह ने परीक्षण कर लिया कि वे पाच सिह (सिक्ख, शिष्य) हर प्रकार से परिपूर्ण थे तो उनसे स्वय (बैपतिस्मा लेने) अमृत पान करने मे हिचकचाए नही अथवा झिझक न की।

प्रत्यक्ष रूप मे तथा विचार कसौटी पर परखने से भी यह बात पूरी उतरी है कि जब प्रत्येक धर्म मनुष्य को योग्य अथवा परिपूर्ण बनाने का दावा करता है तो फिर जब कोई पूर्ण रूप मे योग्य (कमाल) पुरुष बन जाए तो उसमे और उसके गुरु मे कोई भेद नही होना चाहिए। यह था समानता का पाठ जो गुरु गोविन्द सिह जी ने "आपे गुर चेला" की झनक से ससार के धर्म के ठेकेदारो को पढाया। यह पाठ न उनसे पहले तथा न उनके पश्चात्, किसी भी धर्म मे नही मिला। सब गुरु पैगम्बर-अवतार कहलाते है परन्तु गुरु-चेला, चेला गुरु कोई नही बनता बनाता। इस समानता मे इतना अन्तर अवश्य है कि गुरु का कमाल (परिपूर्णता) स्वाभाविक अथवा प्रारम्भ से ही था तथा शिष्यो का कमाल (परिपूर्णता) प्राप्त कमाल था। इसी मे गुरु की महानता है उसी के नेतृत्व (देख रेख) मे ही यह कमाल प्राप्त होता है इसलिए गुरु पूर्ण सत्कार तथा आशा उपासना का भागी है।

इस प्रकार दशम गुरु साहिब ने उसी ज्योति को जो अकाल पुरुष से गुरु नानक देव जी द्वारा उन्हे मिली थी पाच प्यारो के द्वारा पथ मे प्रविष्ट कर दिया। यह पथ गुरु का शरीर, विशिष्ट रूप हो गया। "खालसा मेरो रूप है खास" गुरु साहिब ने स्पष्ट कहा। इस शरीर की आत्मा गुरुबाणी, ईश्वरीय बाणी जो गुरु ग्रथ मे वर्णित है, समझी गई। पथ तभी गुरु का विशिष्ट रूप है यदि वह गुरुबाणी के आशय के अनुसार चले, दसो गुरुओ के बनाए हुए मार्ग पर चले। यदि इस पर आचरण न करे तो पथ नही, खालसा नही, विशिष्ट रूप

नही, अपितु साधारण कुमार्ग गामी जनता है। गुरु जी का पूर्ण स्वरूप, विशिष्ट रूप, गुरु ग्रथ अथवा खालसा है। इस पथ के छोटे अंश अथवा तत्व श्रद्धालु लोग है। श्रद्धालु लोग स्थान-स्थान पर हो सकते है। पथ उनके सामूहिक रूप एव सगठन का नाम है। स्थानीय आवश्यकताओ के लिए श्रद्धालुओ तथा पथक कार्यो के लिए पथ अपने मे से पाच प्यारे चुन लेता है अथवा बना लेता है। ये पाच प्यारे सिक्ख धर्म के अनुसार निर्णय देने के अधिकारी है। इसी प्रकार सगत गुरु रूप होती है। यह थी समस्त क्रिया जो गुरु नानक द्वारा अकाल पुरुष से चली और नौ गुरुओ द्वारा निर्मित टकसाल के साचे मे पड कर खालसा पथ की छाप का सिक्का ढल कर गुरु रूप हो गया। इस प्रकार वही एक ज्योति सारे दसो गुरुओ मे चलती है और समस्त गुरु नानक रूप है तथा एक स्वरूप है।

मुहसन फानी का प्रसग पहले आ चुका है। सारे गुरुओ के एक नानक स्वरूप होने के निश्चय की साक्षी इस फानी ने भी दी है। जैसे ऊपर बताया जा चुका है, यह छटे गुरु के समय भारत मे आया था। वह लिखता है "सिक्खो का निश्चय (विश्वास) है कि गुरु नानक ने शरीर त्यागा तो उनकी आत्मिक ज्योति गुरु अगद देव जी के शरीर मे समाविष्ट हो गई। इसी प्रकार गुरु अगद ने उसी ज्योति को तीसरे गुरु के शरीर मे जगा दिया। इसी प्रकार से लडी (शृखला, परम्परा) चल रही है। समस्त गुरु ही नानक स्वरूप है और अपने आपको नानक ही कहते हैं। . छटे गुरु हरगोबिन्द ने मुझे एक पत्र लिखा, उसमे उन्होने अपने आपको नानक करके ही लिखा था, वास्तव मे नानक ही उनका उचित उपनाम है। मैं उन्हे १०३३ हिजरी में करतारपुर मे मिला था।"

दस गुरु एक ही ज्योति के विचार की पुष्टि हमे गुरुबाणी मे भी मिलती है। सत्ता बलवण्डा गुरु के दरबार के दो कीर्तन करने वाले थे। उन्होने गुरु की प्रशसा मे एक वार कही थी। इस रामकली की वार मे वे कहते हैं कि न केवल अगद मे ही गुरु नानक की ज्योति थी अपितु गुरु अगद का कार्य-व्यवहार, विचार और कर्म सब गुरु नानक वाले थे। यही बात उन्होने शेष गुरुओ के सम्बन्ध मे कही

है, साथ यह भी कहा है कि गुरु एक ही थे परन्तु केवल जामे अथवा शरीर ही बदलते थे।

यथा — गुरु अगद दी दोही फिरि सचु करतै बन्धि वहानी ।।
नानकु काइआ पलटु करि मलि तखतु बैठा सैटाली ।।:।।
(रामकली की वार)

इसी प्रकार कहा है —

जोति समाणी जोति माहि आपु आपै सेतो मिकिउनु ।।४।।
नानकु तू लहणा तू है गुरु अमरु तू वीचारिआ ।।

अत इसी विचार की पुष्टि गुरु साहिब के एक अन्य समकालीन सिक्ख भाई गुरदास ने भी की है। भाई गुरदास छठे गुरु जी के समय ससार त्याग गए थे। अपनी वार २४ की २८ पौडियो मे गुरु नानक से गुरु हर गोबिन्द तक गुरुओ का एक ही रूप, नानक रूप तथा वाहिगुरु अकाल पुरुष रूप प्रकट किया है। भाई साहिब ने इस उद्देश्य के लिए तीन दृष्टाँत दिए हैं— पारस से पारस बनना, चदन से चदन बनना तथा ज्योति का ज्योति मे समाविष्ट होना। अन्तिम पौडी मे भाई साहिब लिखते हैं —

निराकार नानक देउ निरकार आकार बणाया ।।
गुरु अगद गुरु अग ते गगहु जाण तरग उठाया ।।
अमरदास गुरु अगदहु जोति सरूप चलत वरताया ।।
गुरु अमरो गुरु रामदास अनहद नादहु शबद सुणाया ।।
रामदासहु अरजन गुरु दरशन दरपन विच दिखाया ।।
हर गोबिन्द गुर अरजनहु गुर गोबिन्द नाउ सदवाया ।।
गुर मूरति गुरु शबद है साध सगत विच प्रगटी आया ।।
पैरी पाइ सभ जगत तराया ।।२५

दस गुरु एक रूप होने के सम्बन्ध मे ये तो थे उनके समकालीन सिक्खो तथा गैर सिक्खो के विचार। अब नीचे कुछेक पक्तियाँ ऐसी दो जाती हैं जिन से इसी विषय पर गुरु साहिब के अपने विचार भी स्पष्ट हो जाते हैं —

रामकली महला १ अष्टपदी ।

दीपकु ते दीपक परगासिआ त्रिभवण जोति दिखाई ।।

महला ३ रामकला वार ।

जोति उहा जुगति साइ सहि काइश्रा फेरि पलटोश्रै ।'

"वचित्र नाटक' मे श्री दशमेश जो ने इस विचार को वडे अच्छे ढग से स्पष्ट कर दिया है, चौथे अध्याय मे लिखा है —

श्री नानक अगदि करि माना ।।
अमरदास अगद पहिचाना ।।
अमरदास रामदास कहायो ।।
साधनि लखा मल नहि पायो ।।६।।

भिन्न भिन्न सभन् करि जाना ।।
एक रूप किनहू पहिचाना ।।
जिन जाना तिन ही सिध पाई ।'
बिन समझे सिध हाथ न आई ।।१० ।

रामदास हरि सो मिल गए ।।
गुरता देत अरजनहि भए ।।
जब अरजन प्रभ लोक सिधाए ।।
हरिगोबिन्द तिह ठा ठहराए ।।११।।

हरिगोबिन्द प्रभ लोक सिधारे ।।
हरि राय तिह ठा बैठारे ।।
हरी कृशन तिन के सुत वए ।।
तिन ते तेग बहादर भए ।।१२।।

"दस गुरु एक ही ज्योति" के सिक्ख निश्चय को प्रौढता कई पश्चिमी विद्वानो ने भी की है। जोजफ डेवी कनिघम अपनी पुस्तक "हिस्टरी आफ दी सिक्ख' मे गुरु गोबिन्द सिह जी को गुरु नानक जी की ज्योति का स्वामी लिखता है। वह स्पष्ट करके लिखता है कि यह ज्योति नानक से गोबिन्द सिह तक उसी प्रकार पहुंची जिस प्रकार एक लैम्प अपना प्रकाश दूसरे लैम्प को दे देता है। इस विचार के सम्बन्ध मे कनिघम ने नीचे फुट नोट मे एक प्रसग दिया है और लिखा है कि यह विचार कई क्षेत्रो मे यूरोप में भी प्रधान था। इसमे कोई सन्देह नही कि सिक्ख गुरुओ ने यह कोई नई प्रथा नही चलाई थी। बोधियो मे यह प्रथा प्राय प्रचलित थी। बोधी सूतवो का

लड़ी (कड़ी) लगभग इसी विचार पर ही निर्भर है। तिब्बत मे बोधियो की लामा गद्दी इसी आधार पर चली आती है,* गुरु नानक देव जी का अपनी लम्बी यात्राओ मे बोधियो के साथ कई स्थानो पर वास्ता पडा। उनका तिब्बत जाना लिखा है तथा वहा भी बोधियो के साथ मेलजोल अवश्य हुआ होगा, सम्भव हे कि वहा उन्होने तिब्बत के लामो की परम्परा भी सुनी होगी।

एक ही ज्योति के विभिन्न शरीरो मे प्रवेश करने का विचार मुसलमानो मे, विशेषत सूफी फकीरो मे आम प्रचलित था। गुरु नानक देव जी का मुसलमान फकीरो के साथ वास्ता प्राय. पडता रहा है। बाबा फरीद की वाणी तथा उनके साथ हुए प्रश्नोत्तर श्री गुरु ग्रथ साहिब मे सकलित हैं। हिन्दुओ के लिए भी यह विचार कोई नया नही था, इस निश्चय का प्रमुख (प्रधान) अग आध्यात्मिक परम्परा नही है प्रत्युत एक ही ज्योति का एक से दूसरे शरीर मे जाना है। मेरे विचार मे आवागमन की समस्या का ही यह एक श्रेष्ठतम भाव है। आवागमन के अनुसार एक शरीर नष्ट होता है तो उसकी आत्मा किसी अन्य शरीर मे प्रविष्ट होकर जन्म लेती है। "ज्योति ज्योत' की समस्या के अनुसार शरीर तथा आत्मा पहले स्थित होते हैं, केवल उनको लाग लगानी होती है। यह जाग्रत ज्योति विकास के साथ लगती है। यह विचार बहुधा गुरु नानक देव के समय बोधियो मे विशेष रूप से प्रचलित था।

जोगियो तथा सिद्धो के साथ भी गुरु नानक देव जी का बहुत मेलजोल रहा। ये जोगी कनफटे या अन्य सब पहलुओ से बुद्ध-धर्म की शाखाये हैं। सिद्ध भी इन्ही मे से हैं। गोरखनाथ जोगियो का प्रसिद्ध गुरु हुआ है। यह गोरखनाथ मछन्द्रनाथ का शिष्य था तथा मछन्द्रनाथ नेपाली बुद्ध धर्म की कडी के साथ सम्बन्धित है, कई स्थानो पर इसे अवलोकतिवर बोधी स्तव भी कहा है। यह बोधीस्तव साकिया मुनि गौत्तम बुद्ध के चलाए हुए मत मे स हा हैं। इन जोगियो और सिद्धो के साथ गुरु नानक देव जी का कई बार परिसम्बाद हुआ। सिद्ध-गोष्ठ गुरु ग्रथ साहिब की एक प्रसिद्ध वाणी

*१९.७ के फर्वरी व फुलवाडी के पत्र मे तिब्बत और लामो पर एक भावपक लेख छपा था।

दस गुरु एक ही रूप के निश्चय ने सिक्ख जाति के निर्माण मे बहुत महत्वपूर्ण, काम किया है। यदि ऐसा निश्चय सिक्खो मे प्रचलित न होता तो सिक्ख जाति का वर्तमान रूप मे अस्तित्व देखने मे न आता। गुरुओ के अपने समय मे भी मतभेद एव साम्प्रदायिकता आदि आरम्भ हो गए थे, उदासी, धीरमल्लिए, रामराइए तथा मीणे मूल मे भिन्न होकर अलग अलग शाखाये बन बैठे थे। ऊपर वाले निश्चय के न होने पर और भी कई अलग हो जाते। इस निश्चिय मे भले ही कोई परोक्ष सत्य किसी परम सत्यवादी नियम के आधार पर अवश्य होगा, परन्तु प्रत्यक्ष रूप मे जो बात देखने मे आती है, वह उसी प्रकार ही है जसे हम कहे कि साम्राज्य का सम्राट कभी नही मरता। साम्राज्य ताज के साथ स्थित है, किसी शरीर के साथ नही। यही दशा गुरु गददी की है। जब तक सिक्खी स्थित है अर्थात् अस्तित्व मे है गुरु की ज्योति कायम है और गुरु प्रत्यक्ष विराजमान है।

धार्मिक दृष्टिकोण से भी जिज्ञासु की मानसिक नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति बहुधा दृढता से होती है जब कि उसे यह विश्वास हो कि उसका पथप्रदर्शन करने वाला गुरु वही है, दूसरे स्वरूप, मे जिसे स्वय अकाल पुरुष ने गुरु बना कर भेजा था। उसका अन्तरमन बहुधा शातमय तथा प्रसन्नता पूर्वक रहता है। इसके बिना मन का स्वभाव है कि पुरातन तथा आदि वस्त को मनुष्य अधिक उत्तम तथा विशुद्ध समझता है। प्राचीनता के लिए अथवा पुरातन आदर्शो के लिए नित नवीन चाव होता है। मनुष्य को अपने भूत पर, प्राचीन पर, तथा अपने मूल पर गौरव होता है। वर्तमान की न्यूनताए अथवा त्रुटियाँ प्राचीन अर्थात् 'भूत' मे नही देखी जा सकती। मूल के साथ सम्बन्धित होने के कारण, मन वश मे रहता है और दृढ रहता है।

परन्तु जब गुरु सम्पूर्ण पथ के साथ अभेद हो जाए और सगठित होकर पथ ही गुरु रूप हो जाए तो फिर स्थिति बिल्कुल ही बदल जाती है। प्रत्येक सिक्ख, सम्पूर्ण पथ, समूची जाति का अश बन जाता है तथा अपने आप को पथ का अग समझता है। पथ का कल्याण उसका कल्याण है। सगठन मे प्रविष्ट प्रत्येक सदस्य का दायित्व बहुत बढ जाता है, उसका दृष्टिकोण बदल जाता है तथा उसके विचार का केन्द्र बहुत विस्तृत हो जाता है। आन, स्वाभिमान, तथा आत्म-विश्वास आदि

अनेक गुण बढ जाते है। एक बात अवश्य है कि किसी एक व्यक्ति विशेष के सम्मुख न होने के कारण वह निर्माण करने की शक्ति, सत्यवादिता, भय तथा सत्कार की भावनाये अवश्य कम हो जाती है। हाँ यदि इन भावनाओ का विषय 'गुरु ग्रथ पथ' बना लिया जाए, जैसा कि सद्गुरुओ का सिक्खो को बनाने का उपदेश है, तो फिर मनुष्य के स्वभाव मे कई श्रेष्ठ परिपाटियाँ बन जाती है और मानसिक आध्यात्मिक उन्नति बडे स्वच्छ ढग से होती है

तीसरा अध्याय

किन पुस्तकों के आधार पर ?

इस पुस्तक मे वर्णित सामग्री (विषय) निम्नलिखित तीन ग्रथो के विवेचन पर अथवा विचार पर निर्भर है। इनके विचार के आधार पर ही इस पुस्तक मे वर्णन किए गए विचारो की छानवीन करके एक लडी में पिरोया गया है। इस खोज का प्रमुख आश्रय तो श्री गुरु आदि ग्रथ साहिब रहे हैं। भाई गुरदास जी की वारे तथा श्री दशम ग्रथ से भी सहायता ली गई है।

श्री आदि ग्रथ सिक्खो के लिए उसी प्रकार है जिस प्रकार हिन्दुओ के लिए वेद, मुसलमानो के लिए कुरान तथा ईसाइयो के लिए बाईबल या अजील। श्री आदि ग्रथ की रचना ऐसी है कि आसानी से दार्शनिक खोज का विषय नही वन सकती। श्री गुरु ग्रथ साहिब के आधार तथा सिक्ख धर्म के सिद्धात को छान बीन करना कोई सरल कार्य नही है। गुरु जी के विचार समस्त ग्रथ साहिब मे इस प्रकार बिखरे हुए तथा भिन्न भिन्न स्थानो पर वर्णित है कि बहुत अधिक परिश्रम के पश्चात ही विशेष विशेष स्थलो पर गुरवाणी मे आए विचार एकत्रित हो सकते है। भिन्न भिन्न शीर्षको के नीचे इकट्ठे किए गए विचार क्रमानुसार किसी मत को प्रकट नही करते जब तक कि उन्हे किसी निश्चित तथा विशिष्ट विधि के अन्तर्गत प्रत्येक को अपने अपने उचित स्थान पर न लाया जाए। फिर इन शीर्षको के परस्पर सम्बन्ध को ढूढने की आवश्यकता है। यह केवल मात्र विचारो का समह हो नही क्योकि कई बार कई विचार एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते है। ऐसे समय मे शोध-कार्य बहुत कठिन हो जाता है। पहले तो

प्रत्येक विचार का मूलभाव प्राप्त करना होता है फिर उसका उचित प्रसग जिसका गुरुजनो के जीवन लीलाओ से सम्बन्ध होता है। यह जीवन कौतुक श्री गुरु ग्रथ साहिब मे वर्णित नही है, वल्कि सिक्ख इतिहास मे प्राप्त होते हे। इतिहास मे से वे घटना ढूढ कर गुरुवाणी मे आए विचार का भाव समझना पडता है तथा फिर उस विचार का दार्शनिक शृङ्खला मे वास्तविक स्थान मिलता है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य कठिनाई भी है। वह यह कि गुरवाणी मे स्थान-स्थन पर गुरु जी के समय देशो तथा विदेशो मत-मतान्तरो और धर्मो की ओर सकेत है। जब तक इन धर्मों तथा मतो का उचित ज्ञान न हो तब तक गुरु साहिब का आन्तरिक भाव समझ मे नही आ सकता। कई स्थानो पर भाषा को कठिनाई भो एक मुख्य रुकावट है। प्रोफैसर मैक्समूलर ने डा० टरम्प के अनुभव के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा था उसका सकेत पहले अध्याय मे दिया जा चुका है। डाक्टर टरम्प के मार्ग मे भी सबसे बडो रुकावट भाषा की थी। इन समस्त कठिनाइयो को सम्मुख रख कर यह कोई आश्चर्यजनक बात नही होगी कि मेरे जैसे अल्पज्ञ जोव का परिश्रम सिक्ख धर्म की सैद्धातिक खोज के अगाध सागर मे एक साधारण डुब्बी ही हो

परन्तु इसके अध्ययन से यदि अधिक सुयोग्य सज्जनो को चाव उठे तो इन पक्तियो के लेखक का परिश्रम निष्फल नही होगा। इस कार्य के लिए योग्यता के अतिरिक्त अवकाश तथा धन की भी आवश्यकता है। इसीलिए यह कार्य किसी एक या दो व्यक्तियो के करने का नही, अपितु किसी पथक सगठन की छत्र-छाया मे (परश्रग मे) होने वाला कार्य है।

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब

(क) रचना करने वाले (रचियता)

श्री गुरु ग्रथ साहिब मे कई गुरुओ तथा भक्तो की वाणी सकलित है। यद्यपि लिखित रूप मे यह गुरु अर्जुन देव जी के समय मे आया परन्तु इसमे लगभग ७ सौ वर्षो के भारतीय महापुरुषो के आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत वचन सग्रहीत है। ऐनसाइक्लोपीडिया बृटैनेका मे लिखा है कि गुरु ग्रथ साहिब की रचना गुरु अगद देव जी ने की तथा गुरु अर्जुन देव जी ने उसका विस्तार किया। वास्तविकता यह है कि गुरु अर्जुन देव जी ने पहले चारो गुरुओ की वाणी को उनके पुत्रो पौत्रो से माग कर इकटठा किया और साथ अपनी वाणी भी जो समस्त लिखित वाणी के तीसरे भाग से भी अधिक है सम्मिलित की। गुरु अर्जुन देव जी ने यह वाणी भाई गुरदास को लिखाई। भारत के प्रसिद्ध भक्तो के उपासको को गुरु जी ने आमन्त्रित किया कि वे आकर अपने पूजनीय भक्तो इष्टदेवो को वाणी गुरु ग्रथ मे सकलन करने के लिए दे। फलस्वरूप कई समकालीन भक्त तथा कई पुराने भक्तो के उपासक हिन्दु मुसलमान भक्तो की वाणी लेकर उपस्थित हुए। ऐसी वाणी जो गुरु आशय के अनुकूल थी स्वीकार की गई तथा ग्रन्थ के सकलन मे सम्मिलित की गई। हिन्दु मतानुसार किसी मुसलमान फकीर की वाणी को सुनना एक भारी पाप था, शूद्र से हरि यश सुनना या उसे सुनाना तो असम्भव ही था। गुरु जी ने मुसलमान भक्तो तथा शूद्र सन्तो की वाणी को श्री गुरु ग्रथ मे इसलिए भी स्थान दिया था कि ससार को ज्ञात हो जाए कि सिक्ख-धर्म मे ऐसी भ्रांतिया एव अन्धविश्वास नही है और न ही इस धर्म के अनुसार कोई ऊच नीच का विभाजन है। प्रत्येक मनुष्य अपने सुकर्मो के कारण आदर

एव सत्कार का भागी है। लाहौर के चार भक्त, कान्हा, छज्जू, शाह हुसन तथा पीलो अपनी अपनी वाणी श्री गुरु ग्रथ साहिब मे सकलित करवा कर अमर होने की लालसा से गुरु साहिब के पास अमृतसर उपस्थित हुए। परन्तु गुरु साहिब ने उनकी वाणी को स्वीकार न किया क्योंकि वह सिक्ख धर्म के सिद्धान्तो के विरुद्ध थी। कान्हे की अकाल पुरुष के साथ प्रत्यक्ष अभेदता, छज्जू की स्त्री जाति की निन्दा शाह हुसैन की निराशावादिता तथा पीलो की उपरामता गुरु साहिब को स्वीकार नही थी। कुल मिला कर नीचे लिखे महापुरुषो की वाणी श्री गुरु ग्रथ साहिब मे सकलित है।

१ गुरुओ की वाणी— पहले पाच सिक्ख गुरु और नौवें गुरु तेग बहादुर जी। अन्तिम नौवे महले के श्लोको मे ५४वा श्लोक गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा रचित कहा जाता है। किसी एक आधे पुरातन सस्करण मे इस श्लोक के साथ महला १० भी लिखा है।

२ भक्तो की वाणी— ऐतिहासिक आधार पर क्रमश उनके नाम इस प्रकार है — बगाल का जयदेव, वम्बई प्रान्त का नामदेव, त्रिलोचन तथा परमानन्द, सिन्ध प्रान्त का सधना, यू० पी० के रामनन्द, पीपा, सैण कबीर, रविदास। धन्ना टाक राजपुताने के पीपे से पूर्व हुआ है। बाबा फरीद पश्चिमी पजाब के, भीखण यू० पी० का, सूरदास अवध का था। कई वाणियो मे मीराबाई के शब्द भी हैं, वह राजपुताने मे क्रमानुसार रविदास से पीछे आती है। इन भक्तो के वचन चार शताब्दियो तक बिखरे हुए हैं अर्थात् बारहवी शताब्दी के मध्य से लेकर १६वी शताब्दी के मध्य तक। इन मे से किसी भक्त के साथ, बाबा फरीद के सिवाय, किसी गुरु साहिब का निजि सम्पर्क नही हुआ था। अर्थात् गुरुओ की वाणी इन चार शताब्दियो मे से पिछली दो शताब्दियो की वाणी है। इस प्रकार श्री गुरु ग्रथ मे भारत के महापुरुषो की छ सौ वर्षो की स्वच्छ एव पवित्र वाणी का रिकार्ड दिया हुआ है। यानि कि बारहवी शताब्दी से लेकर सतारहवी शताब्दी तक। केवल मात्र भाषा के दृष्टिकोण से ही इस ग्रथ का मूल्य अनन्य एव महान है।

३ तीसरे भाग मे वे लेखक है जिनकी वाणी पहले पाच

गुरुओ की प्रशसा के रूप मे रचित है। यह गुरु अर्जुनदेव के समकालीन थे। इनके नाम तथा सख्या शोधकर्ताओ ने भिन्न भिन्न दी है। भाटो के सवैय्यो को ध्यानपूर्वक विचारने पर नीचे लिखे १९ नाम इन भाटो के निकलते है। मथुरा, जलप, वल, हरवम तनय, मलय-जलय, भ स्कन्न, सहर, कल, जल, नल, किरत दास गयद, मद्रग, भिक्खा।

४ कई खोज करने वाले निम्नलिखित नाम छोड गए है। इनकी वाणी भी गुरु ग्रथ साहिव मे सकलित है बावा सुन्दर, मरदाना सत्ता तथा वलवण्ड।

गुरुग्रथ साहिव मे ३०८४ शब्द है। इस दृष्टिकोण से यह वाणी ऋग्वेद से तीन गुणो से भी अधिक है। बाबा बुध सिह 'हम चोग' मे लिखते है कि यदि एक श्लोक १८ अक्षरो का हो तो समस्त गुरुग्रथ मे २८४४४ श्लोक होते है।

गुरु ग्रथ साहिव का पहला सकलन (वीड) भाई गुरदास के हाथो गुरु अर्जुनदेव जी ने करवाया। यह सन् १६०४ ई० मे सवत् १६६१ विक्रमी मे तैय्यार हुआ।*

बीडा पूर्ण हुई तो दूर दूर से सिक्ख श्रद्धालुओ को बुला कर दर्शन कराए गए और गुरु साहिव ने कहा कि गुरु ग्रथ साक्षात गुरु रूप है तथा इनका गुरु की भान्ति ही सत्कार करना है। यह ग्रथ बहुत ही पवित्र एव प्रामाणिक है। इसके प्रामाणिक होने के सम्बन्ध मे मैकालिफ साहिव लिखते है "सिक्ख धर्म तथा अन्य धर्मो मे यह एक महान अन्तर है कि सिक्ख धर्म सम्बन्धी सिद्धान्त हमारे पास बिल्कुल ठीक तथा शुद्ध रूप मे विद्यमान है। सिक्ख गुरुओ की वाणी बिना किसी मिलावट के ठीक उसी प्रकार हमारे पास पहुची है जिस प्रकार कि उन्होने स्वय उच्चारित की थी। ससार के बडे बडे महापुरुषो के सम्बन्ध मे हम पढते और सुनते आए है, परन्तु उनके विचार अक्षराक्ष. उसी रूप मे हमारे पास नही पहुचे। या तो रीति-रिवाजो तथा रूढियो के रूप मे और या किसी अन्य लेखक के द्वारा उन्हे सकलित किया गया था। फीसागोरस

*पहला सकलन कौन सा तथा कहा है? इस पर बहुत खोज करने की आवश्यकता है थोडी खोज के लिये देखें—'प्राचीन वीडा' रचयिता जी० बी० सिह।

(पाइथागुरस) ने कई शिक्षाये दी परन्तु उसकी कोई लिखित रचना हमारे पास तक नही पहुची। सुकरात के विचार हमारे पास अफलातून तथा जेनोफेन द्वारा ही पहुचे है। सुकरात की कोई लिखित रचना ससार मे नही मिलती। महात्मा बुद्ध की भी कोई रचना ससार मे उपलब्ध नही है। कनफियूशस के चलाए हुए मत के नियम जिस प्रकार उसने कहे थे उनका कोई लिखित प्रमाण नही मिलता। हज़रत ईसा ने अपनी शिक्षा को लेखनी बद्ध किया ही नही था। मैथियू, मार्क, लियूक तथा जाहन की रचनाओ द्वारा ही हमे ईसाई-धर्म के आदर्शो का ज्ञान होता है। कुरान शरीफ भी हजरत मुहम्मद साहिब ने स्वय नही लिखा था। कुरान शरीफ की रचना पैगम्बर साहिब के श्रद्धालुओ तथा अनुयाइयो ने ही की।" परन्तु सिक्ख गुरुओ की वाणी गुरु साहिब ने स्वय लिखवाई। अन्त मे स्वय मोहर लगाई तथा अपने हस्ताक्षर किए। इतना प्रामाणिक धार्मिक ग्रथ ससार भर मे अन्य कोई नही।

(ख) वाणियो का क्रम

कई विद्वानो ने बडे उत्तेजक होकर यह कहा है कि गुरु ग्रथ मे न कोई क्रम है और न कोई योजना। वाणियो का न तो कोई विषयानुसार सग्रह किया गया है, न लेखको के अनुसार और न ही उनके रचनाकाल के अनुरूप। ऐसे लेखक गुरु साहित्र के वास्तविक ध्येय को नही समझ सके तथा न ही सिक्ख धर्म सम्बन्धी सिद्धान्तो की तह तक पहुच सके है। गुरु ग्रथ मे वाणियो के क्रम का सम्बध गुरु ग्रथ की रचना के प्रयोजन के साथ है, गुरु मार्ग अथवा सिक्खी सिद्धात के साथ है। जैसे कि आगे चलकर विचार किया जाएगा कि सिक्ख-धर्म का मार्ग नाम-मार्ग है जिसका वास्तविक अग विस्माद है। यह नाम मार्ग भारत के प्राचीन तीनो मार्गो से भिन्न है। न तो यह केवल मात्र ज्ञान-मार्ग है न ही यह केवल भक्ति मार्ग है और न ही केवल कर्म-मार्ग है। इन मार्गो के अग (अश) रखता हुआ नाम मार्ग एक भिन्न मार्ग है और इस

मार्ग की कुजी अथवा रहस्य है विस्माद । विस्माद की अवस्था उत्पन्न करना आवश्यक है। विस्माद का राग अथवा कीर्तन के साथ गहरा सम्बन्ध है। नाम का आधार, रहस्य विस्माद है और विस्माद सरलता से उत्पन्न होता है--राग कीर्तन तथा कविता द्वारा। गुरु ग्रथ की रचना का प्रमुख उद्देश्य आनद प्राप्ति था, मन की शात अथवा चिदानद अवस्था थी । गुरवाणी की कविता, राग, स्वर तथा लय और प्रेम पूर्वक पाठ करने वाले को मस्ती (आनन्द) मे लाती है, विस्माद की स्थिति उत्पन्न करती है जिसके कारण नाम की अवस्था प्राप्त होती है ।

जिस प्रकार शिल्लर की दार्शनिक कविताओ के सम्बन्ध मे लैग ने कहा है कि ये कवितायें मनुष्य की आत्मा का ऊपर उठाकर ले जाती हैं तथा उस ऊपर वाली मजिल मे न केवल सौन्दर्य-तुष्टि ही होती है प्रत्युत सदाचारक एकस्वरता तथा धार्मिक भावना का आनन्द भी मिलता है । ठीक यह स्थिति प्रेमपूर्वक गुरवाणी पढने वाले की है। भविष्य मे सफल होने वाला धर्म वही होगा जो मन तथा आत्मा के लिए शाति के भण्डार बाटेगा । यह शाँति कीर्तन तथा कविता मे से सरलता से मिल सकती है । इसी लिए गुरुग्रथ ईश्वर की ओर से प्रेरित एक थाल है, जिसमे सत्य सन्तोष, तथा विचार रूपी भोजन मनुष्य भरपेट खा सकता है यदि वह श्रद्धा तथा प्रेम के साथ भूख उत्पन्न करके उसको मिटाए। इस प्रकार यह गुरु ग्रन्थ का महान विषय है और यह ही मुख्य विषय है गुरुवाणी का। वाणियो का क्रम इसी आधार पर हुआ ।

गुरु ग्रन्थ अपने मन्तव्य एव विषय वस्तु आदि के विचार से बहुत सी धर्म-पुस्तको से निराला है। कुछ लोग कहते हैं कि गुरु ग्रन्थ ऋग्वेद से मिलता जुलता है। स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ-प्रकाश मे लिखते हैं कि ऋग्वेद का आदेश है — नियोग करके एक स्त्री बेशक ग्यारह पति कर ले। इसी प्रकार कुरान शरीफ मे भी लिखा है — ऐसी दो, तीन या चार स्त्रियो से विवाह कर लो जो तुम्हे योग्य लगे। परन्तु ऐसे व्यावहारिक कार्यो के सम्बन्ध मे जीवन की साधारण आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे यदि कोई गुरु ग्रन्थ साहिब से आदेश अथवा नेतृत्व प्राप्त करना चाहे तो उसे बहुत निराशा होगी ।

गुरु ग्रथ कोई रहतनामा नही है जो इसमे विवाह अथवा सगाई जन्म या मृत्यु, गृह निवास या उठने बैठने या असत्य बोलने आदि के विवरण के सम्बन्ध मे धार्मिक नियम अथवा ससकार आदि दिए हो। न ही गुरु ग्रथ साहिब छड् शास्त्रो की भान्ति किसी मत-मतान्तर का खण्डन करके किसी विशेष दर्शन के पक्ष को लेकर लिखा गया है। गुरु ग्रथ का मन्तव्य सुख, परमसुख, आनन्द, परमानन्द देना है। गिरते और डोलते मन को सहारा देना है, धैर्य देना है, शान्ति देना है और वास्तव मे होता भी ऐसा ही है। इन समस्त उद्देश्यो के लिए कीर्तन सर्वोत्तम साधन है। कीर्तन के आधार पर ही समस्त वाणियो का क्रम किया गया है। जब यह कीर्तन कसौटी सम्मुख रख ले तो फिर समस्त वाणिया एक निश्चित क्रम मे रची गई दृष्टिगत होती हैं। सभी लेखको की वाणी मे से भिन्न-भिन्न रागो मे गाई जाने वाली वाणियो को एक स्थान पर इकट्ठा कर लिया। फिर एक राग मे गाई जाने वाली वाणियो को भी विशेष ढग से क्रमबद्ध किया गया। सर्वप्रथम चौपदे, फिर अष्टपदिया, फिर विशेष लम्बी वाणिया, फिर छद, फिर विशेष छोटी वाणिया, फिर वारे और उसके पश्चात् भक्तो की वाणी। इन शीर्षको के अनुरूप गुरुओ की वाणी क्रमानुसार आती है।

इस क्रम का कही भी उल्लघन नही हुआ। समस्त वाणी एक निश्चित नियम मे वर्णित है। वाणी को इन्ही शीर्षको के अन्तर्गत घरो के अनुसार भी बाटा गया था। क्योकि घरो के अनुसार स्वर ऊचा नीचा और नीचा ऊचा होता रहता है। गुरु ग्रथ के अन्त मे एक राग महला है जिसमे रागो तथा रागणियो एव उनके परिवारो का वर्णन है। यह एक प्रकार से रागो की सूची है।

गुरु ग्रथ मे सबसे मुख्य सिरी राग है। गुरु साहिब बताते है—"रागा विच सिरी राग है जे सचि धरे पिआरु" (म ३) भाव यह कि परम सुख लेने के लिए अथवा सच्चे के प्यार के लिए सबसे सरल एव सीधा मार्ग सिरी राग द्वारा है। इसलिए पहला राग सिरी राग रखा है। पीछे अन्य राग आते है। राग माला मे ८४ राग उनकी स्त्रियो एव पुत्रों पुत्रियो सहित बताये गए हैं। गुरु ग्रथ साहिब मे केवल ३० राग आए है। इन रागो का क्रम ऊपर दिए नियमो के

अनुसार हुआ है। राग, कविता, कवि और घर। ये चार नियम सम्मुख रहे है। प्रत्येक राग मे बडी कविताये पहले और छोटी बाद मे हैं। बडी कविताओ मे प्रथम गुरु की पहले, फिर दूसरे को, फिर तीसरे की इत्यादि दी गई है। प्रत्येक गुरु की वाणी मे घरो आदि का भी ध्यान रखा गया है। इस क्रम मे किसी विषय या ऐतिहासिक विचार को सम्मुख नही रखा गया। ऐसा करना सम्मुख रखे गए क्रम के नियम का उल्लघन करना था। सम्पूर्ण रूप मे गुरु साहिब को वाणिया निम्नलिखित दस भाग मे बाट सकते है —

१ नित्त नियम वाली वाणिया जपु, सोदर, सो पुरख, सोहिला पृष्ठ १—१२।
२ रागो मे आई वाणो . पृष्ठ १३—१३५१।
३ सलोक सहसकृती पृष्ट १३५२—१३५६।
४ गाथा—पृष्ठ १३५६—१३६१।
५ फुहने—पृष्ठ १३६१—१३६३।
६ चउबोले—पृष्ठ १३६३—१३६४।
७ सलोक कबीर एव फरीद—पृष्ठ १३६४—१३८४।
८ गुरुओ एव भाटो के सवैय्ये— पृष्ठ १३८४—१४०८।
९. गुरुओ की वारो से विकिसित सलोक—पृष्ठ १४०९--१४२८।
१०. राग माला— पृष्ट १४२९—१४३०।

(ग) वाणी का भाव

यह प्राय देखने मे आया है कि पूर्वी तथा पश्चिमी विद्वान गुरु ग्रंथ की तुलना ऋग्वेद मे करते है । यह सम्भवत ठीक हो क्या कि दोनो धार्मिक ग्रंथ कई बातो मे एक दूसरे से मिलते हो । पहली बात तो यह है कि दोनो के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि दोनो ग्रथो की वाणी के भावार्थ मे बहुत मतभेद है । थोडे से परिवर्तन के साथ प्रत्येक मत का अनुयायी इन वाणियो से या कुछ पंक्तियो से अपना पक्ष सिद्ध कर लेता है । परन्तु यह बात प्रत्येक धर्म-पुस्तक के सम्बन्ध मे कही जा सकती है । ऋग्वेद, गीता, बाईबल, कुरान तथा अन्य ग्रन्थो मे प्रत्येक के भाव लोगो ने अपने आशय (स्वार्थ) के अनुसार निकाले हुए है । फिर्डर फिकटे, राय दयानन्द, राम-मोहन राय, ब्लूम फील्ड तथा अरविन्दुघोष ने वैदिक मन्त्रो के भाव भिन्न भिन्न बताए है । इसी प्रकार वेदान्ती कहते हैं कि गुरबाणी वेदात का प्रचार करती है, सूफी लोग कहते हैं कि यह ईश्वरीय प्रेम का सबसे श्रेष्ठ मार्ग है अथवा रूप है । मीमाँसिक कर्मकाण्डी अपने पक्ष की अनेक पंक्तिया निकाल कर अपने पक्ष को सिद्ध करते हैं भक्ति-भाव वाले कहते है कि गुरबाणी है ही पूर्ण-भक्ति-मार्ग का पक्ष । वास्तविकता यह है कि हम इनमे से किसी को न सच्चा कह सकते है और न ही झूठा । जिस प्रकार गीता के भावार्थ सम्बन्धी बहुत मतभेद है उसी प्रकार गुरु ग्रंथ साहिब के सम्बन्ध मे भी है । श्री बाल गगाधर तिलक ने गीता के भावार्थ सम्बन्धी बडा उचित दृष्टात दिया है । वह दृष्टात गुरबाणी के भावार्थ सम्बन्धी मतभेद पर बडे उपयुक्त ढग से लागू होता है ।

कडाह प्रसाद का दृष्टात ले—इस मे खाण्ड भी है, मैदा भी और घी भी । यह तीन बराबर की वस्तुओ का प्रसाद है । यदि कोई सज्जन इस पक्ष को लेकर कहे कि कडाह खाण्ड का बना हुआ है तो क्या हम उसे झूठा कह सकते हैं ? परन्तु सच्चा भी नही कह सकते । दूसरा व्यक्ति उठ कर कहता है कि नही कडाह तो मैदे का बना हुआ है । तीसरा कहता है कि नही यह तो घी का बना हुआ है । अपने अपने स्थान पर ये सच्चे भी है परन्तु झूठे भी है । इन तीनो पक्षो की सच्चाई

एक पक्षीय अथवा एकांगी सच्चाई है। यह पूर्ण सत्य नही। प्रत्येक व्यक्ति एकांगी सत्य कह रहा है सम्पूर्ण सत्य नही। समूचे रूप मे तीनो ही गलत है। यदि कोई कहे कि कड़ाह प्रसाद इन तीनो के सम्मिश्रण का नाम है तो वह भी ठीक नही। पानी तथा अग्नि के प्रभाव स्वरूप इन तीनो वस्तुओ के मेल से एक नई वस्तु का निर्माण हुआ है। ठीक यही स्थिति वाणी मे वर्णित सिक्ख-धर्म सम्बन्धी मार्ग की है। भक्ति, ज्ञान तथा कर्म के अंश रखता हुआ भी सिक्खी मार्ग एक नवीन मार्ग है। गुरबाणी नाम-मार्ग का प्रचार करती है। इस नाम मार्ग मे पुराने मार्गों के अंग भी है, कुछ नई बाते भी है और समूचे रूप मे यह नाम एक नई वस्तु है जो गुरबाणी बताती है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपनी मानसिक एवं धार्मिक संकीर्णता के कारण अपने पक्ष का समर्थन करता है। नही तो गुरबाणी का लक्ष्य एक है, भाव एक है, पंक्तियो का परस्पर कोई विरोध नही तथा भावो का कोई अन्तर नही है।

किसी ग्रंथ की भाव एकता को परखने के लिए भारतीय विद्वान एक प्राचीन मीमांसिक पंक्ति मे बताए गए अंगो की कसौटी का प्रयोग करते हैं। वह पंक्ति यह है —

उपक्रम, उपसंहार अभ्यास, पूर्वत फल।
अर्थवाद उपाप्ति लिंगम तात्पर्य निर्णय।

भाव यह कि प्रत्येक रूप मे पूर्ण पुस्तक मे सात बाते होनी चाहिए। आदि से अन्त तक पुस्तक के मुख्य विषय का आरम्भ तथा अन्त हो। जिस विषय को पुस्तक मे प्रतिपादित किया है उसकी बार बार आवृत्ति करके पुष्टि की गई हो। उसका परिणाम उचित निकलता हो। विषय को स्पष्ट करने के लिए उचित प्रमाण तथा दृष्टान्त दिए गए हो। समस्त पक्षो पर पूर्ण विचार हो तथा प्रत्येक पक्ष का एक दूसरे के साथ उचित सम्बन्ध बताया गया हो। इस कसौटी के अंगो को गुरु ग्रन्थ साहिब पर घटाने की गम्भीरता मे हमे जाने की आवश्यकता नही। कई निरमले विद्वानो ने विशेषत पण्डित साधु सिंह ने अपने 'सिद्धांत ज्योति" मे इसे भली प्रकार सविस्तार स्पष्ट किया है। यहाँ केवल इतना लिख देना ही पर्याप्त है कि गुरु ग्रन्थ का विषय "एक है भाई एक है।" अन्तिम शब्द मुन्दावली मे गुरु साहिब ने भली प्रकार बताया है कि सत्य, सन्तोष, तथा

विचार (Truth, Harmony and wisdom) ये तीन वस्तुए इस थाल (थाली) मे प्राप्त होती है। इस थाल मे से जो भी इन तीनो का प्रेमपूर्वक नाम-रग मै पेठ कर पान करेगा उसका उद्धार होगा। इस शिक्षा को हृदय मे ग्रहण कर लेना चाहिए त्यागना नहीं चाहिए। जो इस पर आचरण करेगा वह परमात्मा के चरणो मे रत्त यह अनुभव करेगा कि वह सब कुछ स्वय ही है।

मुन्दावली महला ५

थाल विचि तिनि वस्तु पईउ सतु सन्तोखु विचारो॥
अमृत नामु ठाकुर का पइउ जिसका सभसु अधारो॥
जे को खाव जे को भुचै तिसका होई उधारो॥
एह वस्तु तजी न जाई नित नित रखु उरियारो॥
तम ससारु चरण लगि तरीअ सभु नानक ब्रह्म पसारो॥

गुरु साहिब का गुरु ग्रथ की रचना से यह भाव था कि ससार मे सदा के लिए एक ऐसा ग्रथ बन जाए जो प्रत्येक काल, शताब्दी एव देश मे प्रत्येक धर्म के यथार्थ भाव को सुदृढ करे। सर्वमान्य तथ्यो को दिखाने के लिए गुरबाणी मे बढकर अन्य कोई रचना समार मे उपलब्ध नही है। सासारिक रीति रिवाज, प्रथाये तथा कमकाण्ड सब समयानुसार परिस्थितिवश तथा वातावरण के परिवर्तन के साथ कभी आर्थिक विशेषताओ के कारण तो कभी राजनैतिक समस्याओ के कारण परिवर्तित होते रहते है इसी लिए गुरुबाणी का विचार पाठक को सासारिक उलझनो मे नही डालता। प्रत्युत इनसे छुटकारा दिला कर इन से ऊपर उठाता है और सर्वमान्य सत्य का साक्षत्कार कराता है। कर्मकाण्डो के लिए, आचार व्यवहार के लिए प्राचीन रहितनामे देखे जाए या नये बनाये जाए इन सबका आधार गुरबाणी है। इसलिए गुरबाणी का मुख्य भाव परम सुख की प्राप्ति है और यह नाम द्वारा विस्माद की मानसिक अवस्था के द्वारा सम्भव है। दर्शन या दर्शनिक विवेचन गुरुबाणी का प्रमुख प्रयोजन नही। हा, यत्न करने पर दार्शनिक विषयो पर गुरु साहिब के विचार इकट्ठे किए जा सकते है तथा किए गए है।

(घ) गुरबाणी मनुष्यकृत अथवा ईश्वरकृत ?

हम ऊपर देख चुके हैं कि गुरु साहिब अपने आपको न ईश्वर तथा न ही ईश्वर का अवतार कहते है। अवतार भाव की वे घोर निन्दा करते है। एक बात अवश्य है कि वे अपने आपको ईश्वर द्वारा भेजा हुआ जरूर कहते हैं। ईश्वर के आदेशो को लोगो तक पहुचाने का अपने आपको साधन अर्थात मोडियम भी बताते है। गुरबाणी मे जो कुछ भी उन्होने बताया है वह ईश्वरीय आदेश के अन्तर्गत कहा है।

ससार मे आकाशवाणी (अलहाम) सम्बन्धी दो म। प्रसिद्ध हैं। एक तो हिन्दु विचार है कि ईश्वर स्वय अवतार धारण करता है और उस स्वरूप मे जो कुछ भी वह कहता या करता है वह सब कुछ ईश्वरीय होता है क्योकि वह ईश्वर स्वय ही कहता एव करता है। दूसरा विचार यह है कि जब धार्मिक जीवन मे गतिहीनता आ जाए अथवा पाखण्ड एव धोखेबाजी के कारण लोगो के मन से सच्चे धर्म की भावना लुप्त होती प्रतीत हो, माया तथा सासारिक बन्धनो मे फस कर मनुष्य भूल जाए कि कोई ईश्वर भी है, इस जीवन के पीछे कोई अविनाशी जीवन भी है और प्रत्यक्ष ससार से ऊची कोई परमानन्द की अवस्था भी है, ऐसे समय पर अकाल पुरुष अपनी ज्योति का रूप दिखाता है। अपने किसी प्रिय को, अपने किसी विशेष चुने हुए बन्दे को अपने चरणो से लगाता है और अपना विशेष प्रतिनिधि बनाता है और उसके द्वारा अपने विशेष आदेश को भेजता है। इसे कहते हैं अल्हाम-आकाशबाणी। जिस प्रकार पूर्व मे उदित हो रहे सूर्य की किरणे पहले पर्वत के ऊचे शिखर पर ही पहुचेगी, उसी प्रकार साधारण सासारिक मनुष्यो की भीड मे भूले हुए मनुष्यो के सिरो के ऊपर से कोई अग्रणीय शक्ति प्रकट होती है, –ईश्वर की विशेष कृपा पात्र तथा अकाल पुरुष की अपनाई हुई शक्ति। वह शक्ति ईश्वरीय रग मे पगी सत्य तथा वास्तविक तत्व की पहचान करती है और उस ईश्वीय कृपा के आधार पर दूसरो को सत्य एव तत्त्व की पहचान कराती है। यह है एक प्रकार का अल्हाम जो गुरुओ तथा पैगम्बरो को होता है।

यह विशिष्ठ अल्हाम अथवा आकाश वाणी भी दो प्रकार मे सुनी गई है। एक प्रकार की आकाशवाणी तो यह है कि परमेश्वर स्वय अपना आदेश अपने ही शब्दो मे भेजता है। पैगम्बर या रसूल जो इस कार्य के लिए चुना जाता है, वह केवल ग्रामोफोन की भाति एक साधन मात्र ही होता है। सब कुछ ईश्वर करता है परन्तु ईश्वर के विचार, उसके शब्द उस गुरु पैगम्बर के द्वारा आते हैं। अल्हाम की दूसरी प्रकार यह है कि परमात्मा अपने शब्द गुरु अवतार के मुख से नही कहलवाता। परन्तु उन शब्दो मे जो विचार अथवा ज्ञान या भाव प्रस्तुत हैं वह सब ईश्वर-गुरु अवतार के एक स्वर होने के समय अर्थात जब वह परमात्मा (वाहिगुरु) के साथ तादात्मय स्थापित करता है उस समय, उस ज्ञान का प्रकाश उसे होता है और वह पुन प्रकट रूप मे वाणी के रूप मे कहता है। इन दोनो ही प्रकार की आकाशवाणी का भाव यह है कि ईश्वर की ओर से ऐसे आदेश प्राप्त होते है, या ऐसे ज्ञान का प्रकाश होता है जो साधारण अवस्था मे किसी योग्य से योग्य व्यक्ति को भी नही हो सकता।

मनोवैज्ञानिक खोज ने धार्मिक सिद्धान्तो की छान-बीन और विभिन्न धर्मों की परस्पर तुलना तथा मनुष्य के मन मे धार्मिक भावना के अस्तित्व मे आने की ऐतिहासिक खोज ने ऐसे अल्हाम को एक अद्भुत बात कहा है। परन्तु एक अन्य रूप मे ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति को वैज्ञानिक तथा दार्शनिक शोधकर्ता मानते हैं और महान कवियो, सन्तो तथा महापुरुषो के अनुभवो से यह बात सिद्ध होती है कि जब किसी पवित्र महापुरुष का मन सर्वव्यापक मन, सर्वशक्तिमान के साथ एक रूप हो जाता है, अथवा भक्ति की आनन्दमय स्थिति मे कहिये कि जब वाहिगुरु के चरणो से प्रम हो जाता है तो जीव को ईश्वर की अभेदता का अनुभव होता है। उस एकता, अभेदता तथा मिलन की अवस्था मे गुरु पीर जो कुछ कहता है वह ईश्वर प्रदत्त सच्चाई होती है। यह अनुभव जन्य अल्हाम है। ऐसी स्थिति मे परम तत्व तथा परम सत्य की झलकिया मिलती है। इनको प्राप्त करने पर मन वाणी के रूप मे उच्चरित होता है और यह वाणी फिर ईश्वरीय वाणी होती है। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने ऐसे अल्हाम का प्रसग अपनी पुस्तक "रिलेजन आफ मैन" पृष्ठ ७६

पर दिया है। इस स्थिति मे जो सच्चाइया तथा जो प्रकाश होना है वह मनुष्य को अन्य किसी अवस्था मे उसके किसी प्रयत्न के साथ भी नही होता। इसी रूप मे गुरबाणी ईश्वरीय वाणी है। प्रस्तुत पुस्तक के पहले अध्याय मे 'विचार सग्राम" नामक शीर्षक के अन्तर्गत गुरबाणी की वे पक्तिया लिखी गई हैं, जिनसे उपर्युक्त विचार की पुष्टि होती है। बिल्कुल उन्ही अक्षरो का उल्हाम, अथवा वास्तविक अर्थो मे आकश-वाणी यानि कि आकाश से वाणी उतरे और वह अक्षरअक्ष आवाज केवल पैगम्बर या पीर को ही सुनाई दे तथा वह वही आगे अन्य लोगो को बताए। इस प्रकार की आकाशवाणी का परिणाम कुरान शरीफ कहा जाता है। यद्यपि मुसलमानो मे ऐसे विद्वान हैं जो कि अक्षरो का ऊपर से उतरना नही मानते परन्तु फिर भी विचारो का ईश्वर से आना मानते हे और उन विचारो का आगे चल कर गुरु अवतार अपने अक्षरो-शब्दो मे प्रचार करता है। मिरज़ा गुलाम अहमद कादिया की एक रचना से यह भी सिद्ध होता है कि मिरजा साहिब को एक बार अग्रेजी बोली मे आकाश वाणी हुई यद्यपि वे अग्रेजी का एक शब्द भी नही जानते थे। विचारो के अल्हाम अथवा गुरु साहिब के दैवी अनुभव मे से ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश होना और उसे बोली मे बताना यह गुरबाणी की रचना थी तथा गुरु ग्रन्थ साहिब इसी रूप मे ही अल्हामी ग्रन्थ है।

(च) आदि ग्रथ को गुरु मानना

इस पुस्तक मे जहा कही भी आदि ग्रन्थ अथवा ग्रन्थ शब्द का प्रयोग हुआ है वह श्री आदि ग्रन्थ साहिब के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस आदि ग्रन्थ को, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, गुरु का पद सकलित करते समय गुरु अर्जुन देव ने ही दे दिया था, परन्तु औपचारिक ढग से श्री आदि ग्रन्थ को गुरु पद श्री दशमेश जी ने अपने स्वर्गारोहण के कौतुक के समय सन् १७०८ ई० मे दिया था।

इस औपचारिक निश्चय के बिना आदि ग्रन्थ को गुरु इसलिए

यह विशिष्ठ अल्हाम अथवा आकाश वाणी भी दो प्रकार से सुनी गई है। एक प्रकार की आकाशवाणी तो यह है कि परमेश्वर स्वय अपना आदेश अपने ही शब्दो मे भेजता है। पैगम्बर या रसूल जो इस कार्य के लिए चुना जाता है, वह केवल ग्रामोफोन की भाति एक साधन मात्र ही होता है। सब कुछ ईश्वर करता है परन्तु ईश्वर के विचार, उसके शब्द उस गुरु पैगम्बर के द्वारा आते है। अल्हाम की दूसरी प्रकार यह है कि परमात्मा अपने शब्द गुरु अवतार के मुख से नही कहलवाता। परन्तु उन शब्दो मे जो विचार अथवा ज्ञान या भाव प्रस्तुत है वह सब ईश्वर-गुरु अवतार के एक स्वर होने के समय अर्थात् जब वह परमात्मा (वाहिगुरु) के साथ तादात्मय स्थापित करता है उस समय, उस ज्ञान का प्रकाश उसे होता है और वह पुन प्रकट रूप मे वाणी के रूप मे कहता है। इन दोनो ही प्रकार की आकाशवाणी का भाव यह है कि ईश्वर की ओर से ऐसे आदेश प्राप्त होते है, या ऐसे ज्ञान का प्रकाश होता है जो साधारण अवस्था मे किसी योग्य से योग्य व्यक्ति को भी नही हो सकता।

मनोवैज्ञानिक खोज ने धार्मिक सिद्धान्तो की छान-बीन और विभिन्न धर्मो की परस्पर तुलना तथा मनुष्य के मन मे धार्मिक भावना के अस्तित्व मे आने की ऐतिहासिक खोज ने ऐसे अल्हाम को एक अद्भुत बात कहा है। परन्तु एक अन्य रूप मे ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति को वैज्ञानिक तथा दार्शनिक शोधकर्ता मानते है और महान कवियो, सन्तो तथा महापुरुषो के अनुभवो से यह बात सिद्ध होती है कि जब किसी पवित्र महापुरुष का मन सर्वव्यापक मन, सर्वशक्तिमान के साथ एक रूप हो जाता है, अथवा भक्ति की आनन्दमय स्थिति मे कहिये कि जब वाहिगुरु के चरणो से प्रेम हो जाता है तो जीव को ईश्वर की अभेदता का अनुभव होता है। उस एकता, अभेदता तथा मिलन की अवस्था मे गुरु पीर जो कुछ कहता है वह ईश्वर प्रदत्त सच्चाई होती है। यह अनुभव जन्य अल्हाम है। ऐसी स्थिति मे परम तत्व तथा परम सत्य की झलकिया मिलती है। इनको प्राप्त करने पर मन वाणी के रूप मे उच्चरित होता है और यह वाणी फिर ईश्वरीय वाणी होती है। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने ऐसे अल्हाम का प्रसग अपनी पुस्तक "रिलेजन आफ मैन" पृष्ठ ७६

पर दिया है। इस स्थिति मे जो सच्चाइया तथा जो प्रकाश होना है वह मनुष्य को अन्य किसी अवस्था मे उसके किसी प्रयत्न के साथ भी नही होता। इसी रूप मे गुरबाणी ईश्वरीय वाणी है। परन्तु पुस्तक के पहले अध्याय मे 'विचार सग्राम" नामक शीर्षक के अन्तर्गत गुरबाणी की वे पक्तिया लिखी गई हैं, जिनमे उपर्युक्त विचार की पुष्टि होती है। बिल्कुल उन्ही अक्षरो का उल्हाम, अथवा वास्तविक अर्थो मे आकश-बाणी यानि कि आकाश से वाणी उतरे और वह अक्षरअक्ष आवाज केवल पैगम्बर या पीर को ही सुनाई दे तथा वह वही आगे अन्य लोगो को बताए। इस प्रकार की आकाशवाणी का परिणाम कुरान शरीफ कहा जाता है। यद्यपि मुसलमानो मे ऐसे विद्वान हैं जो कि अक्षरो का ऊपर से उतरना नही मानते परन्तु फिर भी विचारो का ईश्वर से आना मानते हे और उन विचारो का आगे चल कर गुरु अवतार अपने अक्षरा-शब्दो मे प्रचार करता है। मिरजा गुलाम अहमद कादिया की एक रचना से यह भी सिद्ध होता है कि मिरजा साहिब को एक बार अग्रेजी बोली मे आकाश वाणी हुई यद्यपि वे अग्रेजी का एक शब्द भी नही जानते थे। विचारो के अल्हाम अथवा गरु साहिब के दैवी अनुभव मे से ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश होना और उसे बोली मे बताना यह गुरबाणी की रचना थी तथा गुरु ग्रन्थ साहिब इसी रूप मे ही अल्हामी ग्रन्थ है।

(च) आदि ग्रथ को गुरु मानना

इस पुस्तक मे जहा कही भी आदि ग्रन्थ अथवा ग्रन्थ शब्द का प्रयोग हुआ है वह श्री आदि ग्रन्थ साहिब के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस आदि ग्रन्थ को, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, गुरु का पद सकलित करते समय गुरु अर्जुन देव ने ही दे दिया था, परन्तु औपचारिक ढग से श्री आदि ग्रन्थ को गुरु पद श्री दशमेश जी ने अपने स्वर्गारोहण के कौतुक के समय सन् १७०८ ई० मे दिया था।

इस औपचारिक निश्चय के बिना आदि ग्रन्थ को गुरु इसलिए

कहा जाता है कि इसका पाठ्य विचार हमारे परमानन्द की प्राप्ति के मार्ग पर प्रकाश डालता है। यह ग्रन्थ सिक्ख का पथप्रदर्शन करता है। इसलिए गुरु है। गुरु से भाव है— प्रकाश करने वाला या मार्ग दिखाने वाला। अपने पाँच तत्त्व वाले शरीर मे भी गुरु सिक्ख का पथ प्रर्शन अथवा नेतृत्व वचनो एव वाणी द्वारा करता है। उस समय श्रवणेन्द्रियो द्वारा उपदेश सिक्खो तक पहुचता है। जब वह पांच तत्वो वाला शरीर नही रहा तो वह वचन लिखित रूप मे ग्रन्थ के रूप मे हमारे सम्मुख है। यह वचन अथवा गुरुवाणी अब आँखो द्वारा पाठ करके भी पथप्रर्शन कर सकती है और साथ ही अच्छी सगति मे कानो द्वारा सुन कर भी। "सुनते पुनीत, कहते पवित" दोनो साधन प्रामाणिक है।

गुरु साहिब कहते है (गउडी सुखमनी)

जिउ मन्दर कउ थामे थम्मनु।
तिउ गुर का सबदु मनहि असथम्मनु।

भाव यह कि जैसे कमरे को छत्त को थम्म का सहारा होता है उसी प्रकार मन को गरु की वाणी का आश्रय होता है। गुरु जी ने यह भी बताया है 'पोथी परमेश्वर का थान' (सारग महला ५)। भाव यह कि ईश्वर के वास्तविक ज्ञान का साधन ग्रन्थ है, इसलिए ग्रन्थ का सत्कार, आदर तथा सम्मान जितना कोई करेगा उतना ही उसका मन उस ग्रन्थ से लाभ उठाने के लिए "रिसैपटिव' गुणग्राही होगा। यह बात तो मनोवैज्ञानिक नियमो के आधार पर भी स्पष्ट एव सर्वमान्य है।

गुरु ग्रन्थ साहिब को आदि ग्रन्थ भी कहते है। पीछे एक अन्य ग्रन्थ की भी रचना हुई जिसे दशमग्रन्थ कहते है। शिष्टाचार वश पाचवे गुरु साहिब वाले ग्रन्थ को आदि ग्रन्थ भाव पहला ग्रन्थ कहते है तथा दूसरे को श्री दशम ग्रन्थ। ग्रन्थ का पूरा शोर्षक "आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी" है। 'श्री' 'जी' 'साहिब' ये परम सत्कार के सूचक शब्द है। ग्रन्थ से भाव बडी पुस्तक है।

---

२. श्री दशम ग्रन्थ

पुस्तक (ग्रथ) का पूरा नाम जो इस समय मेरे सम्मुख है "श्री दशम ग्रथ साहिब है' और गुरमत प्रैस अमृतसर की छपी है। इस ग्रथ का सविस्तार विवेचन करने की हमे यहा आवश्यकता नही क्योकि सैद्धातिक विषयो की खोज के लिए मै ने इस ग्रथ का अधिकतर प्रयोग नही किया। जहा तक परम सत्यवादो विचार का सम्बन्ध है गुरु गोबिन्द सिह जी जिनकी रचना इस ग्रथ मे दी हुई है, के विचार पहले नौ गुरुओ से किसी प्रकार भिन्न नही थे। इसलिए आदि ग्रथ मे इस विषय पर सग्रहीत विचार श्री दशम ग्रथ के विचार से मिलते है। इसमे सन्देह नही कि गुरु गोबिन्द सिह जी ने ईश्वर के नामो मे कुछ ऐसी वृद्धि की है जो अकाल पुरुष के शक्ति अग को प्रकट करते हैं और शूरवीरो की भावनाओ से भली भान्ति मिलते है। इन नामो का विचार उचित स्थान पर ही किया जाएगा।

गुरु गोबिन्द सिह जी द्वारा प्रचारित निश्चयो तथा कर्तव्यो का भाव लोगो ने भिन्न भिन्न रूप मे ग्रहण किया है। कई तो टरम्प तथा मैकनिकाल जैसे यह कहते है कि गुरु गोबिन्द सिह जो सिक्ख धर्म के केन्द्र मे हिन्दु रहन-सहन, आचार-व्यवहार तथा निश्चयो को लाए और सिक्खो को हिन्दुओ मे जा मिलाया। इससे सर्वथा विपरीत यह विचार भी है कि गुरु गोबिन्द सिह जो ने सिक्खो को हिन्दुओ से बिल्कुल अलग कर दिया। यह मत मैल्कम, कैनिघम तथा मैकालिफ आदि ने प्रस्तुत किया है। फिर यह भी कहा गया है कि गुरु गोबिन्द सिह जी की शिक्षा प्राप्त करके सिक्ख सकीर्ण तथा सहनशीलता से रिक्त हो गए। दूसरी ओर जेकूमैंट जैसे लिखते हैं कि सिक्ख बडे सहृदय, सहनशील, कट्टरतापन से सर्वथा रहित सीधे-सरल स्वभाव वाले तथा पवित्र आचरण वाले ईमानदारो से पूर्ण है।

दशम ग्रथ मे कुछ ऐसी रचनाये भी है जिन मे गुरु साहिब ने

पौराणिक कथाओ आदि का वर्णन किया है। चू कि सिक्ख धर्म भारत मे उत्पन्न हुआ, फला फूला और हिन्दु वातावरण मे विकसित हुआ इसलिए सिक्खो को समझने के लिए हिन्दु सस्कारो, हिन्दु कथा-कहानियो की जानकारी आवश्यक थी। आदि गुरु ग्रथ साहिब मे इन कथाओ एव कहानियो की ओर कई सकेत हैं। पहले इनके सम्बन्ध मे जानकारी सस्कृत ग्रन्थो से होती थी। गुरु दशमेश जी की रचनाये तथा वह समस्त विद्या-भण्डार सिक्खो की सूझ के लिए गुरुमुखी लिपि मे उनके हाथो मे दे दिया गया। श्री आदि ग्रन्थ के विचार के लिए इन समस्त बातो का जानना आवश्यक था। इस प्राचीन माइथालोजी (मिथ्यास) का दशम ग्रन्थ मे सार दे देना इस बात को प्रकट नही करता कि इनका रचयिता गुरु गोबिन्द सिंह इनकी प्रामाणिकता को मानता है। यह तो केवल (शुद्ध) विचार तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया गया था। श्री आदि ग्रथ मे कई पुरातन निश्चयो की निन्दा की गई है। ऐसे निश्चयो की वास्तविकता को जानना आवश्यक था। यह सब कुछ श्री दशम ग्रन्थ मे से प्राप्त हो सकता है। ईसाई मत के प्रचारको ने ससार के प्रसिद्ध धर्मो को धार्मिक पुस्तको के अनुवाद किए और कर रहे हैं। ऐसा करना अपनी सूझ, धर्मो की पारस्परिक तुलना के लिए तथा अपने धर्म को भली प्रकार समझने के लिए ज़रूरी है। इसका भाव यह नही कि ऐसे प्रचारक दूसरे धर्मो की ओर झुकाव रखते हैं, अथवा अपना धर्म छोडकर दूसरे को ग्रहण करते हैं। यह तो केवल वैज्ञानिक भावना से तथा परस्पर विचार के आधार पर किया जाता है।

श्री दशम ग्रथ के रचयिता (व्यक्ति सम्बन्धी) के सम्बन्ध मे भी कुछ मतभेद हैं। कई विद्वान तो जिनमे मेकालिफ भी है यह विचार प्रस्तुत करते है कि दशम ग्रन्थ मे दी गई वाणी बहुधा उन कवियो की है जो गुरु दशमेश के दरबार मे रहा करते थे। इस ग्रन्थ मे कुछ थोडी वाणी गुरु गोबिन्द सिंह जी की भी है, परन्तु अधिकतर उनके कवियो की है। दूसरे विचार को मानने वाले, जिनमे निरमले भी सम्मिलित है, यह कहते है कि श्री दशमग्रन्थ पूर्ण रूप मे श्री दशमेश जी द्वारा रचित है। इसकी रचना से गुरु साहिब का भाव यह नही था कि

आदि ग्रन्थ की तुलना मे एक अन्य ग्रन्थ रखा जाए, अपितु आदि ग्रन्थ के पदार्थो पर (विषय वस्तु) विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला जाए। कुछ एक विद्वान ऐसे भी है जो कहते है कि श्री दशम ग्रन्थ मे संग्रहीत वाणी सिवाय पखियान चरित्र अथवा त्रियाचरित्र के सारी ही गुरु गोविन्द सिंह जी द्वारा रचित है। गुरु होकर किस प्रकार वे त्रियाचरित्र की रचना कर सकते है। परन्तु जो संस्करण हमारे सम्मुख है उसमें इस वाणी का शीर्षक इस प्रकार दिया है —

"अथ पखयान चरित्र लिखयते। पातशाही १०।" पातशाही दसवी से भाव यह है कि इस वाणी के रचयिता दसवे पातशाह गुरु गोविन्द सिह महाराज है। परन्तु इतने पर इस वाणी के रचयिता का पता नही लग सकता। छापने छपवाने मे कई परिवर्तन हो जाने सम्भव है। यह समस्या शोध की अपेक्षित है और पूरी तरह हम बात की छान-बीन नही कर सकते और न ही यह खोज हमारे वर्तमान उद्देश्य के साथ किसी प्रकार समय का सम्बन्ध रखती है।

श्री दशम ग्रन्थ मे प्रयुक्त वाणियो को हम निम्नलिखित शीर्षको मे विभक्त कर सकते है —

१	जाप	पृष्ठ १—११
२	अकाल उसतत	,, ११—३९
३	वचित्र नाटक	,, ३९—११८
४	वार श्री भगौती जी की	,, ११९—१२७
५	ज्ञान प्रबोध	,, १२७ १५४
	अवतारो की कथा	,, १५५—७०८
७	राग रामकली	,, ७०९—७१२
८	सवैय्ये	,, ७१२—७१६
९	सिक्खो के सम्बन्ध मे	,, ७१६—७१७
१०	शस्त्र नाम माल	,, ७१७—८०८
११	पखियान चरित्र	,, ८०९—१३५९
१२	जफरनामा	,, १३५९—१४२७

३. भाई गुरदास जी की रचना

भाई गुरदास जी की वारे तथा, कथित सवैय्ये विशेष प्रसिद्ध पुस्तक हैं। भाई साहिब की वारो को तो श्री आदि गुरु ग्रथ साहिब की कुजी कहा जाता है। यह पदवी गुरु अर्जुन देव जी के अपने मुखारविन्द से दी गई बताई जाती है। भाव यह कि गुरबाणी सिद्धात के विचार तथा सिक्ख आचार व्यवहार पर भाई साहिब की रचनाओ मे बहुत विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। भाई साहिब के सम्बध मे पहले अध्याय मे विचार हो चुका है।

दूसरा भाग

सिक्ख धर्म

का

दूसरे धर्मों से सम्बन्ध

चौथा अ याय

सि धर्म की पृष्टभूमि

१. अवतारों । आगमन

"किसी दार्शनिक मत की व्याख्या करने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे विचार पूर्वक एव विस्तार-पूर्वक जाच की जाए। हम* ससार मे कोई ऐसा आन्दोलन अथवा मत प्रस्तुत नही कर सकते जो शतप्रतिशत नया हो, अर्थात् जिसका अपने वातावरण के साथ अथवा तत्कालीन या उससे पूर्व के मतो के साथ कोई सम्बन्ध न हो। भूत वर्तमान मे बदल जाता है और वर्तमान स्वाभाविकत भविष्य का रूप धारण कर लेता है। हैनरो बर्गसन के कथनानुसार परिवर्तन का नियम निश्चित् निरन्तर तथा सर्वव्यापक है। सद्गुरुओ ने इसी सत्य को 'चलायमान' शब्द द्वारा सम्बोधित किया है। परन्तु यह परिवर्तन सदा स्वत सिद्ध नही हो रहा। जड पदार्थो मे प्राकृतिक नियमानुसार जो परिवतन होता है, वह स्वत सिद्ध है और उसका अनुमान पहले ही लग सकता है, परन्तु जब चेतन मन इस प्राकृतिक ससार मे दखल (हस्तक्षेप) देता है तो जड-प्रकृति की स्वत सिद्धता मे अन्तर पड जाता है। प्रकृति के वेग मे विघ्न पड जाता है। जितनी देर मन अथवा चेतन तत्व इस वेग से दूर था उतनी देर इस वेग के लिए भूत, भविष्य, वर्तमान कोई अर्थ नही रखते थे। समय का अनुभव त्रिकाल का अस्तित्व और काल का ज्ञान मन† करता है। प्रकृति के

---

* W Windleband History of Philosophy

† मन से भाव यहा Mind है। यह अन्त करण के किसी भाग का नाम नही।

प्रसार में जब मन अथवा चेतन सत्ता प्रकट रूप धारण करती है तो परिवर्तन मे भी परिवर्तन आ जाता है। जिस लेखनी और स्याही से मैं लिख रहा हू यदि मैं इनको रख कर प्राकृतिक नियम पर छोड दू तो यह लेखनी पाच पचास सौ या पाच सौ वर्ष मे नष्ट हो जाएगी और स्याही तो एक दो दिन मे सूख कर हवा के सग कही उडने की तैयारी कर लेगी। परन्तु अपनी चेतन सत्ता के सहारे मै लेखनी को ठीक तथा स्याही को जीवित रखने का प्रयत्न करता हू। दूसरे अर्थो मे मेरे मन के हस्तक्षेप से प्राकृतिक वेग मे विघ्न पड गया। इसी विघ्न डालने वाली शक्ति के कारण ही हमारा अस्तित्व बना हुआ है, हमारा स्वास्थ्य ठीक है और मानव प्रगति कायम है।

इसी विषय पर थोडा मतभेद भी है। कुछ तो कहते हैं कि मन प्राकृतिक वेग से बाहर नही। परिवर्तन के निश्चित नियम मे जैसे एक पत्थर बन्धा हुआ है, उसी प्रकार ही मन भी वश मे है। कई यह कहते हैं कि नही, मन स्वतत्र है। प्रकृति के वेग को यह वश मे कर सकता है परन्तु उसके वश मे नही। तीसरी श्रेणी के वे विचारक भी है, जो कहते हैं कि मन प्रकृति के वेग मे होता हुआ कुछ अपनी शक्तिया रखता है। उन शक्तियो के सहारे इसके कार्यो मे विशुद्ध नवीनता आ सकती है और नव-रचना का कारण बन सकता है। परन्तु ये शक्तिया आस पास के बन्धनो के कारण अच्छी प्रकार सफल नही हो सकती इसी लिए इसके कार्यो मे नवीनता है भी और नही भी।

मन की जो दशा प्राकृतिक वेग मे होती है, अर्थात बदलना और बदलाना, वही दशा इसको अपनी मानसिक दुनिया मे है। जिस प्रकार जड पदार्थ प्राकृतिक वेग मे परिवर्तित होते चले आते हैं, उसी प्रकार मानव मन भी चिरकाल से बनता बनाता चला आ रहा है, जिसके कारण प्रारम्भ से एक मानसिक प्रणाली बनी हुई है और बनती चली जा रही है। हमारे और आपके मन इस श्रृङ्खला के साथ जुडते, बिछडते, कुछ प्रभाव देते चले जा रहे है। धर्म, कला, दर्शन, विद्या तथा विज्ञान इसी मानसिक प्रणाली के भिन्न भिन्न स्वरूप है। इस प्रणाली मे पगम्बर, अवतार, औलिए, आलम, फाज़ल (शिक्षक, विद्वान) प्रकट तथा लुप्त होते रहते हैं।

ये अवतार तथा औलिए ससार मे आकर यहां के मानसिक

वेग के प्रवाह मे कुछ अपनी ओर से वृद्धि कर जाते है, या उस प्रवाह की त्रुटियो को दूर करके वे प्रवाह का मार्ग बदलने का प्रयत्न करते है। यह कभी नही हुआ कि कोई शक्ति ऐसी प्रकट हो जो वेग को रोक दे और आगे से सर्वथा नवीन मानसिक वेग चला दे।

इस विचार को मानने वाले भी तीन श्रेणियो मे बाटे जा सकते हैं। एक तो वे लोग है जो कहते हैं कि पैगम्बर, अवतार तथा गुरु आदि सब अपनी परिस्थितियो के अधीन होकर कार्य करते हैं। उनकी रचनाये, विचार तथा आरम्भ किए हुए आन्दोलनो पर उनके वातावरण (परिस्थितियो) का विशेष प्रभाव पड़ा होता है। दूसरे, वे पक्के श्रद्धालू तथा कट्टर पथी हैं जो यह कहते है कि पैगम्बर तथा अवतार बिल्कुल नये विचार लेकर आते हैं, और उन विचारो पर किसी पुराने आन्दोलन या रचना, या मत मतान्तर का प्रभाव नही पडा होता। तीसरे वे लोग हैं जो कुछ नवीन खोजो तथा वैज्ञानिक आलोचना से जानकारी रखते हैं और नही भी। भला इस अस्पष्ट वक्तव्य का क्या अभिप्राय? इसका भाव यह है कि प्रत्येक गुरु अवतार अपने समय के लोगो की मानसिक सदाचारक तथा आध्यात्मिक स्थिति (अवस्था) को देख कर उसके अनुसार कोई मार्ग या पथ जनता के सम्मुख रखता है। यहा तक तो उनकी रचना पर उनके वातावरण का प्रभाव है अथवा समय की परिस्थितियो के अधीन हैं। परन्तु जो मार्ग अथवा रचना जनता के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है और जिस रूप मे वह प्रस्तुत की जाती है वह बहुत सीमा तक नवीन और विलक्षण होती है। इस प्रकार ही मैं गुरु साहिब के चलाए हुए मार्ग, या उनके द्वारा आई हुई ईश्वरीय वाणी को समझता हू। इस मार्ग मे कई पुराने प्रभाव हैं तथा कई नए।

इसमे सन्देह नही कि कई सज्जनो का निश्चय दूसरी श्रेणी वालो का है और उन्हे तृतीय श्रेणी का निश्चय इतना अच्छा नही लगेगा। फारनल* के कथनानुसार जो विद्वान यह कहेंगे कि अमुक पैगम्बर या अवतार की शिक्षा मे अमुक बात अमुक धर्म से मिलती है, और सम्भव है कि वह बात उसी धर्म से ही ली गई हो, साधारण कट्टर पथी उनका विरोध करेंगे। भले ही ये विचारक मत-मतान्तरो

* Attributes of God by Farnell

प्रसार में जब मन अथवा चेतन सत्ता प्रकट रूप धारण करती है तो परिवर्तन मे भी परिवर्तन आ जाता है। जिस लेखनी और स्याही से मै लिख रहा हू यदि मैं इनको रख कर प्राकृतिक नियम पर छोड दू तो यह लेखनी पाच पचास सौ या पाच सौ वर्ष मे नष्ट हो जाएगी और स्याही तो एक दो दिन मे सूख कर हवा के सग कही उडने की तैयारी कर लेगी। परन्तु अपनी चेतन सत्ता के सहारे मै लेखनी को ठीक तथा स्याही को जीवित रखने का प्रयत्न करता हू। दूसरे अर्थों मे मेरे मन के हस्तक्षेप से प्राकृतिक वेग मे विघ्न पड गया। इसी विघ्न डालने वाली शक्ति के कारण ही हमारा अस्तित्व बना हुआ है, हमारा स्वास्थ्य ठीक है और मानव प्रगति कायम है।

इसी विषय पर थोडा मतभेद भी है। कुछ तो कहते हैं कि मन प्राकृतिक वेग से बाहर नही। परिवर्तन के निश्चित नियम मे जैसे एक पत्थर बन्धा हुआ है, उसी प्रकार ही मन भी वश मे है। कई यह कहते हैं कि नही, मन स्वतत्र है। प्रकृति के वेग को यह वश मे कर सकता है परन्तु उसके वश मे नही। तीसरी श्रेणी के वे विचारक भी है, जो कहते हैं कि मन प्रकृति के वेग मे होता हुआ कुछ अपनी शक्तिया रखता है। उन शक्तियो के सहारे इसके कार्यों मे विशुद्ध नवीनता आ सकती है और नव-रचना का कारण बन सकता है। परन्तु ये शक्तिया आस पास के बन्धनो के कारण अच्छी प्रकार सफल नही हो सकती इसी लिए इसके कार्यों मे नवीनता है भी और नही भी।

मन की जो दशा प्राकृतिक वेग मे होती है, अर्थात बदलना और बदलाना, वही दशा इसकी अपनी मानसिक दुनिया मे है। जिस प्रकार जड पदार्थ प्राकृतिक वेग मे परिवर्तित होते चले आते हैं, उसी प्रकार मानव मन भी चिरकाल से बनता बनाता चला आ रहा है, जिसके कारण प्रारम्भ से एक मानसिक प्रणाली बनी हुई है और बनती चली जा रही है। हमारे और आपके मन इस शृङ्खला के साथ जुडते, बिछडते, कुछ प्रभाव देते चले जा रहे हैं। धर्म, कला, दर्शन, विद्या तथा विज्ञान इसी मानसिक प्रणाली के भिन्न भिन्न स्वरूप है। इस प्रणाली मे पगम्बर, अवतार, औलिए, आलम, फाजल (शिक्षक, विद्वान) प्रकट तथा लुप्त होते रहते हैं।

ये अवतार तथा औलिए ससार मे आकर यहां के मानसिक

वेग के प्रवाह मे कुछ अपनी ओर से वृद्धि कर जाते है. या उस प्रवाह की त्रुटियो को दूर करके वे प्रवाह का मार्ग बदलने का प्रयत्न करते हैं। यह कभी नही हुआ कि कोई शक्ति ऐसी प्रकट हो जो वेग को रोक दे और आगे से सर्वथा नवीन मानसिक वेग चला दे।

इस विचार को मानने वाले भी तीन श्रेणियो मे बाटे जा सकते हैं। एक तो वे लोग है जो कहते हैं कि पैगम्बर, अवतार तथा गुरु आदि सब अपनी परिस्थितियो के अधीन होकर कार्य करते है। उनकी रचनाये, विचार तथा आरम्भ किए हुए आन्दोलनो पर उनके वातावरण (परिस्थितियो) का विशेष प्रभाव पड़ा होता है। दूसरे, वे पक्के श्रद्धालु तथा कट्टर पथी हैं जो यह कहते है कि पैगम्बर तथा अवतार बिल्कुल नये विचार लेकर आते हैं, और उन विचारो पर किसी पुराने आन्दोलन या रचना, या मत मतान्तर का प्रभाव नही पडा होता। तीसरे वे लोग हैं जो कुछ नवीन खोजो तथा वैज्ञानिक आलोचना से जानकारी रखते हैं और नही भी। भला इस अस्पष्ट वकतव्य का क्या अभिप्राय? इसका भाव यह है कि प्रत्येक गुरु अवतार अपने समय के लोगो की मानसिक सदाचारक तथा आध्यात्मिक स्थिति (अवस्था) को देख कर उसके अनुसार कोई मार्ग या पथ जनता के सम्मुख रखता है। यहा तक तो उनकी रचना पर उनके वातावरण का प्रभाव है अथवा समय की परिस्थितियो के अधीन हैं। परन्तु जो मार्ग अथवा रचना जनता के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है और जिस रूप मे वह प्रस्तुत की जाती है वह बहुत सीमा तक नवीन और विलक्षण होती है। इस प्रकार ही मैं गुरु साहिब के चलाए हुए मार्ग, या उनके द्वारा आई हुई ईश्वरीय वाणी को समझता हू। इस मार्ग मे कई पुराने प्रभाव है तथा कई नए।

इसमे सन्देह नही कि कई सज्जनो का निश्चय दूसरी श्रेणी वालो का है और उन्हे तृतीय श्रेणी का निश्चय इतना अच्छा नही लगेगा। फारनल* के कथनानुसार जो विद्वान यह कहेगे कि अमुक पैगम्बर या अवतार की शिक्षा मे अमुक बात अमुक धर्म से मिलती है, और सम्भव है कि वह बात उसी धर्म से ही ली गई हो, साधारण कट्टर पथी उनका विरोध करेंगे। भले ही ये विचारक मत-मतान्तरो

* Attributes of God by Farnell

की तुलना कितनी ही सच्चाई तथा श्रद्धा भाव से करें फिर भी इस बात का यह प्रभाव अवश्य होगा कि पढ़ने सुनने वाले यह बात मान जायेंगे कि जिस धर्म को वे बिल्कुल नया तथा विचित्र मानते आए थे, उसमे भी दूसरे धर्मो का कुछ अश है तथा उस धर्म की कई बातें प्रस्तुत हैं। यह तुलना उनके उस निश्चय के विपरीत बैठेगी जिसका भाव यह था कि जिस मत के वे उपासक है वह सीधा ही ईश्वर से एकदम नया, पवित्र तथा अद्वितीय आया है। ईसाई धर्म के सम्बन्ध मे अन्धविश्वासियो का यह विचार सैंकडो वर्ष बना रहा। परन्तु विद्वानो के नवीन अनुसन्धानो ने यह सिद्ध कर दिया है कि ईसाई धर्म के बहुत से रीति रिवाज, विश्वास तथा निश्चय प्राचीन धर्मो एव सस्कारो से लिए गए हैं, या उन्हे परिवर्तित करके किसी अन्य उचित रूप मे प्रस्तुत किया है। ईसाई धर्म पर कम से कम पुरातन छ सात धर्मों का प्रभाव प्राय सिद्ध किया जा चुका है। यही दशा शेष धर्मो की है।

प्रत्येक पैगम्बर या अवतार अपने समय के लोगो के निश्चयो से कछ न कुछ ग्रहण करता है। यह आवश्यक नही कि वह अवतार पुराने निश्चयो को अपना लेता है। वल्कि यह आदान प्रदान दो प्रकार स देखने मे आता है। एक तो यह कि किसी पुराने निश्चय को सुधार कर अपना लिया। दूसरा यह कि जन साधारण अथवा प्रचलित धर्मों के कई निश्चय इस प्रकार विपरीत एव निस्सार होते है कि गुरु अवतार को उनके विरुद्ध बडी ऊंची आवाज से लोगो को चेतावनी देनी पडती है। भले ही यह आवाज पहले निश्चय के विपरीत है, परन्तु प्रभाव तो उसी निश्चय का ही है। ऐसे निश्चयो का प्रभाव उल्टा पडता है, और उचित निश्चयो का सीधा प्रभाव पडता है। सीधा हो या उल्टा परन्तु गुरु अवतार की शिक्षा का कारण तो वह पुराना निश्चय ही है। यह है महापुरुषो पर उनकी समसामयिक परिस्थितियो का प्रभाव। हज़रत मुहम्मद साहिब का ही उदाहरण लें। जिस कुरैश सम्प्रदाय मे वे उत्पन हुए थे उसका एक देवता अल्ला* था। हज़रत साहिब ने इस अल्ला को, देवते की शक्ति को इतना ऊचा किया कि उन्होने कहा, "ला इला, इल लिल्ला" (नही है कोई दूसरा विना अल्ला के)। उस अल्ला को ताला, पाक, ला-मका, ला जमा

---

*Sacred Books of the East, Vol VI, P XII, by E H Palmer

आदि कहा। यह पिछले विचार का सुधार था। इसमे पुराना पन भी है और नया पन भी। इसी प्रकार हजरत साहिब के पूर्वज सब बुतो की पूजा (मूर्ति पूजा) करते थे। इस विचार का उल्टा प्रभाव पडा। मूर्तियो को उन्होने तोडा और अल्ला की शक्ति को ला-मकाँ तथा ला-ज़मा कहा। एक पुराने विचार ने प्रभावित किया और नई विपरीत बात निकली।

अब हमने देखना है कि सिक्ख धर्म मे, सिद्धान्त पक्ष मे, मार्ग पक्ष मे तथा निश्चय-रहित पक्ष मे गुरुओ के समय के मत-मतान्तरों के सिद्धान्तो एव निश्चयो आदि का कितना प्रभाव है, उल्टा या सीधा। दूसरे अर्थों मे सिक्ख धर्म की हमने हिन्दु धर्म के सम्प्रदायो, बुद्ध धर्म, जैन धर्म, इस्लाम, ईसाई मतो आदि से तुलना करनी है ताकि ज्ञात हो सके कि हम कहा खडे हैं अथवा हमारी स्थिति क्या है।

---

२. जीवन-कला

धार्मिक पूर्वजो, अवतारो तथा पैगम्बरो के विचारो में मत-भेद देखते हुए भी हमे यह बात कदाचित नही भूलनी चाहिए कि समस्त प्रमुख ईश्वरीय धर्मो की प्रारम्भिक सच्चाइया (आधारभूत-सत्य) अथवा समस्त धर्मों के केन्द्रीय निश्चय या समस्त धर्मो की आत्मा एक है। जो वास्तविक सत्य है, वह बहुत मात्रा मे किसी न किसी रूप मे प्रत्येक धर्म मे विद्यमान है और इन सच्चाइयो (सत्य) का सभी पैगम्बर तथा अवतार सत्कार करते आए हैं। इस सर्वसमम्त सत्य के सत्कार का प्रमाण श्री दशमेश पिता के इन महावाक्यो से अच्छा हम अन्य कही नही पाते —

"करता करीम सोई राज़क रहीम उई।
दूसरो न भेद कोई भूल भरम मान वो।
एक ही की सेव एक, सभही को गुरदेव एक,
एक ही सरप सभै एकै जोत मान बो।

यही पर बस नही, भिन्न-भिन्न पूजा उपासना को विधियो मे भी गम्भीर दृष्टि से देखने पर समानता प्रतीत होती है, जैसे—

देहरा मसीत साई, पूजा औ नमाज़ उई।
मानस सभै एक, पै अनेक को प्रभाव है।
देवता अदेव जच्छ, गन्धरव तुरक हिन्दु।
निआरे-२ देसन के भेस को प्रभाव है।

जाति भेद, कुल भेद, नसल भेद तथा असला भेद को मिटा कर मानवता को एक बताने का डका वजाना और यह कहना —

मानस की जात सभै एकै पहिचान वो।

एक ऐसी महान तथा पवित्र भावना का प्रमाण देना है जो कि समग्र ससार के किसी साझे पथ प्रदर्शक नेता और अवतार मे होनी

अपेक्षित है। इन बाह्य भेदो, विभाजन एव अन्तर मे आन्तरिक अभेदता और एकता को अनुभव करना, खोजना और अपनाना मानवता है जो प्रत्येक गुरु अवतार ने हमे प्रदान की।

सनातन सत्य एक है, और समस्त गुरु अवतार इसका सत्कार और प्रचार करते आए हैं। फिर क्यो बार-बार गुरु पैगम्बर की आवश्यकता पडती रही? कारण यह कि मनुष्य अपने अह एव असत्य के अत्याचार से इस सत्य को पर्दे के पीछे बन्द कर देता है। इसकी किरणें मनुष्यो के मन को प्रकाशमान नही कर पाती। मनुष्यो के मन भी उसी मैं मेरी के कला स्वरूप इतने टेढे हैं, कि वह सच्चाई को वास्तविक रूप मे ग्रहण कर ही नही सकते। परिणाम यह निकलता है कि —

सरम धरम दोइ छप्प खलोए,
कूड फिरै प्रधान वे लालो।

ऐसे समय मे अत्याचार, पापाचार का फैलाव इतना फैलता है कि निरन्तर सत्य की कला लुप्त हो जाती है और गिरते प्रवाह मे मनुष्य पथभ्रष्ट हो जाता है। ऐसा नही कि यह कला मिट जाती है और मनुष्य के कुकर्मो से इस काल का स्वरूप इतना बिगड जाता है कि वास्तविक कला दिखाई ही नही पडती। फलस्वरूप जिज्ञासु को कहना पडता है —

हुउ भाल विकुन्नी होई, अन्धेरै राह न कोई।

ऐसी स्थिति मे जिज्ञासुओ को आवश्यकता अनुभव होती है, ताकि उस सत्य-काल की नब्ज देख कर उसे पुन 'नारमल' करें अथवा वास्तविक रूप मे लायें। गीता जी मे यही भाव श्री कृष्ण जी महाराज ने यह कह कर प्रकट किया था कि जब कभी ससार मे उपद्रव होता है तो मैं अवतार धारण करता हू।

सत्य-कला का पारा इस ससार मे न सदा ऊपर की ओर चलता रहता है और न ही सदा नीचे गिरता रहता है। जब बहुत नीचे गिरने लगता है तो कलास्रोत (वाहिगुरु) स्वय ही किसी महापुरुष द्वारा इस गिरती कला को ऊचा उठाने के लिए "वैद्य' उत्पन्न करता है। वह रोग ढूण्डता है और दवाई देता है। सत्यकला फिर अपने 'नारमल' (स्वाभाविक) मार्ग पर आकर ऊपर चढने लग पडती है।

इस कला के कई पहलु है। जीवन कोई सीधी सरल वस्तु नही। यह एक पेचीदा गोरखधन्धा है। इसके अनेक हेर फेर है। लक्ष्य चाहे एक है, परन्तु प्रसार बडा है। इस समस्त फैलाव मे वही कला कार्य करती है भले ही उसके रूप भिन्न भिन्न है। इन विभिन्न रूपो को आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक धार्मिक आदि नामो से सम्बोधित किया जाता है। जिस प्रकार इन सभी रूपो मे एक ही कला कार्य करती है उसी प्रकार जीवन के समस्त प्रसार का मूल तथा प्रारम्भिक लक्ष्य भी धार्मिक पहलु मे है। यदि यह कला नारमल हो जाए तो समझो केन्द्रीय सरकार स्थापित हो गई है। परन्तु इस कला को ऊचा करने मे हमारे जीवन के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक पहलु काम करते हैं, उसी प्रकार इसे गिराने मे भी ये समस्त कारण बन जाते है। इस कला को ऊपर चढने से अकेला-अकेला कोई अग भी रोक सकता है और सारे मिल कर भी। जैसे किसी के शरीर मे अकेली गर्मी के कारण भी रोग उत्पन्न हो सकता है, अकेली वात के बढने पर भी। परन्तु यदि गर्मी, वात, और शुष्कता आदि सब मिल कर रोग उत्पन्न करे तो समझो रोग पेचीदा हो गया। भाव यह है कि आत्मा जीवन की आरोग्यता को, या कहो सत्य-कला के चढते पारे को आर्थिक हानि भी गिरा सकती है और सामाजिक भी, राजनैतिक दासता भी इसके मार्ग का रोडा बन सकती है, और नैतिक पतन भी। ये सब अकेले-अकेले भी और मिलकर भी। पहली अवस्था मे रोग सादा और उपचार सरल तथा दूसरी मे रोग पेचीदा तथा उपचार भी कठिन और लम्बा। वर्तमान समय मे हम भारतीयो को दूसरी प्रकार का रोग चिपटा हुआ है।

कला को जन्म देने वाले वे महापुरुष हैं जो जीवन के विभिन्न पहलुओ की गिरावट को अनुभव करके उसके कारण को ढूण्डते है तथा उसको ऊपर उठाने मे प्रयत्नशील रहते है। यदि हमारी वैज्ञानिक कला नीचे गिरती है तो चरक, बोस, रामन या न्यूटन एनसटाइन उत्पन्न हो जाते हैं। यदि हमारी आर्थिक कला गिरती है तो मार्क्स, लैनिन प्रकट होते है। यदि हमारी दार्शनिक कला अन्धकूप मे गिरती है तो अफलातून तथा शकराचार्य अवतरित हो जाते हैं। परन्तु जब

रोग पेचीदा हो जाता है और जीवन का मूल ही सूखने लगता है तथा जडो को स्योक लगनी आरम्भ हो जाती है, वास्तविक लक्ष्य भूल जाना है, और सत्य कला की नब्ज रुकने लग जाती है तब ईसा, मुहम्मद, बुद्ध कृष्ण अवतार धारण करते है।

यदि कोई कलाकार अपने पहलु को छोड कर अपने अपने केन्द्र से बाहर जाता है तो वह धोखा खा जाता है। भूलने वालो मे वे सब है जो एक पहलु के खोजने वाले है। न भूलने वाला 'करतार' है या गुरु है जो जीवन के मूल रोग का वैद्य है समस्त पहलुओ को खोजने वाला है। इसलिए यदि कभी एनसटाइन आर्थिक न्यूनताओ के सम्बन्ध मे अनुमान लगाए अथवा परिश्रम करे तो वह धोखा खा जायेगा। यदि मार्क्स आत्मिक पहलु को ऊचा उठाने के प्रयत्नो को "प्लेग" अथवा "अफीम" कह कर निन्दा करे तो वह भी गलती करता है। हमने प्रत्येक अन्वीषक को सच्चा सिद्ध करना है। उसकी प्राप्तियो को मानना है, परन्तु केवल उन बातो मे अथवा उन पहलुओ मे जिन मे वे सिद्धहस्त है। यदि ईसा ने कोई बाटनी बनस्पति विद्या, जुआलोजी, पशु विद्या या फिजिक्स जड पदाथ विद्या के सम्बन्ध मे कोई मत प्रकट किया तो वे अपने क्षेत्र से बाहर हो गए। इसी प्रकार यदि मार्क्स ने धार्मिक गुणो का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया तो वह भी 'ट्रेसपास' (मार्ग से कुमार्ग) कर गया।

ये सब महापुरुष कला के जन्मदाता थे। अपने अपने पहलु मे इन की प्राप्तिया सत्कार योग्य हैं। परन्तु हमे यह मानने मे गलती नही खानी चाहिए कि एक पक्ष का कलाकार दूसरे पक्ष मे में भी वही पदवी रख सकता है या दूसरे क्षेत्र मे भी उसका विचार माननीय तथा मानने व अमल करने के योग्य है।

इस प्रकार दबी हुई तथा मनुष्य के अपने खडे किए हुए पर्दों के पीछे छिपी हुई सत्यकला को कई पक्षो से ऊचा उठाया जा सकता है और समस्त पक्षो से ऊचा उठाना उचित है। यहा हमारा भाव यह है कि हम देखें कि 'नाम की चढदी कला' करने वाले अर्थात उन्नति के शिखर पर ले जाने वाले नानक के बताये हुए उपचार मे पीछे हो चुके किन महापुरुषो ने क्या कुछ योगदान दिया। भाव यह कि सिक्ख-धर्म मे दूसरे धर्मो का कितना अश है। पहले कला को जन्म देने वालो

ने जो रोग निकाले थे और उनके लिए जो उपचार बताए थे उन नुसखो का कोई तत्व (अश) गुरु नानक देव जी के बताये नुसखे मे है या नही। कई तो कहते है कि 'यह तो है ही पुराना नुमखा!' कुछ कहते है कि 'नुसखा तो पुराना है, परन्तु नए रूप मे और नए पक्षो विपक्षो के साथ प्रस्तुत किया गया है।' भाव यह कि हमने सद्गुरु के प्रदान किए नुसखे तथा दूसरे नुसखो का, उनके तत्त्वों को तुलना करके हमारे जीवन निर्माण मे प्रत्येक का मम्बन्ध प्राप्त करना है। यदि कोई कह दे कि "क्या आपका भाव सिक्ख धर्म का अन्य स्वदेशो विदेशो धर्मो के साथ सम्बन्ध बताने का है?" तो मैं यदि 'हाँ जो' न भो कहू तो 'नही जी' भी नही कहूगा।

---

३. हिन्दु शब्द के अर्थ

गुरु नानक देव जी के बताए हुए नुसखे को, जो उन्हो ने हमारे जीवन पथ की सफलता के साथ पूर्ण करके परम सुख की प्राप्ति के लिए बताया, अथवा सिक्खी मार्ग या सिक्ख धर्म को बहुरगी ऐनको से लोगो ने देखा है। सर्वप्रथम तो हिन्दु रग वाली ऐनक है। इस ऐनक का क्या रग है ? इस का उत्तर देना कठिन है। दूसरे शब्दो मे अभी तक कोई लेखक यह नही कह सकता कि हिन्दू धर्म किसे कहते हैं। जब हमे भली प्रकार हिन्दु धर्म के लक्षणो का ही ज्ञान नही तो सिक्खो को हिन्दु या हिन्दु धर्म की एक शाखा या सुधारी हुई शाखा कहना एक ऐसी बात करना है जिस बात के अर्थो का उस बात करने वाले को पता नही।

हमारे पढे लिखे कई भाई आजकल यह कहने लग पडे हैं कि हिन्दु पद का प्रयोग ही नही करना चाहिए। वे कहते हैं कि हिन्दु शब्द मुसलमानो ने भारतवासो आर्यो के लिये प्रयुक्त किया। यह घृणास्पद शब्द है, इसलिए भारतीय आर्यों को हिन्दू नही कहना चाहिये, अपितु आर्य कहना चाहिए। परन्तु मैं आर्य शब्द के प्रयोग से सहमत नही हू। आर्य एक उपजाति का नाम है मजहब और धर्म का नाम नही। एक आर्य ईसाई भी हो सकता है, जिस प्रकार ईरानो तथा पठान। एक आर्य बोधी भी हो सकता है, जेसे अशोक तथा एक आर्य हिन्दु भी हो सकता है। इसलिए आर्य, जाति का नाम है धर्म का नाम नही। यद्यपि आर्य शब्द का अर्थ एक नेक पुरुष है, परन्तु यह शब्द एक जाति या नसल के लिए प्रयुक्त किया जाता है। हिन्दु शब्द किसी धर्म या मजहब के लिए प्रयोग करते हैं। हमारा भाव यहा धर्म या मजहब से है, जाति या उपजाति से नही। इसलिए हम हिन्दु धर्म को परिभाषा (Definition) प्राप्त करना चाहते हैं ताकि देख सके कि वे लक्षण सिक्खो पर घटते है या नही। कई लेखको ने बिना अधिक खोज किए लिख दिया है कि सिक्ख धर्म हिन्दु धर्म के निर्मित प्रासाद का

एक अग है।* यह बात पहले डाक्टर आरनैस्ट टरीप ने कही थी और फिर मारिस ब्लूम फील्ड आदि ने कही है। यदि इन लेखको से पछा जाए कि 'हिन्दु शब्द से उनका क्या भाव है। सिक्ख तो भला हिंदु हुए। परन्तु हिन्दु कौन है ? तो कोई सन्तोषजनक उत्तर न इनसे तथा न किसी अन्य रचना मे से प्राप्त होता है। आओ हम हिन्दु शब्द के अर्थ प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

'ऐनसाईक्लोपेडिया बृटेनेका' मे अग्रेजी भाषा मे प्रयुक्त प्रत्येक शब्द के विस्तार पूर्वक अर्थ दिये हुए हैं। इसी प्रकार 'ऐनसाईक्लो पेडिया आफ रिलेजन एण्ड ऐथिक्स' मे प्रत्येक धर्म, मजहब तथा मत-मतान्तर की व्याख्या है। परन्तु हिन्दु शब्द की उचित व्याख्या कही नही मिलती। हमारे समय के प्रमुख हिन्दु विचारक सर राधाकृष्णन अपनी पुस्तक मे लिखते है† "कई लोगो को तो यह हिन्दु शब्द ऐसी वस्तु का नाम लगता है, जिसका कोई अस्तित्व ही नही है। एक अभावगत वस्तु का नाम है। क्या यह एक मनुष्य के निश्चयो का सम्मिश्रण अथवा खिचडी ही है, या रीति रिवाजो का इकट्ठ (समूह) ही है या एक साधारण रूप रेखा है या कोई भूगोल की इस्तलाह ? इस पद के अर्थ समय-समय, भिन्न-भिन्न जातियो तथा समस्याओ के अनुसार बदलते आए है। कभी इस शब्द का अर्थ कुछ और कभी कुछ। वेदो के समय इस पद के अर्थ और थे, ब्राह्मण ग्रथो मे और तथा बुद्ध धर्म के समय और। अब भी हिन्दु शब्द के अर्थ एक वैष्णव से पूछो तो वह कुछ और ही बताएगा, शिव जी का उपासक कुछ और तथा शक्ति माता का पुजारी कुछ और ही अर्थ बतायेगा।"

विलियम क्रुक्स धर्मो के कोष मे लिखता है "कोई समस्या इतनी कठिन नही जितनी कि हिन्दु शब्द की उचित परिभाषा प्राप्त

*देखें डाक्टर सर गोकल चन्द नारग की पुस्तक Transformation of Sikhism दूसरी अन्तिका का पृष्ठ १६। इसी प्रकार पृष्ठ १७ पर लिखा है। सिक्ख हिन्दुओ का ही अग हैं। गुरु नानक जी आधुनिक काल के प्रथम हिन्दु दार्शनिक हुए हैं। लेखक का भाव सद्गुरु को यही पदवी देने का है जो कि वह स्वामी दयानन्द जी तथा राजा राम मोहन राय को देते हैं।

†The Hindue View of Life P-12 Indian Philosophy Vol-1. Page 92

करने की है। समय समय पर कई शाब्दिक कसौटिया हिन्दुपद के उचित अर्थों को परखने के लिए घडी गई, परन्तु वे सब अधूरी ही सिद्ध होती रही।' मैकनिकल लिखता है "इस प्रश्न का उत्तर कि हिन्दु धर्म के क्या अर्थ है? उपयुक्त तथा सरल शब्दो मे भी कोई व्यक्ति नही दे सकेगा। इस नाम का कोई ऐसा एक मत नही जिसके नियम सदैव स्थायी रूप मे एक स्थान पर लिखे हो। इस धर्म का कोई शरीरधारी प्रवर्तक नही जिसके जन्म से इस धर्म का आरम्भ और आगे का इतिहास समझ सके। इसे एक धर्मों का समूह या धर्म-भण्डार कहा जा सकता है परन्तु यह एक धर्म नही है। यह हिन्दुपद एक बडा व्यापक पद है और इसने कई मत-मतान्तरो के सम्मिश्रण को समाविष्ट किया हुआ है। एक सामाजिक ढाचे मे यह कई धर्मों का सम्मिश्रण है। सर ऐलफरैड लाइल लिखते है कि साधारण प्रचलित तथा निम्न अवस्था मे हिन्दु धर्म की तुलना हम एक ऐसे समुद्र से कर सकते है, जिस का न कोई किनारा है और न कोई अन्त, जिसका पानी अकथनीय एव अनगिणत जोर वाली आंधियो मे ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर हो रहा है। गोबिन्द दास अपनी हिन्दु धर्म नामक पुस्तक मे लिखते है कि हिन्दु शब्द किसी धर्म अथवा मज़हब का सूचक नही प्रत्युत यह तो मानवीय भावनाओ (उद्वेगो) की एक लहर का नाम है। सर राधा कृष्णन अपनी इण्डियन फिलासफी मे लिखते हैं कि हिन्दु पद तो भाति-भाति की फिलासफियो, भिन्न-भिन्न धर्मों, पुराणो तथा कई प्रकार के जादु-टूणो के अर्थ देने लग पडा है। हमारा लक्ष्य यद्यपि यहा यह नही है कि हम हिन्दुत्व के समस्त अगो पर विचार करे और हिन्दु सभ्यता अथवा सुजनता का आरम्भ, विकास और अन्य परिवर्तनो के इतिहास को विस्तार-पूर्वक देखें। परन्तु फिर भी हमें 'हिन्दुइजम' के पुरातन स्रोतो तथा इसके वर्तमान स्वरूप और स्वभाव मे आए विभिन्न रगो और मिजाजो का थोडा निर्णय अवश्य कर लेना चाहिए, ताकि हमे ज्ञात हो जाए कि सिक्ख धर्म का पौधा लगाए जाते समय जो हिन्दु रूपी पृथ्वी वर्तमान थी वह किस प्रकार और कहा से बनी?

आज तक समस्त अनुसन्धान कर्ता हिन्दु सभ्यता एव सुघडता मे बड़े-बड़े दो पक्षो का मेल देखते आए है। एक ओर खालस

तथा विशुद्ध आर्य सभ्यता का प्रभाव और दूसरी ओर आर्यों के आने से पूर्व दक्षिण देश के निवासियो की सभ्यता का प्रभाव। ये दो पक्ष अथवा रग परस्पर एक रूप हो गए और वर्तमान हिन्दु धर्म या सभ्यता का आरम्भ हुआ। आर्य लोग मध्य एशिया से भारत आए थे। क्या उस समय पजाब तथा सिन्ध के क्षेत्र खाली पडे थे? यहा कोई आबादी नही थी? केवल दक्षिण देश मे ही (पुराने) आदिवासी रहा करते थे? इन बातो का उत्तर मोहनजोदाडो और हडप्पा के पुराने खण्डहरो की खुदाई ने दिया है। इन स्थानो के खण्डहरो को खोदने से पता चलता है कि उस समय एक अन्य सभ्यता स्थापित हो गई थी। उसे सिन्धी (सिन्धु-घाटी) सभ्यता कह लेते हैं। यह सिन्धी सभ्यता आर्य लोगो के उस मेल जोल का परिणाम था जो कि उनके पजाब तथा सिन्ध के रहने वालो से साथ मिल जाने के कारण अस्तित्व मे आया। यह कैसे हो सकता था कि आर्य लोगो ने समस्त मूल निवासियो को दक्षिण देश मे धकेल दिया हो अथवा यह सिन्ध तथा पजाब के परगने मनुष्यो से बिलकुल खाली पडे हो।

वास्तव मे आर्य लोगो का मेलजोल (सम्पर्क) एक तो पजाब सिंध मे हुआ। लोग यहा बसने लग पडे और ऋग्वेद आदि धार्मिक ग्रथ उसी समय रचे गये। फिर इसी मिली जुली जाति तथा सभ्यता का मेलजोल दक्षिण के द्राविणो आदि से हुआ। इस प्रकार हमारी हिन्दु सभ्यता के तीन मुख्य स्रोत हैं, मूल आर्य सभ्यता, सिन्धु घाटी की सभ्यता तथा दक्षिण की सभ्यता।

सिन्धु घाटी की सभ्यता का मुख्य देवता पशु-पति था। यह पशु-पति शनै शनै एक परमात्मा के अर्थ देने लग पडा। अभिप्राय यह कि हमारी हिन्दु सभ्यता का प्रमुख आधार अथवा स्रोत ऊपर की तीनो सभ्यताए है। आगे चलकर इसी से सिक्ख धर्म की उत्पत्ति हुई। सिक्ख धर्म के सिद्धान्तो मे इस त्रिवेणी का कई स्थानो पर विशेष प्रभाव प्रतीत होता है। परन्तु सिक्ख धम मे केवल इस त्रिवेणी का प्रभाव ही नही अपितु मानव इतिहास की सीढी के जिस चरण पर पहुच कर हम सिक्ख धर्म के आरम्भ के समीप पहुचते हैं उस चरण से पूर्व कई और चरण भी हैं। इस विशाल ऐतिहासिक नदी मे कई अन्य अनगिणत नदी नद्य पडते रहे। इस पुरातन चली आ रही नदी के पानी

को सुरक्षित वाले सिक्ख धर्म रूपी प्रवाह से पहले कई निस्पन्दन आए और अपना २ प्रभाव छोड गए। इस्लाम, ईसाई तथा ईरानी जरतुश्त आदि कई ऐसे धर्म हैं जिन्हो ने इस लम्बे इतिहास वाली लहर मे अपने अपने रग सम्मिलित किए। किसी न किसी रूप मे ये समस्त ही ऐतिहासिक रूप मे, सिक्ख धर्म को उत्पन्न करने वाली मिट्टी का रग रूप बनाते हैं। इतना प्राचीन मूल उखाड कर देखे तो पता चलता है कि सिक्ख धर्म का परिवार बडा पुराना है।

---

४. धर्म, सुघड़ता, सदाचार एवं सभ्यता

धर्म, (Religion) आस्था, उपासना की संस्था का नाम है, साधारण धर्म की आस्था मे किसी ईश्वरीय रूप के देवी देवते या ईश्वर सम्बन्धी निश्चय होता है तथा उस निश्चय के अनुसार मनुष्य का जीवन ढलता है जिसका साधन उपासना होती है। यह ठीक है कि कोई ऐसा धर्म भी हो सकता है जिसमे ईश्वर की शक्ति के सम्बन्ध मे निश्चय न हो। यह नास्तिक धर्म कहलाएगा। नैतिकता (Morality) अथवा चरित्र धर्म का अंग है। धार्मिक जीवन बिताने वाला व्यक्ति अवश्य सदाचारी होगा, परन्तु यह आवश्यक नही है कि केवलमात्र नैतिकता के नियमो पर चलने वाला मनुष्य धार्मिक भी हो। आजकल धर्म विरोधी धर्म के प्रति यह आरोप लगाते हैं कि धर्म को मानने वाले, धर्म का प्रचार करने वाले न केवल सदाचारी नही है प्रत्युत उनका धर्म एक पाखण्ड दूसरो के लिए घृणा नफरत का कारण बन गया है। दूसरी ओर वे कहते है, अमुक व्यक्ति बडे अच्छे आचरण वाला है, सदाचारी है परन्तु वह किसी धर्म को नही मानता, ये दोनो वक्तव्य ठीक हो सकते है, परन्तु इनके ठीक होने का यह भाव नही कि धर्म मे कोई त्रुटि है, और इसलिए धर्म की विरोधता को बनाये रखने के लिए (Hygiene) अथवा शरीर (स्वास्थ्य। विज्ञान कुछ नियम बताता है कि हम उन नियमो का पालन करें ताकि स्वस्थ रहे। व्यायाम करे, सैर करें सादा खायें, शुद्ध पहने, पानी तथा धूप एव प्रकाश से पूरा लाभ उठायें। इन नियमो पर चलने के लिए कुछ युवक यह संस्था बना लेते है, इसका वे नाम रखते है, "कल्लू के पट्ठे।" कल्लू एक बडा पहलवान था, और उसके शिष्य उसकी बताई हुई विधियो से शरीर को हृष्ट पुष्ट बनाना चाहते हैं तथा अपना नाम रख लेते हैं 'कल्लू के पट्ठे।' यदि मैं भी इस दल का सदस्य बन जाऊ, चटपटे मसालेदार, व्यायाम के स्थान पर सारा दिन दुकान के भीतर

गद्दी पर बैठा रहूं जहां न धूप आए और न आए शुद्ध वायु। मैं पहलवान बनने की बजाए बन जाऊं पेटू सेठ और मेरा रंग पड़ जाए पीला और मैं अपने आप को कहलाता जाऊं 'कल्लू का पट्ठा,' तो क्या आलोचक के लिए यह उचित है कि वह डौंडी पिटाये कि कल्लू की विधि पाखण्डपूर्ण है, असत्य है तथा घृणा के योग्य है। वह मुझे तो पाखण्डी कह सकता है, परन्तु मेरे शिक्षक को या मेरे शिक्षक की बनाई हुई शरीर को हृष्ट-पुष्ठ बनाने की विधियों की निन्दा नहीं कर सकता।

यही बात हमारे धर्म एवं धार्मिक जीवन के सम्बन्ध में है। "श्री गुरु नानक का सिक्ख-" अथवा "सद्गुरु का सिक्ख" सिक्ख धर्म को धारण न करे, गुरु की शिक्षा पर आचरण न करे तथा आचार भ्रष्ट हो जाए, आत्मिक रूप मे बलवान बनने की अपेक्षा बन जाए चोर, यार, जुआरिया, ठग्ग, निंदक, दुष्ट, हरामखोर, विमुख पापी तो फिर दोष गुरु के बताए हुए मार्ग मे नहीं अपितु उस मार्ग के पथिक मे है जो सुमार्ग से कुमार्ग पर चला गया। आरोग्यता (स्वास्थ्य) के नियमो का पालन न करने वाला यदि रोगी बन जाए तो स्वास्थ्य के नियमो का क्या दोष? इसी प्रकार धर्म के निश्चयो तथा उपासना आदि पर इस लिए प्रहार करना कि उन निश्चयो को पालन करने वाले अधर्मी अथवा पापी हैं। धूर्तता तथा न समझी का मार्ग अपनाना है और धर्म व उपासना के साथ अन्याय करना है।

हम अपने विषय से दूर चले गए। मेरा भाव धर्म के अर्थ स्पष्ट करने का था। जिस प्रकार शरीर को बलवान बनने के लिए शारीरिक साधन हैं, मन को बलवान बनाने के लिए मानसिक उपाय है तथा आत्मा को ऊंचा उठाने के लिये आध्यात्मिक नियम हैं। हमारे अस्तित्व या हमारे जीवन के ये तीन विभाग है। इसका यह भाव नहीं कि यह कोई अलग अलग करने वाले भाग हैं। एक के साथ अन्य दो का सम्बन्ध है। तीनो मे से किसी एक को ही लक्ष्य बना लेना और शेष दोनो की प्रवाह न करना वही गलती करना है जो कि कोई ऐसा हलवाई यह कह कर करे कि मैं हलवा बनाऊंगा परन्तु अकेली खाण्ड का या अकेले घी का, अथवा अकेले आटे का। हलवा तीन वस्तुओं के सम्भव मेल से ही बनेगा। इसी प्रकार हमारा जीवन न केवल शारीरिक उन्नति के साथ यथार्थ सांचे मे ढल सकता है और न ही केवल

मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के साथ। जिन लोगो ने शारीरिक सुख अपना धर्म बना लिया है, वे सदाचार अथवा मानसिक शोध तथा आत्मिक उन्नति को अपने अपने प्रयत्नो से बाहर रखते है और ये भौतिकवादी कहलाते है। हमारे देश के चार्वाक् दर्शन को मानने वाले और एक प्रकार से मार्क्स का साम्यवाद भी ऐसा ही धर्म था। (धर्म से यहा भाव नियम या विधि है) इस शब्द के कई अर्थ है —नियम, कानून, दायित्व, मजहब। *यद्यपि आजकल के साम्यवादी धार्मिक* सस्थाओ मे प्रविष्ट कर गए हैं और साम्यवादी होते हुए भी वे धर्मो का लेबल लगाए रहते हैं, परन्तु उनका यह जीवन सम्यवाद के विशुद्ध मत के विरुद्ध है। इस शुद्ध मत को प्रफुल्लित करने के लिए उन्होने धार्मिक लेबल लगाने का एक नया साधन सोचा है। उनका लक्ष्य (end) साम्यवाद है तथा वर्तमान धर्म सम्बन्धी नीति एक अस्थायी साधन (means) हैं। मूल रूप मे साम्यवाद एक भौतिक मत है तथा धार्मिक भावना को उसमे स्थान नही। यह एक पक्षीय मत है।

इसी प्रकार वे लोग जो केवल सदाचार (Morality) को ही धर्म समझते हैं, वे भी हमारे जीवन के एक अग को ही विकसित करने का ही लक्ष्य रखते हैं। *यदि साम्यवाद का मन्तव्य शारीरिक* उन्नति ही है तो सदाचारियो का भाव केवल मानसिक उन्नति ही है। धर्म मे इन दो पहलुओ के साथ-साथ आत्मिक उन्नति को मुख्य स्थान दिया जाता है। "भूखे भगति न कीजै' "उपर सचु अचार' आदि महावाक्य शारीरिक एव नैतिक उन्नति को हमारे सम्मुख रखते है, परन्तु ये हमारे समूचे जीवन के अग है। पूर्ण जीवन तब ही बनता है यदि शरीर तथा मन को ऊचा तथा स्वस्थ करके उसमे समस्त ससार के साथ एकता तथा अभेदता का भाव उत्पन्न किया जाए ताकि 'मैं 'मेरी' की दीवारे गिराकर "तेरा, तेरी" और "तू ही तू ही" का प्रवाह चल पड।

सस्कृति (Culture) धर्म से भिन्न दिखाई जा सकती है परन्तु धार्मिक जीवन मे ही आ जाती है। सस्कृति हमारे स्वभाव का परिष्कार है। हमारी पशु प्रवृत्तियो (Instincts) तथा उद्वेगो (emotions) को एक पवित्र साँचे मे ढालने का पक्ष सदाचार (Morality) तथा

सस्कृति (Culture) मे साम्य है। सुसस्कृत अथवा सुघड स्त्री अथवा पुरुष जहा अपनी प्रवृत्तियो तथा उद्वेगो को सुधारते है, वहा उनके रहन-सहन और लोगो से व्यवहार आदि मे भी एक प्यार उत्पन्न करने वाला तथा मन को लुभाने वाला ढग होता है। साथ ही उसके लिए कोमल कलाओ की थोडी सूझ का होना आवश्यक है। स्वभावगत सुधार, व्यावहारिक ज्ञान तथा सूझ की सूक्ष्मता सस्कृति अथवा सुघडता के आवश्यक अग हैं। स्वभावगत सुधार मे कुछेक निश्चयो का आधार तथा व्यवहार मे थोडा भाई चारक जीवन की प्रथाओ का प्रभाव और सूझ की सूक्ष्मता मे समाज की प्रामाणिक कलाओ का प्यार होता हे। हमारे जीवन की ये बाते सस्कृति मे सम्मिलित है। एक व्यक्ति सुसस्कृत, सुघड हो सकता है भले ही वह धार्मिक न ही हो। उसका धार्मिक न होना उसकी सुघडता मे कोई बडी त्रुटि अथवा कमी नही। परन्तु एक धार्मिक व्यक्ति के लिए सुघड होना एक आभूषण है। सुघडता के बिना एक धार्मिक व्यक्ति का बाह्य जीवन कुरूप लगेगा तथा सुघडता के होने से सुन्दर। यह है धर्म तथा सुघडता (Religion and culture) मजहब तथा सभ्यता अथवा धार्मिक तथा धर्म का अन्तर।

सिवलीज़ेशन अथवा तमद्दन या नागरिकता अथवा सभ्यता, सामाजिक निपुणता दूसरी वस्तु है। सस्कृति व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित है तथा सिवलीज़ेशन सामाजिक जीवन से। (उर्दू मे तमद्दन तथा तहजीब को ठीक अर्थो मे प्रयुक्त नही करते, इन शब्दो के अर्थ प्रयोग मे बदल गए हैं)। जिस देश मे शारीरिक सुख के साधन प्रस्तुत है, वह सभ्य अथवा (प्रचलित अर्थो मे) धर्म प्रधान देश है। जिस प्रकार रेले, सडकें हस्पताल, स्कूल कालेज बेतार की तार, रेडियो, टैलीफून आदि जितने भी शारीरिक जीवन को सुखी बनाने के साधन है ये सब सिवलीजेशन अथवा सभ्यता के चिन्ह हैं। इनके होने से देश तो सभ्य हो जायेगा, लोग अथवा कोई जाति तब ही सभ्य कहलायेंगे जब कि उन्हे इन सुखदायक साधनो के उचित प्रयोग का पता होगा। यदि रेल है तो टिकट लेते समय धक्के लगाना, उतरते चढते समय अपशब्द कहने और सुनने, गाडी मे बैठकर छिलके, बच्चो के पेशाव, रोटी पानी, खाने पीने के समय, फर्श गन्दा करना, प्रत्येक स्थान पर

थूकना आदि कई बाते है जो कि सभ्यता से कोसो दूर फेंक देती है। भले ही नये आविष्कारो के अनुरूप सुखदायक साधनो का किसी देश मे होना तथा उस देश के निवासियो को उन साधनो के उचित प्रयोग का ज्ञान होना उस देश तथा जाति को धर्म प्रधान अथवा सभ्य बनाते है। थोडे शब्दो मे यह कह सकते है कि जिस प्रकार सुघडता धर्म का आवश्यक अग है, उसी प्रकार सभ्यता का भी एक प्रमुख अश है।

उपर्युक्त विचार भले ही संक्षिप्त है, परन्तु पाठको को यह ज्ञान हो ही गया होगा कि धर्म, सुघडता, सदाचार तथा सभ्यता भिन्न-भिन्न वस्तुए है, यद्यपि परस्पर मेल अवश्य रखती है। इन अर्थों को सम्मुख रख कर मैने यह बताने का प्रयत्न किया है कि हिन्दु शब्द धर्म का सूचक नही, प्रत्युत एक महान सुघडता का परिचायक है।

महान हिन्दु सुघडता की महानता कुछ परम सत्यवादी निश्चयो ने निर्मित की है। इस सुघडता तथा सभ्यता मे परलोक का विचार विशेष महत्व रखता है। साधारण व्यक्ति के जीवनदृष्टिकोण पर इस विचार का अधिकतर प्रभाव पडता है। ऐसे निश्चयो पर निर्भर यह सुघडता इस देश के रहने वालो के मन पर एक छाप सी बन गई है। इस सुघडता की छाप का धर्म अथवा मजहब के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नही है। इस देश का प्रत्येक धर्म इस सुघडता के रग मे रगा हुआ है। हिन्दु,* मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध तथा पारसी भिन्न-भिन्न धर्म होते हुए भी एक ही सुघडता के आधीन है। यदि हिन्दु शब्द से इस भारतीय सुघडता का भाव ले तो सिक्ख हिन्दु है यदि हिन्दु शब्द का भाव मजहब अर्थात ब्राह्मण धर्म ले तो सिक्ख हिन्दु नहीं है। इसी प्रकार बौद्ध ईसाई तथा मुसलमान (भारतीय) हिन्दु भी है और नही भी। इस अन्तर का भली प्रकार निर्णय कर लेना चाहिए।

सर राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक "हिन्दु वियु आफ लाईफ"

---

*हिन्दु शब्द के दो अर्थ हो गए हैं। एक तो उदार व विकसित और वास्तविक अर्थ जिस से भाव भारतीय सुघडता है तथा दूसरा सकुचित जिस का भाव ब्राह्मण धर्म है।

मे जो जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण उपस्थित किया है वह हिन्दु नही है, प्रत्युत ब्राह्मणी है। वह ब्राह्मण शास्त्रो के अनुसार है। हिन्दु पद का यह भाव सकुचित है। अर्थात् सकुचित अर्थ है। "हिन्दु" से वास्तविक भाव भारतीय सुघडता है। सर राधा कृष्णन के कथनानुसार इस सुघडता से ओत प्रोत जीवन मे आन्तरिक गुणो की प्राप्ति पर अधिकतर बल दिया जाता है। भौतिक पदार्थो की अपेक्षा आध्यात्मिक पक्ष को प्राथमिकता दी जाती है।

सत्यवस्तु का ज्ञान इस जीवन का लक्ष्य है और यही दर्शन है। अनुभवी दर्शन सर्वोच्च धार्मिक मुशाहदा है। तत्त्व, सत्य, अधिकार की खोज इस दृष्टिकोण के अनुसार समस्त जीवन प्रसार का प्रयोजन है। इन अर्थो मे समस्त भारतीय मत हिन्दु केन्द्र मे आ जाते है। विदेशी मत जो चिरकाल से यहा रहने पर एक हो गए हैं, वे भी इस रग मे रगे गये है। क्या हम देख नही रहे कि भारतीय मुसलमान, भारतीय ईसाई, पारसी तथा बौद्ध, सिक्ख तथा योगी आदि सब का रूप रग एक, कोमल, कला साम्य, पहरावा साझा तथा बोली साँझी और लगभग साहित्य व जीवन-दृष्टिकोण भी साझा है?

हिन्दु संस्कृति की सैद्धांतिक व्याख्या

हिन्दू सुघडता (सस्कृति) की सैद्धांतिक व्याख्या प्रोफेसर दास गुप्ता को 'हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी मे मिलती है। इस व्याख्या का सार यह है कि भारतीय सुघडता मे इस बात पर जोर है कि जीवन की वास्तविकता रूह अथवा आत्मा है। शरीर नष्ट प्राय और आत्मा अमर है। यह आत्मा जीव के कर्मों के अनुसार आवागमन की भागी होती है। व्यक्ति के जीवन का ध्येय इस आवागमन के चक्र से मुक्त होना है। इस से निवृत होने का नाम मुक्ति है। इस प्रकार हमारे सम्मुख तीन पदार्थ आ जाते है आत्मा, कर्म तथा मुक्ति। इन तीनों को किसी न किसी रूप मे प्रत्येक भारतीय मानना है। चार्वाक दर्शन को मानने वाले इन बातो को नही मानते, परन्तु यह मत भारत मे कभी प्रचलित नही हुआ। यह तो एक प्रकार से 'मनोरञ्जन करने का' जीवन दृष्टिकोण है। इम विचार को मानने वाले व्यक्ति प्रत्येक देश मे हर समय हुआ करते हैं। "एह जग्ग मिट्ठा अगला किन डिटठा," इनका निश्चय होता है। "बाबर बऐश कि आलम दुबारा नेस्त," इन का लक्ष्य होता है। वैसे तो यह दृष्टिकोण भारतीय सस्कृति का कोई अग नही है। भारतीय सुघडता अथवा हिन्दु सभ्यता का प्रधान अग आत्म-निर्णय है तथा जीवन लक्ष्य परमपद की प्राप्ति है। इन अर्थों मे हिन्दुपद एक पुराने ऐतिहासिक मानव आन्दोलन का सूचक है और इस लहर मे सिक्ख धर्म भी किसी समय प्रकट हुआ तथा विकसित हुआ। इम प्रकार से सिक्ख धर्म भी इस विशाल हिन्दु ऐतिहासिक लहर का अग है।

इस सभ्यता अथवा सुघडता वाले भाव को छोडकर सिक्ख धर्म को हिन्दु (ब्राह्मण धर्म) कहने कहलाने के विचार का हिन्दु स्वय ही समय समय पर विरोध करते आए है। उदाहरणार्थ तीसरी पातशाही गुरु अमरदास जी के समय हिन्दु, एक डेपुटेशन लेकर सम्राट

अकबर के पास गये और नीचे लिखे शब्दो मे प्रार्थना की –गोयदवाल के गुरु अमरदास ने हिन्दुओ के धार्मिक तथा आर्त भाव सम्बन्धी कर्मकाण्डो को छोड दिया है तथा जाति पाति का भिन्न भेद भी मिटा दिया है। अब न कोई आरती करता है तथा न गायत्री पाठ, न कोई जल सेवन करके पित्रो की पूजा करता है और न कोई तीर्थ स्नान ही करता है। न कोई मूर्ति पूजा करता है और न ही सालगराम को पूजते है। वेदशास्त्रो के कहने पर कोई नही चलता और न ही कोई देवा देवताओ को मानता है।"
मुहसन फानी,जो स्वय छटे गुरु के समय आया, ने भी यह देख कर स्पष्ट लिखा कि सिक्ख धर्म ब्राह्मण धर्म से भिन्न होकर प्रफुल्लित हो रहा है। वह लिखता है कि 'सिक्ख हिन्दु मन्त्रो का पाठ नही करते,उनके मन्दिरो की पूजा प्रतिष्ठा नही करते,न ही उनके अवतारो को मानते है। हिन्दु सस्कृत को देववाणी जान कर बडी उच्च पदवी देते है, परन्तु सिक्खो के लिए यह साधारण भाषाओ की भाति है तथा कोई विशेषता नही रखती। हिन्दुओ के धार्मिक सस्कार सिक्खो मे नही है। सिक्खो के लिए खाने पीने तथा पहरावे का कोई प्रतिबन्ध नही है। जब एक प्रतापमल नामक समझदार हिन्दु ने देखा कि उसका पुत्र मुसलमान धर्म अपनाने लगा है तो उसने अपने पुत्र से कहा कि तू मुसलमान क्यो बनता है? यदि तू खाने पीने की स्वतन्त्रता चाहता है तो गुरु का सिक्ख क्यो नही बन जाता? फिर जो मन मे आये खाना पीना।"

इस्लामी ऐनक

अब चित्र का दूसरा भाग देखो। यदि हिन्दु रग को ऐनक ने सिक्ख धर्म को इस प्रकार देखा है कि उन्हे सिक्ख धर्म की प्रत्येक बात हिन्दु धर्म की एक शाखा दृष्टिगोचर होती है तो दूसरी ओर एक इस्लामी ऐनक का प्रयोग करने वाले विद्वानो ने सिक्ख धर्म को इस्लामी रग मे रगा है। इस्लाम का सिक्ख धर्म से सम्बन्ध तो हम आगे चल कर देखेगे यहा केवल इतना हो कह देना पर्याप्त है कि सिक्ख धर्म को केवल हिन्दु ही नही अपनाते अपितु इसके विपरीत मुसलमान भी इसे इस्लामी धर्म का एक रूप मानते हैं। कई विद्वान तो बडी सतर्कता से शब्द प्रयोग करते है। जैसे—ए० एस० गौरडन कहता है कि सिक्ख धर्म है तो हिन्दुओ का सम्प्रदाय परन्तु इस को अस्तित्व मे लाने का कारण इस्लाम है। परन्तु मिरजा गुलाम अहमद कादिया ने अपनी पुस्तक "सत्य वचन" मे बिल्कुल ही दूसरा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक मे वे लिखते है कि बाबा नानक हिन्दुओ के सब ऋषियो, मुनियो, अवतारो तथा गुरुओ, पीरो से बहुत ऊचे थे। साथ ही यह भी कहा है कि इनकी वाणी मे जो सूक्ष्मताए व सैद्धान्तिक सच्चाइया मिलती है वे किसी भी हिन्दु वेद शास्त्र या पुस्तक पुराण मे नही हैं। ये दो बाते कह कर वे लिखते हैं कि गुरु ग्रथ कुरान शरीफ की ही व्याख्या तथा विस्तार है और बाबा नानक एक सच्चे मुसलमान थे। इसी प्रकार आगे चल कर वह गुरबाणी की व्याख्या करके बताते है कि गुरबाणी मे सब कुरान शरीफ वाली बाते है। अपने पक्ष मे वे कुछ एक लेखको के प्रसग भी देते हैं जैसे कि हिऊज़ की इस्लाम की लुगात। इस ऐनक का रग हिन्दु ऐनक से सर्वथा भिन्न अथवा उसके विरुद्ध है।

प क्का सिक्खी विचार

पक्के सिक्ख तथा उनमे सहमत होने वाले पश्चिमी विद्वानो का यह मत है कि सिक्ख धर्म बिल्कुल नया और निराला है। इसका किसी पिछले धर्म से कोई सम्बन्ध नही और न ही इसके उद्भव या सिद्धान्तो पर किसी अन्य धर्म का प्रभाव है। यह तीसरी ऐनक है, परन्तु यह भी एक पक्षीय। मैकालिफ महोदय भी इसी श्रेणी मे से हैं। वे लिखते है "यहा एक ऐसा धर्म प्रस्तुत किया जा रहा है जो इस्लामी अथवा शामी एव ईसाई प्रभाव से बिल्कुल पवित्र (रहित) है। अकाल पुरुष वाहिगुरु के एक होने के निश्चय पर निर्भर होकर इस धर्म ने हिन्दु विचारो को तिलाजली दे दी और ऐसी सदाचारक व्यावहारिक तथा धार्मिक सस्थाओ की नीव रखी जो कि गुरु नानक के देशकाल अथवा उनके वातावरण से बिल्कुल अद्भुत तथा नवीन थी। इस धर्म से अधिक मौलिकता रखने वाला या इस के सदाचारी नियमो से अधिक प्रामाणिक तथा विशाल मत ससार मे प्राप्त करना कठिन है।" मिस डारोथी फील्ड इसी प्रकार लिखती हैं 'गुरुग्रथ के विचार से यह बात पूरी तरह सिद्ध हो जाती है कि सिक्ख धर्म ससार मे एक नया और बिल्कुल भिन्न धर्म है। यह धर्म एक ऐसा धर्म है जो पश्चिम के लोगो के अनुकूल है अत उनके मन को आकर्षित कर सकता है। वास्तव मे यह एक क्रियात्मक धर्म है, ऐसा क्रियात्मक धर्म जिसे जीवन मे सरलता से प्रयोग मे लाया जा सकता है। यदि इस धर्म को मनुष्य जीवन को अधिक से अधिक लाभ पहुचाने के दृष्टिकोण से देखा जाये तो यह धर्म समस्त ससार मे लगभग एक ही ऐसा ऊचा धर्म है।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण के आधार पर

शोधकर्ता एव आलोचक विद्वान ऊपर बताये गये विचारो के मध्य मार्ग को अपनाते है। कुछ तो यह कहते है कि सिक्ख धर्म मे हिन्दु तथा इस्लामी निश्चयो का सम्मिश्रण है। कुछेक कहते हैं कि सिक्ख धर्म को पृष्ठभूमि तो बिल्कुल शुद्ध हिन्दु है, परन्तु इस्लामी प्रभावो ने सिक्ख धर्म के कई आदर्शों पर गहरा प्रभाव डाला है। कई कहते हैं कि हिन्दु तथा इस्लाम धर्म के श्रेष्ठ गुणो के सम्मिश्रण का नाम सिक्ख धर्म है। हिन्दु तथा मुसलमानो के मुख्य नियमो को सिक्ख धर्म मे ऐसे सुन्दर ढग से मिलाया गया है कि यह बिल्कुल नई वस्तु बन गई है।

मुझे मिक्ख धर्म मे दो पक्ष भलो प्रकार से श्रेष्ठ दिखाई देते हैं। एक तो है सिक्ख धर्म को पृष्ठ भूमि और दूसरा है सिक्ख धर्म का मन्दिर अथवा भवन। यह भवन तथा इसकी पृष्ठभूमि और नोचे वाला फर्श इस धर्म के ये दो पहलु हैं। सिक्ख धर्म की पृष्ठभूमि केवलमात्र हिन्दु नही तथा आर्य तथा शामी प्रभावो के मेल से यह धरती बनी हुई है। परन्तु इस धरती पर जो मन्दिर निर्मित हुआ है वह सर्वथा नवोन है। नई उसकी आत्मा, नया उसका यौवन और बाँकपन तथा निराली है उसको चाल और ढाल। सद्गुरुओ द्वारा सुसज्जित होने के कारण उनकी शिक्षा के पक्के तथा उच्च आदर्शों की इस पर लगी हुई छाप सब को दृष्टिगोचर होती है।

क्या इस विचार से हम गुरु साहिब के प्रचार किए हुए सिक्ख धर्म मे कोई मौलिकता या सिक्खी साचे मे किसी नवीन बात के सम्बध मे निर्णय कर सकते है। यदि सिक्ख धर्म को फिलासफी के भवन ईंटे, चूने गारे की परख करे और देखें कि कौन सा विचार पहले किस धर्म मे था या कौन सा आशय किस मत मे था, तब तो हमे सिक्ख धर्म की फिलासफी की नवीनता के सम्बन्ध मे निराशा ही होगो। क्योंकि कोई न कोई बात कही न कहो अवश्य मिल जायेगी। परन्तु यदि इस

प्रकार छान बीन कर नवीनता परखनी हो तो ससार का कोई धर्म, पैगम्बर या अवतार ऐसा नही मिलेगा जिसने बिल्कुल नई तथा मौलिक बात कही हो। ऐसी विशुद्ध नवीनता कल्पना से भी बाहर की वस्तु है। ए० एन० ह्वाइटहैड के कथनानुसार कोई नवीनता विशुद्ध नवीनता नही है। प्रत्येक मत मे पुराने प्रभाव होते है। नवीता उस मत के भिन्न भिन्न अगो को मुख्य तथा गौण पदवी देने मे है। जिस बात पर अधिक बल दिया गया है। किसी अग पर इस दबाव का डालना ही नवीनता है। क्योकि पहले किसी अन्य अग पर ज़ोर दिया होता है।

सिक्ख धर्म मे नवीनता उसके दार्शनिक तत्वो मे नही है। इस मन्दिर की ईंटे चने मे नही है वरम् उस समूचे चित्र मे है, जो गुरु साहिब ने हमारे सम्मुख रखी, उस मन्दिर के निर्माण तथा बनावट आदि मे है जो कि मनुष्य ने भारत क्या एशिया अथवा ससार मे गुरु साहिब से पहले किसी रूप मे न सुनी और न ही देखी। मैकालिफ तथा डारोथी-फील्ड का सिक्ख धर्म को नया तथा अद्वितीय कहने का भाव यही है और ऐसे विचारोसे क्लम फोन्ड जैसो का आश्चर्य नही होना चाहिए और उसका यह कहना कि सिक्ख धर्म के विकसित अगो मे कोई बात ऐसी नही जो कि पहले किसी अन्य मत मे किसी स्थान पर कभी किसी ने न कही हो उचित नही। 'किसी मत मे,किसी अन्य स्थान' और'कभी'ये बडे अस्पष्ट शब्द हैं। यह बात तो ऊपर हम कह ही आए है कि यदि अगो की परख विस्तार पूर्वक करे तो कोई न कोई बात,कही न कही गुरु साहिब से पहले किसी न किसी समय किसी मत मे अवश्य कही गई होगी। अगो तथा अशो (तत्वो) अथवा ईंटो और चूने मिट्टी की नवीनता का हम दाहवा नही करते। समूचा चित्र, पूरे मन्दर तथा उन अगो के सयोग से बने साचे (रूप) की सिक्ख धर्म मे नवीनता का होना एक महान सत्य है जिससे कोई विमुख नही हो सकता अथवा इन्कार नही कर सकता। ईंटे, चुना मिट्टी अथवा विकसित अग और तत्व जो सिक्ख धर्म के विश्लेषण से प्राप्त होते है वे अवश्य कभी न कभी किसी न किसी स्थान पर बिखरे हुए मिल जाएगे, परन्तु नवीनता तो उस से बने समूचे रूप मे है, मन्दिर के निर्माण की कला मे है, इसके रूप तथा आकार मे है। इस से कोई इन्कार नही कर सकता। भला कौन विद्वान तथा शोधकर्ता

यह कह सकता है कि गुरु ग्रथ साहिब से पहले 'माया' से 'सत्य' का भाव भी लिया जा सकता है। प्राचीन विचार के अनुसार माया स भाव भ्राति का था। ससार माया अथवा भ्राति है असत्य है साँप नही रस्सी है, खरगोश के सीघो को भाति काल्पनिक है। परन्तु गुरु साहिब ने माया के अर्थों मे बडे विचित्र ढग से सत्य असत्य के दोनो विचार सम्मिलित किए और कहा "यह ससार सच्चे व्यक्ति का निवास स्थान है।" और "यह शरीर पवित्र है"। ससार अथवा माया के ये अर्थ Relative Reality से सम्बन्धित सत्यता के हैं।

इसी प्रकार कौन ऐसा विद्वान तथा अनुसधानक यह कह सकता है कि गुरु साहिब से पहले ससार का किसी ने Evolutionary तथा Devolutionary क्रियाओ मे चलायमान बता कर उत्कर्षण एव अपकर्षण शक्तियो के प्रभाव स्वरूप हर समय प्रलय को निरन्तर क्रिया को चलते दिखाया हो।

और देखिए कि गुरु साहिब से पूर्व 'कर्म' के नियम को अटल व अचल बनाया जाता था। परन्तु सद्गुरु ने अकाल पुरुष को कृपा होने पर कर्मो के प्रभाव का क्षणभर मे विनाश बताया है। यही विनाश ही "एक चित एक छिन नाम" की महत्ता है।

इससे आगे और देखे मनुष्य की पदवो को। मनुष्य को नितता (निरन्तरता) तथा क्षणभगुर अशो का सम्मिश्रण गुरु साहिब ने ही बताया। मनुष्य मनुष्य भी है तथा ईश्वर भी। इन अलग-अलग तत्वो को गुरु साहिब ने मिला दिया अर्थात जोड दिया।

क्या सद्गुरु से पूर्व नरक स्वर्ग के भय एव अभिलाषा, नरक के भय तथा स्वर्ग की लालसा को किसी ने मनुष्य मन से निकाला था। प्रत्येक धर्म नरक के भय तथा स्वर्ग के लालच देता है, परन्तु सदगुरुओ ने धार्मिक क्षेत्र से इन प्राचीन असभ्य विचारो को निकाल कर विवेक विचार के आधार पर आवागमन तथा मुक्ति की समस्या का समाधान किया। आवागमन तथा मुक्ति का विचार यद्यपि पुराना ही था परन्तु सद्गुरुओ ने इनको एक नए रूप मे प्रस्तुत किया। इनके बिना भारतवर्ष के समस्त धर्म, बल्कि पूर्वी सभ्यता का प्रमुख झुकाव निराशावाद, त्याग एव वैराग्य को ओर रहा है, परन्तु गुरु साहिब ने

इन अगो के साथ साथ एक उन्नत आशावाद का प्रचार किया। निरन्तर उन्नति (चढदीकला) तथा आनन्द मगल की अक्षुण्य वृत्ति के उद्देश्य को अपनाया। क्या यह कोई कम नवीनता वाली बात थी कि उपर्युक्त आदर्शों के सहारे सदगुरु ने एक पतित और गिरी जाति को ऊपर उठाया, गीदडो को शेर बनाया और चिडियो से बाज मरवाये। यह फल भारतीय मनुष्य के मानसिक पेड को पहले किसी धार्मिक नेता ने नही लगाया था, और फिर ऐसी परिस्थितियो मे जिन मे सद्गुरु ने इस गले सड़े पौधे की जडो से स्योक निकाल कर फिर नये सिरे से चढदी कला की पयोद दी। सिक्ख-धर्म की शिक्षा मे कोई नई बात ही थी तभी तो यह सम्पूर्ण (Metamorphoris) काया कल्प अथवा कलवे ह्यात का चमत्कार सम्भव हुआ।

ये कुछेक बाते है जो विस्तारपूर्वक विचार की अपेक्षा रखती हैं। इन विचारो को एक निश्चित क्रम मे गूथकर हमे यह दिखाना है कि सिक्ख धर्म दर्शन एक नया दर्शन है। शब्द चाहे पुराने हो, परन्तु उन्हे नए अर्थों मे प्रयुक्त किया गया है। पुरानी बोतलो को खाली करके उनको नए अर्कों एव शर्बतो से भरा गया है। इस नवीनता के होने पर भी हम यह मानने के लिए तैयार है कि सिक्ख धर्म मे बहुत से अग है जो मतहीनो के साथ किसी न किसी रूप मे मेल रखते है। भारत तथा एशिया के प्रत्येक प्रचलित धर्म का प्रभाव उल्टा या टेढा हम सिक्ख धर्म पर अनुभव करते है। अब हमने इन धर्मो के प्रभाव पर थोडा विस्तारपूर्वक विचार करना है। पहले सिक्ख धर्म का हिन्दु धर्मो (हिन्दू धर्म नही) के साथ सम्बन्ध खोजना है। इन धर्मों मे ब्राह्मणी धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म, बौद्ध मत, जैन मत आदि का विचार सम्मिलित किया गया है।

पाँचवा अध्याय

सिक्ख धर्म का हिन्दु धर्मों से सम्बन्ध

पहला—ब्राह्मणी धर्म के साथ

इस भाग मे सिक्ख धर्म का सम्बन्ध चार मतो के साथ दिखाया गया है १ वेदो के साथ, २ गीता के प्रचारित मत से, ३ षड शास्त्रो के साथ, ४ अद्वैत मत के साथ। ब्राह्मणो धम के ये चार अग किए गए है।

१ वैदिक धर्म तथा सिक्ख धर्म

वास्तव मे तो वेदो के प्रचारित धर्म को वैदिक धर्म कहते हैं है और यह ब्राह्मणो धर्म की एक शाखा है। प्रत्येक वेद के तोन भाग है—मन्त्र भाग अथवा सहिना ब्राह्मण भाग, जिसमे धार्मिक शिक्षा आदि का प्रसग है, और उपनिषद जिनमे वेदो के दर्शन का प्रसग है। हिन्दु धर्म अथवा ब्राह्मणो मत का प्रारम्भ ब्राह्मण ग्रथ से होना है। इसमे सन्देह नही कि मन्त्रो से लेकर उपनिषदो तक वेदो के रचयिता ऋषियो के विचारो का निर्माण क्रमश हुआ प्रतीत होता है। प्राचोन मन्त्रो मे तो सर राधाकृष्णन जी के कथनानुसार अन्धविश्वास और विचार का सामना है और वह विचार अन्धकार मे विचरण करने वाली बात है। इसके पश्चात दर्शनो का समय आता है और फिर उनके सूत्र पर भाष्य तथा विचार लिखने का समय है। इस सारे समय में ईश्वर का विचार शनै शनै बदलना एव उन्नति करता रहा है। ईश्वर सम्बन्धी निश्चय की उन्नति का निर्णय वेदमन्त्रो से भली प्रकार होता है। सर्वप्रथम बहुदेव विचार

था अर्थात कई देवता माने जाते थे और फिर पाच देवताओ पर एक बडे देवता को प्रमुख देवता बनाया गया प्रतीत होता है। इससे अगले काल मे इन बडे देवताओ पर सबसे ऊचा एक ईश्वर को माना गया है। विचार की अन्तिम स्थिति मे हम ईश्वर को अद्वैत ब्रह्म के रूप मे देखते हैं। वेदो के प्रारम्भिक युग मे हमे कोई अधिक गम्भीर विचार पूर्ण मन्त्र प्रतीत नही होते। पुरातन ऋषियो का मन सरल तथा स्थूल विचार वाला था। इसलिए उनके रचित मन्त्रो मे किसी गम्भीर दर्शन की झलक नही है। वैदिक ऋषियो का मन प्राकृतिक सौन्दर्य से मुग्ध हो जाता था। सर राधाकृष्णन अपनी पुस्तक 'इण्डियन फिलासफी' के पृष्ठ ६६ पर लिखते है "पुराने वैदिक मन्त्रो के लिखने वाले ऋषि अपने सरल एव अबोध मन से प्राकृतिक दृश्य देख देख कर प्रसन्न होते थे। वे वास्तव मे काव्यमय स्वभाव (प्रकृति) रखते थे और प्राकृतिक दृश्यो तथा ब्रह्मण्ड के पदार्थो से इस प्रकार उल्लसित होते थे कि उनकी भावनाए तरगित हो उठती और उनकी कल्पना शक्ति पूरे यौवन मे कार्य करती थी। इन गम्भीर उद्वेगो एव बलवति कल्पना ने पुराने वैदिक ऋषियो के लिए प्रत्येक पदार्थ का आत्म-तत्व एव जीवन स्वरूप मे दिखाया। चाद, तारे, समुद्र एव प्रकाश तथा उषा और सन्ध्या (सायकाल) समस्त देवता रूप होकर उनके समक्ष आ खडे हुए। वैदिक समय की सबसे पहली पूजा प्रतिष्ठा इन्ही प्राकृतिक देवताओ की पूजा थी।" प्राचीन यूनानियो की भान्ति प्राचीन आर्यों ने भी प्राकृतिक ब्रह्माण्ड को सजीव बनाया। पर्वत, नदिया, अग्नि वर्षा आदि सब मे मानव मन का प्रतिबिम्ब पाकर उन्हे देवता माना गया। व्यक्ति तो निर्बल एव निष्प्राण है। विशेषत महान प्रकृति और उसके महान साकार पदार्थो के सम्मुख। उनकी तुलना मे इसकी आयु भी थोडी, बल भी थोडा और यह है भी उनकी कृपा दृष्टि पर। पृथ्वी, आकाश, विद्युत, एव बादल, पर्वत अग्नि, जल वायु आदि सब प्राचीन मनुष्य को अपने से बलवान तथा दीर्घजीवी लगते थे। इन सब को देवता बनाया गया। वैदिक मन्त्रो मे ऐसे नाम देवताओ के लिए प्रयुक्त होते थे वरुण, मित्र मारुत, सूर्य अथवा सवित्र, विष्णु, पूसन, उषा, एवन आदित्य अग्नि, सोम, यम, परजन्य, इन्द्र, वरित्र, वातजा वायु, रुद्रा, सिन्धु सरस्वती, वाक,

शकीती आदि।

देवी देवताओ की सख्या बढ़ती गई। साधारणतया इनकी सख्या ३३ करोड मानी गई। इतनी बडी सख्या में से पुजारी किस की पूजा करे और क्यो पूजा करे तथा दूसरो को क्यो छोड? ऐसे विचार जिज्ञासु के मन को दुविधा मे डाल देते है। मन ऐसी उलझन मे से निकलना चाहता है। इसके बाद अगली मजिल आरम्भ होती है जब कि देवताओ की सख्या का निश्चित स्तर आरम्भ हुआ। एक देवता को शेष सब का सिरमौर माना गया, अथवा यह भी कहा गया कि शेष सब नाम इसी देवता के ही है। जैसे आजकल हम कहते हैं कि एक ही अकालपुरुष है, परन्तु उसके नाम अनेक है। इसी प्रकार प्राचीन काल मे निश्चित स्तर का अनुमान करते समय ऋषियो ने कभी किसी देवता को सबसे ऊचा या सभी का स्वरूप माना और कभी किसी को। यह भेद देश और काल के कारण होता रहा है। देवताओ मे अन्त मे वरुण देवता को सवश्रेष्ट माना गया है। परन्तु कई बार इन्द्र देवता ने भी वरुण का स्थान लिया और कभी प्रजापति ने भी। इस सघर्ष के फलस्वरूप ब्रह्म का विचार भी उत्पन्न हुआ।

गुरु साहिब ने सिक्खो सिद्धान्त बनाते समय इस प्राचीन छानबीन से लाभ उठाया। उन्होने बहुदेव पूजा अथवा देवो मे शिरोमणि देव पूजा के विचार को तो समीप नही आने दिया। परन्तु एक अकाल को पूजा और सर्वव्यापक ब्रह्म के विचार का प्रचार किया। मेरे विचार मे सिक्खी परम सत्यवादक मार्ग वैदिक छानबीन से भिन्न है। एकता और अनेकता की समस्या का समाधान गुरबाणी मे वैदिक मन्त्रो से भिन्न है। वैदिक ब्रह्म तो मनुष्य की निर्जीव वस्तुओ को सजीव अनुभव करने वाली रुचि का परिणाम है परन्तु सिक्खी सिद्धात मे ब्रह्म का विचार अकाल पुरुष की एकता से चलता है। वेदो मे तो अनेक से आरम्भ होकर एकता तथा ब्रह्मण्ड की एकता तक पहुचा जाता है, परन्तु सिक्ख धर्म के अनुसार "एकहि एक वखानने, आपहि एक अनेक' एकता से आरम्भ होकर अनेकता से सर्वेकता का प्रसार होता है। वैदिक विचार अधिकतर दृष्टिगत ब्रह्माण्ड (Cosmic) है और गुरु साहिब का आशय (Theistic) ईश्वरीय है। गुरु साहिब तो कर्तेश्वा

ईश्वर की रचना के विचार का विस्तार करके ब्रह्माण्ड की एकता को ओर आते हे। यह कतेब से वेद की ओर है और वह वेद से कतेब की ओर है।

सृष्टिरचना के सम्बन्ध मे डासन ने हिन्दुओ के चार मत बताये हैं। ये चार मत उपनिषदो के आधार पर कहे गए हैं। उससे पूर्व वैदिक मन्त्रो मे तो अनेक देवी देवताओ को सृष्टि रचना का कार्य सौंपा गया है। वे चार मत ये हैं

(१) प्रकृति (Matter) अनादि है और पुरुष सदैव ईश्वर से भिन्न है। ईश्वर प्रकृति को उत्पन्न नही करता, हा कुम्हार के बरतन बनाने की भाति इस प्रकृति से ससार को सजाता है।

(२) पुरुष प्रकृति का कारण है, अथवा ससार का कर्ता-कारण ईश्वर स्वय है, परन्त सृष्टि रचा के पश्चात् ईश्वर तथा सृष्टि भिन्न २ रहते है और सृष्टि ईश्वर के बिना ही अपने बुनियादी नियमो के अनुसार चल रही है।

(३) ईश्वर स्वय ही सृष्टि का रूप धारण करता है, अथवा निर्गुण से सगुण हो जाता है।

(४) सृष्टि रचना सब भ्रांति है, सन्देह है, केवल ब्रह्म ही ब्रह्म है तथा वही सत्य वस्तु है और कुछ नही। हम आगे जाकर देखेंगे कि इन चारो मतो मे से गुरु साहिब पहले दो को तो बिल्कुल ही नही मानते। तीसरे एव चौथे को मिला कर यदि कोई मत बन सकता है तो वह सिक्ख धर्म के अनुसार है। भाव यह है कि गुरु साहिब का सृष्टि रचना सम्बन्धी जो आशय है उसमे तीसरे और चौथे मतो के मेल की झलक है परन्तु इस मेल मे बुनियादी परिवर्तन भी प्रतीत होता है।

कर्म तथा आवागमन की समस्याओ को गुरु साहिब ने अपनाया है, परन्तु सिक्ख धर्म मे इन समस्याओ का हिन्दु रग उड गया है। भक्ति-भावना तथा वाहिगुरु अकाल पुरुष की कृपादृष्टि के प्रभाव स्वरूप इन सिद्धातो मे परिवर्तन आ गया है। इन्ही कारणो के परिणाम स्वरूप मुक्ति का स्वरूप सिक्ख धर्म मे वैदिक धर्म से भिन्न है।

धार्मिक दृष्टिकोण से समालोचना करे तो निम्नलिखित ब्राह्मणी मत के विचारो को गुरु जी ने स्वीकार करने की अपेक्षा

अस्वीकार किया है :—

(१) गुरु जी ने वेदो की प्रामाणिकता को उतनी श्रद्धा से नही माना जितना कि वैदिक धर्मानुयायी मानते है। वे वेदो को देव रचनायें नही मानते थे और न ही वैदिक सिद्धान्तो को सर्वागीण एव सम्पूर्ण सत्य को दृढ करने वाले मानते थे। गुरबाणी को अनेक पक्तियो से इन विचारो की पुष्टि होती है*। जैसे—

(क) केते पण्डित जोत की बेदा करहि बीचारु ॥८॥५॥ पृष्ठ ५८ ॥
(सिरी राग महला १)

(ख वेद पुराण सिम्रित भने ॥ सभ ऊच बिराजित जन सुने ॥
४—६—१४४ (गउडी महला ५)॥ पृष्ठ २११

चतुर बेद मुख बचनी उचरै आगै महलु न पाइऐ ॥४—६—१६४॥
(गउडी महला ५)॥ पृष्ठ २१६।

(ग) पडि पडि पोथी सिम्रति पाठा ॥ वेद पुराण पडै सुणि थाटा ॥
बिनु रस राते मनु बहु नाटा ॥ ७—११ (गउडी महला पहला)
पृष्ठ २२६

(च) बहु सास्त्र बहु सिम्रति पेखे सरब ढडोलि ॥
पूजसि नाही हरि हरे नानक नाम अमोल ॥१॥
(गउडी सुखमनी पृष्ठ) २६५।

(छ) पडे रे सगल बेद नह चूकै मन भेद,
इकु खिनु न धीरहि मेरे घर के पचा ॥३॥
(धनासरी महला ५) पृष्ठ ६८७

(ज बेद कतेब सिम्रिति सभि सासत इन पडिआ मुकति न होई ।५०।
(सूही महला ५) पृष्ठ ७४७

(२) यज्ञ तथा हवन आदि को गुरु साहिब ने निन्दा की।

(३) इसीलिए यज्ञ तथा हवन आदि धार्मिक सस्कारो की पूर्ति के लिए ब्रह्मण आदि विशिष्ठ जाति के अस्तित्व को गुरु साहिब ने नही माना।

---

*इस विषय के विस्तारपूर्वक विवेचन के लिए देखें—
"गुरु साहिब अते वेद" रचियता भाई जोध सिह।
"हम हिन्दु नही" रचियता कान्ह सिह।

(४) मनुष्य जीवन को आश्रम धर्म के अनुसार चार भागो मे बाटने के विचार को गुरु साहिब ने नही माना। इसके स्थान पर उन्होने इस बात का प्रचार किया कि व्यक्ति घर मे रह कर समस्त कार्य व्यवहार करता हुआ अपने सासारिक वातावरण (गृहस्थ जीवन) मे एक ऐसी मानसिक रुचि उत्पन्न करे कि वह एक सफल एव आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सके।

(५) वर्ण जाति के विभाजन ने मानव समाज मे एक भद्दी फूट डाल दी थी और जाति पाति का सम्बन्ध मनुष्य के कर्म से हट कर उसके जन्म के साथ हो गया था। ऐसी स्थिति मे उच्च जाति वाले का स्वभाव अहकार एव घृणापूर्ण हो जाता है। निम्न जाति वाले के मन मे दासता, हीनता तथा छोटापन आदि की भावना अथवा अवगुण आ जाते है। इसी कारण गुरु साहिब ने जाति पाति के विभाजन का घोर विरोध किया और "वर्ण अवर्ण न भावनी" का जयघोष किया।

(६) वेदो की प्रामाणिकता सिद्ध न होने से सस्कृत भाषा के देववाणी अथवा ईश्वर द्वारा उच्चारित होने का विचार लुप्त हो गया और गुरु साहिब ने इस बात पर जोर दिया कि कोई भाषा पवित्र या अपवित्र नही है। ईश्वर हमारे आन्तरिक भावो तथा निश्चयो अथवा विचारो को उच्चारित किए बिना ही जान लेता है, वह अन्तर्यामी है। इसलिए ईश्वर के सम्मुख समस्त बोलियाँ (भाषायें) एक जैसा महत्त्व रखती हैं।

उपर्युक्त छ बाते ब्राह्मणी धर्म के स्तम्भ रूप थी। गुरु साहिब ने इन से सम्बन्धित निश्चयो के मूल को लोगो के मन से निकाल दिया। ब्राह्मण ग्रथो मे, सर राधा कृष्णन के कथनानुसार, यज्ञ, बलिदान, जातिभेद, आश्रम धर्म तथा वेदो को निरन्तरता पर बल दिया है। गुरु साहिब ने इन सब बातो के विपरीत प्रचार किया, अर्थात् यहा हिन्दु सिद्धान्तो का गुरु साहिब पर उल्टा प्रभाव पडा। ब्राह्मण धर्म, कर्म तथा दिखावे और पूजा पाठ को गुरु जी ने निस्सार एव पाखण्ड सिद्ध किया है। इनके करने से मन को कोई शाति या आनन्द प्राप्त नही हो सकता था। सर रवीन्द्र नाथ टैगोर के कथनानुसार ऐसे दिखावे का धर्म कर्म केवल कपट और दम्भ है और भौतिकवादिता

है। इसमे अन्धविश्वासग्रस्त पवित्रता तो है परन्तु इनसे मन और आत्मा को कोई लाभ नही। धर्म के भयावह पर्दे के पीछे निर्मल मन के लिए विचारहीन सस्कार अन्धकार के माया मे कई भयानक आकार खडे कर देते है। (देखिए पृष्ठ १२१ 'रिलेजन आफ मैन') गुरु साहिब ने डके को चोट से कहा —

करम धरम पाखण्ड जो दीसहि तिन जम जागाती लूटै ।४।५०।
(सूही महला पाचवा) पृष्ठ ७४७।

इसीलिए गुरु साहिब ने कहा है कि उचित ढग माया से निर्लिप्त रहने का है —

अजन माहि निरजनि रहिऐ जोग जुगति इव पाईऐ ।।१।।८।।
(सूही महला पाचवा) पृष्ठ ७३०।

हिन्दु मिथ्यास (माईथालोजी) तथा अवतारो से सम्बन्धित विचार वैष्णव धर्म के वर्णन मे किया जाएगा क्योकि इनका सम्बन्ध उस मत से है।

ऊपर लिखे विषयो पर कुछेक उद्धरण हिन्दु-धर्म-पुस्तको तथा गुरबाणी मे से दिए जाते है ताकि परस्पर तुलना की जा सके।

१ ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान के बारे मे 'नेति' नेति' 'नही' अथवा 'चुप' का प्रचार किया है। देखे उपनिषद—पृष्ठ ८८*, या ३४वी पुस्तक वेदात सूत्र का पृष्ट ५४ उत्थानिका, अथवा ३८वी पुस्तक पृष्ठ १६६—१७५ तक, या ४८ वी पुस्तक पृष्ठ ६१५ - ६१८ तक।

इसी विषय पर गुरु साहिब ने भक्त शाह हुसैन के ऐसे ही श्लोक को गुरु ग्रथ साहिब मे सम्मिलित नही किया था क्योकि 'चुप वे अडिआ, चुप वे अडिया एथे बोलण दी नही जा वे अडिआ" मे उसी 'नेति नेति' का उपदेश था, गुरबाणी मे तो अकाल पुरुष को सूर्य की भाति प्रत्यक्ष बताया है —

वेद कतेब ससार हमाहू ते बाहरा ।।
नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा ।।
(आसा महला ५) पृष्ठ ३९७।

---

*इन पृष्ठो के सकेत Sacred Books of the East S B E के भागो की ओर है।

२ (क) वेदो का पाठ तथा ब्राह्मणी सस्कार करने से ब्रह्म का ज्ञान होता है और बढता है। देखे पुस्तक ४८वी वेदान्त सूत्र पृष्ठ १४७ तथा मनु का धर्मशास्त्र पृष्ठ २०४।

—वेदात सूत्र ४८ वी पुस्तक पृष्ठ ३३९-३४७ और ३४वी पुस्तक पृष्ठ २२३-२२६ का भाव यह है कि ब्रह्म प्राप्ति केवल वेदशास्त्र विचार से हो हो सकती है।

—मनु का धर्मशास्त्र पृष्ठ १६५ एव ४४वी पुस्तक पृष्ठ ६६ के अनुसार वेद ज्ञान तथा वेद विचार ब्रह्म से मेल कराते है।

—ब्रह्म से मेल शुभ-आचारण तथा धार्मिक रीतियो आदि के करने से होता है, देखे पुस्तक नम्बर २, ७, ८, १४, १५, २ का पृष्ठ क्रमानसार २१८, १८३, १०६, २४६, १७६, २५।

(ख) गुरु साहिब ब्राह्मणी कर्म काण्ड को निस्सार समझते हैं, चुच ज्ञान तथा मुखागर पाठ से विशेष लाभ नही समझते जब तक कि हृदय मे प्रेम, प्यार तथा भक्ति भावना न हो। ईश्वर का प्यार तथा उसके बन्दो को सेवा प्रमुख साघन बताया गया है।

—सिरो राग महला १ पृष्ठ ६२ ॥
अन्दरु खाली प्रेम बिनु ढहि ढेरी तनु छारु ॥१५॥
—सलोक महला २ पृष्ठ १३६ (वार माझ)
भै के चरण कर भाव के लोइण सुरति करेइ ॥३॥
—माझ महला ३ पृष्ट ११२ ॥
प्रेम प्रीति सदा धिआइऐ भैं भाइ भगति दृडावणिआ ॥
४—५—६ ॥

—रामकली महला ४ पृष्ठ ८८२ ॥
मेरे इकु खिनु प्रान न रहहि बिनु प्रीतम ॥
बिनु देखे मरहि मेरी माइआ ॥ २—४ ॥
—गउडी बावन अखरी महला ॥५॥
मिरतक कही अहि नानका जिह प्रीति नही भगवत ॥१४॥
—सोरठ राग मे महला ५ का शब्द —
पाठु पडिउ अरु बेदु बीचारिउ . ॥
समस्त धर्मो कर्मो से बढ कर "हर कीरत साध सगति"

(ग) सिरी रागु महला १ पृष्ठ २५ ॥
विचि दुनीआ सेव कमाईऐ ता दरगह बैसणु पाईऐ ॥४—३३॥
—मारू महला १ पृष्ठ १०११ ॥
विनु सेवा किनै न पाइआ दूजै भरमि खुआई ॥३—५॥
—सारग की वार महला १ पृष्ठ १२४५ ॥
घालि खाइ किछु हथहु देहि नानक राहु पछाणहि सेइ ॥(२१)
—हा सेवा सच्चे दिल से, प्यार एव चाव के साथ होनी चाहिए।
बधा चटी जो भरे न गुणु ना उपकारु ॥
सेती खुसी सवारीऐ नानक कारजु सारु ॥ वार सूही महला २
पृष्ठ ७८७ ॥
सतिगुर की सेवा सफल है जे को करे चितु लाइ ॥
पृष्ठ ५५२ वार बिहागडा म ३ ॥
—वार सोरठ महला ३, ६४८ ॥
मनु तनु आगै राखि कै भूमी सेव करेइ ॥१८॥
—पृष्ठ ८६१ गौंड महला ४
जन नानक तिस के चरन परवालै जो हरि जनु नीचु जाति-
सेवकाणु ॥४।४॥

. . ..

निह कपट सेवा कीजै हरि केरी ता मेरे मन सरब सुख पाईऐ ।५॥
—गउडी सुखमनी महला ५—पृष्ठ २६६ ।
चारि पदारथ जे को मागै ॥ साध जना की सेवा लागै ॥३॥
—पृष्ठ ८८३—राग रामकली महला ५ ॥
पवहु चरणा तलि ऊपरि आवहु ऐसी सेव कमावहु ॥१॥२॥
(घ) केवल शास्त्र या वेद पाठ जीवन की पवित्रता के बिना किसी काम का नही। देखें सिरी आसा जी की वार का नौआ सलोक —
पड पड गडी लदीअहि . ॥
लिख लिख पडिआ तेता कडिआ ॥
पडिआ हावे गुनहगार ४२वी पउड़ी, चारो वेदो और पाठ विचार की ओर सकेत १३वे श्लोक मे, पड पुस्तक सन्धिआ बाद १४वे श्लोक मे आदि।

इसी प्रकार पाँचवे तथा छटे, १५ वे तथा १६ वे श्लोको मे निस्सार धर्म कर्म और दिखावे को रसमो और रीतियो का खण्डन है। पाचवे मे वाइन चेले नचन गुर ।। छटे मे तीरथ नावहि अरचा पूजा आदि। १५वे मे यज्ञोपवीत सम्बन्धी, १६वे मे — छोडी ले पाखण्डा आदि। विस्तार के लिए देखे "गुरमति" निरणय का पाँचवाँ काण्ड स्पष्ट करता है।

(३) जाति पाति के विभाजन को वेद शास्त्रो मे ईश्वरकृत बताया गया है। परन्तु गुरु साहिब ने जातिभेद का खण्डन किया है।

(क) ब्रह्म ने जातिया बनाई मनु का धर्म शास्त्र पृष्ट ३२६, ४१८। मनु का धर्म शास्त्र भी ईश्वर द्वारा उच्चारित हुआ है। १९वी पुस्तक का पृष्ठ १५, ३३वी पुस्तक का पृष्ठ ८५।

शूद्रो को ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति का अधिकार नही है वेदात सूत्रो मे ३४ वी पुस्तक पृष्ठ ३७ उत्थानिका और पृष्ठ २०३—२२९, ४८वी पुस्तक के पृष्ठ३३ — ३४७।

गुरु साहिब ने जाति भेद का खण्डन किया, ब्रह्म प्राप्ति किसी विशेष जाति के लिए सुरक्षित नही रखी। 'जिन प्रेम कीओ तिन ही प्रभ पाइउ" का डका दशमेश जी ने बजाया। कई पूर्वी एव पश्चिमी विद्वान यह कहते है कि सिक्ख गुरुओ ने सिद्धात रूप (Theory) में तो जाति भेद की निन्दा की थी, परन्तु क्रियात्मक रूप (Practice) मे इस विभाजन को कायम रखा। विनसैंट स्मिथ अपनी 'ओक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इण्डिया' मे लिखता है कि जातिभेद (विभाजन) का प्रभाव खाने पीने और विवाह शादी पर पडता है। हम उद्धरण (प्रसग) देना चाहते है कि इन दोनो पक्षो मे श्री गुरु जी ने जाति भेद की दीवारो को तोडा। मैकालिफ के सिक्ख इतिहास (अग्रेजी) की दूसरी पुस्तक के पृष्ठ १२२ और पाचवी पुस्तक के पृष्ठ १०८ पर लिखा है कि गुरुओ के समय विवाह शादियो मे जाति पाति का विचार नही रखा गया था। इसी प्रकार साधरण सामाजिक जीवन मे तथा खाने पीने मे जाति पाति का कोई भेद या पक्ति भेद नही रखा जाता था। राजा या रक तथा ब्राह्मण और शूद्र एक ही पक्ति मे प्रसाद खाते थे। देखें ऊपर दिए इतिहास की पहली पुस्तक का पृष्ठ ५२, दूसरी का पृष्ठ ११, १५, ३८, ८४, ८५, ९७ आदि। तीसरी पुस्तक का पृष्ठ १६,

चौथी का पृष्ठ २२०, पाचवी का पृष्ठ ६३ और १०१। इन विषयो पर गुरबाणी मे से भी प्रसग दिए जा सकते हैं। कुछेक ये हैं —

—सिरी राग की वार महला १ पृष्ठ ८३।

फकड जाती फकड़ु नाउ ॥ सभना जीआ इका छाउ ॥१-३ ॥

माझ महला ३ पृष्ठ ११२।

देही जाति ना अगै जाइ ॥

जिथै लेखा मगीऐ तिथै छुटै सचु कमाइ ॥३-४-५ ॥

कानडा महला ४ पृष्ठ १३०६।

जात नजाति देखि मत भरमहु,

सुक जनक पगी लगि धिआवैगो ॥७॥

पृष्ठ ५३—सिरी राग महला १

वरना वरन न भावनी जे किसै वडा करेइ ॥१॥

पृष्ठ ४६८—गूजरी महला ५

बरन् जाति कोऊ पूछै नाही बाछहि चरन रवारो ॥१॥

(ख) और देखें "गुरमति प्रभाकर" ५ ५—५५०, "गुरमति सुधाकर" ५३, ५४, ८४, २१६ कला दूसरी मे १२८, १२६, १३०, २४४ आदि।

(ग) गैर सिक्ख लेखको एव इतिहासकारो के वक्तव्य भी ऊपर लिखे विचारो की पुष्टि करते हैं देखे मुहसनफानी की पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद पृष्ठ २७०, २८०, मैलकम पृष्ठ ४६, बारथ २४६। उधर हिन्दु धर्म मे कई वर्तमान विद्वान तथा सुधारक भी प्राचीन जाति भेद के समर्थक हैं। स्वामी दयानन्द जी ने पूरे बल से जाति पाति की पुष्टि की है।

(४) <u>आश्रम धर्म का पालन करने से,</u> हिन्दु मतानुसार, ब्रह्म मे लीनता होती है, देखे गीता पृष्ठ ३१६, १४वी पुस्तक का पृष्ठ २७५।

गुरु साहिब जीवन का इस प्रकार विभाजन नही करते कि वान-प्रस्थ अथवा सन्यास लेना पडे। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए "एक रस" की मानसिक अवस्था ज्ञान-भक्ति वैराग्य अथवा नाम से प्राप्त करनी है। माया से "निर्लिप्त" और निरालम" अथवा 'अलिप्त' रह कर 'हसते खेलते परम पद को प्राप्त करना है। श्री दशमेश जी

नें 'रे मन अैसो कर सन्यासा' वाले शब्द मे गुरसिख के 'घर मे सन्यास' का बडा उत्तम स्वरूप बताया है । इसी प्रकार —

—पृष्ठ ४१४ आसा महला १

कहा चलहु मन रहहु घरे ।।

पृष्ठ ५२२ गूजरी की वार महला ५

नानक सतिगुरि भेटीअै पूरी होवै जुगति ।।
हसदिआ खेलदिआ, पैनादआँ खावदिआ विचै होवै मुकति ।।१६।।
—उदमु करेदिआ जीउ तू कमावदिआ सुख भुचु ।।
धिआइदिआ तू प्रभु मिल नानक उतरी चित ।।१७।।

—कानडा महला ४ पृष्ठ १२९७

चारि बरण चारि आसरम है, कोई मिलै गुरु गुरनानक-
सो आपि तरै कुल सगल तहाधो ।।

—भाई गुरदास की वारो की प्रथम वार की १९वी पौडी

भई गिलानी जगत विच्च चार वरन चार आश्रम उपाए ।।
कलजुग अन्दर भरम भुलाए ।।

(ख) गीता-मत तथा गुरमत

कई विद्वानो ने यह मत प्रकट किया है कि गुरु ग्रथ तथा ऋग्वेद एक दूसरे से बहुत मिलते जुलते है । सम्भवत यह तुलना स्वरूप बाह्य दृष्टिकोण से हो । परन्तु जहा तक अर्थभाव का विचार है गुरु ग्रथ गीता से बहुत मिलता है ।

गीता की रचना के सम्बन्ध मे कई विद्वानो का मतभेद है । इसकी रचना के सम्बन्ध मे एक मत नही है । मकालिफ लिखता है कि यह सम्भवत ठीक न हो कि गीता का निकास ब्राह्मण ग्रथो मे नही है । परन्तु यह बात अवश्य है कि गीता उन प्रयत्नो का परिणाम है जो कि जीवात्मा तथा ब्रह्म की अभेदता के विचार को विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण जी की भक्ति पूजा से जोडने के लिए किए

गए थे। यह अभेदता का विचार उपनिषदो से लिया गया है और यह अद्वैत मत गीता तथा ग्रथ मे अधिक सादृश्य (समान) है।

गीता के श्लोको के भावार्थ निकालनें के सम्बन्ध मे भी बहुत मतभेद रहा है। अब तक जितने भो प्रयत्न हुए है उन सब को तीन मतो मे बाटा जा सकता है। एक मत का आदर्श तो जीव-ब्रह्म की अभेदना ज्ञान प्राप्ति से सन्याम धारण करने मे है। दूसरा मत भक्ति भावना से ज्ञान प्राप्त करके जीव परमात्मा को हजूरी मे पहुचने का लक्ष्य रखता है और यह भी द्वैत-मार्ग है परन्तु साधन भक्ति है। तीसरा मत कर्म मार्ग का है। इस विचार से सबसे अच्छी व्याख्या श्री बाल गगाधर तिलक जी ने गीता रहस्य लिख कर की है। यह अर्जुन की महाभारत युद्ध सम्बन्धी समस्याओ का श्री कृष्ण जी द्वारा हल ढूढने के प्रयत्नो का परिणाम है। यह तीसरा मत और पहला मत परस्पर अधिक विरोध नही रखते, बल्कि अद्वैत मत के ही दो स्वरूप है। परन्तु इनमे अन्तर अवश्य है, वह यह कि पहले मत का आदर्श प्राप्ति का साधन सन्याम है और इस तीसरे का कर्म मार्ग है।

गुरु साहिब ने ज्ञान, भक्ति तथा कर्म मार्गो की समान नीव पर एक नया मार्ग स्थापित किया है। सद्गुरु ने अद्वैत का लक्ष्य रख कर ज्ञान की सहायता से विस्माद-मार्ग पर चलना सिखाया। 'वाहु वाहु' की मानसिक रुचि को बढाने पर जोर दिया। अकाल पुरुष की सृष्टि मे प्रत्येक छोटी बडी चीज़ को स्रष्टा की आश्चर्यमयता का जहूर जान कर उसे विस्मादी रुचि द्वारा 'वाहु वाहु' मण्डल मे आकर परखना है तथा इसी 'वाहु वाहु' के दृष्टिकोण से समस्त जीवन व्यतीत करना है।

इसके अतिरिक्त गीतामत तथा गुरमत मे कई और भी विभन्नताये है। श्रीमद्भागवद गोता के मत मे एक त्रुटि (न्यूनता) है जिससे गुरमत मुझे मुक्त प्रतीत होता है। वह श्री कृष्ण जी महाराज का विष्णु अवतार होना। ईश्वर ब्रह्म स्वय शरीर धारण करके अर्जुन–मनुष्य को, एक जीव को, उपदेश देता है। इस विचार से अकाल पुरुष की सगुणता हमे बहुत घटिया स्तर की होकर दिखाई देती है। यह एक 'लाजीकल' समस्या है जो अर्जुन से हल नही होती। जीवात्मा परमात्मा की अभेदता होते हुए भी अर्जुन तथा कृष्ण दो है।

एक उपदेशक और दूसरा श्रोता है। दोनो के बीच इतना बडा अन्तर है, इतनी बडी दूरी है कि वह सगुण रूप मे तो क्या दूर होनी थी, विचार मे भी दूर होती नजर नही आती। यह समस्या एक सिक्ख एव गुरु के सम्बन्ध मे नही है। मनोवैज्ञानिक नियम के अनुसार कृष्ण-अर्जुन का अन्तर निर्बल मन को बल देता है,भक्ति भावना उत्पन्न करता है, परन्तु आत्मा को अद्वैत की चोटी पर ले जाने के मार्ग मे बडी रुकावट है गीता मत का यह द्वैतपूर्ण अद्वैत गुरबाणी मे नही है। गुरु चाहे जन्म से पूर्ण एव सर्वज्ञ होता है परन्तु गुरु तथा सिक्ख के बीच वह अन्तर नही है जो कृष्ण और अर्जुन के बीच था। गुरु का व्यक्तित्व एव शक्ति सिक्ख के लिए नमूने का काम देते हैं। यह नमूना क्रियात्मक रूप मे प्राप्त किया जा सकता है और इतिहास साक्षी है कि यह किया जाता रहा है। भाई लहणा सिह सिक्ख से गुरु बना तथा अभिन्न हुआ। दसो गुरु नानक थे। पहले सिक्ख थे फिर गुरु हो गए। भाई पारो जुलका आदि भी आत्मिक उन्नति मे कम नही थे। इसलिए गुरु व्यक्तित्व नमूना एक प्राप्त हो सकने वाला नमूना है। परन्तु क्या अर्जुन कभी श्री कृष्ण जी के स्थान पर विराजमान हुआ या हो सकता था। दूसरी ओर पाच प्यारे सिक्ख थे, दशमेश जी से अमृत पान किया परन्तु फिर उन्हे ही अमृत पान कराने के योग्य भी हो गए। गुरु-शिष्य सिक्ख गुरु की अभिन्नता क्रियात्मक है, केवल सद्धाँतिक ही नही।

इस मानसिक समस्या के अतिरिक्त श्री कृष्ण-अर्जुन की वार्ता से यह भी सिद्ध होता है कि गीता-मत अवतार सिद्धाँत को मानता है, परन्तु सिक्ख धर्म मे 'अवतार' होना धर्म विरुद्ध अथवा कुफर बताया है। दूसरे शब्दो मे दोनो ग्रथो के उपदेश मे यह एक बुनियादी अन्तर है।

साधारण जनता मे कृष्ण पूजा मूर्ती पूजा का रूप धारण कर लेती है। अश्लील रास, तमाशे तथा नाच-नकलें धर्म का अग बन जाती है परन्तु गुरु साहिब ने ऐसे नाटक तमाशे की निन्दा की है अर्थात् खण्डन किया है। सिरी आसा जी की वार के पाचवें श्लोक (पृष्ठ ४६५) 'वाइन चेले नचन गुर' आदि महावाक्यो द्वारा इन विचारो का खण्डन किया गया है। भक्ति-भावना के विचार से

प्रतिमाओ तथा चिन्हो की पूजा पर गीता मे जोर दिया गया है। (देखे गीता पृष्ठ ५९०—५९५)। चिन्हो की महानता भावनाओ की दृष्टिकोण से तो पर्याप्त है और मन को आदर्शों के साथ किसी लगन से जुटे रहने मे सहायक है। परन्तु समय पाकर आदर्श तो लुप्त हो जाते है और चिन्हो की पूजा आरम्भ हो जाती है और दिखावे के सस्कार रह जाते है। साधारण मन की चाल से गुरु साहिब भी अनभिज्ञ नही थे तथा जिज्ञासु की चेतना को एकाग्र करने के लिए साकार अथवा स्थूल वस्तु की आवश्यकता को वे अनुभव करते थे। समस्त स्थूल रचना को ब्रह्म स्वरूप समझ कर विस्मादी रुचि द्वारा 'वाहु वाहु' के रग मे निर्गुण ब्रह्म तक पहुचने का यत्न नाम जपने का ही एक पहलु है। अकाल पुरुष की द्योतक गुरबाणी भी गुरु परमेश्वर स्वरूप होने के कारण गुरु ग्रथ का पाठ, विचार तथा सत्कार करते हुए सतसग करना भी उसी प्रयत्न का दूसरा पहलु है। गुरु ग्रथ 'देहधारी' है, गुरु ग्रथ की हजूरी मे उपस्थित सगत का आश्रय लेना भी 'देहधारी' कमी को पूरा करता है और सन्तो महापुरुषो का सग करना भी उसी शृङ्खला की कडी है। जिज्ञासुओ के पथ प्रदर्शन और सहायता के लिए महापुरुषो और साधुओ का सग करने पर गुरबाणी मे बहुत ज़ोर दिया गया है। परन्तु इस बात का निर्णय करना कठिन है कि एक साधारण मनुष्य जब किसी सन्त महापुरुष की सगत से लाभ उठा कर गुरबाणी मे बताए मार्ग पर चलेगा तो उस सन्त महापुरुष का प्यार एव सत्कार देहधारी पूजा या मनुष्य पूजा से कितना बच सकेगा अथवा वही साधारण तथा महत्वाकाक्षी मन गुरु ग्रथ के सत्कार को मूर्ति पूजा से कितना दूर रख सकेगा। इन सभी बातो का उपचार एकत्रित सगत मे उपस्थित होकर लाभ उठाना था। वही पर शकाओ का निवारण करना था। परन्तु ऐसा करने के लिए बहुत सयम धैर्य के साथ-साथ एक विशेष प्रकार की मानसिक रुचि की भी आवश्यकता है। एक शरीरधारी मनुष्य, प्रभाव, कमाई, तथा उन्नत मन रखता हुआ दूसरे शरीरधारी को उचित सरल ढग से मार्ग बता सकता है, परन्तु इसका परिणाम मनुष्य-पूजा के रूप मे जिज्ञासु के मन मे कई कामुकता पूर्ण गिरावटो के रूप मे निकलता है। ऐसी समस्याओ के होने पर गुरु साहिब ने विवेक बुद्धि के अधीन

(विवेक बुद्धि के सहारे रहने का प्रचार किया और सम्यक् अनुभव वाला व्यक्ति इस मार्ग पर चलता हुआ बडे सरल ढग से परम पद प्राप्त कर लेता है।

गीता मत तथा सिक्ख मत मे एक और भी अन्तर है। वह है मुक्त-जीव अथवा मुमुक्षु जन सम्बन्धी। गीता तथा वेदात के अनुसार मुक्त पुरुष का लक्ष्य स्वार्थक है। यह तो ठीक है कि पुरुष सगत के द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है परन्तु मुक्ति होकर वह सगत अथवा दूसरो के लिए नही रहता। इसके बिना जब एक व्यक्ति ज्ञान के सहारे जीवन-मुक्त हो जाता है तो वह शेष जीवन इसलिए व्यतीत करता है क्योकि आरम्भ किए हुए "प्रारब्ध' कर्म अभी शेष होते हैं। उनको पूरा करने के लिए वह शेष जीवन व्यतीत करता है। वैसे तो उसे और जीने की आवश्यकता नही। यही विचार उसे आत्मा-घात करने से बचाये रखता है। परन्तु यदि वह अकस्मात किसी दुर्घटना के कारण मर जाए।

सिक्ख-धर्म के अनुसार जीवन-मुक्ति के शेष सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। जब कोई जीव जीवन-मुक्ति की अवस्था को पहुचता है, ईश्वर की कृपा होती है और उसकी कृपा समस्त कर्मो को धो देती है। फिर वह ईश्वर की इच्छानुसार उसकी आज्ञा मे जीवित रहता है। यह जीवन लक्ष्यहीन अथवा व्यर्थ व्यतीत नही होता। अब यह दूसरो की मुक्ति के लिए यत्न करता है। दूसरे भी वास्तव मे उसी का ही अग होते हैं। स्वय उसने भवसागर को पार कर लिया होता है, अब वह दूसरो को भवसागर पार कराने मे सहायक होता है। वह मुक्त होता है और मुक्ती प्रदान करता है। वह शरीर का उस समय त्याग करता है जब ईश्वर का आदेश होता है। उसका जीवन अब कर्मों के वश मे नही है। वे स्वय तो सब ईश्वरीय आदेश मे हैं। यह विचार उतना हिन्दु नुमा नही जितना मुसलमानी अथवा कतेबी है। आदेश अथवा प्रारब्ध कर्मों का विचार मनुष्य से परोक्ष कारणो से सम्बन्धित होनें पर केवल अनुमान अथवा कल्पना ही है। परन्तु इस जीवन सम्बन्धी तो दोनो मतो के जीवन मुक्त कार्यक्रम मे अन्तर स्पष्ट है।

मुक्ति प्राप्त करने के प्रयत्नो मे भी इन दोनो दृष्टिकोणो मे

अन्तर है। गीता-मत के अनुसार मुक्ति निज प्रयत्नो से होती है। परन्तु गुरमत के अनुसार यत्नो के साथ साथ ईश्वर की कृपा का भागी होना भी जरूरी है।

घ—षड शास्त्र तथा गुरमत

(१)

इस बात की ओर पहले भी सकेत हो चुका है कि गुरु साहिब इस निश्चय का खण्डन करते है कि केवल वेद शास्त्रो का पाठ या उनमे बताये (वर्णित) ज्ञान की बौद्धिक प्राप्ति जीव को परमानन्द के समीप ले जा सकती है अथवा यह मुक्ति प्रदान कर सकती है। वे इस विचार के भी समर्थक नही थे कि शास्त्रो मे व्यक्त ज्ञान पूर्ण है। सुखमनी साहिब के श्लोक का प्रमाण भी पहले दिया जा चुका है —

बहु शास्त्र बहु सिम्रिति पेखे सरब ढढोल ॥
पूजस नाही हरि हरे नानक नाम अमोल ॥

राग माझ मे बताते हैं कि एक व्यक्ति शास्त्रो के ज्ञान की पूर्ण-प्राप्ति का दावा भी कर सकता है, उनमे बताए समस्त कर्म काण्ड पूर्ण विधिवत कर सकता है परन्तु सम्भव है कि उसे अभी भी सुख एव शाँति प्राप्त न हो। भाई गुरदास स्वय गुरु दरबार मे सम्मानित व्यक्ति थे और तत्कालीन सिक्खी जीवन से भली प्रकार परिचित थे, वे भी अपनी वारो मे कई स्थानो पर ऐसे ही विचारो का प्रचार करते हैं।

यदि बुनियादी आदर्शों को सामने रखा जाए तो हम यह नही कह सकते कि छ शास्त्रो मे से सिक्ख-धर्म किसी भी एक शास्त्र से स्पष्ट रूप मे सहमत है। गुरु साहिब पूर्ण अद्वैत का उपदेश देते हैं, परन्तु शकराचार्य की भाँति ससार को केवल भ्रम कह कर इसका अभाव नही बताते। वे ससार को सत्यता को मानते तो है, परन्तु यह सत्यता स्वतन्त्र नही परतन्त्र है। यदि सिद्धान्तो के विस्तार मे

जाए तो सिक्ख धर्म की परम सत्यवादक बातें साख्य शास्त्र तथा वेदान्त शास्त्र के साथ एक जैसी लगे गी। परन्तु यह समानता बुनियादी बातो की नही है। साख्य शास्त्र के 'पुरुष' का विचार गुरु साहिब के अकाल पुरुष के विचार से सर्वथा भिन्न है। साख्य भेदवादी है और गुरु साहिब का मत अभेदवादी है। साख्य के अनुसार अनेक जीवात्माये अनादि है और 'पुरुष' परमात्मा की भांति ही सत्य हैं। स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश मे ईश्वर का जो स्वरूप बताया है वह भी साख्य मे बताए गए कपिल ऋषि जी का है। यह ईश्वर सृष्टि का कर्ता नही है। यह केवल सृष्टि रचना, अथवा आवागमन और कर्म के नियमो का निर्देशक डायरैक्टर ही है। साख्य के तीन पदार्थ पुरुष, प्रकृति और जीव गुरमत मे प्रयुक्त किए गए हैं परन्तु इनके अर्थ तथा भाव बिल्कुल भिन्न भिन्न हैं। इस पक्ष मे गुरमत मे आए विचार बहुधा वेदात के अनुसार ही हैं। इन विषयो मे न्यायशास्त्र तथा वैसेशक शास्त्र से गुरमत शास्त्र की कोई समानता नही है। अपितु गुरु साहिब वैसेशक के अनेक प्रमाणवादी की तथा न्याय की परोक्ष नास्तिकता की बहुत निन्दा करते हैं। गुरु साहिब वेदो को प्रामाणिक नही मानते, परन्तु न्यायशास्त्र मे वेदो का प्रमाण सत्य प्राप्ति के लिए एक प्रमुख साधन है। इसी प्रकार मीमासा शास्त्र की रीति, सस्कार एव पूजा-पाठ के कर्मकाण्डो को गुरु साहिब ने बिल्कुल निस्सार बताया है। लक्ष्य छोड कर लोगो ने साधनो को अपना लिया था। यह एक बडी बीमारी थी जो गुरु साहिब ने साधारण लोगो के धार्मिक जीवन मे देखी। लोगो को यथार्थ की अपेक्षा अयथार्थ मे ग्रस्त देखा, लकडी को छोड वृक्षो की गिनती के झमेले मे पडा देखा। इसलिए मीमासिक कर्मकाण्ड तथा सस्कारो का गुरु साहिब ने विरोध किया। परन्तु मनोवैज्ञानिक नियम बड प्रबल हैं। जब गुरु साहिब ने सिक्ख धर्म को सगठित किया तो सिक्खो मे भी कई प्रकार के मीमासिक कर्मकाण्ड, सस्कार एव चिन्ह आदि आ गए। इन बातो का सगठित जीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध है। परन्तु इतनी बात अवश्य है कि सिद्धांत उसी प्रकार उच्च स्वच्छ एव सर्वव्यापक रहा जिस प्रकार आरम्भ मे था। सिरी आदि ग्रथ या दशम ग्रथ की

कोई शिक्षा देश काल को कैद मे पड कर कर्मकाण्डो को मूल धर्म नही बनाती।

(२)

अद्वैत वेदान्त और गुरमत

इन दोनो मतो मे सैद्धातिक सादृश्य इतना है कि कई लेखक, विशेषतया निरमले विद्वान, आज तक यही प्रकट करते रहे हैं कि सिक्ख धर्म तथा अद्वैत वेदान्त मत का सिद्धात एक ही है। यह ठीक है कि शकराचार्य के अद्वैत वेदान्त का प्रभाव उसके पश्चात् भारत के प्रत्येक दर्शन एव प्रत्येक धर्म पर पडा है और सिक्ख धर्म सिद्धात पर भी इसका प्रभाव है। परन्तु यदि गम्भीर विचार और सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो ज्ञात होता है कि यद्यपि गुरु जी शकराचार्य के कई विचारो से सहमत है, या कहे कि गुरु साहिब ने वे विचार अद्वैत मार्ग से लिए है, परन्तु कई आवश्यक बातो मे गुरमत तथा शकर के अद्वैत मत मे विशेष अन्तर है। सत्यवस्तु के सम्बन्ध मे दोनो मतो का एक ही सिद्धांत है। दोनो अभेदवादी हैं। साख्य के रचयिता कपिल की भान्ति शकर, जीव-आत्मा ब्रह्म और जगत को तीन भिन्न-भिन्न अनादि और सत्य वस्तुए नही मानते। प्रत्युत जीव-आत्मा और जगत माया के सम्बन्ध के कारण एक ब्रह्म से ही बने हैं तथा ब्रह्म ही निरन्तर सत्य है। माया तथा अविद्या के स्पर्श से एक ब्रह्म अनेक हो कर प्रतिभासित होता है। जैसे भ्राति के कारण अन्धकार मे रस्सी साँप होकर नज़र आती है और वास्तव मे वह साप नही होती है। इसी प्रकार अविद्या के प्रभाव स्वरूप अज्ञानी जीवात्मा अपने आपको ब्रह्म से भिन्न समझती है तथा ससार को सत्य समझती है। मुक्ति प्राप्त करने का भाव एकता-भाव को दृढ करना है। ज्ञान प्राप्त करके जीवात्मा के सन्देह की निवृत्ति हो जाती है और जीव ब्रह्म तथा जगत को ब्रह्म जानती है। है सब ब्रह्म ही। माया के लेश के कारण ब्रह्म ईश्वर कहलाता है और अविद्या के सग से जीव। ज्ञान प्राप्ति मोक्ष का साधन है। ज्ञान, त्याग तथा सन्यास धारण करने से मिलता है। शकराचार्य के मत के सिद्धांत पक्ष को अद्वैतमत कहते है और मार्ग-

क्रियात्मक पहलु को निवृत्ति मार्ग कहते है। इस मत मे कर्म एव ज्ञान का उसी प्रकार विरोध है जिस प्रकार अन्धकार और प्रकाश का। एक के आगमन से दूसरा लुप्त हो जाता है। इसलिए तृष्णा का अभाव होना आवश्यक तथा कर्मों का त्याग अनिवार्य है। इस मत के क्रियात्मक पक्ष को सन्यास निष्ठा अथवा ज्ञान निष्ठा भी कहते है।

इसी मत मे भक्ति के लिए कोई स्थान नही था और साधारण मन की तुष्टि के लिए शकर ने ईश्वर का विचार प्रस्तुत किया। शकर का ईश्वर, सगुण ब्रह्म है। यह रूप, रग, आकार और भेस रखता है। परन्तु ऐसा ईश्वर केवल कल्पित हस्ती है। गुरु साहिब के लिए ब्रह्म 'पुरुष' है। अर्थात् चेतन है और साथ ही सत्य है। गुरु जी ससार को मिथ्या अथवा भ्रम नही समझते। यह उसी सच्चे की कोठडी है और उसी का इसमे निवास है। गुरु साहिब ने जो दूसरा भाव हटाने पर ज़ोर दिया है वह यही है कि केवल एक अकाल पुरुष को अपने मन और चिन्तन का विषय रखो, अकाल पुरुष सब का माता पिता है और समस्त जीव उसके अस्तित्व मे अस्तित्व रखते हैं, इसलिए मनुष्य मात्र सब एक हैं। जीवात्मा ब्रह्म से भिन्न नही। परन्तु न ही यह केवल एक भ्रम है। जीवात्मा मे सम्बन्धित सत्यता है, स्वतन्त्र सत्यता नही।

क्रियात्मक पहलु की ओर गुरु साहिब ने शकर के सन्यास-त्याग का प्रचार नही किया। वरम् प्रवृत्ति पर जोर दिया है परन्तु निवृतक रुचि आवश्यक है। जल के कमल की भान्ति निर्लिप्त रहना है। निर्मल रहने का फारमूला हृदय-ज्ञान, मुख-भक्ति, वर्णन, वैराग्य लगभग सिक्ख धर्म के बताए क्रियात्मक जीवन के नियमो की कुजी है। भाव यह कि मन मे सत्य असत्य की सूझ अपेक्षित है, इस विवेक बुद्धि के साथ अकाल पुरुष की प्रेमा भक्ति आवश्यक है तथा साथ ही जीवन-यापन मे वैरागी तथा निर्लिप्त स्वभाव रखना चाहिए।

गुरबाणी मे मानहीनता, (अभिमान से रहित), निर्धनता पर अधिकतर जोर है, इसी लिए अपने आप (निजत्व) को सुधारना (सवारना) परम धर्म है। इसी लिए अद्वैतवादी मन्त्र अह ब्रह्मास्मि अथवा तत्वमसि वह ब्रह्म मैं हू या वह तू है, सिक्खो की ज़बान पर

कभी नही चढा। काने भक्त को बाणी श्री गुरु ग्रथ साहिब मे सम्मिलित न होने का कारण हम आगे देख ही आए है। इस कारण भी यह हगता से भरा जीव ब्रह्म को एकता का जयघोष था। इसलिए गुरमत मे अद्वेत भाव के विचार को सम्मुख रख कर यह कहना ठीक नही है कि गुरमत केवल अद्वैत मत ही है। उपर्युक्त विवेचन से दोनो मतो की प्रमुख भिन्नताओ का ज्ञान हो ही गया होग।

दूसरा--सिक्ख धर्म का वैष्णव मत से सम्बन्ध

(क) वैष्णव धर्म के साथ

वैष्णव मत हिन्दु धर्म का भक्ति भावना वाला सम्प्रदाय है। सिक्ख धर्म मे विशेषत क्रियात्मक पक्ष की ओर प्रमा-भक्ति पर अधिक जोर दिया लगता है, इसलिए कई विद्वान सिक्ख धर्म को वैष्णव मत की ही एक शाखा मानते है। इसलिए दोनो मतो के परस्पर सम्बन्ध पर विचार करना पाठको के लिए लाभदायक होगा।

वैणव मत हज़रत ईसा मे कोई पाच सौ वर्ष अर्थात् आज से कोई अढाई हज़ार वर्ष पहले अस्तित्व मे आया लगता है। सर भडारकर लिखते हैं कि वैष्णविज़म का आरम्भ तत्कालीन हिन्दु धर्म के सुधार के रूप मे हुआ था। इसका पूर्व नाम एकाँतिका धर्म यानि एक चित्त-भक्ति वाला मत था। इस धर्म की पृष्ठभूमि गीता थी, वह गीता जो श्री वासुदेव कृष्ण जी ने अपने मुखारविन्द से उच्चारित की थी। शीघ्र ही इस मत ने एक साधारण भक्ति-भावना वाली लहर के स्थान पर एक सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया। इसका नाम पचरत अथवा भागवद् मत पड गया। इसके पश्चात् यह मत नारायण तथा विष्णु की उपासना वाले सम्प्रदायो के साथ सम्मिलित हो गया। विष्णु, वेदो मे एक साधारण देवते का नाम था और इस देवते का महत्व उतनी देर कोई विशेष नही बना था जितनी देर वैष्णविजम स्थापित नही हुआ था। आभीरो तथा गोपालो अथवा ग्वालो के मत के विचार भी वैष्णव धर्म मे सन ईस्वी के आरम्भ के पश्चात् आ मिले और इस प्रकार वैष्णव मत मे वासुदेव, विष्णु, गोपाल कृष्ण आदि की भक्ति के विचारो का विशेष सम्मिश्रण हो गया।

आठवीं शताब्दी ईस्वी के अन्त तथा नौवी शताब्दी के आरम्भ मे वैष्णविज़म को शकराचार्य के अद्वैतमत तथा ज्ञान रूपी राहु केतु ने

आ धरा और वैष्णव धम को हो रही उन्नति को ग्रहण कर लिया। परन्तु श्री शकराचार्य का अद्वैतमत भले ही बडे ऊचे स्तर का और गम्भीर दार्शनिक मत था परन्तु वह साधारण मन की पहुच से बाहर सिद्ध हुआ। परिणाम यह निकला कि अहब्रह्मास्मि तथा तत्त्वमसि के फीके 'नारो' (सलोगनो) ने जनता को चुच ज्ञान के रिक्त भण्डार (क्षत्र) मे फेंक दिया। यह लगभग दो सौ वर्ष हो प्रफुल्लित अवस्था मे रहा और फिर अवनात की ओर चल पडा। इस समय श्री रामानुज भारतीय मन के नेतृत्व (मार्ग-दर्शन) तथा सहायता के लिए मच पर आए। उन्होने वैष्व भक्ति को पुन सजीव किया। रामानुज के पश्चात् कई महापुरुष भक्ति आन्दोलन मे प्रकट हुए। वे यद्यपि भक्ति मार्ग मे ही थे परन्तु विस्तार की दृष्टि से उनके सिद्धातो मे विशेष मदभेद था। कई तो इन मे द्वैतवादी और कुछेक का मत इनके बीच वाला था। इन सन्त महापुरुषो के नाम निम्बार्क, माधव, रामानद कबीर, वल्लभ चैतन्य, नामदेव तथा तुकाराम आदि थे। इन मे से श्री कबीर जी का श्री नानक देव जी से सम्बन्ध और उनके विचारो का सम्बन्ध अभी विस्तार पूर्वक और अलग करके विवेचन करेगे। शेष के विचारो का समुचित एव सक्षिप्त विवेचन ही पर्याप्त होगा। इन में निम्बार्क तथा वल्लभ ने राधा और कृष्ण को पूजा का प्रचार किया।

इन भक्तो मे सैद्धांतिक मतभेद अवश्य था। उदाहरणार्थ रामानुज विशिष्ठ अद्वैतवादी थे। अर्थात् इस विचार के अनुसार जीव तो चित्त अथवा चेतन है और जगत अचेतन—अचित है तथा ये दोनो जीव-जगत मिलकर ईश्वर का शरीर बनाते हैं। निम्बार्क ने द्वैत-अद्वैत पक्ष को सिद्ध रखा। इनके मत से जीव जगत और ईश्वर भिन्न भिन्न हैं परन्तु फिर भी जीव और जगत की कार्य शक्ति ईश्वर पर निभर है। भाव यह कि ईश्वर के बिना जीव जगत अस्तित्व मे नही आ सकते। माधव (मध्वाचार्य ने विशुद्ध द्वैतवाद को सम्मुख रखा, जीव तथा ईश्वर सर्वथा भिन्न भिन्न हैं यदि अभिन्न हो तो भक्ति नही हो सकती, पूजा और भक्ति भेदवाद मे ही सम्भव है। वल्लभाचार्य जी शुद्ध-अद्वैतवादी हुए है। इनका मत यह है कि जीव जगत तथा माया पर्दे के कारण तो भिन्न २ लगते हैं, परन्तु जब माया रूपी जाल उतर जाता है तो जीव-जगत ईश्वर अपने वास्तविक रूप मे आकर एक ही हैं। वल्लभ जी के शुद्ध-

अद्वैतवाद और शकराचार्य के अद्वैतवाद मे फिर क्या अन्तर हुआ ?

वल्लभाचार्य के मतानुसार जीव एव ब्रह्म एक दूसरे से उस प्रकार भिन्न नही है जिस प्रकार शकराचार्य के अद्वैतमत मे हैं। जीवात्माए ब्रह्म से उसी प्रकार सम्बन्वित है जिस प्रकार अग्नि और अग्नि की चिंगारियाँ। "जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे निआरे निआरे हुइकै फेरि आग मै मिलाहगे" दसवी पातशाही का सिरी मुखवाक् बल्लभ के विचार को पर्याप्त स्पष्ट करता है। इसी प्रकार जगत जो कि भ्राति के कारण प्रतीत होता है मिथ्या अथवा असत्य नही है। भ्रम एक ऐसी शक्ति है जिसने ससार को ईश्वर से भिन्न रखा हुआ है और यह सब कुछ ईश्वर इच्छा से ही हुआ है। इसी प्रकार जीव का जीवन भाव भा भ्रम के सहारे कायम है और भ्रम की निवृति या ज्ञान प्राप्ति जीव को जीव के अपने उद्यम से नही होगी, अपितु ईश्वर कृपा से होगी। यह कृपा हागी तो जीव मुक्त होगा। इस कृपा को प्राप्त करने के लिए जीव को भक्ति की आवश्यकता है। भक्ति के बिना ज्ञान नही, ज्ञान के बिना भ्रम की निवृति नही है और भ्रम निवृति के बिना मुक्ति नही परमपद की प्राप्ति नही। सिक्ख धर्म अधिकतर इसी मार्ग पर चलता है तथा बल्लभ-दर्शन एव नानक-दर्शन मे बहुत सामीप्य एव साम्यता प्रतीत होती है। सम्भव है कि गुरु नानक तथा श्री बल्लभ जी का परस्पर मेल हुआ हो और विचार विमर्श भी हुआ हो क्योकि ये दोनो महापुरुष समकालीन थे और पर्याप्त देश-पर्यटन किया था।

वैस्णव मत के नीचे लिखे प्रमुख लक्षण हैं —

१ वैष्णव वाणी की नींव वेद शास्त्र ही है और वेदो की प्रामाणिकता वैष्णव मत मे प्रधान है।

२ पुराणो की रचना के पश्चात् वैष्णविज़म मे पौराणिक साखियाँ (कथायें) बहुत काम करती हैं और वैष्णव भक्ति-भावना का स्तम्भ यह 'माईथालोजी' बन गई लगती है।

३ सगुण ब्रह्म शरीरधारी ईश्वर की भक्ति का प्रचार हुआ तो अवतारो का अस्तित्व इस धर्म का आवश्यक अग बन गया। सर्व प्रथम बासुदेव की भक्ति आरम्भ हुई। फिर कृष्ण जी, फिर गोपाल कृष्ण जी की हस्ती वासुदेव की हस्ती मे सम्मिलित हो गई। श्री राम चन्द्र जी की पूजा का सम्प्रदाय भी स्थापित हो गया। पौराणिक

आ घरा और वैष्णव धम को हो रही उन्नति को ग्रहण कर लिया। परन्तु श्री शकराचार्य का अद्वैतमत भले ही बडे ऊचे स्तर का और गम्भीर दार्शनिक मत था परन्तु वह साधारण मन की पहुच से बाहर सिद्ध हुआ। परिणाम यह निकला कि अहब्रह्मास्मि तथा तत्वमसि के फीके 'नारो' (सलोगनो) ने जनता को चुच ज्ञान के रिक्त भण्डार (क्षत्र) मे फेंक दिया। यह लगभग दो सौ वर्ष हो प्रफुल्लित अवस्था मे रहा और फिर अवनाति की ओर चल पडा। इस समय श्री रामानुज भारतीय मन के नेतृत्व (मार्ग-दर्शन) तथा सहायता के लिए मच पर आए। उन्होने वैष्व भक्ति को पुन सजीव किया। रामानुज के पश्चात् कई महापुरुष भक्ति आन्दोलन मे प्रकट हुए। वे यद्यपि भक्ति मार्ग मे ही थे परन्तु विस्तार की दृष्टि से उनके सिद्धातो मे विशेष मदभेद था। कई तो इन मे द्वैतवादी और कुछेक का मत इनके बीच वाला था। इन सन्त महापुरुषो के नाम निम्बार्क, माधव, रामानद कबीर, वल्लभ चैतन्य, नामदेव तथा तुकाराम आदि थे। इन मे से श्री कबीर जो का श्री नानक देव जो से सम्बन्ध और उनके विचारो का सम्बन्ध अभी विस्तार पूर्वक और अलग करके विवेचन करेंगे। शेष के विचारो का समुचित एव सक्षिप्त विवेचन ही पर्याप्त होगा। इन में निम्बार्क तथा वल्लभ ने राधा और कृष्ण को पूजा का प्रचार किया।

इन भक्तो मे सैद्धाँतिक मतभेद अवश्य था। उदाहरणार्थ रामानुज विशिष्ठ अद्वैतवादी थे। अर्थात् इस विचार के अनुसार जीव तो चित्त अथवा चेतन है और जगत अचेतन—अचित है तथा ये दोनो जीव-जगत मिलकर ईश्वर का शरीर बनाते हैं। निम्बार्क ने द्वैत-अद्वैत पक्ष को सिद्ध रखा। इनके मत से जीव जगत और ईश्वर भिन्न भिन्न है परन्तु फिर भी जीव और जगत की कार्य शक्ति ईश्वर पर निभर है। भाव यह कि ईश्वर के बिना जीव जगत अस्तित्व मे नही आ सकते। माधव (मध्वाचार्य ने विशुद्ध द्वैतवाद को सम्मुख रखा, जीव तथा ईश्वर सर्वथा भिन्न भिन्न हैं यदि अभिन्न हो तो भक्ति नही हो सकती, पूजा और भक्ति भेदवाद मे ही सम्भव है। वल्लभाचार्य जी शुद्ध-अद्वैतवादी हुए है। इनका मत यह है कि जीव जगत तथा माया पर्दे के कारण तो भिन्न २ लगते हैं, परन्तु जब माया रूपी जाल उतर जाता है तो जीव-जगत ईश्वर अपने वास्तविक रूप मे आकर एक ही हैं। वल्लभ जी के शुद्ध-

अद्वैतवाद और शकराचार्य के अद्वैतवाद मे फिर क्या अन्तर हुआ ?

वल्लभाचार्य के मतानुसार जीव एव ब्रह्म एक दूसरे से उस प्रकार भिन्न नही है जिस प्रकार शकराचार्य के अद्वैतमत मे है। जीवात्माए ब्रह्म से उसी प्रकार सम्बन्वित है जिम प्रकार अग्नि और अग्नि की चिंगारियां। "जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे निआरे निआरे हुइकै फेरि आग मै मिलाहगें" दसवी पातशाही का सिरी मुखवाक् बल्लभ के विचार को पर्याप्त स्पष्ट करता है। इमो प्रकार जगत जो कि भ्राति के कारण प्रतीत होता है मिथ्या अथवा असत्य नही है। भ्रम एक ऐसी शक्ति है जिसने ससार को ईश्वर से भिन्न रखा हुआ है और यह सब कुछ ईश्वर इच्छा से ही हुआ है। इसी प्रकार जीव का जीवन भाव भा भ्रम के सहारे कायम है और भ्रम की निवृति या ज्ञान प्राप्ति जीव को जीव के अपने उद्यम से नही होगी, अपितु ईश्वर कृपा से होगी। यह कृपा हागी तो जीव मुक्त होगा। इस कृपा को प्राप्त करने के लिए जीव को भक्ति को आवश्यकता है। भक्ति के बिना ज्ञान नही, ज्ञान के बिना भ्रम की निवृति नही है और भ्रम निवृति के बिना मुक्ति नही परमपद की प्राप्ति नही। सिक्ख धर्म अधिकतर इसी मार्ग पर चलता है तथा बल्लभ-दर्शन एव नानक-दर्शन मे बहुत सामीप्य एव साम्यता प्रतीत होती है। सम्भव है कि गुरु नानक तथा श्री बल्लभ जी का परस्पर मेल हुआ हो और विचार विमर्श भी हुआ हो क्योकि ये दोनो महापुरुष समकालीन थे और पर्याप्त देश-पर्यटन किया था।

वैस्णव मत के नोचे लिखे प्रमुख लक्षण है –

१ वैष्णव वाणी की नीव वेद शास्त्र ही है और वेदो की प्रामाणिकता वैष्णव मत मे प्रधान है।

२ पुराणो की रचना के पश्चात् वैष्णविज़्म मे पौराणिक साखियाँ (कथायें) बहुत काम करती हैं और वैष्णव भक्ति-भावना का स्तम्भ यह 'माईथालोजी' बन गई लगती है।

३ सगुण ब्रह्म शरीरधारो ईश्वर की भक्ति का प्रचार हुआ तो अवतारो का अस्तित्व इस धर्म का आवश्यक अग बन गया। सर्व प्रथम बासुदेव को भक्ति आरम्भ हुई। फिर कृष्ण जी, फिर गोपाल कृष्ण जी की हस्ती वासुदेव की हस्ती मे सम्मिलित हो गई। श्री राम चन्द्र जी की पूजा का सम्प्रदाय भो स्थापित हो गया। पौराणिक

कथाओ ने विष्णु भगवान की भक्ति को दृढ किया। इन अवतारो की सख्या कभी छ, कभी दस, कभी बीस, और कभी चौबीस तक पहुच जाती है। परन्तु इन सब मे श्री कृष्ण तथा श्री रामचन्द्र जी प्रमुख अवतार गिने जाते हैं। श्री दशमेश जी ने दशमग्रथ मे २४ अवतारो की कथा का वर्णन किया है। यह गिनती सम्भवत हिन्दु तथा बौद्ध अवतारो को मिला कर बनती हो। इन २४ अवतारो के सम्बन्ध मे श्री दशमेश जी ने "ज्ञान प्रबोध" मे अल्प सज्ञक पदो का प्रयोग किया है और बताया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य २४ अवतार सब छोटे हैं और अकाल पुरुष का मर्म नही जानते।

(४) अवतारो की मूर्तिया बन कर उनको पूजा करना वैष्णव धर्म का आवश्यक अग है।

(५) वैष्णव मत के क्रियात्मक मार्ग पक्ष मे कई प्रकार के कर्म काण्ड और पूजा अर्चन सम्मिलित है। रामानुज ने इनकी सख्या १६ तक बताई है १—ईश्वर का स्मरण, २—ईश्वर के गुण गान करना और नाम लेना, ३—डण्डवत करना, ४—भगवान की चरण सेवा, ५—निरन्तर एक रस भक्ति, ६—जीव-अर्पण, ७—आज्ञा पालन और सेवा, —साख्यम सगति, ६—देह पर सख, त्रिशूल आदि के निशान लगाना, १०—माथे पर तिलक लगाना, ११—समय-समय पर मन्त्र का पाठ, १२—हरिचरणो के स्नान वाले पानी को पीना, १३—हरि को भोग लगाई वस्तुओ का सीत प्रसाद लेना तथा खाना, १४—हरिजनो की सेवा करना, १५—एकादशी का व्रत रखना, १६—हरि की मूर्ति के आगे तुलसी पत्र भेट करना।

(६) समस्त वैष्णव सम्प्रदाय गृहस्थ त्याग कर ससारिक जीवन छोड कर साधु बनने के लक्ष्य का प्रचार करते हैं।

अब हमने यह देखना है कि इन छ अगो मे से और पाँचवे अग के १६ धर्मों मे से कौन-कौन से सिक्ख धर्म मे किस-किस प्रकार प्राप्त होते है या नही। इस बात मे तो कोई सन्देह नही है कि वैष्णविज़म का साधारण रूप मे तथा भक्ति मार्ग का विशेष रूप मे सिक्ख धर्म पर बहुत अधिक प्रभाव पडा है। ऊपर बताये गए वैष्णव धर्म के छ अगो मे से पहले के सम्बन्ध मे तो ब्राह्मण अथवा वैदिक धर्म मे विचार हो चुका है। वहाँ यह बताया गया है कि गुरु साहिब

वेदो की प्रामाणिकना को नही मानते थे। पौराणिक कथाओ अथवा हिन्दु माइथालोजो (ऊपर की सूचि मे नम्बर २) सम्बन्धी कुछ मतभेद है और जनसाधारण को इस विषय मे कोई विशेष ज्ञान नही है। कई तो यह कहते हैं कि गुरु साहिब पौराणिक कथाओ मे निश्चय रखते थे और कई कहत ह नही, उन साखियो का प्रसग गुरबाणी मे शहनशोलता तथा धैर्य के विचार से ही हुआ है। गेलोवे के कथनानुसार प्रत्येक नये धम मे पुराने धर्मो के निश्चयो के प्रतीक शेष रह जाते है। यह प्रसिद्ध नियम हे। सम्भवत हिन्दु माइथालोजो क प्रभाव गुरबाणो मे इसी नियम के आधीन हो प्रस्तुत हो। माइथालोजो तो एक निश्चय का विषय है किसो कर्मकाण्ड का नही। परन्तु कर्मकाण्ड की भान्ति पुराने निश्चय भो तो नये धर्म मे सिसकते रह जाते है या वेश बदल कर आ मिलते है।

कई स्थानो तथा गुरबाणो मे पौराणिक कथाओ से उदाहरण के रूप मे विवेक विचार से विशेष विषय से सम्बन्धित आवश्यक (अपेक्षित) अर्थभाव निकाले गए हैं। जैसे हिन्दु माइथालोजी के चारो युगो के निश्चय को गुरु साहिब ने अपने अर्थो मे प्रयुक्त किया है। पुरातन भाव तो इन युगो द्वारा समय का विभाजन करना था। प्राचीन युग (सत युग) तथा द्वापर, त्रेता और कलयुग, समय की कडी के चार भाग है। परन्तु गुरु साहिब ने इन से लोगो के शारीरिक, एव मानसिक अथवा नफसानी गुणो का अर्थ लिया है। मनुष्यो के स्वभाव भिन्न-भिन्न है। इस आधार पर स्वभावो के अनुसार गुरु जी ने मनुष्यो के चार वर्ग बना दिए थे। गौडी राग और आसा की वार मे इन स्वभाव वाली मनुष्य जातियो का वर्णन भी आया है। इसी प्रकार जपुजी साहिब मे पुरातन धौले बदल वालो कथा (मिथ) से हिन्दु पुराणो वाला भाव नही लिया प्रत्युत बलद को सृष्टि के एक नियम के रूप–धर्म मे बताया है। "धौलु धर्मु दया का पूतु" कह कर उपयुक्त भाव बताया है तथा प्राचीन निश्चयो को "धरतै उपरि केता भारु" 'तिसते भारु तले कवणु जोरु" आदि तर्क देकर हास्यास्पद दिखाया है।

गुरु साहिब ने पौराणिक कथाओ को किसी विशेष सिद्वात की पुष्टि के लिए उदाहरण के रूप मे भी प्रयुक्त किया है। गुरु साहिब

जिस स्थान अथवा जिस धर्म के व्यक्ति को उपदेश देते थे उमे उसके विचारानुसार अनुकूल प्रमाण देकर वास्तविक सत्य की पुष्टि करते थे। शिक्षा अपनी देते और स्पष्टता एव सिद्धता को पुष्टि के लिए उसी व्यक्ति के निश्चयो एव पदार्थों का प्रयाग करते। दूसरे धर्मो की कथाओ आदि के सम्बन्ध मे गुरु साहिब की रुचि पर श्री दशमेश जी के उस उत्तर से विशेष प्रकाश पडता है जो कि उन्होने मुगल सम्राट बहादुर शाह को दिया था। गुरु साहिब ने कहा था कि वे किसी धर्म के विरुद्ध नही हैं और प्रत्येक प्राणीमात्र को उसके निश्चयो के अनुसार उपदेश देते है। इसीलिए गुरबाणी मे नरक, स्वर्ग, दोजख, बहिश्त, यम तथा अजराईल आदि का वर्णन है। दूसरे धमो की कहानियो को किसी विशेष शिक्षा या सच्चाई के लिए उदाहरण के रूप मे भी प्रयुक्त किया है। हिरण्यकश्यप, प्रह्लाद तथा नरसिंह की कहानी बता कर यह सिद्ध किया है कि अहकार का फल विनाश है और ईश्वर भक्तो का सहायक है। इसी प्रकार 'नोच' जाति के लोग हरि-यश गान करने से उत्तम हो जाते हैं। यह बात कई कृष्ण-साखियो अथवा नामदेव कबीर की कहानियो से पुष्ट की गई है —

नीच जाति हरि जपतिआ उतम पदवी पाइ ।।
पूछहु बिदर दासी सुते किसनु उतरिआ घरि जिसु जाइ ।।
(सूही महला ४—पृष्ठ ७३३)

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओ को साधारण मनुष्यो की भाति तडपते, चिल्लाते बताया है तथा अकाल पुरुष की रचना (सृष्टि) मे इनकी सख्या लाखो करोडो तक बताई है। यह भी बताया है कि इन देवी देवताओ मे किसी को भी सत्य वस्तु का ज्ञान नही हुआ था। वह साधारण लोगो की भाँति अज्ञान तथा अन्धकार मे हाथ पाव रगडते फिरते थे। यह विचार गुरबाणी की कई पक्तियो से स्पष्ट होते है। यथा –

—गौडी महला ३ पृष्ठ २३१

ब्रह्मा वेदु पड़ै वादु वखाणै ।। अन्तरि तामसु आपु न पछाणै ।।
७।।५।।

—आसा महला ५ पृष्ठ ४०१

ब्रह्मादिक सनकादिक सनक सनदन सनातन
सनत कुमार तिन् कउ महलु दुलभावउ ।।
अगम अगम अगाधि बोध कीमति परै न पावउ ।।४।।२।।
—राग गूजरी महला १ पृष्ठ ४८६
नाभि कमल ते ब्रह्मा उपजे बेद पडहि मुखि कठि सवारि ।।
ता को अन्तु न जाई लखणा आवत जावत रहै गुबारि ।।४।।
—प्रभाती महला १—पृष्ठ १३४३ के शब्द मे सब देवी देवताओ को भूले हुए बताया है ।
—भैरो अष्टपदी महला १–पृष्ठ ११५४ के शब्द मे ब्रह्मा विष्णु को रोगी बताया है ।

भाव यह है कि पौराणिक कथाओ को गुरु साहिब ने केवल उदाहरण के रूप मे ही माना है उनको सत्य असत्य की खोज से उन्हे कोई वास्ता नही था । वे स्वय ही कहते है —

—सोरठ की वार महला ४ पृष्ठ ६४६
परथाई साखी महा पुरख बोलदे साझी सगल जहानै ।।

अर्थात् सर्वसम्मत सत्य को वे किसी प्रथा के आधार पर किसी साखी के द्वारा ही सिद्ध करते हैं। इसलिए गुरबाणी मे पौराणिक कथाओ के सकेतो से यह परिणाम निकालना सर्वथा भूल है कि गुरु साहिब इन साखियो के ऐतिहासिक सत्य को मानते थे अथवा ये साखिया सिक्खी जीवन का किसी प्रकार कोई अग भी बन सकती हैं ।

यही परिणाम वष्णव मत के अवतारो के सम्बन्ध मे निकलता है। गुरु साहिब ने अवतारो के नाम अकाल पुरुष की तरफ लगा लिए थे। इन नामो से भाव पृथ्वी पर उत्पन्न ऐतिहासिक व्यक्ति नही हैं, अपितु ये नाम परमात्मा के लिए प्रयुक्त किए हैं। हजरत मुहम्मद साहिब ने भी कुरान शरीफ मे ऐसा ही किया था। अल्ला एक देवता का नाम था,परन्तु पैगम्बर साहिब ने उसको ईश्वर के लिए प्रयुक्त किया है। राम तथा कृष्ण, गुरु साहिब ने हरि के नाम प्रयुक्त किए हैं, दशरथ-कौशल्या या वासुदेव देवकी के पुत्रो के लिए नही। जहाँ कही इन नामो से यह ऐतिहासिक अथवा पौराणिक हस्तियो का भाव लिया गया है वहाँ गुरु साहिब इन्हे ईश्वर के अवतार कह कर नही मानते अपितु साधारण मनुष्यो की भाति जानते है। बचित्र नाटक मे गुरु गोबिन्द सिंह जी

लिखने है कि अकाल पुरुष लाखो करोडो रामचन्द्र और कृष्ण जैसे जीव उत्पन्न तथा सहार करता है। लोखो मुहम्मद पैदा हुए और साधारण प्राणियो की भाँति कालवश हुए। गुरु नानक साहिब श्लोको मे बताते है कि श्री रामचन्द्र स्वय ईश्वर होते तो वे अपनी धर्म पत्नी सीता को न खो बैठते तथा साथ ही अपने भाई लक्ष्मण को जीवित करने के लिए वे हनुमान की सहायता न लेते। बल्कि स्वय ही सब कुछ कर सकते। भैरो राग मे श्री कृष्ण जी के जन्म अष्टमी के त्यौहार की ओर सकेत करके कहते है कि यह कहना बडी भूल है कि ठाकुर मनुष्य रूप मे अवतार धारण करता है।

भैरो महला ५—पृष्ठ ११३६

सगली थीति पासि डारि राखी ॥
असटम थीति गोविंद जनमासी ॥१॥
भरमि भूले नर करत कचराइण ॥
जनम मरण ते रहत नाराइण ॥१॥रहाउ॥
करि पजीरु खवाइउ चोर ॥
उहु जनमि न मरै रे साकत ढोर ॥२॥
सगल पराध देहि लोरोनी ॥
सो मुखु जलउ जितु कहहि ठाकुरु जोनी ॥३॥
जनमि न मरै न आवै न जाइ ॥
नानक का प्रभु रहिउ समाइ ॥४॥१॥

रामकली की वार मे गुरु नानक आम अवतारो, एव ऋषियो, पीरो पैगम्बरो का वर्णन करके बताते है कि ये साधारण जीवो की भाति दुखो, कष्टो मे रोते चिल्लाते तथा खीझते है। यदि वे ईश्वर होते तो इन दुखो के भागी क्यो होते ?

—रामकली की वार म १ – पृष्ठ ९५३

रोवै राम निकाला भइआ ॥ सीता लखमणु विछुडि गइआ ॥

यदि गुरु साहिब ने गुरवाणी मे अकाल पुरुष के हिन्दु ग्रथो मे आए बहुत से नाम प्रयुक्त किए है तो इस बात से कोई विशेष परिणाम नही निकाला जा सकता, क्योकि गुरु साहिब ने उसी उदार चित से कुरान शरीफ मे आए मुसलमानी नाम भी प्रयुक्त किये है। दूसरा ओर कई वैष्णव भक्त परमात्मा के मुसलमानी नाम प्रयोग करने के विरुद्ध

थे। ना। देव को 'खुदा' न कहने के बदले बड़े कष्ट दिए गए। देखो राग भैरो नामदेव–पृष्ठ ११६६-६७)

ऊपर दिए गए वैष्णव मत के छ अगा मे चौथा अग मूर्ति पूजा का है। मूर्ति पूजा उन धर्मो कर्मो मे से है जिसका विरोध गुरु साहित्र ने बड़े कठोर शब्दो मे किया है। एक पत्थर की मूर्ति सर्वव्यापक परमात्मा का स्थान किस प्रकार ले सकती है। गुरु गोबिन्द सिह जी ने अपने 'जफर नामा नामक पत्र मे जो उन्हो ने मुगल सम्राट औरगजेब को लिखा था, उस मे अपने आप को मूर्ति (बुत) तोड़ने वाला कहा है

मनम कुशतनम कोहीआँ बुत्त प्रसूत ॥
कि ऊ बुत प्रसतदउ मन बुत्त शिकसत ॥९५॥

गुरु गोबिन्द साहिब का समकालीन मुहसन फानी लिखता है सिक्खो मे न मूर्तिया हैं और न मूर्तियो के लिए मन्दिर (दबस्ताने मजाहब–पृष्ठ २४६)। एक निर्जीव पत्थर की मूर्ति किस प्रकार दयालु कृपालु पुकार सुनने वाले परमात्मा का स्थान ले सकती है

— भैरो महला ५–पृष्ठ ११६०
जो पाथर कउ कहते देव ॥ ता की बिरथा होवै सव ॥

. .. .. .

न पाथरु बोलै न किछु देइ ॥ फोकट करम निहफल है सेव ॥४॥
४॥१२॥

—सूही महला ५ —पृष्ठ ७३८
घर महि ठाकुरु नदरि न आवै। गल महि पाहणु लै लटकावै॥४॥
३॥६॥

जड पत्थर का बुत एक चेतन जीव की क्या सहायता कर सकता है। यह पत्थर जीव को किस प्रकार उबार सकता है जब कि वह स्वय ही सागर मे डूब जाता है। गुरु साहिब लिखते है

—बिहागड़े की वार महला ४—पृष्ठ ५५६
हिन्दू मूले भूले अखुटी जाही ॥ नारदि कहिआ सि पूज कराही ॥
अन्धे गुगे अन्ध अधारु। पाथरु ले पूजहि मुगध गवार ॥
उहि जा आपि डुबे तुम कहा तरणहार ॥

परन्तु इन स्पष्ट दलीलो तथा मूर्ति खण्डन के बावजूद अशिक्षित सिक्खो मे गुरु ग्रथ साहिब का सत्कार मूर्ति पूजा का रूप धारण कर रहा है। इसमे सन्देह नही कि साधारण मनुष्य का धर्म पढ़े लिखे तथा

सूझ वाले व्यक्ति के धर्म से सदा स्थूल अवस्था मे रहता है और इतना उच्च नही होता । ऐसे सरल एव अनभिज्ञ मन को आकर्षित करने के लिए पूजा के लिए कोई ऐसी वस्तु आवश्यक है जो सामने प्रत्यक्ष दिखाई देती हो तथा जिसके प्रति उसके प्यार एव सत्कार की भावना का प्रदर्शन हो सके । एक भक्ति-भावना वाले साधारण सिक्ख की जो सन्तुष्टि गुरु ग्रन्थ का सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहना कर, फूल एव हार चढा कर, कमरे को धो सवार कर सजाकर तथा अन्दर सुगन्धि आदि फैला कर होती है, वह अन्य किसी प्रकार से नही हो सकती । यह एक कोमल स्वाभाविक प्रवृत्ति की तुष्टि करना है । परन्तु श्रद्धालु साधारण मन इस से भी आगे चला जाता है । वह इतना कुछ करके गुरु ग्रन्थ से कई मागे मागता है तथा आशा करता है कि इस प्रकार करने से उसको मुक्ति एव स्वर्ग प्राप्त होगा और उसकी सभी इच्छाये पूर्ण हो जायेगी । वह इसी कार्य को ही परम धर्म समझ लेता है और केवल इसका नाम ही उसके लिए सिक्खी जीवन है ।

ऐसी परिस्थितियो मे मूर्ति पूजा का इतिहास दुहराया जा रहा है । मूर्ति पूजा भी पहले स्वाभाविक प्रवृत्ति को तुष्टि के लिए आरम्भ हुई थी । यह एक कोमल कलामय चिन्ह था । परन्तु शनै शनै मूर्ति मे इष्ट देव की गुह्य शक्ति निहित प्रतीत हुई तथा पुजारी को प्रार्थनाये (विनय, पुकार) सुनने वाला तथा पूर्ण करने वाला वह बुत ही बन गया । इस आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण मूर्ति को कई प्रकार से पूजा आरम्भ हो गई । मूर्ति को रक्त लगाना या मूर्ति के हाथो मे अथवा मुख मे प्रसाद लगाना ताकि मूर्ति का दैवी जीवन बना रहे । मूर्ति को सुन्दर वस्त्र पहनाना उसे स्नान करवाना तथा चरण धोने, ये सब बाते शनै शनै मूर्ति पूजा का अग बन गई ।

गुरुग्रथ की पूजा मूर्ति पूजा से बहुत श्रेष्ठ और लाभदायक सिद्ध हो सकता है और यदि विवेक से काम लिया जाए तो श्रद्धालु के मन मे कोई कुरूप बनावट भी नही बनती । कारण यह कि गुरुग्रथ की पूजा वास्तव मे गुरबाणी का सत्कार है । गुरुग्रथ मे गुरु के वचन, अकाल पुरुष की वाणी, वाणियो के क्रम मे वाणी दी हुई है । इसकी पूजा का सिक्ख के मन पर बुरा प्रभाव नही पडना चाहिए । ग्रथ के पाठ विचार से सिक्ख को सदा अच्छी शिक्षा मिलने की आशा

है। परन्तु इन गुणो के बावजूद साधारण मनके मनोभाव गुरु ग्रथ साहिब के लिए बिल्कूल वैसे ही बन रहे है जैसे कि एक बुत के पुजारी के मन मे होते है। कई प्रकार के अन्धविश्वास तथा भ्रम गुरु ग्रथ को खाने पीने, सोने जागने वाली जीवित देह समझ कर साधारण मन मे घर कर गए है। इसी विचार से दूसरे धर्मो के आलोचक "लिख लिख पढे होए कडे" सिक्ख सिक्खो की पूजा अर्चना पर मूर्तिपूजा का दूषण लगा रहे है, और यह दूषण कई स्थितियो मे हमे आधारहीन नही समझना चाहिए।

इस सम्बन्ध मे जो बात फारनल महोदय ईसाई धम के प्रात कहते है वह सिक्ख धर्म सहित, लगभग सारे ही धर्मो, के सम्बन्ध मे सत्य है और ठीक घटती है। "साधारण लोगो की ईसाइयत, केवल मुट्ठी भर विचारवान एव विशुद्ध ईसाइयो के सिवाय, वर्तमान समय मे बुत प्रस्ती (मूर्ति-पूजा) के बिना और कुछ नही है। इस स्पष्ट उक्ति के आधार पर हम कह सकते है कि यह बात बिल्कुल ठीक है कि अकाल पुरुष की हस्ती को निर्गुण अर्थो मे हाज़र नाजर (प्रत्यक्ष) जान कर उसके अस्तित्व को पकड करना अथवा उसके अस्तित्व को समझना या इस निश्चय पर परिपक्व (दृढ) रहना साधारण व्यक्तियो का काम नही है। "कहु नानक इह खेल कठण है" के अनुसार कोई विशिष्ठ विवेकी गुरमुख ही स्वच्छ धर्म को ग्रहण कर सकते थे। साधारण व्यक्ति तो किसी आकार सहित (साकार) वस्तु से अथवा स्थूल-मूर्ति या चिन्ह से ही ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव और उसके समीप होने का विचार मन मे ला सकते है।"

वैष्णव धर्म का उपरिलिखित पाचवा अग उनका कमकाण्ड तथा रीतियो एव सस्कारो के बन्धन बताता है। वैष्णविज़म के इस पक्ष ने भी गुरु साहिब के मन पर उल्टा ही असर किया और उन्होने इस मशीनी एव निर्जीव कर्मकाण्ड का घोर खण्डन किया। मनुष्य स्वभाव मे प्रकृति की ओर से ही कुछेक वादिया, रुचिया एव प्रवृत्तिया डाल दी गई हैं कि कई बार वे आध्यात्मिक उन्नति तथा मानसिक विकास के मार्ग मे रुकावट बन जाती हैं। एक ओर तो हमारे मन का यह स्वभाव है कि सूक्ष्म वस्तु विचार अथवा आदर्श को भली प्रकार ग्रहण नही कर सकता, और यदि किसी सूक्ष्म लक्ष्य पर पहुच

सूझ वाले व्यक्ति के धर्म से सदा स्थूल अवस्था मे रहता है और इतना उच्च नही होता। ऐसे सरल एव अनभिज्ञ मन को आकर्षित करने के लिए पूजा के लिए कोई ऐसी वस्तु आवश्यक है जो सामने प्रत्यक्ष दिखाई देती हो तथा जिसके प्रति उसके प्यार एव सत्कार की भावना का प्रदर्शन हो सके। एक भक्ति-भावना वाले साधारण सिक्ख की जो सन्तुष्टि गुरु ग्रन्थ का सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहना कर, फूल एव हार चढा कर, कमरे को धो सवार कर सजाकर तथा अन्दर सुगन्धि आदि फैला कर होती है, वह अन्य किसी प्रकार से नहो हो सकती। यह एक कोमल स्वाभाविक प्रवृत्ति की तुष्टि करना है। परन्तु श्रद्धालु साधारण मन इस से भी आगे चला जाता है। वह इतना कुछ करके गुरु ग्रन्थ से कई मागे मागता है तथा आशा करता है कि इस प्रकार करने से उसको मुक्ति एव स्वर्ग प्राप्त होगा और उसकी सभी इच्छाये पूर्ण हो जायेगी। वह इसी कार्य को ही परम धर्म समझ लेता है और केवल इसका नाम ही उसके लिए सिक्खी जीवन है।

ऐसी परिस्थितियो मे मूर्ति पूजा का इतिहास दुहराया जा रहा है। मूर्ति पूजा भी पहले स्वाभाविक प्रवृत्ति की तुष्टि के लिए आरम्भ हुई थी। यह एक कोमल कलामय चिन्ह था। परन्तु शनै शनै मूर्ति मे इष्ट देव की गुह्य शक्ति निहित प्रतीत हुई तथा पुजारी की प्रार्थनाये (विनय, पुकार) सुनने वाला तथा पूर्ण करने वाला वह बुत ही बन गया। इस आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण मूर्ति को कई प्रकार से पूजा आरम्भ हो गई। मूर्ति को रक्त लगाना या मूर्ति के हाथो मे अथवा मुख मे प्रसाद लगाना ताकि मूर्ति का दैवी जीवन बना रहे। मूर्ति को सुन्दर वस्त्र पहनाना उसे स्नान करवाना तथा चरण धोने, ये सब बाते शनै शनै मर्ति पूजा का अग बन गई।

गुरुग्रथ की पूजा मूर्ति पूजा से बहुत श्रेष्ठ और लाभदायक सिद्ध हो सकता है और यदि विवेक से काम लिया जाए तो श्रद्धालु के मन मे कोई कुरूप बनावट भी नही बनती। कारण यह कि गुरुग्रथ की पूजा वास्तव मे गुरवाणी का सत्कार है। गुरुग्रथ मे गुरु के वचन, अकाल पुरुष की वाणी, वाणियो के क्रम मे वाणी दी हुई है। इसकी पूजा का सिक्ख के मन पर बुरा प्रभाव नही पडना चाहिए। ग्रथ के पाठ विचार से सिक्ख को सदा अच्छी शिक्षा मिलने की आशा

है। परन्तु इन गुणो के वावजूद साधारण मनके मनोभाव गुरु ग्रथ साहिव के लिए विल्कुल वैसे ही वन रहे हैं जैसे कि एक वुत के पुजारी के मन मे होते है। कई प्रकार के अन्धविश्वास तथा भ्रम गुरु ग्रथ को खाने पीने, सोने जागने वाली जीवित देह समझ कर साधारण मन मे घर कर गए है। इसी विचार से दूसरे धर्मों के आलोचक "लिख लिख पढे होए कडे" सिक्ख सिक्खो की पूजा अर्चना पर मूर्तिपूजा का दूषण लगा रहे है, और यह दूषण कई स्थितियो मे हमे आधारहीन नही समझना चाहिए।

इस सम्बन्ध मे जो वात फारनल महोदय ईसाई धर्म के प्रति कहते है वह सिक्ख धर्म सहित, लगभग सारे ही धर्मो, के सम्बन्ध मे सत्य है और ठीक घटती है। "साधारण लोगो की ईसाइयत, केवल मुट्ठी भर विचारवान एव विशुद्ध ईसाइयो के सिवाय, वर्तमान समय मे वुत प्रस्ती (मूर्ति-पूजा) के विना और कुछ नही है। इस स्पष्ट उक्ति के आधार पर हम कह सकते है कि यह वात विल्कुल ठीक है कि अकाल पुरुष की हस्ती को निर्गुण अर्थो मे हाज़र नाज़र (प्रत्यक्ष) जान कर उसके अस्तित्व को पकड करना अथवा उसके अस्तित्व को समझना या इस निश्चय पर परिपक्व (दृढ) रहना साधारण व्यक्तियो का काम नही है। "कहु नानक इह खेल कठण है" के अनुसार कोई विशिष्ठ विवेकी गुरमुख ही स्वच्छ धर्म को ग्रहण कर सकते थे। साधारण व्यक्ति तो किसी आकार सहित (साकार) वस्तु से अथवा स्थूल-मूर्ति या चिन्ह से ही ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव और उसके समीप होने का विचार मन मे ला सकते है।"

वैष्णव धर्म का उपरिलिखित पाचवा अग उनका कर्मकाण्ड तथा रीतियो एव सस्कारो के वन्धन वताता है। वैष्णविज़्म के इस पक्ष ने भी गुरु साहिव के मन पर उल्टा ही असर किया और उन्होने इस मशीनी एव निर्जीव कर्मकाण्ड का घोर खण्डन किया। मनुष्य स्वभाव मे प्रकृति की ओर से ही कुछेक वादिया, रुचिया एव प्रवृत्तिया डाल दी गई है कि कई बार वे आध्यात्मिक उन्नति तथा मानसिक विकास के मार्ग मे रुकावट वन जाती हैं। एक ओर तो हमारे मन का यह स्वभाव है कि सूक्ष्म वस्तु विचार अथवा आदर्श को भली प्रकार ग्रहण नही कर सकता, और यदि किसी सूक्ष्म लक्ष्य पर पहुच

प्रभाव स्पष्ट है।

ऊपर बताये गए वैष्णव धर्म के छ अगो मे से पाचवे के अन्तर्गत हमने रामानुज के बताए हुए १६ कर्म काण्ड गिने है। ये वैष्णव भक्ति के अग है। इनमे से लगभग आधे सिक्ख धर्म के पूजा पाठ मे भी देखे जाते है। उन्हे एक एक करके फिर देख —वैष्णव भक्ति का पहला अग परमात्मा को स्मरण करना है वह सिक्खो में भो है। दूसरा है अकाल पुरुष के गुण गान करना, तथा नाम लेना, यह भा सिक्खो मे है। तीसरा है डण्डवत् प्रणाम करना। कई सिक्ख गुरु ग्रन्थ साहिब के सत्कार के लिए यह करते हैं। चौथा है भगवान की चरण सेवा। यहा भगवान से अभिप्राय मूर्ति से है। यह सिक्ख नही करते। पाँचवाँ निरन्तर एक रस भक्ति, यह एक प्रमुख सिक्ख सिद्धांत है। छटा जीव-अर्पण है। सिक्ख न तो मूर्ति के लिए तथा न ही किसी साधु का शिकार होकर जीव अर्पण करते हैं। हाँ अकाल पुरुष तथा उसके आदेश मे देश, जाति तथा महा पुरुषो के सत्कार को बनाये रखने के लिए, अर्थात् धर्म का पालण और अधर्म के विनाश के लिए शरीर अर्पण करना सिक्ख के मुख्य कामो मे से है। सातवा है हुक्म (आदेश) का पालन और सेवा, सिक्ख गुरु के आदेश का पालन तथा सगत की सेवा करना अपना धर्म समझता है। आठवा है सगित। "जित्थे इको नाम वरवाणीऐ" वहा जाकर सगति करना सिक्ख के लिए एक आवश्यक साधन है। नौवा, दसवाँ तथा ग्यारहवा सिक्खो मे नही है। इनके स्थान पर शस्त्रधारी होना और पच ककार का पालन खालसे के लिए आवश्यक समझे गए। तेरहवी वात वैष्णवो की थी—मूर्ति को भोग लगाकर वह सीत प्रसाद लेना और खाना। सिक्खो मे गुरु ग्रन्थ को हजूरी मे कडाह प्रसाद लाते है और अरदास करते समय भोग लगवाते है तथा फिर वह कडाह प्रसाद बाटते हैं। हरिजनो को सेवा करना चौदहवा कर्म है और सिक्खो का भी यह परम धर्म है। पन्द्रहवाँ है एकादशी का व्रत। सिक्खो मे रोजे व्रतो आदि की छूट है, परन्तु सदा ही अल्प आहार तथा स्वल्प निन्द्रा का उपदेश है। सोलहवी वात थी हरि की मूर्ति के आगे तुलसी पत्र भेंट करने। सिक्ख किसी विशेप पौधे या पशु को तुलसी अथवा गऊ को विशेप महत्व नही देते। ईश्वर की रचना मे सब एक है। परन्तु गुरु ग्रथ साहिब के

आगे पुष्प, हार, गलदस्ते पूजा के लिए या सजावट के लिए चढाने की प्रथा सिक्खो मे प्रचलित है।

ऊपर की तुलना से पता चलता है कि वैष्णव भक्ति के रामानुजी १६ अगो मे से कई तो उसी प्रकार ही सिक्खा मे प्रस्तुत हैं और कुछेक का रूप वदल दिया गया है तथा इस परिवर्तन मे आचरण, उच्चता एव आध्यात्मिक उन्नति को सामने रखा गया है। प्रमुख मूल अन्तर तो यह है कि रामानुजो कर्मों का पूज्य पात्र (object of worship) एक मूर्ति थी तथा सिक्खो मे अकाल पुरुष है। इसी एक बात मे शतप्रतिशत क्रांति है। शेष बताए गए कर्म-धर्म मानव-मनोवेगो को दृढ करने के लिए मनोवैज्ञानिक नियमो के अधीन हो जाते हैं, इसलिए सिक्खो पूजा-पाठ मे भी वे हैं। हमारा भाव यहाँ यह कहने का नही हैं कि वे क्यो हैं? या वे नही चाहिए। हमने तो तुलना करके यह देखना है कि वैष्णव धर्म का प्रभाव किस प्रकार तथा किन बातो मे हुआ? मूर्ति के चरणामृत से बढकर सिक्खो मे भी चरण-पहुल की प्रथा थी, जिसे गुरु गोबिन्द सिंह जी ने और भी श्रेष्ठ करके खण्डे के अमृत का रूप दे दिया। इसी प्रकार वैष्णव डडवत और पुरातन चरणो पर शीर्ष धरने की प्रथा के स्थान पर गुरु दशमेश जी ने आत्म सम्मानपूर्ण "वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतह" के मेल जोल वाले ढग को चलाया। वैष्णव मत के आधार पर विष्णु देवता के विचार को आगे बढाकर गुरु साहिब ने विष्णु से भाव अकाल पुरुष देवान देव का लिया। बात यह कि सैद्धातिक पक्ष मे तो वैष्णव तथा सिक्ख धर्म मे बहुत अन्तर है। क्रियात्मक जीवन मे भी अन्तर कम नही। ऊपर बताए गए १६ अगो मे से पाचो का सिक्ख धर्म मे कोई स्थान नही है। पाँचवें अग के अन्तर्गत बताए गए १८ रामानुजी धर्मों कर्मों से बहुत से उसी प्रकार ही और कई रूप बदल कर सिक्खो मे आए हुए है, यद्यपि इन धर्मों कर्मों के विषय तथा लक्ष्य के आधार पर सिक्खो एव वैष्णवो मे लाखो कोसो का अन्तर है। (विशुद्ध वैष्णव के लक्षणो के लिए देखें सुखमनी साहिब की नवम अष्टपदी की दूसरी पौडी। पृष्ठ २७४)

प्रभाव स्पष्ट है।

ऊपर बताये गए वैष्णव धर्म के छ अगो मे से पाचवे के अन्तर्गत हमने रामानुज के बताए हुए १६ कर्म काण्ड गिने है। ये वैष्णव भक्ति के अग है। इनमे से लगभग आधे सिक्ख धर्म के पूजा पाठ मे भी देखे जाते है। उन्हे एक एक करके फिर देख —वैष्णव भक्ति का पहला अग परमात्मा को स्मरण करना है वह सिक्खो में भी है। दूसरा है अकाल पुरुष के गुण गान करना, तथा नाम लेना, यह भी सिक्खो मे है। तीसरा है डण्डवत् प्रणाम करना। कई सिक्ख गुरु ग्रन्थ साहिब के सत्कार के लिए यह करते हैं। चौथा है भगवान की चरण सेवा। यहा भगवान से अभिप्राय मूर्ति से है। यह सिक्ख नही करते। पाँचवाँ निरन्तर एक रस भक्ति, यह एक प्रमुख सिक्ख सिद्धांत है। छटा जीव-अर्पण है। सिक्ख न तो मूर्ति के लिए तथा न ही किसी साधु का शिकार होकर जीव अर्पण करते है। हाँ अकाल पुरुष तथा उसके आदेश मे देश, जाति तथा महा पुरुषो के सत्कार को बनाये रखने के लिए, अर्थात् धर्म का पालण और अधर्म के विनाश के लिए शरीर अर्पण करना सिक्ख के मुख्य कामो मे से हैं। सातवा है हुक्म (आदेश) का पालन और सेवा, सिक्ख गुरु के आदेश का पालन तथा सगत की सेवा करना अपना धर्म समझता है। आठवा है सगित। "जित्थे इको नाम वरवाणीअै" वहा जाकर सगति करना सिक्ख के लिए एक आवश्यक साधन है। नौवा, दसवाँ तथा ग्यारहवा सिक्खो मे नही है। इनके स्थान पर शस्त्रधारी होना और पच ककार का पालन खालसे के लिए आवश्यक समझे गए। तेरहवी बात वैष्णवो को थी—मूर्ति को भोग लगाकर वह सीत प्रसाद लेना और खाना। सिक्खो मे गुरु ग्रन्थ को हजूरी मे कडाह प्रसाद लाते है और अरदास करते समय भोग लगवाते है तथा फिर वह कडाह प्रसाद बाटते हैं। हरिजनो को सेवा करना चौदहवा कर्म है और सिक्खो का भी यह परम धर्म है। पन्दरहवाँ है एकादशी का व्रत। सिक्खो मे रोजे व्रतो आदि की छूट है, परन्तु सदा ही अल्प आहार तथा स्वल्प निन्द्रा का उपदेश है। सोलहवी बात थी हरि की मूर्ति के आगे तुलसी पत्र भेंट करने। सिक्ख किसी विशेप पौधे या पशु को तुलसी अथवा गऊ को विशेप महत्व नही देते। ईश्वर की रचना मे सब एक है। परन्तु गुरु ग्रथ साहिब के

आगे पुष्प, हार, गलदस्ते पूजा के लिए या सजावट के लिए चढाने की प्रथा सिक्खो मे प्रचलित है।

ऊपर की तुलना से पता चलता है कि वैष्णव भक्ति के रामानुजी १६ अगो मे से कई तो उसी प्रकार ही सिक्खो मे प्रस्तुत हैं और कुछेक का रूप बदल दिया गया है तथा इस परिवर्तन मे आचरण, उच्चता एव आध्यात्मिक उन्नति को सामने रखा गया है। प्रमुख मूल अन्तर तो यह है कि रामानुजो कर्मो का पूज्य पात्र (object of worship) एक मूर्ति थी तथा सिक्खो मे अकाल पुरुष है। इसी एक बात मे शतप्रतिशत क्रांति है। शेष बताए गए कर्म-धर्म मानव-मनोवेगो को दृढ करने के लिए मनोवैज्ञानिक नियमो के अधीन हो जाते हैं, इसलिए सिक्खो पूजा-पाठ मे भी वे हैं। हमारा भाव यहाँ यह कहने का नही हैं कि वे क्यो हैं ? या वे नही चाहिए। हमने तो तुलना करके यह देखना है कि वैष्णव धर्म का प्रभाव किस प्रकार तथा किन बातो मे हुआ ? मूर्ति के चरणामृत से बढकर सिक्खो मे भी चरण-पहुल की प्रथा थी, जिसे गुरु गोविन्द सिंह जी ने और भी श्रेष्ठ करके खण्डे के अमृत का रुप दे दिया। इसी प्रकार वैष्णव डडवत और पुरातन चरणो पर शीर्ष धरने की प्रथा के स्थान पर गुरु दशमेश जी ने आत्म सम्मानपूर्ण "वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतह" के मेल जोल वाले ढग को चलाया। वैष्णव मत के आधार पर विष्णु देवता के विचार को आगे बढाकर गुरु साहिब ने विष्णु से भाव अकाल पुरुष देवान देव का लिया। बात यह कि सैद्धातिक पक्ष मे तो वैष्णव तथा सिक्ख धर्म मे बहुत अन्तर है। क्रियात्मक जीवन मे भी अन्तर कम नही। ऊपर बताए गए १६ अगो मे से पाचो का सिक्ख धर्म मे कोई स्थान नही है। पाँचवें अग के अन्तर्गत बताए गए १८ रामानुजी धर्मो कर्मो से बहुत से उसी प्रकार ही और कई रूप बदल कर सिक्खो मे आए हुए है, यद्यपि इन धर्मों कर्मों के विषय तथा लक्ष्य के आधार पर सिक्खो एव वैष्णवो मे लाखो कोसो का अन्तर है। (विशुद्ध वैष्णव के लक्षणो के लिए देखें सुखमनी साहिब की नवम अष्टपदी की दूसरी पौडी। पृष्ठ २७४)

ख—कबीर जी तथा गुरु साहिब

शैव धर्म का सिक्ख धर्म से सम्बन्ध खोजने से पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि पहले कबीर साहिब के मत की संक्षिप्त व्याख्या की जाए ताकि हमे पता लग सके कि सिक्ख मत तथा कबीर मत मे कितना सम्बन्ध है। कबीर जी एक प्रकार से वैष्णव भक्त ही हुए हैं। श्री रामानुज के शिष्य रामानन्द के ये चेले थे। प्रत्येक प्रसिद्ध लेखक ने कबीर जी तथा गुरु नानक देव जी का किसी न किसी रूप मे सम्बन्ध जोडा है। इस लिए हमारे लिए कबीर साहिब के विचारो का विश्लेषण बहुत आवश्यक हो गया है। कबीर जी को टरम्प, मैकनिकल आदि ने उस धार्मिक सुधार वाले आन्दोलन का प्रवर्तक कहा है जो भारत मे मध्य काल मे शकराचार्य के पश्चात् आरम्भ हुआ।*

कबीर साहिब के जन्म, जाति तथा माता पिता के सम्बन्ध मे कई प्रकार की कथाये प्रचलित है। कई तो कबीर को मुसलमान बताते है और कई हिन्दु। कुछेक ने इन्हे जन्म का ब्राह्मण कहा है तथा कई जन्मजात जुलाहा बताते है। कई कहते है कि जन्म तो ब्राह्मण के घर हुआ था और पाला पोसा किसी जुलाहे ने था। इनके जन्म सम्बन्धी विवाद अथवा इनकी जीवन कथा के सम्बध मे विस्तार मे जाने की हमे आवश्यकता नही। हमे उनके गुरु नानक से सम्बन्ध तथा उनके विचारो की खोज की आवश्यकता है।

गुरु नानक देव जी से कबीर जी का सम्बन्ध भिन्न भिन्न लेखको ने चार प्रकार का बताया है —

१. गुरु नानक जी कबीर जी के चेले थे,

२ कबीर जी गुरु नानक जी के चेले थे,

३ यद्यपि गुरु नानक देव जी तथा कबीर साहिब का मेल कभी नही हुआ, परन्तु कबीर के विचारो का प्रभाव गुरु नानक साहिब पर बहुत हुआ,

४ गुरु नानक तथा कबीर का आपस मे किसी प्रकार का

---

* देख डाक्टर मोहन सिह जी की प्रामाणिक अग्रेजी पुस्तकें तथा Kabir, History of Panjabi Literature

कोई सम्बन्ध नही था। न वे एक दूसरे को मिले तथा न ही एक दूसरे के विचारो का कोई आदान-प्रदान अथवा उल्टा सीधा प्रभाव हुआ।

(१) पहले विचार को प्रतिपादित करने वाले और इस विचार के संस्थापक गौरडन, फरकूहर, तथा कीय हुए है।

क—एं०एस० गौरडन 'ऐनसाइकलोपेडिया आफ रिलेजन एण्ड ऐथिक्स' के चौथे भाग के पृष्ठ २८७ पर लिखते है :—

"रामनन्द के मत मे जो कुछ भी अच्छी बातो एव सहनशीलता का पक्ष था वह सब पजाब मे १६वी शताब्दी मे कबीर ने अपना लिया तथा यह सारा यत्न कबीर के शिष्य नानक जी के यत्नो से सम्मिलित होकर एक सुधारक आन्दोलन का रूप धारण कर गया जिसका नाम सिक्ख धर्म हुआ।" गौरडन के कबीर को पजाब का रहने वाले की बजाए "एनसाइकलोपेडिया ब्रिटैनेका" को रचना देखे, वहा लिखा है "कबीर कभी पजाब मे नही गया।"

ख—जे० एन० फरकूहर अपनी पुस्तक 'माडरन रिलेजस मूवमैन्टस इन इन्डिया के पृष्ठ ३३६ पर लिखते हैं 'सिक्ख सम्प्रदाय के प्रर्वतक नानक प्रसिद्ध मुरशिद कबीर के मुरीद थे।" इस सम्बन्ध मे एक अनोखो बात यह है कि फरकूहर ने अपनी पहली पुस्तक "एन आउट लाईन आफ रिलेजस लिट्रेचर इन इण्डिया' के १९२० वाले सस्करण मे लिखा था कि गुरु नानक तथा कबीर जो का मेल सम्भवत न ही कभी हुआ हो।

ग—एफ० ई० कीथ ने "कबीर एण्ड हिज़ फालोअरज" मे भी गुरु जी को कबीर का शिष्य ही बताया है।

(२) दूसरे विचार के जन्मदाता सरदार निहाल सिह जी सूरी आदि जैसे कट्टर सिक्ख लेखक हैं। सरदार निहाल सिह जी अपनी पुस्तक "जीवन वृत्तान्त श्री कबीर जी, १९१७" नामक पुस्तक मे लिखते हैं कि न केवल कबीर अपितु रविंदास रामानन्द तथा पीपा आदि सब भक्त गुरु नानक देव जी के शिष्य थे।

(३) तीसरे विचार के समर्थक कि कबीर की शिक्षा ने किसी न किसी रूप मे गुरु नानक साहिब पर प्रभाव अवश्य डाला, टरम्प, वारथ तथा आटोसूटरास जैसे लोग है। कनिंघम साहिव भी इसी विचार को असम्भव नही समझते। बारथ साहिब अपनी पुस्तक 'रिलेजन्ज़

आफ इण्डिया' के पृष्ट २४३ पर लिखते है कि गुरु नानक साहिब अपनी उदासियो (यात्राओ) मे कबीर जी के शिष्यो को अवश्य मिले थे। आर्टोस्टरास 'रिलेजन्ज आफ दि वर्ल्ड' मे अपने लेख मे लिखते है कि गुरु नानक का धार्मिक दृष्टिकोण वही था जो कबीर का था।

(४) चौथा विचार मैकालिफ साहिब तथा मिस डारोथी फील्ड ने प्रचारित किया तथा हाल ही मे डा० मोहन सिंह जी ने अपनी दो प्रसिद्ध पुस्तको 'कबीर आदि तथा पजाबी साहित्य का इतिहास (अग्रेजी) मे इसे बडी खोज से पुष्ट किया है। अर्थात् समर्थन किया है।

इन चारो विचारो को परखने के लिए तथा सत्य असत्य विचार की खोज के लिए हमे तीन कसौटियो का प्रयोग करना चाहिए। एक तो ऐतिहासिक अथवा समय एव तिथियो (सन् सम्मत) की पडताल के आधार पर परख करनी है। दूसरी है आन्तरिक तथा बाह्य गवाही ढूढनी तथा तीसरी कसौटी है गुरु नानक तथा कबीर जी के सिद्धान्तो की समालोचना विश्लेषण तथा तुलना आदि करना ताकि भेद अभेद की जाच की जा सके।

यह बात तो अब ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भली प्रकार खोज पडताल करके सिद्ध की जा चुकी है कि गुरु नानक जी तथा कबीर जी समकालीन नही थे। न कबीर गुरु जी के शिष्य थे और न गुरु नानक जी कबीर के मुरीद थे। कबीर जी गुरु नानक जी से बहुत पहले शरीर त्याग चुके थे फिर उनका मेल किस प्रकार सम्भव हो सकता था। (विस्तार पूर्वक विचार के लिए देखे डा मोहन सिंह जी की ऊपर लिखित पुस्तके)। न कबीर जी की रचना मे गुरु नानक देव जी का कही प्रसग आता है और न ही गुरु नानक देव की बाणी मे कही कबीर की ओर सकेत है। गुरु नानक देव जी की नम्रता एव अभिमान हीनता आदर्शमय थी। वे अपने सम्बन्ध को यदि कबीर से गुरु शिष्य अथवा शिष्य गुरु या किसी अन्य प्रकार का होता तो कभी न छिपाते। वे अपनी कृतज्ञता को अवश्य प्रकट करते या उनके पश्चात् आने वाले गुरु ही अथवा भाई गुरदास आदि गुरुघर के लेखक ही कही न कही इस सम्बन्ध की ओर अवश्य कोई न कोई सकेत करते। परन्तु नही, कही भी किसी गुरु अथवा गुरु के किसी पुराने लेखक ने गुरु नानक तथा

कबीर का मेल बताया हो। न ही गुरु घर से बाहर के हिन्दु मुसलमान लेखको अथवा इतिहास कारो ने ही कबीर-नानक सम्बन्ध को कही बताया है। इसलिए कबीर-नानक सम्बन्ध पहली दोनो ही कसौटियो पर पूरा नही उतरता। शेष रही बात कबीर मत तथा नानक मत अथवा दोनो महापुरुषो के विचारो की तुलना करने की। आइये अब थोडा उस पर भी विचार कर लें।

जिस प्रकार पहले बताया जा चुका है कि कबीर जी वैष्णव भक्त थे और मध्यकाल के चलाए हुए भक्तो के धर्म सुधार आन्दोलन से सम्बन्धित सभी महापुरुष ही ब्राह्मणी धर्म के जाति भेद के विरुद्ध थे। कबीर तथा गुरु नानक जी ने भी इस विरोधता मे प्रथम पंक्ति मे खडा होकर भाग लिया। कबीर जी ने जाति भेद के अत्याचर को स्वय देखा था क्योंकि उनका पालन-पोषण जुलाहो के घर शुद्र जाति मे हुआ था। "कबीरा मेरो जाति कउ सभ को हसनेहार" आदि वाक्यो द्वारा कबीर स्वय ही अपने आपको शूद्र मानते है। शूद्रो के निरादर ने कबीर के मन पर बहुत प्रहार किये थे। यह बात स्वाभाविक थी कि कबीर जी की रचना मे ब्राह्मण अहकार के विरुद्ध बहुत घृणा पाई जाती है। कई श्लोको मे अपशब्द तक कहे गये हैं। "जे तउ ब्रैह्मण ब्रैह्मणी जाया, तउ आन बाट काहे नही आइआ।" कबीर जी ने क्रोध मे आकर कहा (राग गउडी पृष्ठ ३२०) "तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद। हम कत लोहू तुम कत दूध।" भाव यह कि यदि ब्राह्मणो को ईश्वर ने नें ऊचा बनाया हैं तो वे शूद्रो से भिन्न होने चाहिये थे। वे मा के पेट से किसी अन्य मार्ग द्वारा उत्पन्न होते, उनकी नाडियो मे रक्त के स्थान पर दूध होना था। प्राकृतिक बनावट मै ब्राह्मण तथा शूद्र मे कोई अन्तर नहीं। यह अन्तर ब्राह्मण अथवा किसी और ने स्वय बनाया है। इसी लिए कबीर जी ने (पृष्ठ १३७७) २३७वें श्लोक मे कहा 'बामनु गुरु है जगत का भगतन का गुरु नाहि"। परन्तु इतने घृणापूर्ण शब्दो एव कड़ी आलोचना निन्दा के बावजूद कबीर साहिब क्रियात्मक रूप मे जाति भेद को अपने श्रद्धालुओ मे से हटा न सके। सम्भवत इसी लिए कि वे स्वय जुलाहा प्रसिद्ध थे और उच्च जाति वाले शिष्य कब इस शिक्षा पर चल सकते थे। उनके नीच जाति के होने का कबीर जी को विशेष लाभ रहा।

उधर गुरु नानक देव जो उच्च परिवार के खत्री थे। इस लिए

जाति भेद के विरोध मे गुरु साहिब द्वारा प्रयुक्त शब्दो मे वह क्रोध क्रूर भावनाओ का प्रकटीकरण नही हुआ जो कि कबीर जी ने किया। गुरु साहिब ने यह बात भली प्रकार अनुभव कर ली थी कि जाति पाति का विभाजन सर्वथा अनावश्यक है तथा धर्म एव समाज मे न केवल इसके लिए स्थान ही नही अपितु इनके लिए बडी हानिकारक है। गुरु साहिब की रचनाओ मे जाति-पाति की बहुत निन्दा की गई है और क्रियात्मक जीवन मे भी उन्होने जाति-पाति तोडने के यत्न किए। यह ठीक है कि गुरु नानक देव जी की शादी उनकी अपनी जाति मे ही हुई। कारण यह कि हमारे देश मे गुरु साहिब के समय भी और आज भी लडके लडकी का विवाह माता पिता के अधीन है। लडके के लडकी विचारो को विवाह करने न करने मे कोई हस्तक्षेप नही है। इसलिए गुरु जी का विवाह हिन्दू सस्कारो के अनुरूप ही हुआ। अन्यथा गुरु साहिब ने साधारण मेलजोल मे आचार व्यवहार मे तथा खान पान मे जाति पाति का कोई विचार नही रखा। उन्होने हिन्दु मुसलमानो के साथ एक जैसा सम्बन्ध रखा तथा सब के घरो से खाया। मुसलमान देशो मे गये और मुसलमान घरो मे भोजन आदि खाते रहे। शूद्रो एव अछूतो के घर गए तो उनके घर भोजन करते रहे। कई बार तो उच्च जाति के घरो के ऐश्वर्य को छोड कर शूद्रो के घरो मे सूखी सडी रोटी खाना अच्छा समझा।

जाति पाति की निन्दा के अतिरिक्त दूसरी बात जो गुरु साहिब तथा कबीर जी के मतो मे सादृश्य है, वह है मूर्ति पूजा का खण्डन। ईश्वर को पत्थर का बुत बनाकर पूजने का उन्होने घोर विरोध किया। तीसरी बात जो गुरु साहिब तथा कबीर साहिब के विचारो मे मिलती जुलती है, वह है दिखावे के कर्म काण्ड, सारहीन धर्म कर्म तथा पाखण्ड पूर्ण रीति रिवाज की विरोधता। दोनो ने हिन्दु मुस्लिम तथा अन्य तत्कालीन प्रचलित धार्मिक जीवन के फीके एव व्यर्थ रीति रिवाजो तथा दिखावे का बडे कठोर शब्दो मे खण्डन किया। ये तीन बातें दोनो महापुरुषो की शिक्षा मे साम्य है।

परन्तु इन तीनों बातो की साम्यता के आधार पर हम कोई विशेष निर्णय नही कर सकते। पहली बात तो यह कि ये तीनो बाते उस समय के सभी भक्तो की वाणी मे मिलती है। एक प्रकार से ये मध्य कालीन धर्म सुधार आन्दोलन के विशेष चिन्ह थे। यदि इन

तीनो बातो के अधार पर हम यह निर्णय निकाल ले कि एक महापुरुष का दूसरे पर प्रभाव पडा तो हम पर शोघ्रता मे निर्णय निकालने का दोप लगेगा। हमे एक अन्य दोष से भी बचना चाहिए। कोई निर्णय करने के लिए पक्ष तथा विपक्ष को सब बाते ध्यान म रखनी अपेक्षित है नही तो अधूरी पडताल (परख) का दूषण हमारी खोज पर लगेगा। हमे वे तथ्य भी ध्यान मे रखने चाहिए जिन मे दोनो महा-पुरुषो को शिक्षा का अन्तर है।

यह तो ऊपर कह ही आए है कि ऊपर को तोनो बातो को विचार सम्बन्धी साम्यता जो गुरु नानक देव जो की है वह केवल कबीर के साथ ही नही है, अपित तत्कालोन शेष महा पुरुषो के साथ भो है। भारतीय मध्यकालोन धर्म सुधार आन्दोलन के ये समरूप निर्णय थे। जाति पाति तोडने का मूल कारण बौद्ध धर्म का प्रचार था और बौद्ध मत का प्रभाव गुरु नानक तथा कबीर आदि के समय तक विद्यमान था। साथ ही भारत मे मध्य काल मे इस्लाम बडो तेजी से ज़ोर पकड रहा था तथा मुस्लिम धर्म मे जाति पाति पहले ही नही थी। इन दो धर्मों के प्रभाव स्वरूप रामानन्द, उससे पूर्व गोरख आदि तथा अन्य कई भक्तो ने मानव समाज के ऊच नोच मे विभाजन का घोर विरोध आरम्भ किया हुआ था। यही बात मूर्ति पूजा तथा निस्सार कर्मकाण्ड के खण्डन के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है। हा यह बात अवश्य है कि जिस बहादुरी तथा ज़ोर से कबीर जी और विशेषतया गुरु नानक देव जी ने इन बन्धनो एव शृखलाओ से भारतीय समाज को स्वतत्र किया वह पहले किसी महा पुरुष को रचना अथवा जीवन मे देखने मे नही आता। यह ठोक है कि इन तीनो ही बातो के विरुद्ध उस समय के वायुमण्डल मे प्रभाव पहले ही विद्यमान थे, बीज थे और कबीर तथा गुरु नानक की शिक्षा मे अनुकूल हवा पानो ने उन्हे प्रफुल्लित करके एक महान शक्ति बना दिया। कबीर जी ने अपने स्थानीय प्रभाव के फल स्वरूप कुछ समसामयिक तथा कुछ निजी कठिनाइयो के होते हुए किया। परन्तु गुरु नानक देव जी ने लोगो के धार्मिक तथा सामाजिक जोवन को समस्त भारत मे भ्रमण करके ही नही अपितु भारत से बाहर मक्के मदोने तक जाकर तथा उधर तिब्बत चोन तक पहुच कर आखो से देखा। सभी धार्मिक

जाति भेद के विरोध मे गुरु साहिब द्वारा प्रयुक्त शब्दो मे वह क्रोध क्रूर भावनाओ का प्रकटीकरण नही हुआ जो कि कबीर जी ने किया। गुरु साहिब ने यह बात भली प्रकार अनुभव कर ली थी कि जाति पाति का विभाजन सर्वथा अनावश्यक है तथा धर्म एव समाज मे न केवल इसके लिए स्थान ही नही अपितु इनके लिए बडी हानिकारक है। गुरु साहिब की रचनाओ मे जाति-पाति की बहुत निन्दा की गई है और क्रियात्मक जीवन मे भी उन्होने जाति-पाति तोडने के यत्न किए। यह ठीक है कि गुरु नानक देव जी की शादी उनकी अपनी जाति मे ही हुई। कारण यह कि हमारे देश मे गुरु साहिब के समय भी और आज भी लडके लडकी का विवाह माता पिता के अधीन है। लडके के लडकी विचारो को विवाह करने न करने मे कोई हस्तक्षेप नही है। इसलिए गुरु जी का विवाह हिन्दू सस्कारो के अनुरूप ही हुआ। अन्यथा गुरु साहिब ने साधारण मेलजोल मे आचार व्यवहार मे तथा खान पान मे जाति पाति का कोई विचार नही रखा। उन्होने हिन्दु मुसलमानो के साथ एक जैसा सम्बन्ध रखा तथा सब के घरो से खाया। मुसलमान देशो मे गये और मुसलमान घरो मे भोजन आदि खाते रहे। शूद्रो एव अछूतो के घर गए तो उनके घर भोजन करते रहे। कई बार तो उच्च जाति के घरो के ऐश्वर्य को छोड कर शूद्रो के घरो मे सूखी सडी रोटी खाना अच्छा समझा।

जाति पाति की निन्दा के अतिरिक्त दूसरी बात जो गुरु साहिब तथा कबीर जी के मतो मे सादृश्य है, वह है मूर्ति पूजा का खण्डन। ईश्वर को पत्थर का बुत बनाकर पूजने का उन्होने घोर विरोध किया। तीसरी बात जो गुरु साहिब तथा कबीर साहिब के विचारो मे मिलती जुलती है, वह है दिखावे के कर्म काण्ड,- सारहीन धर्म कर्म तथा पाखण्ड पूर्ण रीति रिवाज की विरोधता। दोनो ने हिन्दु मुस्लिम तथा अन्य तत्कालीन प्रचलित धार्मिक जीवन के फीके एव व्यर्थ रीति-रिवाजो तथा दिखावे का बडे कठोर शब्दो मे खण्डन किया। ये तीन बातें दोनों महापुरुषो की शिक्षा मे साम्य है।

परन्तु इन तीनो बातो की साम्यता के आधार पर हम कोई विशेष निर्णय नही कर सकते। पहली बात तो यह कि ये तीनो बाते उस समय के सभी भक्तो की वाणी मे मिलती है। एक प्रकार से ये मध्य कालीन धर्म सुधार आन्दोलन के विशेष चिन्ह थे। यदि इन

तीनो बातो के अधार पर हम यह निर्णय निकाल ले कि एक महापुरुप का दूसरे पर प्रभाव पडा तो हम पर शीघ्रता मे निर्णय निकालने का दोप लगेगा। हमे एक अन्य दोष से भी बचना चाहिए। कोई निर्णय करने के लिए पक्ष तथा विपक्ष की सब बाते ध्यान म रखनी अपेक्षित है नही तो अधूरी पडताल (परख) का दूषण हमारी खोज पर लगेगा। हमे वे तथ्य भी ध्यान मे रखने चाहिए जिन मे दोनो महा-पुरुषो की शिक्षा का अन्तर है।

यह तो ऊपर कह ही आए हैं कि ऊपर की तीनो बातो की विचार सम्बन्धी साम्यता जो गुरु नानक देव जी की है वह केवल कबीर के साथ ही नही है, अपित तत्कालीन शेष महा पुरुषो के साथ भी है। भारतीय मध्यकालीन धर्म सुधार आन्दोलन के ये समरूप निर्णय थे। जाति पाति तोडने का मूल कारण बौद्ध धर्म का प्रचार था और बौद्ध मत का प्रभाव गुरु नानक तथा कबीर आदि के समय तक विद्यमान था। साथ ही भारत मे मध्य काल मे इस्लाम बडी तेजी से जोर पकड रहा था तथा मुस्लिम धर्म मे जाति पाति पहले ही नही थी। इन दो धर्मो के प्रभाव स्वरूप रामानन्द, उससे पूर्व गोरख आदि तथा अन्य कई भक्तो ने मानव समाज के ऊच नीच मे विभाजन का घोर विरोध आरम्भ किया हुआ था। यही बात मूर्ति पूजा तथा निस्सार कर्मकाण्ड के खण्डन के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है। हा यह बात अवश्य है कि जिस बहादुरी तथा ज़ोर से कबीर जी और विशेषतया गुरु नानक देव जी ने इन बन्धनो एव श्रृंखलाओ से भारतीय समाज को स्वतत्र किया वह पहले किसी महा पुरुष की रचना अथवा जीवन मे देखने मे नही आता। यह ठीक है कि इन तीनो ही बातो के विरुद्ध उस समय के वायुमण्डल मे प्रभाव पहले ही विद्यमान थे, बीज थे और कबीर तथा गुरु नानक की शिक्षा मे अनुकूल हवा पानी ने उन्हे प्रफुल्लित करके एक महान शक्ति बना दिया। कबीर जी ने अपने स्थानीय प्रभाव के फल स्वरूप कुछ समसामयिक तथा कुछ निजी कठिनाइयो के होते हुए किया। परन्तु गुरु नानक देव जी ने लोगो के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन को समस्त भारत मे भ्रमण करके ही नही अपितु भारत से बाहर मक्के मदीने तक जाकर तथा उधर तिब्बत चीन तक पहुच कर आखो से देखा। सभी धार्मिक

महापुरुषो से विवाद परिचर्चा तथा वार्ता की। इसलिए गुरु जी के सिद्धान्तो मे इन बातो से सम्बधित अधिक जोरदार अपील एव आकर्षण है। उनके प्रभाव मे एक मगठित लहर चल पडी जिसका नाम सिक्ख धर्म' था। इस धर्म के सिद्धात एव मार्ग मे से वे समस्त न्यूनताये गुरु साहिब ने निकाल दी जो उस समय उन्होने स्वय समीप और दूर जाकर दूसरो के धार्मिक जीवन मे देखी थी तया जिनका चरित्र निर्माण एव आत्मिक उन्नति से कोई सम्बन्ध नही था।

दूसरी ओर कबीर अपने क्रांतिकारी दृष्टिकोण के बावजूद अपने आप को वैष्णम मत से सम्बधित उलझनो से निकाल न सके और उनका जीवन वैष्णव साचे मे ढलता रहा। कबीर साहिब की रचनाओ से पता लगता है कि नीचे लिखे वैष्णव मत के निश्चयो को कबीर भी मानते थे, परन्तु गुरु साहिब इनके सम्बन्ध मे बहुत क्रातिकारी राय रखते थे जो कि सिक्ख धर्म के सिद्धान्तो एव सिक्खी जीवन का अग बन चुकी है

१—वेदो की प्रामाणिकता यद्यपि यह ठीक है कि कबीर जी का यह निश्चय नही था कि वेदो का सारहीन पाठ (अध्ययन) मनुष्य को परमपद प्राप्ति के लिए किसी प्रकार सहायक हो सकता है

वेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु ना जाइ ।।४।।१।।

(पृष्ठ ७२७—रागतिलग)

परन्तु फिर भी कबीर साहिब वेद विचार को पूर्ण मत सिद्ध करने का साधन मानते थे।

वेद कतेब कहहु मत झूठै झूठा जो न बीचारै।।

(बिभास प्रभाती, पृष्ठ १३५०)

२ पौराणिक साखियाँ (कथाये) यदि कबीर जी ने पुराण माइथालोजी को स्पष्ट रूप मे नही माना तो इतना अवश्य है कि उनकी कथाओ को जानबूझ कर सहन अवश्य किया है। अर्थात् उन्हें माना अवश्य है।

३—अवतारो को पूजा श्री राम चन्द्र जी को वे अकाल पुरुष का अवतार समझ कर पूजते थे। डाक्टर गोकल चन्द नारग लिखते है कि एक बात मे गुरु नानक, कबीर तथा अन्य सभी महापुरुषो को पीछे छोड गए थे, वह यह कि कबीर आदि तो श्री राम, कृष्ण जी

को ईश्वर के अवतार समझ कर पूजते थे परन्तु गुरु नानक ने उनके अवतार होने को अच्छो प्रकार "चुनौती" (चैलज) दी तथा उनके ईश्वर होने के सम्बन्ध मे घोर विरोध किया ।

४—एक सच्चे वैष्णव के रूप मे कबीर ने 'अहिंसा परमो धर्म' के नियम को दिल से निभाया । प्राचीन ब्राह्मणी मॉस आहार के विरुद्ध रीति को कबीर जी ने तोडना तो क्या था, उल्टा वे फूलो को तोडने से भी हिचकचाते थे क्योकि वे फूलो, पत्तिया तथा वनस्पति को भी जैनियो की तरह जानदार (सजीव) समझते थे । उधर गुरु नानक जी ने ऐसी भ्रातियो को मूर्खता कहा है । कबीर जी ने कहा . 'पाती तोरै मालिनी पाती पाती जीउ' (राग आसा पृष्ठ ४७९), दूसरी ओर गुरु साहिब के विचार इस सन्देह पूर्ण अहिंसा के सम्बन्ध मे पूर्ण विवेक पर आधारित थे । आसा जी की वार के १८वे श्लोक (पृष्ठ ४७२) तथा मल्हार की वार श्लोक २५ (पृष्ठ १२८८) मे इस हिंसा अहिंसा की समस्या के अच्छो प्रकार पोल खोले है । इन शब्दो का पहले भी वर्णन हो चुका है ।

५ – चाहे गुरु साहिब की भाँति कबीर ने गृहस्थ धर्म की प्रशसा की है, परन्तु साथ हो गृहस्थ त्याग को भी आदर्श माना है । परन्तु गुरु साहिब घर-त्याग को कोई अच्छा आदर्श नही मानते थे । कबीर जी का कथन है

कबीर जउ ग्रिहु करहि त धरमु करु नाही त करु बैरागु ॥
(सलोक २४३ पृष्ठ १३७७)

६—वैष्णव भक्ति के अनुसार भगवान के नाम का स्मरण साधारण स्थितिओ मे एक-रसना-जाप बन जाता है और 'मन होर ते मुख होर' का दोष धारण कर लेता है । इस दोष की गुरु जी ने निन्दा की है, परन्तु कबीर जी इस कमी को अनुभव नही करते । कबीर जी कहते हैं —

कहु कबीर अखर दुई भाखि । होइगा खसमु त लेइगा राखि ॥
(गउडी कबीर पृष्ठ ३२९)

दूसरी ओर इस तोते की भाति रटने वाले जाप सम्बन्धी गुरु साहिब के शब्द देखें

—गउडी महला ३—पृष्ठ ४९१

दोनो महापुरुषो के लिए साझे वायु मण्डल के साथ साथ स्थानीय, श्रेणी, जाति, जन्म आदि के भिन्न भेद भी बहुत थे। यही कारण है उन महापुरुषो के विचारो मे कुछ सादृश्य होने का और कुछ भिन्न भेद (विषमता) होने का। इन दोनो हस्तियो को समकालीन बनाकर या उल्टे सीधे ढग से सम्बन्धित करके हमे इतिहास का गला नही घोटना चाहिए और न ही खोज पडताल (अनुसन्धान) को फाँसी देना चाहिए। हमारा निर्णय ऐतिहासिक कसौटी पर भी पूरा उतरेगा और धार्मिक पर भी।

तीसरा–शैव मत तथा गुरमत

१–शैव मत

शिवपद सुन्दरम अपनी पुस्तक दी शैवा स्कूल आफ हिन्दु-इजम' मे हिन्दु धर्म के लक्षण बताते हुए लिखते है कि हिन्दु धर्म कई धर्मों के सगठन 'गरुप' का नाम है और धर्मों के इस समूह-टोले के अग्रणीय सदस्य है शैविजम तथा शाकतिज़म । इन मतो की धार्मिक पुस्तके वेदो के सिवाय शेष अपनी अपनी भिन्न भिन्न है। वेदो के अतिरिक्त शैव मत की धार्मिक पुस्तक 'शिव अगम' है, वैष्णव मत की पन्चारत्र है और शाक्त मत की 'शक्ति अगम' है। ये तीन विभाजन क्या हैं ?

सृष्टि की रचना, पालन तथा सहार के कार्य प्राचीन ऋषियो ने तीन देवताओ को सौपे थे। ब्रह्मा सृष्टि का कर्ता है अर्थात रचना करता है, विष्णु इसका पालन करता है और शिव जी सहार करने अथवा जीवो को कालवश करने के विभाग का स्वामी है। दूसरे शब्दो मे तीनो प्राकृतिक नियमो को किसी वस्तु अथवा जीवन का उत्पन्न होना, स्थित रहना तथा नष्ट होना—तीनो देवताओ के रूप मे प्रस्तुत किया गया। मनुष्य ने अपनी कमजोरियो को छिपाने के लिए अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए इन तीनो देवताओ की पूजा आरम्भ कर दी और प्रत्येक देवता के नाम पर एक मत स्थापित हो गया।

ऊपर सकेत हो ही चुका है कि इन देवताओ के विचार का आरम्भ मानवीय था। भाव यह कि मनुष्य ने प्रकृति की प्रत्येक बात को मनुष्य की भांति जीता जागता, (सजीव) तथा मन आत्मा रखता हुआ बना दिया। विष्णु तथा शिवजी हमारे जीवन के भावो एव दुख सुख से सम्बधित मनोवेगो से जुड गए। विष्णु एक दयालु पिता की

भाति हमारा पालन करता है और हमारी इच्छा का पूरक है। वह माता पिता वाले गुण रखता है। हमारे उचित मनोवेग ऐसे देवता से प्यार करके, इसका सत्कार करके तथा इसे प्रसन्न रखकर इससे मागे माग कर अपनी तुष्टि करते है तथा आन्तरिक न्यूनता को पूरा करते है। विष्णु देवता एक प्रकार का नमूना है। जहा जहाँ भी मनुष्य रहता अथवा निवास करता है वह अपनी न्यूनताओ, कमजोरियो कमियो आदि की पूर्ति का चाहवान (इच्छुक) सदा से रहा है। सभी बाते इसके वश मे नही है। इसने कोई ऐसी हस्ती (शक्ति) भी आवश्यक समझी जो कि उसकी इच्छाओ को पूरा करे। मनुष्य ने यह कार्य माता पिता की भाति दयालु कृपालु विष्णु या किसी अन्य ऐसे ही देवता अथवा ईश्वर से लिया।

जीवन मे जहा फूल है वहा साथ ही काटे भी हैं। दुख सुख इकट्ठे ही चलते है। नम्र गुणो के साथ कठोर गुण भी विद्यमान है। यदि विष्णु पालन पोषण करता है तो फिर मनुष्य का सहार कौन करता है? इसे कष्ट कौन पहुचाता है? रोग एव विपत्तियो को कौन भेजता है? यह दयालु कृपालु विष्णु पिता तो नही भेजता। इनका कारण कोई कठोर एव क्रोधी देवता होगा। वे शिवजी महाराज बनाये गए। अर्थात् यह कार्य शिवजी को सौपा गया। शिवजी का विचार उत्पन्न होने से पहले यह काम वेद-शास्त्रो मे रुद्र देवता को सौपा गया था। शिवजी जीवन के कठोर पक्ष के देवता हैं। जहाँ भी विष्णु नुमा ईश्वर की पूजा होती है वहा शैव पक्ष भी सदा प्रस्तुत रहता है।

इन देवताओ की पूजा के दो उद्देश्य हैं। जब कभी किसी बच्चे को खतरा होता है वह आशा करता है कि उसका कृपालु पिता उसका सहायक हो तथा उस खतरे से उसे बचाये। अथवा वह यह भी चाहता है कि यह खतरा स्वय किसी परोक्ष शक्ति से टल जाए अर्थात् खतरे मे ही कुछ दया आ जाए। जैसे कही जगल मे किसी व्यक्ति को शेर अथवा बाघ मिल जाए तो या तो वह चाहता है कि किसी ओर से कोई धनुष बाण वाला, कोई बन्दूक पिस्तौल वाला व्यक्ति आ जाए और वह बच जाए। या वह अपने मन मे कहता है कि हे बाघ! तू ही अपना मुख अथवा मार्ग बदल ले, तु स्वय ही दया कर। वह उधर भेड चर रही है उसे जाकर पकड, मुझे छोड दे। बात क्या

बाध की पूजा आरम्भ हो जाती है। इसी प्रकार दुख एव काल के स्वामी शिवजी की भी पूजा आरम्भ हो गई। यदि काल देवता प्रसन्न रहेगा तो दुख कलेश दूर रहेगे। काल देवता कोई फूलो एव विनम्र-मधुर प्रार्थनाओ से तो प्रसन्न होता ही नही, उसे प्रसन्न करने के लिए भी ऐसी पूजा की आवश्यकता है। जिसमे काल का अग हो। अकाल एव विनाश को टालने के लिए यह हो सकता है कि वह काल जो एक मनुष्य के सिर पर आ रहा है उसे भेड, बकरे, अथवा किसी अन्य वस्तु की ओर प्रेरित किया जाए। यह बलि देने का आरम्भ था। शक्ति माता को प्रसन्न करने के लिए कई भयानक बलिदान करने पडते हैं। पशुओ की बलि शक्ति अथवा कालका माता के लिए आम है, परन्तु मनुष्यो की कुरबानी भी दी जाती है। यह शक्ति मत वाले करते हैं। कई बार शिवजी तथा शक्ति (पार्वति) जी को पूजा इकट्ठी भी की जाती है।

डाक्टर फ्रायड के कथनानुसार मृत्यु का भय उतना ही पुराना है जितना मनुष्य का जीवन। मृत्यु का डर सबसे पहला डर है। मृत्यु से बचने के लिए प्रयत्न भी सबसे पुराने तथा आरम्भिक प्रयत्न है। इसलिए सर मार्शल का यह कहना ठीक ही होगा कि शैवमत ससार के सब मतो से पुराना है। नवीन खोजो के आधार पर शैविजम को पाच हज़ार वर्ष से अस्तित्व मे आया कहा जाता है। सर मार्शल लिखते हैं कि 'मोहन जोदाडो' के स्थान की खुदाई से सबसे महान एव महत्व पूर्ण बात जो सिद्ध होती है, वह यह है कि शैविज़म भारत का सब से पुराना धर्म है। डाक्टर प्राणनाथ इसी विचार को पुष्टि करते हुए कहते हैं कि शैव-धर्म सन् ईस्वी से कम से कम तीन हज़ार वर्ष पहले अवश्य विद्यमान था।*

२ गोरख-मत अथवा सिद्धो से सम्बन्ध

भारत के धार्मिक इतिहास से पता चलता है कि जब बौद्ध मत

*देखें 1 Mohenjo-daros and the Indus Civilisation
2 The Script of the Indus Valley

तथा शैवमत का मेल हुआ तो इनके मेल से एक अन्य सम्प्रदाय चला जिसको जोगी सम्प्रदाय कहा जाता है। सिक्ख धर्म का शैव धर्म से जो भी सम्बन्ध है वह जोगी मत के माध्यम से ही है। गुरु नानक देव जी का जोगियो तथा सिद्धो के साथ बहुत सम्पर्क रहा और कई बार इनसे गोष्ठी-परिचर्चा हुई। इस गोष्ठी परिचर्चा मे गुरु नानक देव ने जोगियो को बहुत गम्भीर एव गूढ विचार बताये थे। ये गोष्ठिया गुरु ग्रथ मे भी वर्णित है। एक लम्बी वाणी का नाम ही 'सिद्ध-गोष्ठी' है कुछ लोगो का विचार है कि जपु जी साहिब गुरु साहिब ने सिद्धो के प्रति उच्चरित किया था। इन गोष्ठियो मे कई जोगियो के नाम भी आते है। मछन्दर नाथ, गोरखनाथ, चरपट नाथ आदि से कई मे आए प्रश्नोत्तर सम्बन्धित है। गुरु नानक जी के मिशन तथा उनके सिद्धान्तो की अद्भुत सफलता ने अन्य किसी को ईर्ष्या की आग मे इतना नही जलाया था जितना कि जोगियो तथा सिद्धो को। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि जोगियो के मत तथा सिक्ख धर्म की थोडी विस्तार पूर्वक तुलना की जाए ताकि पता लग सके कि गोरखनाथ तथा गुरु नानक के विचारो मे कितनी विषमता है।

सिद्धो को कनफटे जोगी भी कहते है, परन्तु गुरबाणी मे इन सबके लिए सिद्ध शब्द का प्रयोग किया गया है। सिद्ध वह है जिसने योगाभ्यास मे अपने तन-मन को जीत लिया हो और उसने कई ऋद्धिया सिद्धिया प्राप्त कर ली हो। नौ निद्धियो एव अठारह सिद्धियो की ओर सकेत गुरबाणी मे कई स्थानो पर मिलता है। कनफटे योगियो अथवा सिद्धो का गुरु गोरखनाथ ही माना जाता है। जी० ए० ग्रियर्सन लिखता है उत्तरी भारत मे गोरखनाथ को कबीर जी जो पन्द्रहवी शताब्दी मे एक माने हुए महापुरुष थे, का समकालीन मानते है। उधर पश्चिमी भारत मे एक धर्मनाथ ने जो कि गोरख नाथ का गुरुभाई था, कनफटो का मत कच्छ के इलाके मे १४वी शताब्दी मे प्रचारित किया। सभी इतिहासकार इस विषय मे एकमत है कि गोरखनाथ मछन्दर नाथ के १२ या कई रचनाओ के आधार पर २२ शिष्यो मे से एक था। मछन्दर नाथ एक जोगी सन्त आदि नाथ नेपाली महापुरुष का शिष्य हुआ है। नेपालियो के निश्चय के अनुसार आदिनाथ बौद्ध देवता आर्य अवलोकितेश्वर ही था। प्रत्येक रचना से यही प्रतीत होता है कि गोरखनाथ

अपने गुरु मछन्दर नाथ से बहुत उन्नति कर गया था तथा बहुत आत्मिक बल वाला था। गोरख ने ही कनफटे जोगियो का मत चलाया और अपने शिष्यो के कान फाडने शुरू किए। यह भी कहा जाता है कि नेपाल मे गोरख ने महायान बौद्ध धर्म को शैव मत मे बदल दिया था। इसे शकराचार्य का शिष्य भी कहा जाता है और लिखा है कि शकराचार्य गोरख से नाराज हो गए तथा उसे अपने शिष्यो मे से निकाल दिया।

गुरु नानक के समय के जोगियो का मत अद्भुत प्रकार का सम्मिश्रण हो चुका था। इस मत मे शैविजम, *बुद्धिज़म योगिजम (पतजिली ऋषि वाला) तथा वेदान्तिजम के कई अगो का मेल जोल हो चुका था। जब वैष्णव मत ने अपनी प्रेमा-भक्ति के रग से लोगो के मन को आकर्षित करना आरम्भ किया तो शैव-धर्मियो ने अपने मत को बनाये रखने के लिए उस प्रकार की भक्ति-भावना वाली बातो को अपना लिया। विष्णु की मूर्तियो की भाति शिव की मूर्तियाँ भी बनाई गई तथा शिवजी की मूर्ति पूजा आरम्भ हो गई। शिव जी की पूरी मूर्ति नही बनाई गई थी। शिवलिंग को ही शिव जी की मूर्ति का स्थान दिया गया और आजकल सभी शैवमत वाले शिवलिंग के पुजारी है। प्राचीन काल मे विष्णु जी तथा शिव जी को एक रूप ही समझने लग पडे थे। इस एकता भाव से ईश्वर का एक दूसरा रूप प्रकट हुआ, वह था विष्णु, शिव का भाव हरि—हरि रक्षक एव सहारक ईश्वरीय। इससे प्रतीत होता है कि शैविज़म मे विशेषतया गोरखमत मे किस प्रकार कई मतो का समावेश हो गया है। जे० ऐन० फरकूहर का विचार है कि कनफटे जोगी नाथो मे से निकले हैं और ये नाथ आज तक भी शक्तिमत को मानते है।

गोरखमत के सिद्धात हठ योग प्रदीपिका, गोरख गोष्ठी तथा गोरख बोध मे से एकत्रित किए गए है। शिव जी, इस मत के अनुसार अकाल पुरुष की पदवी रखते हैं। ससार दुखो एव कष्टो का घर है। हमारे जीवन का आदर्श है इन दुखो से मुक्ति प्राप्त करना। यह मुक्ति अथवा दुखो से छुटकारा शिव जी से अभिन्न होने से प्राप्त होता है।

* ज़म अग्रजी पदात है और इसके अर्थ मत या धर्म है बुद्धिज़म=बुद्ध मत, शैव मत, सिक्खजम=सिख-मत आदि।

शिव जी से अभिन्नता प्राप्त करने का साधन है हठयोग। यह हठयोग क्या है ?

गोरख बोध मे लिखा लिखा है कि सूक्ष्म प्राण नाभि मे निवास करते हैं और शून्य, जो कि प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है, के सहारे यह प्राण स्थित हैं। अत करण मे मन रहता है। प्राण सूर्य तथा आकाश काल के प्रभावाधीन रहते है। एक अन्य तत्व शब्द है जो रूप मे निवास करता है। अन्त करण, नाभि, रूप तथा आकाश अस्तित्व मे आने से पहले मन (शून्य), पोलाड, मे था तथा प्राण निराकार थे और शब्द अभी बना नही था। चन्द्रमा पृथ्वी आकाश के मध्य मे था। पोलाड चार प्रकार का है सहज, अनुभव, प्राण तथा अतीत शून्य। निद्रा एव मृत्यु के समय प्राण अतीत शून्य मे वापिस आ जाता है। पाच तत्व है जिन मे से एक निर्वाण तथा दस द्वार हैं। इनके माध्यम से परमपद को प्राप्ति होती है और इनके नाम नही बताए गए। ये योगमत के पदार्थ है। मैं ने इन कठिन पदार्थों का यहाँ इसलिए वर्णन किया है कि इनके नाम तथा इनके अभ्यास सम्मन्धी बहुत से सकेत गुरबाणो मे आते है और गुरु साहिब इन से सिक्खो को वर्जित किया है। 'शब्द' का विचार शक्ति मत मे से आया है। शक्ति का वास्तविक स्वरूप ही शब्द है। वैदिक मन्त्रो मे भो एक देवो का प्रसग आता है, जिसका नाम वाक् है। वाक् तथा शब्द दोनो पदो को गुरबाणी मे कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।

शक्ति-योग भी हठ-योग है परन्तु शक्ति-योग की नीव शब्द पर आधारित है। इस शब्द के कई मार्ग हैं। इसे विज्ञान के अनुसार नाडियो के बीच की हवा भी कह सकते हैं। हवा शब्द का कारण है। तीनो नाडियो का, जिनका सम्बन्ध आन्तरिक शब्द (आवाज़) से है, प्रसग गुरु ग्रथ जी मे आया है। इनके नाम इडा, पिंगला तथा सुषमना है। इनमे से सुषुमना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका सम्बन्ध कगरोड स्पाइनल कार्ड अर्थात मेरुदण्ड से है। इसके साथ छ चक्र सम्बन्धित हैं। ये चक्र मानसिक गैवी शक्ति का भण्डार हैं और मेरूदण्ड के अन्दर एक दूसरे के नीचे ऊपर ये छ चक्र स्थित हैं। प्रत्येक चक्र को कवल के फूल की भाति वताया गया है। सवसे नीचे वाला परन्तु सबसे महान शक्तिशालो मूलधार। है इस मूल धारा मे व्रह्म शिवलिंग के स्वरूप मे विराजमान है। इस लिंग के आस पास सर्पिणी देवी साढे तीन चक्र खाए सोई हुई है। इस देवी को इस आसन मे कुण्डलिनी कहते है। शक्ति योग से यह

देवी जगाई जा सकती है और उसको सबसे ऊपर वाले चक्र तक चढाया जा सकता है। ये सारे चक्र तथा नाडिया बहुत अद्भुत शक्तियो के भण्डार है। जो अभ्यास करता है वह स्वत सिद्ध ही ये शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है।

इस शक्ति योग के समस्त पद पदार्थों का प्रसग गुरवाणी मे आता है, परन्तु गुरु साहिब ने इन सब योगो एव सिद्धियो के चमत्कार की निन्दा की है। नीचे लिखे महावाक् इस विचार को पुष्टि करते हैं —

—गउडी महला ५—पृष्ट २०८

जोग जुगति सुनि आइओ गुरते। मो कउ सतिगुर सबदि बुझाइओ ॥

इस शबद मे हठ-योग के स्थान पर गुरमत योग बताया है

जपुजी साहिब की "आदेस तिसै आदेस" वाली चार पौडिया २८—३॰ तक मे भी वास्तव गुरमत योग बताकर 'रिद्ध सिद्ध अवरासाद' कहा है।

इसी प्रकार आसा जी की वार मे भी ऐसा ही विचार बताया गया है

उड्ड न जाही सिद्ध ना होइआ

—सूही महला १ पृष्ठ ७३०

जोगु ना खिथा जोगु न डडै जोगु न भसम चढाईअै।
जोगु न मुदी मूडि मुडाइअै जोगु न सिंगी वाईअै।
अजन माहि निरजनि रहीअै जोग जुगति इव पाईअै ॥ १ ॥
गली जोगु न होई ॥
एक दृसटि करि समसरि जाणे जोगी कहीअै सोई ॥ १।

••

—रामकली महला १—पृष्ठ ९०७

सिंगी सुरति अनाहदि वाजै घटि घटि जोति तुमारी ॥

—रामकली महला ३-पृष्ठ ९०८

पहली सारी अष्ठपदी मे जोगियो के प्रति कथन है। एक पद मे इस प्रकार बताते हैं

एहु जोगु न होवै जोगी जि कुटबु छोडि प्रभवणु करहि ॥ ८ ॥
इसी प्रकार अगली अष्ठपदी मे है
जोगी जुगति गवाई हढै पाखडि जोगु न पाई ॥ १० ॥

—सिद्ध गोष्ठ—(रामकली महला १) पृष्ठ ६३८-६४६ मे जोगियो के सम्बन्ध मे विस्तार पूर्वक सकेत है और बार बार समझाते है कि सिद्धो तथा योगियो तुम्हारा योग ठीक नही

नानक बोलै गुरमुखि बूझ जोगु जुगति इव पाईऐ ॥ ६ ॥

मारू महला १ पृष्ठ १०८० ।

करहि विभूति लगावहि भसमै ॥ अन्तरि क्रोधु चडालु सु हउमै ॥
पाखड कीनै जोगु न पाईऐ ॥ बिनु सतिगुर अलखु न पाइआ ॥१३॥
निउली करम भुइअगम भाठी ॥ रेचक कुभक पूरक मन हाठी ।
पाखड धरमु प्रीति नही हरि सउ गुर सबद महा रसु पाइआ । १४॥

भाई गुरदास जी पहली वार मे गुरु नानक देव जी की सिद्धो के साथ गोष्ठी का वर्णन करते हुए कहते है —

बाबा बोले—'नाथ जी ! असा वेखे जोगी वसत न काई ॥
गुर सगति बाणी बिना दूजी ओट नही है राई ॥४॥४२॥

बाझहु सच्चे नाम दे होर करामात असाथे नाही ॥२॥४३॥

चूकि योग अभ्यास आचरण निर्माण तथा आत्मिक उन्नति का कारण नही बन रहा था इसलिए गुरु जी ने योग धर्म को पाखण्ड कहा है । केवल मात्र दिखावा रह गया था और योगियो मे से यथार्थ योग का भाव लुप्त हो गया था । योग अभ्यास बहुधा शारीरिक क्रिया (ड्रिल) है । यह स्वभाव मे परिवर्तन नही लाता । अहम् तथा स्वार्थ त्याग मे सहायक नही होता । इसलिए ऐसे योग साधन का क्या लाभ ? यदि कोई ठीक ढग से योग साधना करे भी तो वह बहुत कठिन है और प्रत्येक व्यक्ति इतने कठिन अभ्यास के योग्य नही है । सारे ही योग क्या पतजिली का, क्या शव अथवा शाक्त या क्या गोरख का हठयोग ये सब उपनिषदो के आधार पर है और प्रत्येक मे शारीरिक तथा मानसिक तपस्या आवश्यक है । इतना तपस्वी जीवन गृहस्थियो से धारण नही हो सकता । इसलिए योग-मत सभी व्यक्तियो के अनुकूल नही है ।

जोगियो के जीवन पर एक अन्य बडी कठोर आलोचना जो गुरु साहिब ने की है, वह उनके भेस के बारे मे है । एक जोगी का कान फाडकर मुदरे पहनाना, भस्म लगाना, सिगी, नाद, चिप्पी, खप्पर,

खिथा झोली, (पोटली), जटे आदि धारण करके लोगो के घरो से माँग माग कर खाना और गृहस्थ जीनन त्याग देना इत्यादि ये सब ऐसी बाते थी जिनका स्वच्छ जीवन से कोई सम्बन्ध नही है। न ही ये किसी आत्मिक उन्नति मे सहायक थी। उलटा पाखण्ड तथा धोखे को बढावा देती थी। इसलिए यह सब कुछ व्यर्थ ही नही अपितु हानिकारक थी। इनकी अपेक्षा गुरु ,साहिब ने शुद्ध प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने पर जोर दिया। जपुजी साहिब मे गुरु नानक देव जी ने "मुदा सन्तोख सरम पत झोली धिआन की करहि विभूत" वाली पौडी मे और उससे आगे की तीनो पौडियो मे वाह्य भेस के स्थान पर आन्तरिक सदाचारक गुणो पर अधिकतर जोर देने के लिए कहा है। इसी प्रकार श्री दशमेश जी ने 'रामकली पातशाही १०' की पौडी मे यही उपदेश दिया है —

रे मन इह बिधि जोगु कमाउ—
सिंगी साच अकपट कठला धिआन बिभूत चड़ाउ ॥१॥ रहाउ ॥
ताती गहु आतम बसि कर की भिच्छा नाम अधार ॥
बाजे परम तार नत हरि को उपजै राग रसार ॥१॥
उघटै तान तरग रगि अति गिआन गीत बन्धान ॥
चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकि बयोम बिवान ॥२॥
आतम उपदेश भेस सजम को जाप सु अजपा जापे ॥
सदा रहे कचन सी काया काल न कबहि बयापे ॥३॥२॥

ऊपर बताए गए अन्तर के बावजूद सिक्खो तथा गोरख पथियो सिद्धो या साधारण जोगियो मे कई बातें मिलती जुलती अथवा समान है। इसका कारण एक तो यह भी है कि इनमे से कई बाते दोनो मतो ने तत्कालीन धार्मिक वायुमण्डल (वातावरण) से ली थी। परन्तु कई बाते ऐसी हैं जो जोगियो मे से सीधो सिक्खो मे आई हैं। इन बातो को सम्मुख रख कर व्यक्ति कह सकता है कि सिक्ख सभ्यता (रहन सहन) पर जितना प्रभाव योगमत का है उतना किसी अन्य का नही। जोगियो में कोई जाति पाति का विभाजन नही है। खान पान मे भी कठोर प्रतिवन्ध नही है। वे मास खाते हैं। कई तो शादी करके गार्हस्थ जीवन व्यतीत करते थे। दोनो समय लगर बाटने की प्रथा विशेष रूप मे पश्चिमी भारत मे आज तक जोगियो मे चली आ रही है। गुरु शिष्य

की प्रथा जोगियो मे आज भी प्रचलित है। सिक्ख के अर्थ भी शिष्य है। गुरबाणी मे गुरु साहिब को जोगी कह कर सम्बोधित किया है —

"रोग रहित मेरा सतिगुर जोगी'

भैरो महला ५ का वाक् है।

ये सब बाते दोनो मतो मे समान है।

इस सादृश्य के होते हुए जोग मत तथा सिक्ख मत मे भारी अन्तर है। मूल सिद्धात सर्वथा भिन्न भिन्न हैं। शैव धर्म को मानने वाले और गोरख पंथियो का ईश्वर ही शिवजी देवता है तथा उसको शिवलिंग के रूप मे मूर्ति बना कर पूजते है। शैव धर्म वालो का ईश्वर (इष्ट देव) शिव-सृष्टि का कर्ता नही है केवल निदेशक है। आत्मा, माया तथा अविद्या को शिव-ईश्वर के साथ ही सत्य एव अनादि माना है। यह अन्तर बहुत बुनियादी है। बात क्या सिद्धांत पक्ष मे सिक्ख धर्म तथा जोग मत मे बहुत अन्तर है। परन्तु सिक्खो के क्रियात्मक जीवन मे बहुत सी बाते है जो जोगियो के जीवन मे मे सिक्खो मे आई प्रतीत होती है।

गुरु नानक देव ने जो त्रुटिया (न्यूनताये) जोगियो के जीवन मे देखी उन्हे सिक्खो के जीवन मे नही आने दिया। यह भी एक प्रकार से योगमत का प्रभाव ही समझना चाहिये।

छटा अध्याय

सिक्ख धर्म का बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म से सम्बन्ध

१ बौद्ध मत से

बौद्ध मत उन धर्मों मे से नही है जोकि गुरु नानक के आगमन के समय भारत मे बड प्रभावशाली रूप मे प्रचलित थे। गुरबाणी के पदो मे कही थोडा बहुत सकेत बुद्ध को ओर मिलता है, परन्तु वह सदा ही सिद्धो के साथ सम्बन्धित होता है। सिद्धा के साथ गुरु नानक देव जी का विशेष मेलजोल तथा वास्ता पडा था। गुरु जी ने कई बौद्ध मन्दिर देखे थे और गया जी, जहा महात्मा बुद्ध को बोधि बृक्ष के नीचे बोध ज्ञान हुआ था, तक भी गए तथा वहा के पुजारियो से परिचर्चा की। बौद्ध मत के सिद्धाँत गुरु नानक देव जी तक सीधे नही पहुचे थे। वे या तो जोगियो द्वारा गुरु साहिब तक आए अथवा तत्कालीन धार्मिक वायुमण्डल मे से ही मिले जुले रूप मे प्रकटे हुए। साधारण वायुमण्डल अभी तक भी बौद्ध मत के प्रभावो से खाली नही था, यद्यपि सगठित धर्म के रूप मे साधारण लोगो तथा जनता मे से लुप्त हो चुका था। बारथ लिखता है कि यद्यपि बौद्ध मत एक सगठित धर्म के रूप मे तो लुप्त हो रहा था। परन्तु इस मत के बीज उन्ही धर्मो की नीवो तक पहुच गये थे जिन्हो ने कि इस मत को सफलता से उखाडा था।

ब्राह्मणी सस्थाओ के विरुद्ध जो बगावत तथा आन्दोलन

महात्मा बुद्ध ने आरम्भ किया था, वह भले ही कुछ समय के लिए ढीला पड गया था, परन्तु उसे गुरु नानक ने पुन चमकाया तथा सजीव किया और दसवे गुरु के हाथो मे इसने एक बहुत बडे आन्दोलन का रूप धारण करके खालसा पथ की नीव रखी। सैमुग्रल जाहनसन लिखता है (ओरिऐन्टल रिलेजन्ज पृष्ठ ७१९) कि भारत मे किसी जाति ने भी मन वचन कर्म का इतना निर्भीक तथा स्वतन्त्रतापूर्ण भाव नही दिखाया जितना कि खालसा पथ ने। विचार की यह स्वतन्त्रता तथा ब्राह्मणी सांचे के जीवन के विरुद्ध आन्दोलन जातीय आचरण के उन गुणो से खालसा आन्दोलन को सम्बन्धित करता है जो कि पहले पहल कपिल जी तथा गौतम जी ने भारत भूमि मे बीजे थे। जाहनसन लिखता है कि भारत के पिछले छ सौ वर्षो के मत मतान्तर तथा सम्प्रदाय उन पचायती रीतियो की पृष्ठ भूमि रखते थे जो कि बौद्ध मत के प्रचार का प्रभाव थे और जिनके नाम तथा स्वरूप को वे दिखावे के रूप मे त्याग चुके थे। क्या इन नए मत-मतान्तरो की खेती प्राचीन बौद्ध धर्म के खण्डहरो के अवशेष पर प्रफुल्लित हुई है? विनाश के सागर मे बह गये धर्म की ये अन्तिम परन्तु निरन्तर स्थित रहने वाली झलकिया है। इस प्राचीन धर्म का अन्त नही है, यह बलिदान है, जो नये रूप मे अमर रहेगा। परन्तु हमने देखना यह है कि बौद्धमत के प्रधान अग क्या थे और उन मे कौन किस रूप मे सिक्ख धर्म मे आये, या किन को गुरु साहिब ने अस्वीकार किया?

पहली बात तो यह है कि बौद्ध मत नास्तिक है। भाव यह कि अकाल पुरुष की शक्ति मे विश्वास रखना एक बौद्ध के लिए आवश्यक नही है। इसलिए बौद्धमत तथा सिक्ख धर्म मे पृथ्वी आकाश का अन्तर है। इसी कारण से बौद्ध निर्वाण तथा सिक्ख धर्म के अनुसार परम पद प्राप्ति का भाव भिन्न भिन्न होना आवश्यक है। टरम्प का यह कहना कि दोनो धर्मो के जीवनादर्श निर्वाण ही है और वह भी बौद्ध भाव निर्वाण, सर्वथा निर्मूल है। यह बात महात्मा बुद्ध की चार महान सच्चाईयो से सिद्ध हो जाएगी। वह ये थी —

१ जीवन दुख एव कष्ट के बिना और कुछ नही।

२ दुखो का कारण तृष्णा है। जितना भी शात करो उतना ही बढ़ती है।

३ इन दुखो की निवृत्ति हो सकती है यदि तृष्णा को शांत कर लिया जाए।

४. तृष्णा को शाँत करने का साधन है बौद्ध मार्ग जिसके अनुसार विशेष बन्धनो मे जीवन व्यतीत करना पडता है। इस प्रकार करने से निर्वाण जीवित भाव का अभाव प्राप्त होता है। हमने कबीर जी के मत के सम्बन्ध में विचार करते देख हो लिया है कि गुरु साहिब जीवन को दुख रूप नही मानते और न ही इसके अभाव मे परमपद को प्राप्ति मानते हैं। सिक्ख धर्म मे कोई हठ-योग सम्बन्धी तपस्य नही है और न ही कोई ऐसे नियम हैं जो अकाल पुरुष के अस्तित्व के विश्वास से उत्पन्न चारत्रिक तथा सदाचारक गुणो से खाली हो।

इसी कारण हम देखेगे कि बौद्ध मत का प्रभाव सिक्ख धर्म पर बिल्कुल ही अन्य प्रकार का है। हिन्दु धर्मों से तो सिक्ख धर्म सैद्धातिक सभ्यता रखता है और क्रियात्मक जीवन मे भिन्नता रखता है। परन्तु बुध्द धर्म के प्रति यह सर्वथा विपरीत है। बुध्द मत के सिध्दातो मे से सिक्ख धर्म ने कुछ नही लिया, परन्तु सिक्खो जीवन पर बौध्द मार्ग का विशेष प्रभाव प्रतीत होता है। महात्मा बुध्द ने जाति भेद को तोडने का प्रयत्न किया और सभी मनुष्यो को एक जैसा प्रेम एव भ्रातृ भाव रखने का उपदेश दिया। ये बाते गुरु नानक साहिब द्वारा प्रचारित जीवन का आवश्यक अग है। गुरू नानक के लिये मन की सच्चाई, शुध्दता तथा लोगो से ईमानदारी का व्यवहार धर्म के आवश्यक अग थे। यही गुण बाह्य भेषो तथा कर्म काण्डो का दूर फेंक कर महात्मा गौतम जी ने सब से पहले प्रचारित किये थे। दोनो महापुरुषो की शिक्षा मे एक अन्य समानता है, वह है लोगो की बोली मे प्रचार करना। महात्मा बुद्ध के लिए कोई विशेष भाषा (बोली) पवित्र अपवित्र नही थी। सस्कृत मे कोई दैवी विशेषता नही थी। समस्त बोलियाँ एक ही स्तर रखती है। यही विधि गुरु नानक साहिब ने अपनाई। उन्होने भी तत्कालीन लोक बोली मे ही ईश्वरीय सन्देश लोगो तक पहुँचाये। गुरु नानक ने प्रचार हित एक मिशनरी की भाति सारे देश का भ्रमण किया और धर्मशालायें स्थापित की तथा लोगो को सिक्ख बनाया। हिन्दु मुसलमान दोनो को उपदेश देकर अपनी शिक्षा का पात्र बनाया। इनसे पहले महात्मा बुद्ध ने भी मिशनरी भाव से भारत की यात्रा की और

शिष्यो को बौध्द धर्म के विस्तार के लिए उपदेश दिया था। ये सब बाते गुरु नानक तथा महात्मा बुध्द के जीवन मे सादृश्य है। चौथा बात जो सिक्खो मे और बौध्दो मे थी वह है सिक्खो मे सगतो की स्थापना तथा धम मे सगठित होकर एक स्वरूप तथा एकाकार का भाव उत्पन्न करना। यह बात बौध्दो मे भी थी। उनकी सघ सस्था सिक्खो की सगत की भाति थी। इस सघ का सदस्य बनने के लिए उसी प्रकार प्रण और सस्कार करने पडते थे जिस प्रकार अमृत पान करके खालसा सगठन मे प्रविष्ट होने के लिए करना पडता है। जो इस प्रण को तोड देते थे वे सघ मे से निकल जाते थे और उन्हे पतित एव आदशहीन व्यक्ति समझा जाता है।

परन्तु महात्मा बुध्द की भाति गुरु साहिब ने सिक्खो को फकीर एव भिक्षा माँगने वाले भिखारी नही बनाया। माँग कर खाने को गुरु जी ने भारी दोष बताया। इसी लिए सिक्खो मे घर बार त्यागे हुए सन्त एव सन्तनियो को किसी उच्च दृष्टि से नही देखा जाता क्यो कि इससे भेष एव पाखण्ड तथा दिखावा बढता है और वास्तविक धार्मिक जीवन घटता है। टरम्प लिखता है कि यदि गुरु नानक साहिब ने ससार यात्रा करके और जोगियो, साधुओ तथा फकीरो के साथ रह कर तथा बचन विलास करके उनके जीवन मे पोल थोथापन और पाखण्ड एव धोखा देखकर अपने सिक्खो को घरो मे रह कर सासारिक जीवन व्यतीत करने का उपदेश न दिया होता तो बौध्दो तथा अन्य फकीरो की भाति सिक्ख भी माँग कर खाने वाला एक सम्प्रदाय बन कर डेरे धर्मशालाए तथा मन्दिर आदि मे बैठ कर उन्ही उलझनो मे फस जाते जिन मे गुरु जी ने दूसरे भारतीय साधुओ एव फकीरो को देखा था। गुरु साहिब ने बौध्दो के जीवन, इतिहास तथा बुध्द धर्म के पतन के कारणो को देख कर कई अच्छी बाते सीखी और उन बातो मे सिक्खो को प्रवृत्त होने से बचाया। बौध्द मत के अन्तिम स्वरूप ने भक्ति आन्दोलन वालो को मूर्ति पूजा और अवतारो के सिध्दात दिए तथा इस मे वे इस प्रकार फस गये थे कि दोनो ही भक्ति मार्ग पर चलने वालो के जीवन के पतन का कारण बन गए। गुरु साहिब ने इन बातो को सिक्खी जीवन मे नही आने दिया और उन्होने विशेष आदेश दिया कि न गुरु की और न परमात्मा की कोई मूर्ति बनाई जाए

तथा बुत की पूजा की जाए। गुरु को बौद्ध अथवा हिन्दु भाव वाला अवतार न समझा जाए। ईश्वर मनुष्य रूप मे आकर जन्म मरण मे नही आ सकता है। दो अन्य बाते जो सिक्ख धर्म की उन्नति तथा प्रफुल्लता का कारण बनी वे भी गुरु जी ने बौद्ध जीवन इतिहास से ग्रहण की प्राप्ति होती है। जाहनसन लिखता है कि बौद्ध मत मे वह बल तथा उन्नति का प्रवाह क्यो न आया? निस्सन्देह इसलिए कि हिन्दु सिद्धान्तो तथा सस्थाओ से विपरीत होने के बावजूद बौद्ध हिन्दुओ मे ही मिले रहे और विशुद्ध क्रियात्मक जीवन छोड कर एक कोने मे बैठ कर एकचित ध्यान को ही जीवन आदर्श बना लिया। इस लिए शनै शनै बौद्धो को हिन्दुओ ने अपने मे मिला लिया और जीवन से दूर आदर्श सिकुडता-२ सिकुड गया।

भारतीय धर्मों के शनै शनै विलुप्त हो जाने के कारणो की खोज को सम्मुख रख कर गुरु दशमेश जी ने दो बातो पर विशेष ज़ोर दिया — एक तो खालसा के सदा उच्च तथा न्यारा रहने पर और दूसरे उसके आन्तरिक तथा बाह्य जीवन पर। 'रहिणी रहे सोई सिक्ख मेरा' भाव यह कि सिक्ख वह है जो जीवन को नियमानुसार चलाए, "डिस्पिलन" अर्थात अनुशासन मे रहे। इस प्रकार रह कर उन्नति करे, साधारण लोगो से तथा इस उन्नत रहन-सहन के कारण सदा 'निआरा' रहे। इस प्रकार खालसा न्यारा रहेगा तथा पूरे तेज मे रहेगा।

जब लग रहे खालसा निआरा, तब लग तेज दीउ मैं सारा ।।

खालसे के जन्म के बाद का इतिहास गुरु साहिब द्वारा की गई इस भविष्यबाणी के सत्य होने की गवाही देता है। खालसा उस समय चमका और विकसित हुआ जब कि वह साधारण निम्न आदर्श वाली जनता से ऊचा उठ कर न्यारा रहा है, जबकि अपने रहन-सहन मे सदा तैयार रहा है। जब कभी आचरण मे, रहन सहन तथा नियमो के पालन मे ढील आई और सगठन की चिन्ता न करके खालसा जी साधारण लोगो की होढ मे सम्मिलित हो गए, बस फिर खालसे का सूर्य ढल गया, तेज कम हो गया और जीवन सग्रामो मे पराजय होती रही और ऐश्वर्य मे पड़ कर दूसरो के अधीन अर्थात् पराधीन होता रहा। विदेशियो ने आकर इसे दबा लिया, साथ

वाले सम्वन्धियो ने आकर इस पर कावु पा लिया। गुरुओ ने खालसे को सदा वाह्य प्रभावो से अपना मानसिक आचारण शुद्ध रखने पर जोर दिया। प्रत्येक धर्म नष्ट हो जाता है अर्थात् मिट जाता है जव उसके धर्मावलम्वियो मे गिरावट आ जाती है। धर्मो की मृत्यु वाह्य धर्मों वाले नही लाते अपितु उस धर्म को मानने वालो अर्थात् अनुयाइयो की अपनी कमजोरिया ही उनकी मृत्यु का कारण वनती है।

वौद्ध धर्म की अवनति का कारण एक अन्य वात भी थी। वह थी वौद्ध साधुओ का सगठित सघ, जिसकी ओर सकेत ऊपर किया जा चुका है। यह सघ व्राह्मणी जातिभेद से भी सकुचित, कठोर तथा वीच से खोखला सिद्ध होना आरम्भ हो गया। वैष्णव तथा शैव धर्मो ने अपनी विनम्र भक्ति-भावना की रगत से व्राह्मणी वन्धनो तथा सघ की दीवारो को जड से उखाड दिया। गुरु साहिव ने जाति एव कार्य विभाजन को खालसे मे से निकाल दिया और कहा कि दसो नाखुनो की कमाई, कुछ भी हो शुद्ध तथा पवित्र है और इसलिए उच्च या नीच नही है। जूते गाठने वाला मोची, रणभूमि मे कटार चलाने वाला जरनैल (सेना नायक) तथा गूढ व्याख्या करके ब्रह्मज्ञान बताने वाला पण्डित एव दार्शनिक सभी समाज के एक समान सम्मान के योग्य सदस्य हैं। कोई उच्च और नीच नही परन्तु यह बात समय बतायेगा कि गुरु साहिब का बनाया हुआ खालसा सिक्ख धर्म के लिए बौद्धो के सघ का स्थान न ले ले। जैसे जैसे समय बीत रहा है इस पवित्र सगठन के सदस्यो मे से आन्तरिक उच्च गुण विलुप्त हो रहे हैं और अधिकतर बल तथा कट्टरता सस्कारो एव रीतियो तथा दिखावे के जीवन पर दिया जाता है। तग दिली, दूसरो के लिए दुत्कार, घृणा, शहनशीलता की कमी तथा बलिदान, सच्चाई, शुद्धता, ईमानदारी एव अन्त करण की शुद्धता आदि गुण शनै शनै समाप्त होते जा रहे थे। "इतिहास अपने आपको दुहराता है" कह यही बात हमारे ऊपर न घट जाए।

२ जैन धर्म से सम्बन्ध

श्री गुरु ग्रथ साहिब जो की कुछ एक पक्तियो मे जैनियो की ओर भी सकेत हैं। गुरु नानक देव जी अपने प्रचार सम्बन्धो भ्रमण मे कई जैन साधुओ से मिले और उनके रहन सहन के विरुद्ध विचार प्रकट किए। जैन मत के आम सिद्धान्तो तथा सिक्ख धर्म दर्शन मे कोई साम्यता नही है। पता नही एलबन विडगुरी ने किस प्रकार अपने लेख "लिविंग रिलेजन्ज एण्ड माडरन थाट" मे जैन धर्म तथा सिक्ख धर्म पर सादृश्य रूप मे विचार किया हैं। लेखक का अन्तिम निर्णय दिलचस्पी (रोचकता) से खाली नही और है भी अर्थ अथवा विचार पूर्ण। यह बात तर्क तथा युक्ति से कही जा सकती है कि जो न्यूनताये जैन धर्म मे है, वे सिक्ख धर्म मे नहो हैं। परन्तु यदि सिक्ख धर्म का जैन धर्म के साथ किसी न किसो प्रकार सम्पर्क हो जाए तो आन्तरिक रूप मे सिक्ख धर्म मे कुछ गाम्भीर्य एव कुछ सूक्ष्मताये आ जाये।

क्रियात्मक जीवन मे जैनियो की बहुत अत्यधिक भ्रातिमूलक अहिंसा तथा कठोरता पूर्ण जीवन को गुरु साहिब ने उचित नही माना था। जैन मत के अनुसार कर्म का आधार प्रमाण् है। जिस प्रकार रेत बोरी को भर देती है, उसी प्रकार कर्म के प्रमाणु आत्मा को भर देते हैं। आत्मा अपने प्राकृतिक स्वभाव के अनुसार ऊपर आकाशो अथवा सच्च खण्ड की ओर जाने के लिए उठती है, परन्तु कर्म जो जढ प्रमाणुओ से बने हैं आत्मा को नीचे की ओर खीचते हैं तथा पृथ्वी पर टिकाए रखते हैं। जब कर्मों का अन्त हो जाएगा, अर्थात् कर्मों को जीव अपने धार्मिक प्रयत्नो से नष्ट कर देगा तो आत्मा शरीर को छोडकर सीधी ही ऊपर उठेगी और ब्रह्माण्ड के शिखर पर पहुच कर वहा निवास करेगी जहाँ कि समस्त मुक्त आत्माये (रूहे) सदा के लिए निवास करती हैं। मुक्ति प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि कोई नया कर्म जीवात्मा में प्रविष्ट न हो और पुराने प्रविष्ट कर्मो का अभाव किया जाए। अर्थात् कम किया जाए। इसलिए वेदात की भाति मुक्ति सन्यास अथवा कर्मों के त्याग मे नही है। अपितु कर्मो की समाप्ति मे है। "जैन धर्म," डाक्टर टामस के कथनानुसार "एक

ऊचे स्तर का क्रियावादी मन है ।

मुक्ति के इस स्वरूप के होते हुए तथा इन साधनो को मुक्ति प्राप्ति के लिए आवश्यक समझते हुए जैनी जीवन बहुत कठिनता एव कड़ त्याग का जीवन है। जब साथ ही भ्रातिमूलक अहिंसा का विचार मिल जाता है तो जैन साधु का जीवन विशेष मैला तथा अपवित्र हो जाता है। जुओ, मलमूत्र तथा कीड़ो आदि को जान बचाने के यत्न मनुष्य जीवन के रहन सहन मे असाधारण अपवित्रता ला देते है। इसी लिए ऐसे जैन जीवन को वार माझ तथा वार मलार मे गुरु साहिब ने विशेष बुरा भला कहकर उसकी निन्दा की है। ३३ सवैय्यो के पहले ही सवैय्ये मे दशम गुरु गोविन्द सिंह जी ने इसी जीवन की ओर सकेत किया है। वार माझ का शब्द नीचे दिया जाता है —

सलोक महला १ ॥

सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी जठा मगि मगि खाही ॥
फोल फदीहति मुहि लैनि भडासा पाणी देख सगाही ॥
भेडा वागी सिरु खोहाइनि भरीअनि हथ सुआही ॥
माऊ पीऊ किरतु गवाइनि टबर रोवनि धाही ॥
उना पिण्डु पतलि किरिआ न दीवा मुए किथाऊ पाही ॥
अठसठि तीरथ देनि न ढोई ब्राह्मण अन्नु न खाही ॥
सदा कुचील रहहि दिनु राती मथै टिके नाही ॥

•

जीआ मारि जीवाले सोई अवरु न कोई रखै ॥ २६ ॥

वार मलार की १६वी पौड़ी मे लिखा है —

इकि जैनी उझड़ पाइ धुरहु खुआइआ ॥
तिन मुखि नाही नामु न तीरथि नाइआ ॥
हथी सिर खोहाइ न भदु कराइआ ॥
कुचिल रहहि दिन राति सबदु न भाइआ ॥
तिन जाति पति न करमु जनमु गवाइआ ॥
मनि जूठै वे जाति जूठा खाइआ ॥
बिनु सबदै आचारु न किन ही पाइआ ॥
गुर मुखि ओअंकारि सचि समाइआ ॥ १६ ॥

एक जेन साधु से विचार करते हुए गुरु साहिब ने बताया कि अहिंसा एक परिपूर्ण भाव वाला विचार नही। परिस्थिति तथा समय अनसार इसके अर्थ बदलते रहते है एक जान को बचाने के लिए अन्य जानें नष्ट की जाती है। युद्धो मे ही नही अपितु साधारण रोगो के इलाज मे भी। कुछेक के लिए अहिंसा और दूसरो के लिए हिंसा। प्रकृति के नियम भी सभी जीवो के लिए एक जैसा सरक्षण नही देते। किसी को उभारते है, किसी को नष्ट करते हैं। बरसात मे वर्षा होती है। यह कई जीव जन्तुओ के लिए लाभदायक और अनेक के लिए विनाश का कारण। डाक्टर जे० सी० बोस की बनस्पति सम्बधी नवीन खोजो के अनुसार साग पात, फल फूल प्रत्येक मे प्राण हैं। इस खोज के होते हुए अहिंसा को पूर्ण रूप मे धारण करना असम्भव है। यदि अपनें आप को भूखे प्यासे मार कर समाप्त करना हो तो भले ही कोई पूर्ण रूपेण पक्का अहिंसक हो सके। ऐसे निश्चय की तुलना मे गुरु साहिब ने विवेक विचार पूर्ण जीवन, आरोग्यता, प्रसन्नता तथा ज्ञानेन्द्रियो को वश एव काबु मे रखकर व्यतीत करने पर ज़ोर दिया। साथ ही अकाल पुरुष से हर समय सहायता के याचक रहने के लिए उपदेश दिया। बात क्या, जैन मत का प्रभाव सिक्खी सिद्धांत अथवा जीवन पर उतना भी नही है, जितना कि एक साधारण भारतीय हिन्दु के जीवन मे देखा जा सकता है। साधारण हिन्दु धर्म मे जेन मत का प्रभाव अहिंसा तथा अवतारो का विचार हो सकता है। परन्तु यह सब कुछ बुद्ध धर्म से भी सम्बधित किया जा सकता है। इन दोनो विचारो ने सिक्खो के मन को आकर्षित नही किया। सिक्खी सिद्धाँत मे आए अवतार भाव को तो गुरु साहिब ने वैसे ही अस्वीकार कर दिया था और अहिंसा के स्थान पर सदाचारक प्रेमाभक्ति वाला जीवन व्यतीत करने के लिए गुरु जी ने उपदेश दिया।

सातवाँ अध्याय

भारत से बाहर उत्पन्न हुये धर्म

जरतुश्ती मत, यहूदी मत, ईसाई मत तथा इस्लाम का सिक्ख धर्म से सम्बन्ध

यह एक प्रचलित निश्चय है कि सिक्ख धर्म हिन्दु धर्म की शाखा है और यह उन प्रभावो के कारण अस्तित्व मे आया जो मुसलमान धर्म ने भारतीय मन पर डाले। किसी सीमा तक यह विचार ठीक है। परन्तु जितनी भी खोज मैंने सिक्ख धर्म मे की है मुझे तो यह प्रतीत होता है कि सिक्ख धर्म की पृष्ठभूमि मे केवल हिन्दु तथा इस्लाम धर्म ही नहीं है, अपितु पूर्वी तथा पश्चिमी मतो के मेल से बना साझा मन है। पूर्वी मन मे हिन्दु, बौध, जैन, तिब्बती तथा चीनी प्रभाव विद्यमान थे और पश्चिमी मन मे जरतुश्ती यहूदी, ईसाई तथा मुसलमानी। गुरु नानक भले ही भारत मे उत्पन्न हुए थे, परन्तु उन्होने भारत के आस पास के समस्त पूर्वी एव पश्चिमी देशो का भ्रमण किया था। इन सभी मतो के विद्वानो से उनका मेल हुआ तथा सभी से उन्होनें विचारो का आदान-प्रदान किया और यह विचार विमर्श उत्तर-प्रश्नो सहित हुआ। इसीलिए गुरु ग्रथ के शब्द भण्डार में सस्कृत, प्राकृत, फारसी तथा अरबी आदि के शब्द इतने हैं कि साधरण पाठक भी इनके अस्तित्व से अनभिज्ञ नही रह सकता। कई पदो की तो रचना ही फारसी बोली मे है। इन अभारतीय धर्मो के विचारो और गुरु साहिब के मत मे साधारण सादृश्य के अतिरिक्त गुरबाणी मे

इन पुस्तकीय धर्मों तथा इनके प्रवर्तकों, पैगम्बरो, और महापुरुषो की ओर भी सकेत हैं। गुरु साहिब भारतीय अथवा पूर्वी धर्मों को 'हिन्दु' कह कर पुकारते हैं और शामी धर्मों को 'तुर्की' कह कर पुकारते है। इस प्रकार इन को धार्मिक पुस्तको (ग्रथो) के लिए समान नाम वेद और कतेब हैं। वेद भारतीय धर्म शास्त्रो के लिए तथा कतेब कुरान अजील आदि के लिए है। प्राचीन समस्त टीकाकारो ने कतेब से भाव पश्चिम के चारो धार्मिक ग्रथो से लिया है। कुरान, तौरेत, अजील तथा आवेस्ता। आजकल भी यदि कोई हिन्दु या सिक्ख ईसाई मत धारण कर ले तो ग्रामीण लोग यही कहते हैं कि वह 'किरानी' (सम्भवत कुरान से भाव हो) हो गया है। कही-कही कुरान का विशेष प्रसग भी है, परन्तु ऐसे स्थान पर कुरान को कतेब से सम्बन्धित किया है जिस प्रकार वेदो से पुराणो, शस्त्रो, सिमृतियो आदि को जोडा गया है।

ईश्वर का हुकम (आदेश) मानना और ससार को उसी आदेश का परिणाम समझना सिक्खो का मुख्य निश्चय है। भाणा (ईश्वरेच्छा) मानना सिक्ख का परम धर्म है। परन्तु यह आदेश, रजा और तसलीम आदि का विचार मुस्लिम तथा ईसाई निश्चय से सम्बन्धित है, हिन्दु विचार से नही। हिन्दु प्रत्येक घटना को कर्मो से सम्बद्ध करेंगे, परन्तु सिक्ख ईश्वर-इच्छा से। पहलवी आवेस्ता मे भी लिखा है— "ईश्वर के आदेश के बिना कोई वस्तु रूप धारण नही करती। उसके हुकम (आदेश) के बिना पत्ता भी नही हिल सकता।" उधर गुरुबाणी कहती है— 'हुकमै अन्दरि सभु को, बाहरि हुकम न कोय।" यह मूल बाणी का कथन है। हज़रत ईसा ने रजा अथवा तसलीम का विचार अपने क्रियात्मक जीवन तथा शिक्षा द्वारा दिया। इस विचार के लिए प्रयुक्त शब्द हज़रत मुहम्मद साहिब के चलाए हुए धर्म का नाम हो गया। तसलीम, इस्लाम, मुसलमान सब का उत्पत्ति स्थान (धातु) एक ही है। जिस प्रकार ईश्वर-इच्छा मानने पर हज़रत ईसा को फासी पर चढने का उत्साह प्राप्त हुआ और उन्हो ने विजय प्राप्त की, उसी प्रकार इच्छा मानने के बल ने गुरु अर्जुन, गुरु तेग बहादुर तथा अन्य अनेक सिंहो एव सिंहनियो को अति (अत्याचार) के अकथनीय एव असह्य कष्ट सहन करने तथा अत्यंत

भयानक मृत्यु को हसकर अपनाने का बल दिया। ऐसा निश्चय डाक्टर सर मुहम्मद इकबाल के कथनानुसार मनुष्य को तोपो के मुह के सामने और गोलियो की वर्षा मे पाठ या नमाज पढने मे अडिग तथा निर्भीक रखता है। इस निश्चय को इकबाल 'शुद्ध किस्मतवाद' नाम देते हैं, परन्तु है यह इच्छा को मानना। किस्मतवाद कुछ अन्य वस्तु है। यहा थोडा विवेक के लिए भी स्थान है। यह निश्चय अनपढ तथा पढे हुए को साहसी तथा विद्वान को अडिग तथा उचित स्थान पर रखता है।

श्री जरतुश्त तथा गुरु साहिब

धर्म युद्ध का विचार ईसाईयो, मुसलमानो तथा सिक्खो मे आम है। इस विचार का प्रारम्भ श्री जरतुश्त से हुआ प्रतीत होना है। ज़रतुश्त यद्यपि आर्य जाति के थे परन्तु उनका मानसिक विकास अभारतीय वातावरण मे हुआ। धर्म युद्ध का भाव गुरु साहिब के समय के हिन्दु सस्कारो से विपरीत है। इसलिये निश्चित रूप मे यह गैर हिन्दु है। प्राचीन काल मे हिन्दुओ मे धर्म युद्ध का भाव था, परन्तु गुरु साहिब के समय बौद्धो, जैनियो जोगियो आदि के प्रभाव स्वरूप वह पाप समझा जाने लगा था। तलवार पाप का चिन्ह बन गई थी।

सिक्खो मे गुरु साहिब ने धर्म युद्ध का चाव उत्पन्न किया तथा सम्भव है कि पुरातन जरतुश्ती बीज इस्लाम के द्वारा भारत मे आकर सिक्खो मे पनपा हो। यह भी सम्भव है कि गुरु जी ने देवो दत्यो को पौराणिक कथाओ के भाव को सजीव कर लिया हो।

ज़रतुश्त ने जो धर्म चलाया वह बहुत सरल तथा अन्तर बाह्य के एकीकरण के आदर्श का साधारण मन की सत्यता, शुद्धता वाला धर्म था। जरतुश्त की भाति गुरु नानक देव ने भी धार्मिक जीवन तथा धार्मिक सिद्धात को बहुत सरल, पेचीदगियो से रहित और साधारण मन के बहुत समीप रखा। गुरु साहिब की जीवन कथाओ, भाई गुरदास जी की वारो, अन्य इतिहासो गुरवाणी के पाठ (अध्ययन) से यही सिद्ध

होता है कि गुरु साहिब जहाँ भी गए यही प्रचार करते रहे—भाई—धर्मशाला बनाओ, अतिथि की सेवा करो, अथवा बाट कर खाओ, दसो नाखूनो से काम करो और नाम का जाप करो। "काम करना, नाम जपना और वाँट कर खाना' ये तीन अग गुरु मार्ग था, कितना सरल तथा साधारण।

जरतुश्त की भाति गुरु साहिब ने ईश्वर के दो भाग नही किए थे। एक नेकी का स्वामी अहरमुजद और दूसरा बदनामी का मालक अहिरमन। इस भेद-भाव के कारण पारसी सदाचारक सिद्धांत भी द्विपक्षी है। अन्त मे यह भेद अभेद मे बदल जाता है जब कि बदनामो को नेकी जीत लेती है और फिर बस नेकी ही नेकी अथवा अहरमूजद ही प्रधान रहता है। इस सिद्धांत मे ईसाई धर्म की झलक है। उनके विचारानुसार भी अन्त मे ईश्वरीय गुणो ने काबु पाना है तथा पृथ्वी पर आकाश का अथवा ईश्वरीय राज्य स्थापित होना है। गुरु साहिब इस धार्मिक विकासवाद को जो सदा आगे ही आगे बढता है और एक प्रकार की मशीनी हलचल (हरकत) की भाति है, नही मानते थे। प्रत्येक युद्ध मे उतार चढाव होते ही रहते हैं और यही दशा नेकी-बदी के मिश्रण की है। परन्तु इतना आवश्य है कि अन्त मे सत्य अथवा नेकी की ही जय होगी।

यह सम्भव है गुरु नानक साहिब ने यद आवेस्ता कभी पढी सुनी न हो और न ही उसके सिद्धान्तो को उन्होने भली प्रकार (निखार कर) समझा हो परन्तु गुरबाणी की कई पक्तिया ऐसो हैं जिन से स्पष्ट यही प्रतीत होता है कि यह आवेस्ता की अमुक पक्ति का अक्षराक्ष अनुवाद है। परन्तु यह सब कुछ आकस्मिक ही हो सकता है। इसलिए इन आकस्मिक साम्यताओ पर विश्वास करके कोई निश्चित निर्णय नही निकाला जा सकता क्योकि गुरु ग्रथ को ऐसी साम्यता तो कई अन्य धार्मिक पुस्तको से भी है। ऐसो घटनाओ से तो हमारा धारण किया पक्ष ही सिद्ध होता है कि गुरु नानक जी अपनी यात्राओ तथा धर्मप्रचार सम्बन्धी भ्रमण मे सभी धर्म वालो को मिले और उन धर्मों के जानने वाले योग्य ज्ञानियो से विचार-विमर्ष किया तथा सब को सत्य का पालन करने के लिए प्रेरित किया।

यहूदी मत से

यहूदी मत्र, मुसलमानो कलमे तथा सिक्खो का मूल मत्र अर्थ और रूप मे इतने मिलते जुलते हैं कि तीनो एक सांचे मे ही घडे प्रतीत होते है। इन तीनो का भाव यह है "तू एक है और तेरा नाम सत्य है"। ईश्वर सम्बन्धी यहूदी विचार कि वह 'नाम' हो है गुरबाणी मे आए 'नामु' पद से इतना मिलता है कि दोनो एक ही प्रतीत होते हैं। मुसलमानो मे भी 'इसमे आज़म का विचार विद्यमान है। सम्भव है कि इस विचार का भाव यहूदियो से ही चला हो, परन्तु 'नाम' का विचार हिन्दू धार्मिक पुस्तको के लिए कोई नया नही है। सम्भव है कि इन सब का आरम्भ एक ही हो। परन्तु यहूदी 'नाम' का भाव जो उनको धार्मिक पुस्तको मे मिलता है लगभग वही है जो सिक्खो मे नामधारियो तथा निरमलयो आदि मे प्रचलित हैं। इस 'नाम' को गुप्त रखना, किसी पवित्र स्थिति मे पवित्र स्थान पर, पवित्र मुख से, पवित्र कानो मे गुप्त रूप मे पडने का विचार बहुत मिलता जुलता है। इसी नाम को यहूदी मत मे कई अन्य पदो से बताते है, परन्तु उस वास्तविक नाम का उच्चारण नही करते। कभी विशेष नाम कह कर, कभी परमपद कह कर, कभी याद, कभी शबद, कभी स्मरण, कभी जाप, कभी पवित्र नाम आदि शब्दो से इस नाम की ओर सकेत किए जाते है। परन्तु इस चार अक्षरो वाले नाम को उच्चरित अथवा पुकारा नही जाता। एक और आश्चर्य वाली बात यह है कि यहूदियो के नाम की भाति सिक्खो का गुरुमत्र भी चार अक्षरो वाला ही है। यह साम्यता बडी आश्चर्यपूर्ण है, परन्तु सम्भव है कि यह सब कुछ अचानक ही हो और इससे हम कोई विशेष ऐतिहासिक महत्व वाला निणय न निकाल सके। मानव मन सभी जगह वही है। उसकी रुचियां, गुप्त एव एक ही हैं, इसलिए सम्भव है कि गम्भीर (गुह्य) भेदो मे साम्यता उस सर्वसम्मत मनके स्वभाव के कारण हो।

ईसाई मत से

निस्सन्देह गुरु नानक देव जी की ईसाई मिशनरियो से मेल-मुलाकात हुई। एक बार तो जब वे दक्षिण मालावार मे से होते हुए सिंगलद्वीप लका को आए और दूसरी बार जब वे मक्के मदीने को गए। ईसाइयो के तीन मिशन भारत मे प्रचार करते रहे हैं। सबसे पुरातन तथा देर वाला तो सीरियन अथवा शामी मिशन था। एक कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है कि प्रचारक टामस हज़रत ईसा जी के प्रथम शिष्यो मे से एक था जो ५० सन् ईस्वी मे ट्रावनकोर तथा दक्षिण देश मे आया। यह बात चाहे ठीक हो या नही परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण मे यह स्पष्ट है कि सीरियन मिशन चौथी शताब्दी ईस्वी से आरम्भ हुआ। मैसेपोटेमिया के अदीसा शहर से यह मिशन चला। इसके पश्चात् इटली के रोमन कैथलिक मिशन सेंट फ्रासिस गजेवीर के नेतृत्व मे आया तथा दूसरे का नेतृत्व राबर्ट डी० नोबिली ने किया। इन प्रचारको ने गवा (गोआ), दक्षिण तथा रास कुमारी आदि मे काम किया। बोबिली तो ब्राह्मण के रूप मे भेस बदल कर काम करता रहा। सेंट फ्रासिस भारत से १५५२ ई० मे गया। गुरु नानक साहिब ने अपनी दक्षिण यात्रा मे अवश्य इन प्रचारको से विचार-विमर्ष किया होगा। वे प्रत्येक सम्प्रदाय तथा धार्मिक उपदेशको से बड़े चाव तथा प्रेम से दूर से आकर भी मिलते थे। भारतीय धर्मों पर इन नए आक्रमणकारियो की पडताल (परख) किये बिना गुरु साहिब दक्षिण से कैसे आ सकते थे। जर्मनी के पादरी अठारहवी शताब्दी मे जो मिशन लाये वह गुरु नानक से बहुत देर पीछे था। वे गुरु गोबिन्द सिंह जी के समकालीन भी नही हो सकते। दशमेश जी सन् १७०८ मे परम धाम सिधार गए थे अर्थात ज्योतिजोत समा गए थे।

कई लेखक सिक्खी सिद्धान्तो मे ईसाई मत का प्रभाव अनुभव करते हैं। जैसे डब्लियु यगसन लिखता है :—

"चाहे गुरु नानक देव जो को ईसाई सिद्धान्तो का ज्ञान था या नही परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि गुरु साहिब को मुसलमानी सिद्धांतो की पूरी जानकारी थी। मुसलमानी मार्ग द्वारा अजील के सिद्धांत, ईसा जी की वाणी तथा ईसा के व्यक्तित्व सम्बन्धो ज्ञान गुरु साहिब तक अवश्य पहुचे होगे।" मुसलमानी मार्ग द्वारा ईसाई सिद्धान्तो को गुरु साहिब तक लाना गुरु साहिब के सूफो फकीरो से मेल जोल के रूप मे भी सम्भव हो सकता है। फरकूहर लिखता है कि "सूफी मत की शिक्षाये विशेष रूप मे दो बाह्य स्रातो से आई हैं। पहला तो नया अफलातूनी मत था जो कि यूनानी दर्शन, ईसाई धर्म आदि के मध्यम से इस्लाम मे प्रविष्ट हुआ। दूसरा था भारतीय मत। ये भारतोय विचार बुद्ध मत के माध्यम से इस्लाम मे आए या वेदात के द्वारा, अभी विश्वास से नही कहा जा सकता। अभी-अभी एक फ्रांसीसी लेखक ने अपनी पुस्तक मे लिखा है-"गुरु नानक ने अपने धर्म मे दो धर्मो के सिद्धान्तो को सम्मिलित किया। उनमे से एक धर्म तो था सूफी मत और दूसरा था ईसाई मत। गुरु ग्रथ मे कई शब्द ऐसे हैं जो अजील के न्यू टैस्टेमैंट के कई वाक्यो से मिलते है। यह बात कह देनी भूल नही होगी कि आधा श्री गुरु साहिब हजरत ईसा जी के जन्म से फाँसी चढने तक का इतिहास है।" इस कथन को कौन मानेगा? इस ससार मे इस प्रकार आखे बन्द करके लिखने वाले विद्वान भो विद्यमान हैं। परन्तु यह कहना कि सिक्खी सिद्धान्तो मे ईसाई मत का प्रभाव है कुछ सच्चाई रखता हो तो रखता ही हो। इस विचार को कई विद्वानो ने प्रकट किया है। यह तो था सिक्खी सिद्धातो के आरम्भ होने मे ईसाई मत का प्रभाव। परन्तु सिक्ख धर्म के सगठित होकर खालसा रूप मे सुसज्जित होने मे भी कई लेखको ने ईसाई धर्म का प्रभाव खोजा है। वी० ए० स्मिथ लिखता है कि गुरु गोबिन्द सिह जो ने सम्भवत ईसाई मत के उदाहरण से सकेत लेकर सिक्खो को 'एक माता-पिता के पुत्र' के भ्रातृभाव के सगठन मे पिरोया। मनुष्य मात्र मे भ्रातृभाव, ईश्वर का पिता भाव, अकाल पुरुष का हुकम तथा कृपा, सहनशीलता तथा नेकी, जीवन की शुद्धता एव पवित्रता ऐसी समस्यायें हैं जो प्राय ईसाई रग मे रगे विचारक को सिक्ख धर्म मे ईसाई धर्म की झलक लगते है।

परन्तु इन बातो को किसी एक स्रोत पर निर्भर करना शायद ठीक न हो। सिक्ख धर्म के सिद्धान्तो को चीरफाड कर यह कहना कि अमुक अंग अमुक धर्म मे से आया है और अमुक तत्व अमुक मत मे से, बहुत खीचातानी करनी होगी। कारण यह कि ईसाई सिद्धान्त कौन सा ईसा जी के अपने ही मस्तिष्क की उपज थी। साधारण ईसाई अनुसन्धानको के निर्णय बताते हैं कि ईसाई धर्म मे ज़रतुश्त तथा बुद्ध धर्म आदि का बहुत गहरा प्रभाव है।

मुसलमान धर्म से

जिस प्रकार अंग्रेजी राज्य के प्रभाव स्वरूप ईसाई धर्म तथा यूरोपीय सभ्यता भारत के वर्तमान धार्मिक जीवन पर प्रभाव डाल रहे है, इसी प्रकार मध्यकाल मे भारत के धार्मिक जीवन पर इस्लाम तथा मुसलमानी सभ्यता का प्रभाव इससे भी अधिक हुआ था। इस बात मे कोई सन्देह नही कि इस्लाम ने यदि एक साधारण धर्म के नाते नही तो एक सरकारी धर्म के नाते सिक्ख धर्म के बढने फूलने या उनका एक विशेष दृष्टिकोण बनने मे विशेष कार्य किया। राजकीय प्रभावो को एक ओर रख कर हमने अब यह देखना है कि धार्मिक आधार पर इस्लामी धर्म ने सिक्ख धर्म पर सीधा या टेढा क्या प्रभाव डाला।

बुद्ध धर्म तथा सिद्ध अथवा जोग मत की भांति इस्लाम का प्रभाव सिक्ख धर्म पर बहुत क्रियात्मक जीवन वाले पक्ष पर हुआ है। सैद्धांतिक पक्ष मे इतना प्रभाव नही हुआ। मुसलमानो मे ईश्वर की पूजा व्यक्तिगत भी है और समष्टिगत दलबन्दी अथवा सगत के माध्यम से भी है। हिन्दू पूजा विशेष रूप मे व्यक्तिवादी थी। परन्तु सिक्ख के नित नियम मे जहाँ प्रात और साय काल आरती के समय अकेले नाम का जाप करना और पाठ करना है वहाँ प्रतिदिन गुरुद्वारे जाकर सगत करना कीर्तन सुनना और गुरबाणी का गान भी करना है। रहरास का पाठ सगत मे करना शोभनीय है और यदि गुरुद्वारे न सही तो घर का

सारा परिवार मिलकर बैठे और बारी बारी सारे पाठ करे और सुने। यह घर मे ही सगत द्वारा स्मरण है। यह सगत का विचार बहुआ मसलमानी या कहिये पश्चिमी अथवा शामी है। इसी प्रकार गुरुग्रथ को कपडो मे लपेट कर रखना या पाठ कर के ऊपर से रुमाल से ढकने आदि की प्रथा गुरु ग्रथ की बहन कुरानशरीफ के लिए भी है। इससे भी बढकर मिलती जुलती बात दोनो धर्म पुस्तको मे प्रारम्भिक लेख है, अथवा मूलमत्र या कलमा है जो मुख्य वाणी के प्रारम्भ मे लिखा होता है। कलमा तथा मूल मत्र का भाव एक ही है और स्वरूप भी एक ही है। दोनो के बीच कोई क्रिया नही केवल नाम (सज्ञा) या विशेषण है जिसका भाव यह है कि अकाल पुरुष समय तथा काल के मनुष्यकृत विभाजनो से दूर है। जिस प्रकार मुसलमानो का विश्वास है कि फातिहा भाव सारे कुरान मे फैला हुआ है, या कहे कि सारा कुरान शरीफ फातिहा का तफसीर है। उसी प्रकार कई सिक्खो का निश्चय भी यही है कि मूल मत्र का विस्तार जपुजी है और जपुजी का विस्तार सारा गुरुग्रथ है। भाव यह है कि सारे कुरान का तत्व फातिहा है और सारे गुरु ग्रथ का मूल मत्र जपुजी। इसके अतिरिक्त हजरत मुहम्मद साहिब का स्वर्गो को मिराज करना और गुरु नानक साहिब का सचखण्ड जाकर अकाल पुरुष से सन्देश लेना एक ही विचार के द्योतक है। हिन्दु अवतारो के सम्बन्ध मे ऐसी कोई कथा सुनी देखी नही गई।

सैद्धांतिक पक्ष मे भले ही ईश्वर सम्बधी मुसलमानी वहदत के विचार ने गुरु नानक साहिब के एक ही परमेश्वर भाव को वास्तविकता दी हो परन्तु फिर भी गुरमत सिद्धात के अनुसार ईश्वर का स्वरूप हिन्दु मुसलमान दोनो से अलग भी और मिलता जुलता भी है। "निस्सन्देह तुम्हारा स्वामी अल्ला है जिसने पृथ्वी आकाश छ दिनो मे बनाये और फिर स्वर्ग पर अपना निवास स्थान बनाया।" भाव यह कि अल्ला पृथ्वी पर नही ऊचे आकाशो पर है, उधर दूसरी ओर हिन्दु का ईश्वर प्रत्येक स्थान और प्रत्येक वस्तु मे है। मुसलमानी भाव निर्गुणवाद का है तथा हिन्दु सगुणवाद का। गुरु साहिब ने कहा। "निर्गुण आप सगुण भी उही, अर्थात् ईश्वर ससार मे भी है और बाहिर भी। एक और बात जो गुरु साहिब के बताए गए अकाल पुरुष के रूप

के सम्बन्ध मे है और वह हिन्दुओ मे नही केवल मुसलमानी निश्चय मे ही मिलती है वह है ईश्वर का पुरुष रूप होना, नर होना। ईश्वर स्त्री लिङ्ग, मदीन नही है। परन्तु हिन्दु धर्म पुस्तको मे ईश्वर को देवी और शक्ति आदि के रूप मे स्त्री लिग भी दिखाया गया है। मुसलमानी विचार के अनुसार ईश्वर इतना रहीम तथा दयालु है कि "ईश्वर गुनहगार के गुनाह बख्श देता है यदि कभी वह गुनाहगार गुनाहो मे तोबा न भी करे।" परन्तु गुरु साहिब ईश्वर को इतना अधिक दयालु नही बनाते। गुरु साहिब के मार्ग मे रुकावट कर्म की थी। जहा उन्होने मुसलमानी दयालुता का भाव लिया था वहा हिन्दु कर्मों को भी अपनाया था। इसलिए बुरे कर्मों वाले के गुनाह (पाप) तभी क्षमा किए जायेगे यदि वह पश्चाताप करके तोबा करे और क्षमा के लिए प्रार्थना करे और भविष्य मे सोचकर चले तथा शुभ कार्य करे। कुरान शरीफ मे कही कही ईश्वर को बदला लेने वाला भी बताया गया है, परन्तु गुरबाणी मे ईश्वर बदला लेने के गुण से सर्वथा मुक्त है। वैदिक मन्त्रो मे भी ईश्वर को क्रोधवान तथा कुरोपी तथा बदला लेने वाला बताया गया है। परन्तु गुरु साहिब उसके कृपालु होने को बार २ दुहराते हैं। "मिहरबान साहिब मेरा मिहरवान।"

'हुक्म' (आदेश) तथा 'इच्छा' का भाव चाहे सभी शामी मतो मे समान है, परन्तु मुसलमानी धर्म मे विशेष रूप मे प्रधान है। 'हुक्म' का पद भी कुरान शरीफ से लिया गया हैं। कुरान शरीफ मे आए अन्य कई विचार गुरु साहिब ने अपनाए, जैसा कि "सभी मनुष्य एक ही परिवार तथा जाति के है।" (सूरा २—२१3)

'सारे व्यक्ति सिवाय एक ही नसल तथा परिवार के होने के और कुछ भी नही। (सूरा १०—६)।

ये कुरानी विचार गुरबाणी मे भी बताये गये हैं। श्री दशमेश जी के मुखवाक् हैं :—

हिन्दु तुरक कोऊ राफजी इमामशाफी,
मानस की ज़ाति सभै एकै पहिचानबो।
एक ही सरूप सभै एक ही बनाव है।"

(अकाल उसतत)

गुरु नानक जी का कथन है —

फकड जाती फकड नाउ ।। सभना जीआ इका छाउ ।।

(सिरी रागु)

जिस प्रकार मसीत मे सब बराबर है, कोई बडा छोटा नही, राजा और प्रजा शाह तथा रक सभी एक हैं इसी प्रकार गुरुद्वारो मे सगति और पगति मे कोई भिन्न भेद नही है। जाति, परिवार, अमीर गरीब सब एक हैं। सगति की सेवा करना पखा करना, पानी लाना सगति के लिये ये कर्म करने सभी गौरव समझते है। सच्चे पातशाह गुरु अर्जुन देव सगतो की सेवा चाव से किया करते थे। खालसा कालेज अमृतसर की स्थापना के समय महाराजा हीरा सिंह नाभा ने सगतो की सेवा स्वय पखा करके की। सगत मे बडे छोटे का भेद सब मिट जाते है। यह विचार पहले मुसलमानो तथा शामी मतो मे ही प्रचलित था। हिन्दु तो राजे को निश्कलक कह कर बहुत बडी विशेषता (महत्व) देते थे। मुसलमानी विचार कि सृष्टि रचना ईश्वर के आदेश से एक आख के फेर मे 'कुन' कहने से हो गई, गुरबाणी की कई पक्तियो मे झलकता है। श्री जपुजी मे है —कीता पसाउ एको कवाउ (१६), हुकमी होवनि आकार (२)। वार मलार मे कहते हैं—(पृष्ठ ६१८) हुकमो ही सभ साजीअन। यह हम आगे जाकर देखेगे कि गुरु साहिब का 'हुक्म' से भाव मुसलमानी अर्थो वाला नही था। अरबी अर्थो तथा गुरबाणी मे लिए गए 'हुक्म' के भाव मे बहुत भेद है। परन्तु फिर भी साधारण अर्थ दोनो धर्मो के एक ही लिए जाते हैं तथा कुरानी 'कुन' 'कुम' का भाव साधारण सिक्खो मे भी प्रचलित है। मृत्यु के पश्चात् दो मुसलमानी विचार गुरबाणी की कई पक्तियो मे पाए जाते है।

अजराईलु फरेसता तिल पीडे घाणी ।।

(गउडी की वार म ५)

दरि लए लेखा पीडि छुटै नानका जिउ तेलु ।। (आसा महला १)

नानकु आखै रे मना सुणीयै सिक्ख सही ।।
लेखा रबु मगेसीआ बैठा कढि वही ।।
तलबा पउसनि आकीआ बाकी जिना रही ।।
अजराईलु फरेसता होसी आइ तई ।।

(वार रामकली पृ० ९५३)

यद्यपि यह बात इन पक्तियो से सिद्ध नही होती कि गुरु साहिब 'मृत्यु के पश्चात्' सम्बधी इन विचारो मे निश्चय रखते थे गुरु साहिब का अपना मत 'गुरमति सिद्धात भाग मे आयेगा।* ये सब पक्तिया प्रथाइ साखी महा पुरख बोल दे, साँझी सगल जहाने' के नियम के नीचे आती है। कुछ भी हो गुरबाणी मे इन विचारो का सहानुभूतिपूर्ण समानता वाला व्यवहार अवश्य है।

गुरु साहिब के जीवन वृतात तथा उनके आशयो के विचार से यह सिद्ध होता है कि गुरु साहिब का मेल दो प्रकार के मुसलमानो से हुआ। एक तो कट्टर शरइयो से तथा दूसरे सूफी भक्तो से। पहली श्रेणी वालो के दिखावे के नीरस जीवन व्यर्थ रीति रिवाज तथा पाखड ने गुरु साहिब के मन से घृणा एव रोषपूर्ण शब्द निकाले। मुल्ला मुलाणियो के बाह्य भेस, उनके मक्कार, पाखण्डो क विरुद्ध गुरु नानक साहिब ने उसी प्रकार क्रोध वाले शब्द प्रयुक्त किए जो ऐसे ब्राह्मणो तथा जोगियो आदि के विरुद्ध प्रयुक्त किए थे

वार माझ म १ पृष्ठ १४० ॥

जे रतु लगै कपडै जामा होइ पलीतु ॥
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु ॥
नानक नाउ खुदाइ का दिलि हछै मुखि लहु ॥
अवरिदिवाजेदुनी के झूठे अमल करेहु ॥८॥

मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु ॥
सरम सुनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु ॥
करणी काबा सचु पीरु कलमा करम निवाज ॥
तसबी सा तिसु भावसी नानका रखै लाज ॥१॥
म १॥ हकु पराइआ नानक उसु सूअरु उसु गाय ॥
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाय
गली भिसति न जाइऔ छुटै सचु कमाय।
मारण पाहि हराम महि होइ हलालु न जाय।
नानक गली कूडीई कूडाई कूडो पलै पाइ ॥२॥

---

*विस्तार पूर्वक विचार के लिए देखे इसी लेखनी की यह दूसरी पुस्तक — "मरन तो पिछो।"

म १॥ पजि निवाजा वखत पजि पजा पजे नाउ ॥
पहिला सचु हलालु दुइ तीजा खैर खुदाइ ।
चौथी नीअति रासि मनु पजवी सिफति सुनाइ ॥
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ ॥
नानक जेते कूडिआर कूडै कूडी पाइ ॥३॥

मारू महला ५ पृष्ठ १०८३ ।

अलह अगम खुदाई बन्दे ॥ छोडि खिआल दुनीआ को धन्धे ॥
होइ पैखाक फकीर मुसाफर ॥ इहु दरवेसु कबूलु दरा ॥१॥
सचु निवाज यकीन मुसला ॥ मनसा मारि निवारिहु आसा ॥
देह मसीति मनु मउलाणा कलम खुदाई पाकु खरा ॥२॥
सरा सरीअति ले कमावहु । तरीकति तरक खोजि टोलावहु ॥
मारफति मनु मारहु अबदाला मिलहु हकीकति जितु फिरि न मरा ॥३॥
कुराणु कतेब दिल माहि कमाही । दस अउरात रखहु बद राही ॥
पच मरद सिदकि ले बाधहु खैरि सबूरी कबूल परा ॥४॥
मका मिहर रोजा पैखाका । भिसतु पीर लफज कमाइ अन्दाजा ॥
हूर नूर मुसकु खुदाइआ बन्दगी अलह आला हुजरा ॥५॥
सचु कमावै सोई काजी । जो दिलु सोधै सोई हाजी ॥
सो मुला मलऊन निवारै सो दरवेसु जिसु सिफति धरा ॥६॥
सभे वखत सभे करि वेला । खालकु यादि दिलै महि मउला ॥
तसबी यादि करहु दस मरदनु सुनति सीलु बन्धानि बरा ॥७॥
दिल महि जानहु सभ फिलहाला । खिलखाना बिरादर हमू जजाला ॥
मीर मलक उमरे फानाइआ एक मुकाम खुदाइ दरा ॥८॥
अवलि सिफति दूजी साबूरी ॥ तीजै हलेमी चउथै खैरी ॥
पजवै पजे इकतु मुकामै एहि पजि वखत तेरे अपरपरा ।९॥
सगली जानि करहु मउदीफा । बद अमल छोडि करहु हथि कूजा ॥
खुदाइ एकु बुझि देवहु बागाँ बुरगु बरखुरदार खरा ॥१०॥
हकु हलालु बखोरहु खाणा । दिल दरिआउ धोवहु मैलाणा ॥
पीरु पछाणै भिसती सोई अजराईलु न दोज ठरा ॥११॥

काइआ किरदार औरत यकीना । रग तमासे पाणि हकीना ॥
नापाक पाकु कारि हदूरि हदीसा साबत सूरति दसतार सिरा ॥१२॥
मुसलमाणु मोम दिलि होवै । अन्तर की मलु दिल ते धोवै ॥
दुनीआ रग ना आवै नेडै जिउ कुसम पाटु घिउ पाकु हरा ॥१३॥
जा कउ मिहर मिहर मिहरवाना । साई मरदु मरदु मरदाना ॥
सोई सेखु मसाइकु हाजी सो बन्दा जिसु नजरि नरा ॥१४॥
कुदरति कादर करण करीमा । सिफति मुहबति अथाह रहीमा ॥
हकु हुकमु सचु खुदाइआ बुझि नानक बदि खलास तरा ॥१५॥३॥१२॥

इन प्रमाणो से यही सिद्ध होता है कि गुरु साहिब आन्तरिक गुणो पर अधिकतर जोर देते थे और शरई मुल्लाणे बाह्य भेसो पर।

एक मुसलमान के लिए अल्ला या कुरान शरीफ मे प्रयुक्त ईश्वर के अन्य नाम लेने उचित हैं परन्तु बाहर के नही। "अल्ला के बहुत बढिया सफाती नाम हैं, इन नामो का प्रयोग करके ईश्वर को याद करो, परन्तु बाहर के बिगाडे हुए नामो से दूर रहो।"

(सूरा ७–१६९)

एडवर्ड सैल लिखता है कि 'सारे मुसलमान इस बात पर सहमत हैं कि ऐसे सफाती नाम जैसे हय्यी, कादर अल्ला के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं यदि वे तौकोफी अथवा प्रामाणिक हो, अर्थात् किसी हदीस या कुरान मे आए हुए हो। जैसे अल्ला को अशशफ्फी कह सकते है परन्तु अलत्तबीब नही कह सकते। क्योकि पहला नाम कुरान मे आया और दूसरा नही आया तथा न ही किसी हदीस मे आया है'। परन्तु यह बन्धन, किसी विशेष शब्द या बोली की विशेषता और पवित्रता को गुरु नानक ने अस्वीकार कर दिया था। गुरु साहिब के लिए तो ईश्वर के अनगिणत असख्य नाम है, सारे नामो का किसी को पता भी नही हैं। वास्तविक नाम तो 'सतिनामु' है, अर्थात् उसकी दायमी हस्ती को बताने वाला चिन्ह और उसका मानसिक भाव। अन्यथा ईश्वर को किसी प्रकार पुकारें वह हमारे आन्तरिक भाव बिना कहे सुने या अक्षरो मे उच्चारित किए जानता है। यह निश्चय कि हजरत मुहम्मद साहिब ईश्वर के पैगम्बर, या केवल वही पैगम्बर अथवा सबसे अन्तिम पैगम्बर हुए है गुरु साहिब को अपील नही करता था। वे कहते थे कि यदि एक पैगम्बर हो सकता

है तो लाखो करोडो भी हो सकते है। हजरत मुहम्मद साहिब हम जैसे ही मनुष्य थे और हमारी तरह ही दुख सुख के भागी थे। जब एक काज़ी ने गुरु साहिब से कहा —

अवल नाउ खुदाइ दा, दूजा नाउ रसूल।
तीजा कलमा पड लै नानका जे दरगह होणा कबूल ॥

इसके उत्तर मे गुरु साहिब ने कहा —

दूजा काहे सिमरीअ, जम्मे ते मर जाए,
एको सिमरहु नानक, जल थल रिहा समाए।

शरई लोगो की धर्मान्धता तथा मानसिक संकीर्णताओ से घृणा करते हुए गुरु साहिब ने कहा कि सब धर्म एक हैं। उनके मूल सत्य (बुनियादी सच्चाइया) एक है। यदि हम ठीक ढग से धार्मिक जीवन व्यतीत करे और दिखावे से दूर रहे तो सच्चा हिन्दु, सच्चा मुसलमान एव सच्चा ईसाई एक हा प्रकार का जीवन दृष्टिकोण और एक ही प्रकार जीवन आदर्श रखेगा। इसी लिए उन्होने कहा, अल्ला-राम एक है, पूजा निमाज एक हैं, देहरा (मन्दिर) मस्जिद एक हैं, हिन्दु तुरक एक है। इसी उदारता के फलस्वरूप छटे गुरु ने मुसलमानो के लिए एक मस्जिद बनवा कर दी थी और प्रथम गुरु जी ने जमात मे सम्मिलित होकर निमाज पढने से इन्कार नही किया था परन्तु उन्होने पढी नही, जमात मे खडे अवश्य हो गए, क्योकि पढाने वाले का मन शुद्ध नही था 'मन होर मुख होर' था। इसलिए शरई (धार्मिक) मुसलमानो के जीवन ने गुरु नानक साहिब के मन पर कोई विशेष प्रभाव नही किया था। इसी दिखावे मे जीवन का यह विपरीत प्रभाव समझ ले कि गुरु साहिब ने सदाचारी (नैतिक) गुणो एव आत्मिक उन्नति पर जोर देकर यह कहा कि मनुष्य के बाह्य चिन्ह किसी आन्तरिक विशिष्ठ (महान) गुण के 'इण्डैक्स सूचक दर्शग होने चाहिए। यह नही कि 'बाहर भेख अन्तर मल माइआ' जो गुरु जी ने दिखावे के शरई (धार्मिक) मौलाणो, पण्डितो तथा जोगियो के जीवन मे देखा था। परन्तु इस्लामी फकीरो सूफियो ने गुरु साहिब के मन पर बहुत अच्छा प्रभाव किया था। वह कैसे ?

सूफी मत से

गुरु नानक साहिब का तथा शेष गुरुओ का भी मुसलमान सूफी फकीरो से बहुत गहरा सम्बन्ध रहा है। हजरत मुहम्मद साहिब के मत मे से अभेदता पक्ष को लेकर जजबाती रग दे कर इस मत की रूप रेखा (ढांचा) बनी थी। वे रियाज़त तथा तपस्या द्वारा उन्नति करके ऐसी अवस्था मे पहुचने का लक्ष्य रखते है जब कर्म अथवा अमल (क्रिया) का अभाव होता है। केवल एक अल्ला के ज्ञान के बिना शेष प्रत्येक प्रकार के ज्ञान का नाश होना आवश्यक है। अन्तिम मंजिल पर जाकर 'दूसरे का ज्ञान 'केवल उसी एक के' ही ज्ञान मे मिल जाता है अर्थात् गरक हो जाता है और यह 'फनाह' अथवा अभेदता की मंजिल (अवस्था) है।

उन सूफियो मे से जिनसे गुरु साहिब का निजि प्रेम था एक बडे उच्च महापुरुष बाबा फरीद की वाणी गुरु ग्रंथ साहिब जी मे सकलित है। पजाब मे उस समय जो सूफी मत प्रधान था वह चिश्ती सम्प्रदाय था। हजरत मुहम्मद साहिब के पश्चात् तीसरी शताब्दी तक सूफी मत के सम्प्रदायो की सख्या सात तक हो गई थी। इन सातो मे से गुरु साहिब के समय का चिश्ती सम्प्रदाय एक था।

ईस्वी को दसवी शताब्दी मे ख्वाजा अबु अबदाल चिश्ती ने चिश्ती सम्प्रदाय को नींव रखी और उसके दो सौ वर्ष पश्चात् यह सम्प्रदाय भारत भी पहुचा। ११९२ ईस्वी मे शहाबुद्दीन गौरी की सेना के साथ सीस तान वाले ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती दिल्ली आये। तीन वर्ष के पश्चात् वे अजमेर चले गए, जो कि चिश्ती सूफियो का प्रथम केन्द्र बन गया। गुरु नानक साहिब बाबा फरीद, सानी शेख ब्रह्म को मिले थे। ये पाकपटन मे बाबा फरीद पहले शेख शकर गज से तेरहवें स्थान पर थे। शेख फरीद शकर गज दिल्ली वाले ख्वाजा कुतबुद्दीन के मुरीद थे और ये आगे ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे। यह पीरी मुरादी की लडी दूसरे खलीफे हज़रत उमर तक जाती है और उनके द्वारा हज़रत मुहम्मद साहिब के साथ सम्बन्ध जोडा जाता है।

अद्वैत भक्ति तथा सूफी मत एक दूसरे के बहुत समीप थे। सिक्खी मार्ग मे इन दोनो मतो का विशेष मेल हो गया है। जिस प्रकार तसवफफ के अनुसार आध्यात्मिक उन्नति की कई अवस्थाए हैं उसी प्रकार गुरु साहिब भी जपुजी साहिब मे ऐसी पाच अवस्थायें गिनते (बताते) हैं। सूफी जीवन तथा सिक्खी मार्ग मे कई बाते सादृश्य (समान) है। ईश्वर का स्मरण अथवा नाम जपना, कीर्तन करना, परमेश्वर के गुणगान करना और लगर (भण्डारा) का निरन्तर चलाना। सूफियो तथा सिक्खो मे साधारण दृष्टि वाले को भी साम्य दिखाई देंगे। समस्त धर्मो एव मत-मतान्तरो का सत्कार करना, प्रत्येक धर्म के महापुरुषो, पैगम्बरो अवतारो का आदर करना, दूसरो के सिद्धान्तो तथा निश्चयो को स्वीकार करना और सहनशीलता के साथ प्यार करना, बाह्य भेस दिखावे के स्थान पर आन्तरिक सदाचार एव आत्मिक गुणो पर ज़ोर, गुरु नानक की शिक्षा तथा सूफी मत मे एक रूप मे है अर्थात् एक समान हैं।

जहा दोनो मतो मे समानता है वहा दोनो मे कई बुनियादी भिन्नताए भी हैं। पहली बात तो यह है कि लगभग सभी सूफी फकीर होते हैं। एस० ए० शाह ने "इस्लामिक सूफिजम" मे सूफी मत की व्याख्या की है। पृष्ठ २४२ पर लिखता है कि फकीरी अथवा निर्धनता अर्थात् त्याग सूफी की आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक साधन हैं, परन्तु गुरु नानक जी का धर्म सन्त सिपाही गृहस्थियो का धर्म है। वेदान्तियो की भाति सूफी का लक्ष्य घर बार छोड कर फकीर हो कर घूमते फिरना है, परन्तु गुरसिक्ख घर बना कर बडे आत्म सम्मान से काम करता है। उधर सूफी का कमाल आबादो से घरो से दूर जगलो मे प्राप्त होता है, मरुस्थलो मे, वनो मे, पहाडो की चोटियो पर, कन्द्राओ मे, मनुष्य की पहुच से दूर, जहाँ कोई मानवीय विघ्न न पहुच सके, सूफी फकीर ईश्वर मे ध्यानस्त होकर उसमे अभिन्न होने का प्रयत्न करता है। सूफी आदर्श प्राप्ति के लिए तपस्वी जीवन, त्याग तथा योगियो वाले कठोर बन्धनो का पालन आवश्यक है। वनो मे भूखे प्यासे रह कर वस्त्र आदि फाड कर बिल्कुल नगे फिर कर शरीर को कष्ट दे देकर सूफी मन पर काबू पाता है अर्थात् मन को वश मे करता है और ईश्वर को ढूण्डता है। "यह खेल कठिन है" परन्तु मन को वश

मे कर लिया जाए तो माया मे निर्लिप्त रह कर सहज एव स्वाभाविक रूप मे ही आदर्शमय जीवन हो जाता है।

बाबा फरीद ने कहा है —

फरीदा रती रतु न निकले जे तनु चीरै कोइ ॥
जो तन रते रब सिउ तिन तिन रतु न होइ ॥५१॥

इसका उत्तर गुरु अमरदास जी के मुखारविन्द से इस प्रकार है—

मः ३ ॥ इहु तनु सभो रतु है रतु बिनु तन्नु न होइ ॥
जो सह रते आपणे तितु तनि लोभु रतु न होइ ॥
भै पइऐ तनु खीणु होइ लोभु रतु विचहु जाइ ॥
जिउ बैसतंरि धातु सुधु होइ तिउ हरि का भउ—
दुरमति मैलु गवाइ ॥
नानक ते जन सोहणे जि रते हरि रगु लाइ ॥५२॥

फरीद जी एक अन्य श्लोक मे कहते हैं—

फरीदा पाडि पटोला धज करी कबलडी पहिरेउ ॥
जिनी वेसी सहु मिलै सेई वेस करेउ ॥१०३॥

इसका उत्तर फिर गुरु अमरदास जी के मुखारविन्द मे है —

म ३ ॥ काइ पटोला पाडती कबलडी पहिरेइ ॥
नानक घर ही बैठिआ सहु मिलै जे नीअति रासि करेइ ॥
॥१०४॥

कबीर जी की भाँति बाबा फरीद जी भी जीवन को दुख रूप मानते हैं और ससार को दुखो का घर समझते हैं —

फरीदा मैं जानिआ दुखु मुझ कू दुखु सबाइऐ जगि ॥
उचे चडि कै वेखिआ ता घरि घरि एहा अगि ॥८१॥

इस विचार से व्यक्ति जीवित नही रह सकता। इसलिए फरीद जी कहते हैं —

फरीदा जि दिहि नाला कपिआ जे गलु कपहि चुख ॥
पवनि न इती मामले सहा न इती दुख ॥७६॥

परन्तु गुरु साहिब फिर इस विचार का सशोधन करते हैं। उन्होने कहा, जीवन हमारे मन के प्रवाह (शक्ति, क्रिया) पर निर्भर है और मन की मुहार साई (परमात्मा) की मिहर (कृपा) से बनती है। ठीक Atutude (अवस्था) मुहार से ससार उद्यान सा प्रतीत

होता है और उसमे जीवन पूर्ण आनन्दमय होता है। गुरु अर्जुन देव जी ने कहा है—

म ५ ।। फरीदा भूमि रगावली मझि विसूला बाग ।।
जो जन पीरि निवाजिआ तिन्ना अच न लाग ।।८२।।
म ५ ।। फरीदा उमर सुहावडी सगि सुवन्नडी देह ।।
विरले केई पाईअनि जिन्ना पिआरे नेहि ।।८३।।

इस विचार से हम दूसरे भाग को समाप्त करते हैं। सम्भव है कि कई पाठको को यह पारस्परिक मत-मतान्तरो का विचार बडा लम्बा तथा मन को उबा देने वाला प्रतीत हो और कुछ लोगो को—इस ओर रुचि रखने वालो को—यह सक्षिप्त के अतिरिक्त बहुत गम्भीर एव सूक्ष्म प्रतीत हुआ हो। इस भाग के लिखने का अभिप्राय केवल इतना ही था कि यह सिद्ध किया जाए कि सिक्ख धर्म को हिन्दु धर्म या मुस्लिम धर्म अथवा किसी अन्य धर्म की शाखा कहना उन समस्त कारणो एव आन्दोलनो तथा धर्मों की ओर से आँखे बन्द करना है जिन्होने उस समय के वायुमण्डल को अपने प्रभावो से भरपूर किया हुआ था, जिस समय कि सिक्ख गुरु भारतीय रगमच पर अवतरित हुए थे और जिस वायुमण्डल मे उन्होने प्रसिद्धि प्राप्त की थी। जिस प्रकार सिक्ख धर्म मे आवागमन एव कर्मों की समस्या के अस्तित्व से हमे यह परिणाम नही निकालना चाहिए कि सिक्ख धर्म हिन्दु धर्म की शाखा है, उसी प्रकार गुरमत मे अकाल पुरुष की दृढ एकता से इसके मुस्लिम होने का भी सन्देह नही करना चाहिए। यदि वेद कतेब गीता एव गाथा गुरु ग्रथ के पूर्वज है तो जरतुश्त, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, शकर एव गोरख गुरु नानक के अग्रणीय भी है। परन्तु इसका यह भाव भी नही है कि गुरु साहिब ने सब कुछ आस-पास की परिस्थितियो से ही प्राप्त किया था। वे परमात्मा (अकाल पुरुष) के पास से कोरे रूप मे नही आये थे। वे सर्वव्यापक, सर्व शक्तिमान तथा अकाल एव सत्त चित्त शक्ति से जुडे हुए आए थे और विशिष्ठ उद्देश्य लेकर आए थे। अन्य पैगम्बर अवतार भी इसी प्रकार ही आते है और उसी अकाल पुरुष के नियम मे गुरु नानक—दस स्वरूप—नानक—भी आए। उन्हे किसी पुरातन परम्परा से सम्बन्धित करना उनकी मौलिकता एव विचार पूर्ण खोज से अन्याय करना है।

तीसरा भाग

गुरमति दर्शन

गुर ति सिद्धांत

—अथवा—

परम सत्य निर्णय

आ वां ध्या य

अकाल पुरुष !

साम्प्रदायिक विचारो के अनुसार गुरु ग्रथ मे सबसे पहला और सबसे अन्तिम लिखित चिन्ह 'एका' (१) है, तथा यह एका एक अकाल पुरुष वाहिगुरु का सूचक है और इसी एके का प्रभाव ही समस्त गुरबाणी मे प्रसारित है अर्थात् फैला हुआ है। इस एके के सिद्धात का सम्बन्ध गुरु साहिब के उस सिद्धात से है जो कि उन्होने ब्रह्मण्ड के सम्बन्ध मे बताया है। इस ससार के आदि मध्य तथा अन्त मे एक ही एक है। मारू महला ५ (पृष्ठ १००१)

तिसु बिनु दूजा अवरु न कोउ ॥
आदि मधि अंति है सोउ ॥२॥६॥

इस विचार को गुरबाणी की बहुत सी पक्तियो मे स्पष्ट किया गया है — 'नानक एको रवि रहिआ दूसर होआ न होगु" गउडी बावन अखरी महला ५ पृष्ठ २५०, "भणति नानकु जब खेलु उझारै तब एक एककारा।" (मारू महला ५) साम्प्रदायिक विचार चाहे कैसे भी है परन्तु समस्त गुरु ग्रथ मे हमे कोई एक भी ऐसा शब्द नही मिलेगा जिसका विषय प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे अकाल पुरुष परमात्मा नही है। अकाल पुरुष सिक्ख धर्म का प्रत्युत सारे ही माननीय धर्मों का प्रधान एव प्रमुख सिद्धांत है। इसलिए हम इस भाग के विचार को अकाल पुरुष सम्बन्धी विचार से आरम्भ करते हैं।

प्रत्येक दर्शन (फिलासफी) तथा धर्म का लक्ष्य ईश्वर अथवा अन्तिम (परम) सत्य वस्तु होता है। इसका यह भाव नही कि दर्शन

तथा धर्म मे अन्तर नही है। इस अन्तर की ओर हमने इस पुस्तक के पहले ही पृष्ठ पर सकेत किया था। हेगल ने ईश्वर के निश्चय की खोज सम्बन्धी धर्म एव दर्शन की साम्यता को इस प्रकार कहा है कि धार्मिक दर्शन (फिलासफो) तथा अन्य दर्शनो मे यह अन्तर है कि धार्मिक दर्शन ईश्वर से आरम्भ होता है और अन्य दर्शन ईश्वर पर आकर खडे हो जाते है। हमारा विचार अकाल पुरुष से आरम्भ होने वाली श्रेणी से सम्बन्धित होने के कारण यह हमारा पहला विषय होना आवश्यक है।

१ क्या ईश्वर है ?

अकाल पुरुष सम्बन्धी विचार करते समय सबसे पहला प्रश्न यही उठता है कि क्या ईश्वर है ? अकाल पुरुष का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए हमारे पास कौन-सा प्रमाण है ? हमने दूसरे धर्मों अथवा शास्त्रो मे दिए गए प्रमाणो का तो यहा विचार करना ही नही; हमने तो यह देखना है कि गुरु साहिब ने परमात्मा के अस्तित्व को किस प्रकार सिद्ध किया है ?

सबसे पहली बात तो यह है कि गुरु साहिब के लिए अकाल पुरुष सम्बन्धी शका कभी स्वप्न मे भी उत्पन्न हुई प्रतीत नही होती। अकाल पुरुष का अस्तित्व उनके लिए तर्क-वितर्क तथा प्रमाणो की अपेक्षा नही रखता। अकाल पुरुष के प्यार तथा उसके अस्तित्व के निश्चय मे वे इतने लीन थे कि उन्हे विरोधी पक्ष के अस्तित्व का कभी अनुभव भी नही हुआ प्रतीत होता, वे चलते ही अकाल पुरुष की शक्ति के निश्चय के सहारे थे, बल्कि उनके लिए अकाल पुरुष ही एक ऐसी वस्तु है जो वास्तविक अर्थों मे सत्त अथवा कायम रहने वाली हस्ती है। जिस वस्तु का स्वरूप ही 'हस्त' 'होद' अथवा सत्यता हो तो उसके अस्तित्व को सिद्ध करने की क्या आवश्यकता ? यह 'अस्तित्व' इतना स्पष्ट जाहर जहूर एव हाजर हजूर है कि उसके होते हुए यह सिद्ध करने की तो चाहे आवश्यकता हो कि इस अस्तित्व के बिना किसी अन्य वस्तु का भी अस्तित्व है या नही। परन्तु इस परम

अस्तित्व, सबके अस्तित्व के स्रोत, के अस्तित्व को सिद्ध करने की क्या आवश्यकता ? प्राय कहा जाता है — प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या ? ईश्वर प्रत्यक्ष है, जाहरा जहूर है। इसलिए ईश्वर के अस्तित्व के लिए प्रमाणो, तथा उक्तियो की आवश्यकता नही।

बेद कतेब ससार हमारू बाहरा।
नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा।

(आसा म ५ पृष्ठ ३९७)

इसी लिए गुरु साहिब कहते हैं कि मैं जिधर भी देखता हू मुझे प्रत्येक ओर अकाल पुरुष वाहिगुरु दिखाई देता है।

जह जह देखा तह तह सोई।

(प्रभाती म १ पृष्ठ १३४३)

इतनी प्रत्यक्ष एव प्रकट वस्तु के लिए प्रमाणो तथा सबूतो की आवश्यकता प्रतीत नही होती। परन्तु यह हमे मानना पडेगा कि परमात्मा की प्रकटता तथा प्रत्यक्षता आत्मिक ससार मे आन्तरिक रूप मे है। ईश्वर बाह्य, ससार मे सूर्य की भाति प्रत्यक्ष तथा प्रकट नही है। यद्यपि यह ठीक है कि अन्तर्मुखी श्रद्धालु के लिए सूर्य भी परमात्मा का द्योतक है। शकावादी चाहता है कि वाहिगुरु उसी प्रकार ही प्रकट रूप मे दिखाई दे जिस प्रकार कि बाह्य ससार मे सूर्य दिखाई देता है, जिस प्रकार इन शारीरिक आखो से सूर्य देखा जाता है बस उसी प्रकार ईश्वर भी दिखाई दे। परन्तु साम्प्रदायिक अर्थवादी कहता है कि सूर्य भी तो उल्लु को दिखाई नही देता, उसी प्रकार वाहिगुरु भी यद्यपि सूर्य की भाति स्पष्ट है परन्तु उल्लु की भाँति आत्मिक एव मानसिक दृष्टि न रखने वालो को दिखाई नही देता। इनकी बुद्धि तथा अनुभवों पर अविद्या का परदा पडा होता है और अज्ञान तथा अविद्या उनकी आन्तरिक दृष्टि को बेकार (नकारा) किए रहती है, अर्थात् आन्तरिक दृष्टि (आखें) उनकी हीन हुई होती है। परन्तु यह सूर्य एव उल्लु का प्रमाण भी आत्मिक मण्डल के अनुभव सम्बन्धी एक सकेत ही है। गुरु साहिब का भाव भी अकाल पुरुष को सूर्य की भाति प्रत्यक्ष कहने का आन्तरिक दृष्टि से ही है। वे कहते है कि जिन आँखो से ईश्वर को देखा जाता है वे और है—

नानक से अखडीआ बिअन्नि जिनी डिसदो मा पिरी ॥
(वडहस म ५ पृष्ठ ५७७)

गीता तथा उपनिषदो मे भी इसी प्रकार के कई कथन आए है जिनका भाव यह है कि परमात्मा इन शारीरिक आखो से दिखाई नही देता वह मन आत्मा द्वारा देखा जाता है।

वर्तमान समय मे ईश्वर-अस्तित्व सिद्धि के लिए प्राचीन साम्प्रदायिक उक्तियो और प्रचलित प्रमाणो का महत्त्व कम हो गया है। इन उक्तियो तथा प्रमाणो से एक नास्तिक, कृतघ्न अथवा सकुचित मन मे अकाल पुरुष के अस्तित्व सम्बन्धी श्रद्धा या निश्चय उत्पन्न नही किया जा सकता। केवल तर्क वितर्क या बातो से ईश्वर के समीप नही हो सकते। न ही ईश्वर का अस्तित्व ऐसे प्रमाणो या सबूतो से सिद्ध हो सकता है जिनका कि स्थूल ससार तथा मानसिक जीवन से कोई सम्बन्ध न हो। इस बात के बावजूद ईश्वर की हस्ती एक ऐसी सत्यता है जिससे इन्कार नही किया जा सकता, परन्तु यह सच्चाई दलीलो या तर्क से सिद्ध करने के स्थान पर अनुभव की जा सकती है। ईश्वर का अस्तित्व एक आध्यात्मिक अनुभव है, एक आत्मज्ञान है। एक अलौकिक अनुभव है जो बौद्धिकता से पैदा नही किया जा सकता और न ही बातो से बताया जा सकता है। बहिर्मुख रुचि वाले को आन्तरिक सच्चाईयो सम्बन्धी सन्तो महापुरुषो के आन्तरिक अनुभवो को मानना पडेगा। ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के मार्ग मे वास्तविक दार्शनिक कठिनाई तो यह है कि तर्कों या नियमो से हम वही वस्तु सिद्ध कर सकते है जो इन तर्कों या नियमो को पकड मे हो अथवा जिस पर वह हावी हो। ये नियम तथा तर्क मनुष्य मण्डल द्वारा मनुष्य रचित है और इनका विषय वह वस्तु जो अकथनीय तथा अगम्य है निर्गुण तथा छोटी से छोटी, बडी से बडी और ऊची से ऊची अथवा अमानवीय है, किस प्रकार हो सकती है। तर्क एक मनुष्य द्वारा निर्मित पाव या सेर का वट्टा (वाट) है। इस बाट से एक न मापने तथा तोलने वाली वस्तु किस प्रकार मापी और तोली जा सकती है। एक मानुष घडा है, दूसरा अथाह सागर है। ईश्वर सम्बन्धी तर्क मनुष्य के कोरे अनुमान ही है, केवल कल्पनाये है, मनुष्य की आत्मा के अनुभव केवल मात्र झलकियाँ तथा चमक है। मनुष्य

का न शरीर, न मन और न आत्मा ही तथा न इसके बनाए प्रमाण या बनाए हथियार परमात्मा की हस्ती को पूर्णरूपेण ग्रहण कर सकते है और न विचार रूप मे उस पर हावी हो सकते है। ये कठिनाइयाँ है, परन्तु इन कठिनाइयो के बावजूद मनुष्य स्वाभाविक ही खोजी है और ईश्वर सम्बन्धी जो खोज गुरबाणी मे से हो सकी है, उसका परिणाम पाठको के सामने रखना आवश्यक है।

यद्यपि यह ठीक है कि गुरु साहिब के लिए ईश्वर की हस्ती एक स्वत सिद्ध मानी हुई सच्चाई है और इसके सम्बन्ध मे उन्होने किसी पक्ति या वाक्य मे न अपनी ओर से और न किसी अन्य की ओर से शका प्रकट की है और इस प्रधान सच्चाई पर ही उनका सारा मत स्थित है, परन्तु फिर भी गुरबाणी की खोज से कुछ एक ऐसे विचार छाटे जा सकते हैं जिन्हे हम अकाल पुरुष की हस्ती के सम्बन्ध मे निश्चय की बुनियाद कह सकते है।

ईश्वर के अस्तित्व का सबसे पहला प्रमाण है हमारा अपना अस्तित्व। हमारी आत्मा का अस्तित्व, हमारे मानसिक जीवन का अस्तित्व। डेकारट, एक फ्राँसीसी दार्शनिक का कथन "काजीटो ऐर गो सम" 'मै सोचता हू इसलिए मैं हू वेदांत के 'अह ब्रह्मास्मि 'मैं ही ब्रह्म हू' का ही एक पहलु है। इस बात मे कोई नास्तिक से नास्तिक भी शका नही करेगा कि प्रत्येक व्यक्ति सोचता है और सोचना उसके अस्तित्व का प्रमाण है, इस अस्तित्व से एक बडे विचार और एक महान अस्तित्व का मार्ग खुल जाता है। भाव यह कि एक छोर से लेकर दूसरे अन्तिम छोर तक चाहे डेकारट का द्वैत मत ले और चाहे हेगल का सर्व-अद्वैत मत तथा चाहे चार्वाको की नास्तिकता और चाहे शकराचार्य की आस्तिकता—समस्त विचारं का मूल, समस्त प्रमाणो एव तर्कों की बुनियाद हमारा अपना आप (निजत्व) है। हमारे स्वय का अस्तित्व सबसे पहली तथा प्रारम्भिक सच्चाई है। इस छोटे अपनत्व को जब विस्तृत किया गया, अतुलनीय एव परिमाण रहित किया गया, अविनाशी, तथा दैवी बनाया गया तो इससे ही ईश्वर के अस्तित्व का निश्चय हो गया। मानव आत्मा तथा परमात्मा मे कोई जाति भेद नही है हा स्तर अथवा पदवि का भेद अवश्य है। यहा यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि परमात्मा परमाणुओ मे एक बड़ा

परमाणु नही है। भाव यह कि जीव छोटे परमाणु है और परमात्मा एक बडा परमाणु है। यह अनेकवाद है। गुरु साहिब का मत एकवाद था। एक अकाल पुरुष सत्य है और जीव आत्माए उसी का अग है। इसीलिए (अग) तत्व से सम्पूर्ण की लभक पड सकती है, भाव यह कि जीव आत्मा के अस्तित्व से परमात्मा के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। गुरु साहिब इस बात पर तर्क करते है कि हम परमात्मा को अपनत्व के बिना अन्य साधनो तथा वस्तुओ द्वारा जान सकते यदि वह हमारे अपनत्व का ही महान् स्वरूप न होता। इसलिए जब हमारे अपनत्व ने ही अपने महान स्वरूप को जानना हो तो फिर अपनत्व के बिना किसी अन्य साधन या प्रमाण की क्या आवश्यकता ?

गउडी सुखमनी म ५ (पृष्ठ २९४)
तिस ते भिन्न नही को ठाउ।

.. . .

ताकी गति मिति कही न जाइ।
दूसर होइ त सोझी पाइ।
बिलावल महला ३ (पृष्ठ ७९७)
अतुल किउ तोलिया जाइ।
दूजा होइ त सोझी पाइ।
तिस ते दूजा नाही कोइ।
तिस दी कीमति किकू होइ।

अपनत्व नाम है चेतन सत्ता का, शुद्ध अह का तथा विचारो के कारण का। हम मे प्रत्येक वस्तु को जीवित रूप मे देखने का प्राकृतिक स्वभाव है। हम मनुष्य है और प्रत्येक जड चेतन वस्तु को अपने प्रतिबिम्ब मे से देखते है, इसी लिए अपने आन्तरिक विचार तथा कार्यशक्ति का विस्तार हमे सर्वशक्तिमान तथा पूर्ण एव स्वतन्त्र इरादे (निश्चय, विश्वास) के महान स्रोत का ज्ञान देता है।

गुरबाणी मे मे परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध करने का यह एक प्रकार का प्रमाण या प्रयत्न है। तुच्छ मानवीय अपत्व से सर्वव्यापक महान ईश्वरीय अपनत्व का ज्ञान। यह पुरातन 'Ontologial Procf' यथार्थवादी मत नही है यथार्थ तुच्छ अपनत्व से यथाथ महान् अपनत्व

का पता लगाना। परन्तु इस मत मे इस सिद्धात को लिया जा सकता है। यथार्थवाद का यह एक स्वरूप हो सकता है क्योकि यह मत पश्चिमी दार्शनिक एनसलम, डेकारट, सपिनोजा, लाइबनिज, काट तथा हेगल आदि ने भिन्न-भिन्न रूपो मे बताया है। ऊपर के तर्क की एक अन्य ईश्वर-अस्तित्व सिद्धि के लिए प्रयुक्त तर्क से भी तुलना की जा सकती है। वह इतिहासवादी मत है। इस मत के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि-रचना अथवा मनुष्य रचना के आरम्भ मे ही मनुष्य के मन मे सर्वशक्तिमान अकाल पुरुष के अस्तित्व के निश्चय को उत्पन्न कर दिया था। चाहे कोई कितनी नास्तिकता का प्रदर्शन करे परन्तु फिर भी यह आदि निश्चय को जड मानव मन से जाती नही है। परन्तु गुरबाणी मे बताया गया उक्त विचार थोडा अन्य प्रकार का है। आदि मे अकाल पुरुष ने अपने से ही एक अश अलग करके जीवात्मा के रूप मे पैदा किया, या कहे अकालपुरुष ने अपने आपको पनपाया, प्रसारित किया तो यह ससार तथा जीवात्मा बने। यह अश, चिगारी या तत्व सदा अपने विकास, स्रोत या स्वरूप को ओर आकर्षित रहता है। इसी आकर्षण से अकाल पुरुष का ज्ञान तथा अनुभव उत्पन्न होता है।

यह ऊपर वाला तर्क जो हमने गुरबाणी से निकाला है, यद्यपि अद्वैतवादी मत की ही झलक है, परन्तु इससे यह सिद्ध नही होता कि जीवात्मा परमात्मा है या जीव-ब्रह्म है। जीवित भाव मे जीव तथा ब्रह्म एक नही है। इस अन्तर का स्पष्टीकरण हमे भली भाँति तब होता है जबकि हम गुरबाणी मे से उस विचार को खोजते है जिसके अनुसार अकाल पुरुष सृष्टि का रचने वाला कर्ता भी है।

१ੴ वाहिगुरु को जब गुरु साहिब सतिनाम'' सब मे रमा हुआ तत्त सत्त कहते है तो साथ ही उसे वे 'कर्ता' भी बनाते है। भाव यह कि वह है' और साथ ही वह सृष्टि का 'कर्ता' भी है। यह एक नया तर्क है। यह सृष्टि जो हम देखते है यह किस प्रकार अस्तित्व मे आई। यह आदि से ही इसी प्रकार है या इसे कोई रचने वाला भी है? बस इसी प्रश्न का उत्तर है रचनहार वाहिगुरु का प्रमाण। सृष्टि कर्म है, रचना है। इस कर्म का 'कर्ता' या रचना का रचने

परमाणु नही है। भाव यह कि जीव छोटे परमाणु है और परमात्मा एक बडा परमाणु है। यह अनेकवाद है। गुरु साहिब का मत एकवाद था। एक अकाल पुरुष सत्य है और जीव आत्माए उसी का अग है। इसीलिए (अग) तत्व से सम्पूर्ण की लभक पड सकती है, भाव यह कि जीव आत्मा के अस्तित्व से परमात्मा के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। गुरु साहिब इस बात पर तर्क करते है कि हम परमात्मा को अपनत्व के बिना अन्य साधनो तथा वस्तुओ द्वारा जान सकते यदि वह हमारे अपनत्व का ही महान् स्वरूप न होता। इसलिए जब हमारे अपनत्व ने ही अपने महान स्वरूप को जानना हो तो फिर अपनत्व के बिना किसी अन्य साधन या प्रमाण की क्या आवश्यकता ?

गउडी सुखमनी म ५ (पृष्ठ २६४)
तिस ते भिन्न नही को ठाउ।

. .. ..

ताकी गति मिति कही न जाइ।
दूसर होइ त सोभी पाइ।
बिलावल महला ३ (पृष्ठ ७६७)
अतुल किउ तोलिया जाइ।
दूजा होइ त सोभी पाइ।
तिस ते दूजा नाही कोइ।
तिस दी कीमति किकू होइ।

अपनत्व नाम है चेतन सत्ता का, शुद्ध अह का तथा विचारो के कारण का। हम मे प्रत्येक वस्तु को जीवित रूप मे देखने का प्राकृतिक स्वभाव है। हम मनुष्य है और प्रत्येक जड चेतन वस्तु को अपने प्रतिबिम्ब मे से देखते है, इसी लिए अपने आन्तरिक विचार तथा कार्यशक्ति का विस्तार हमे सर्वशक्तिमान तथा पूर्ण एव स्वतन्त्र इरादे (निश्चय, विश्वास) के महान स्रोत का ज्ञान देता है।

गुरबाणी मे से परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध करने का यह एक प्रकार का प्रमाण या प्रयत्न है। तुच्छ मानवीय अपत्व से सर्वव्यापक महान ईश्वरीय अपनत्व का ज्ञान। यह पुरातन 'Ontologial Procf' यथार्थवादी मत नही है यथार्थ तुच्छ अपनत्व से यथार्थ महान् अपनत्व

का पता लगाना। परन्तु इस मत मे इस सिद्धात को लिया जा सकता है। यथार्थवाद का यह एक स्वरूप हो सकता है क्योंकि यह मत पश्चिमी दार्शनिक एनसलम, डेकारट, सपिनोजा, लाइबनिज़, काट तथा हेगल आदि ने भिन्न-भिन्न रूपो मे बताया है। ऊपर के तर्क की एक अन्य ईश्वर-अस्तित्व सिद्धि के लिए प्रयुक्त तर्क से भी तुलना की जा सकती है। वह इतिहासवादी मत हैं। इस मत के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि-रचना अथवा मनुष्य रचना के आरम्भ मे ही मनुष्य के मन मे सर्वशक्तिमान अकाल पुरुष के अस्तित्व के निश्चय को उत्पन्न कर दिया था। चाहे कोई कितनी नास्तिकता का प्रदर्शन करे परन्त फिर भी यह आदि निश्चय को जड मानव मन से जाती नही है। परन्तु गुरबाणी मे बताया गया उक्त विचार थोडा अन्य प्रकार का है। आदि मे अकाल पुरुष ने अपने से ही एक अश अलग करके जीवात्मा के रूप मे पैदा किया, या कहे अकालपुरुष ने अपने आपको पनपाया, प्रसारित किया तो यह ससार तथा जीवात्मा बने। यह अश, चिगारी या तत्व सदा अपने विकास, स्रोत या स्वरूप को ओर आकर्षित रहता है। इसी आकर्षण से अकाल पुरुष का ज्ञान तथा अनुभव उत्पन्न होता है।

यह ऊपर वाला तर्क जो हमने गुरबाणी से निकाला है, यद्यपि अद्वैतवादी मत की ही झलक है, परन्तु इससे यह सिद्ध नही होता कि जीवात्मा परमात्मा है या जीव-ब्रह्म है। जीवित भाव मे जीव तथा ब्रह्म एक नही है। इस अन्तर का स्पष्टीकरण हमे भली भांति तब होता है जबकि हम गुरबाणी मे से उस विचार को खोजते हैं जिसके अनुसार अकाल पुरुष सृष्टि का रचने वाला कर्ता भी है।

१ਓ वाहिगुरु को जब गुरु साहिब सतिनाम" सब मे रमा हुआ तत्त सत्त कहते है तो साथ ही उसे वे 'कर्ता' भी बनाते हैं। भाव यह कि वह है' और साथ ही वह सृष्टि का 'कर्ता' भी है। यह एक नया तर्क है। यह सृष्टि जो हम देखते है यह किस प्रकार अस्तित्व मे आई। यह आदि से ही इसी प्रकार है या इसे कोई रचने वाला भो है? बस इसी प्रश्न का उत्तर है रचनहार वाहिगुरु का प्रमाण। सृष्टि कर्म है, रचना है। इस कर्म का 'कर्ता' या रचना का रचने

वाला अवश्य है। यह तर्क चाहे सृष्टि रचना के विचार से सम्बन्धित है, परन्तु इसका सम्बन्ध भी हमारे अपनत्व से ही है। हमारे अपनत्व से ही यह ईश्वरीय भाव उत्पन्न होता है। हमारा अस्तित्व या हस्ती ईश्वरीय भाव मे स्थित है। मनुष्य चलता है, खाता पीता है, पुस्तक लिखता है, बाग लगाता है, बरतन घडता है, मकान बनाता है। यह ससार भी तो किसी ने बनाया होगा। मनुष्य बहुत अल्पज्ञ है, बलहीन तथा कमजोर है। यह सृष्टि का स्रष्टा नही हो सकता परन्तु कोई न कोई तो अवश्य होगा। वह ईश्वर परमात्मा है।

गुरु साहिब जब कभी सृष्टि तथा ब्रह्माण्ड की ओर ध्यान देते हैं तो उन्हे सदा इसके कर्ता का ध्यान आता है। इसका स्रष्टा अवश्य बुद्धिमान, प्रवीण तथा चतुर होगा। इस ससार की प्रत्येक बात मे कोई न कोई गहरा दैवी भेद है, कोई न कोई प्रयोजन प्रतीत होता है। कोई न कोई इस सृष्टि रचना का 'फाइनल काज' अन्तिम उददेश्य अवश्य होगा। यह प्रयोजन अभिप्राय या हिकमत सृष्टि को रचने वाले की ही हो सकती है। ससार की किसी वस्तु की ओर देखो कोई भी बिना हिकमत के नही है, प्रत्येक के उत्पन्न करने मे 'योजना' अथवा 'परपज' कोई ढग या लक्ष्य अवश्य है। फिर इस लक्ष्य वाला कौन है? इसका 'पलैनर' 'डीजाइनर' कौन है? वह अकाल पुरुष स्वय बडा कलाकार, श्रेष्ठ आर्टिस्ट है।

उइ जु दीसै अम्बर तारे, किन उह चीते चीतन हारे?

इस सुन्दर ससार का स्रष्टा 'कलाकार' ही नही है अपितु बडा सुघड तथा बुद्धिमान भी है। देखो न बच्चे का हाल! जितनी देर तक दात नही होते माँ की छाती को प्रकृति दूध से भरती है ताकि बच्चा पीकर भूख की निवृत्ति कर सके। फिर दूध सूखता है तो दात आ जाते हैं ताकि रोटी आदि खा सके। बात क्या "सैल पत्थर माहि जत उपाय, ताका रिजक आगै कर धरिया।" ईश्वर के अस्तित्व का इससे सुन्दर तर्क क्या हो सकता है?

इससे भी बडी और महत्वपूर्ण दलील सिक्ख धर्म मे ईश्वर के अस्तित्व के हित मे सिक्खी जीवन के विचार से है। गुरु सज्जन अपने जीवन को सदाचारी रूप मे पूर्ण और धार्मिक रूप मे ईश्वरीय साचे

के अनुरूप बनाना चाहता है इसलिए आवश्यक है कि वह पूर्ण सदाचार तथा सम्पूर्ण जीवन का दान जीवनदाता तथा सदाचार के स्रोत वाहिगुरु अकाल पुरुष से माँगे। अकाल पुरुष, परमानन्द, निर्भीक, निरवैर तथा गुरप्रसादि है। वह समस्त स्वच्छ सदाचार का हमातन स्वरूप है। मनुष्य मे सदाचार का विचार या सदाचारी बनने की इच्छा और किसी ओर से नही आ सकती सिवाय वाहिगरु अकाल पुरुष के। दार्शनिक काट ने कहा था कि सदाचारी जीवन धारण करने के लिए दो निश्चय आवश्यक हैं अकाल पुरुष एव मृत्यु के पश्चात जीवात्मा का स्थित रहना। इन दो निश्चयो के बिना सदाचारी जीवन सारहीन एव डगमग रहता है। इसी प्रकार सदाचारी परमेश्वर की याद जीव को सदाचारी बनाती है। यह याद ही सगति है, सतसग तथा स्मरण है, यदि वाहिगुरु परमेश्वर आनन्दमय है तो जीव भी आनन्द प्राप्त कर सकता है, यदि वह निर्भीक है तो जीव भी निर्भीक हो सकता है। यदि वह बिना वैर के है तो जीव भी बिना वैर के होगा। इसी निश्चय पर स्मरण तथा भक्ति स्थित हैं।

गउडी महला १ पृष्ठ २२३
सतिगुर सेवे सो जोगी होइ।
भै रचि रहै सु निरभउ होइ॥
जैसा सेवै तैसा होइ ॥८॥७॥

"जैसा सेवै तैसा होइ" स्मरण तथा सतसग की नीव है। यही निश्चय ईश्वर की हस्ती को सिद्ध करने के लिए महान सदाचारवादी तक है। हमारी सदाचारक उलझनो तथा समस्याओ का हल केवल पूर्ण सदाचारी ईश्वर मे है। यदि जीवन का लक्ष्य अकाल पुरुष के चरणो मे निवास करने का है तो जीव को इस योग्य होना चाहिए, भाव सदाचारी गुण धारण करके सदाचारी ईश्वर जैसा होना चाहिए। चाहे वर्तमान मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान यह बताते हैं कि मनुष्य के मन मे जो सदाचारक अनुभूति है यह उन सामाजिक विरोध तथा उलझनो के कारण है, जो मनुष्य जीवन मे बालक आरम्भ से ही देखता आता है और यह सदाचारक अनुभूति हमारे माता-पिता तथा आस-पास की परिस्थितियो से उत्पन्न होती है,

परन्तु इस नियम को उस दृढता, परिपक्वता तथा अडिगता से नही अपनाया जा सकता जिस से एक ईश्वरीय निश्चय तथा उसकी कृपा की आशा रख कर हो सकता है। यह एक प्रवृत्ति हमारे मन मे उत्पन्न हो चुकी है और इस के सहारे धर्म तथा सदाचारी परमेश्वर का अस्तित्व स्थित है।

२ अकाल पुरुष के नाम

श्री आदि ग्रथ तथा दशम ग्रथ मे परमात्मा के नामो को हमने दो बडी श्रेणियो मे बाँटा है — ऐतिहासिक तथा कृत्रिम अथवा सफाती नाम। गुरु साहिब बताते है कि ईश्वर का वास्तविक नाम कोई नही है। उसका निजि नाम केवल उसकी वास्तविकता या अस्तित्व को जताने वाला नाम ही हो सकता है। शेष जितने भी नाम मनुष्य बोली मे प्रयुक्त किए जाते हैं वे सब सफाती अथवा कृत्रिम नाम हैं। परमात्मा के अस्तित्व को बताने वाला नाम केवल 'सतिनाम' है, जिसका भाव सर्वव्यापक सत्यता है। परमात्मा के समीप कोई विशेष शब्द, या नाम कोई विशेष अर्थ नही रखता। नाम तो केवल हार्दिक भावनाओ के लिए चिन्ह है, ये चिन्ह तो वाह्य निशान हैं। ईश्वर हमारे आन्तरिक भावो को तथा हार्दिक स्थिति को अच्छी प्रकार जानता है, वह अन्तर्यामी है। उसको पुकारने या समझाने के लिए किसी विशेष बोली की आवश्यकता नही है। इसी सच्चाई को सम्मुख रख कर ही गुरु साहिब ने ईश्वर के नामो के सम्बन्ध मे कोई विशेष कट्टरता (पक्षपात) नही दिखाई। हिन्दु, मुस्लिम नाम गुरबाणी मे बडे आदर से प्रयुक्त हुए है। एक और बात देखने मे आई है कि जो नाम हिन्दु ग्रथो मे देवताओ के लिए प्रयुक्त किए गए थे वे गुरु साहिब ने एक अकाल पुरुष परमात्मा के लिए प्रयुक्त किए है। इस विषय की ओर पहले भी सकेत हो चुका है। हजरत मुहम्मद साहिब ने अल्ला के नाम को इसी प्रकार ही प्रयुक्त किया था। अल्ला पहले एक देवते का नाम था, परन्तु कुरान शरीफ मे

अल्ला एक अकाल पुरुष के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार हिन्दु अवतारो के नाम भी गुरबाणी मे अकाल पुरुष के लिए प्रयुक्त हुए हैं। लिखा है कि एक बार जहागीर वादशाह ने कहा कि हिन्दु जो राम, नारायण, परमब्रह्म तथा परमेश्वर को मानते हैं और मुसलमान जो अल्ला को मानते हैं, इन दो प्रकार की मान्यताओ मे क्या अन्तर है। इसका उत्तर छटे गुरु साहिब ने राग रामकली के नीचे लिखे शवद द्वारा दिया :—

रामकली महला ५ ॥

कारन करन करीम ॥ सरब प्रतिपाल रहीम ॥
अलह अलख अपार ॥ खुदि खुदाइ वड बेसुमार ॥१॥
उनमो भगवत गुसाइ ॥ खालकु रवि रहिआ सरब ठाई ॥ १ ॥
॥ रहाउ ॥

जगन्नाथ जग जीवन माधो ॥ भउ भजन रिद महि अराधो ॥
रिखीकेस गोपाल गोविन्द ॥ पूरन सरबत्र मुकद ॥२॥

मिहरवान मउला तूही एक ॥ पीर पैकाम्बर सेख ॥
दिला का मालकु करे हाकु ॥ कुरान कतेब ते पाकु ॥३॥

नाराइण नरहर दइआल ॥ रमत राम घट घट आधार ॥
बासुदेव बसन सभठाइ ॥ लोला किछु लखो न जाइ ॥४॥
मिहर दइआ करि करनै हार ॥ भगति बन्दगी देहि सिरजणहार ॥
कहु नानक गुरु खोए भरम ॥ एको अलहु पारब्रह्म ॥५॥३४॥४५॥

ऊपर वाले शवद से स्पष्ट प्रकट होता है कि गुरु साहिब के लिए अकाल पुरुष के नामो मे कोई भेद नही था। वे सब एक ही सत्ता के नाम हैं इसलिए 'एको अलहु पारब्रह्म' कहा है। गुरु साहिब साम्प्रदायिक नामो मे भिन्न भेद नही जानते थे। भिन्न २ सम्प्रदायो ने ईश्वर के लिए जो नाम प्रयुक्त किए हैं और जिन्हे गुरु साहिब ने गुरबाणी मे प्रयुक्त किया है, वे तीन भागो मे बाँटे जा सकते है— हिन्दु नाम, मुसलमानी नाम तथा नए नाम।

हिन्दु नाम ये हैं — भगवत, भगवान, विशन या विष्णु, बिशम्भर, ब्रह्म, चक्रधर, चक्रपान, दामोदर, गिरधारी, गोबिन्द, गोपाल, गोपीनाथ, गोवर्धनधारी, गोसाई, हरि, ईश्वर,

केशव, कृष्ण, कान्हा, माधो, मधुसूदन, मुरारो, नारायण, पारब्रह्म, परमेश्वर पीताम्बर प्रभु रघु राय, राम, सारगधर, सावल, श्याम तथा वासुदेव आदि।

मुसलमानी नाम —अल्ला, गनी, हक, कबीर, करीम, खालिक, खुदा, मालिक, निर शरीक, (ला शरीक), पाक, रब्ब, रहीम, रहिमानुल रहीम, राजिक, साहिब*।

नये नाम —चार प्रकार के नाम ऐसे हैं जो गुरबाणी मे प्रयुक्त किए गए है और नए प्रतीत होते हैं।

(क) पहले तो वे नाम है जिनमे ईश्वरीय प्यार को मित्रता एव समानता भाव मे दिखाया है। परमेश्वर को पिता तो देर से लोग मानते आए हैं, परन्तु बराबर का मित्र कम ही किसी ने कहा है। इस भाव की महानता इस बात मे है कि मित्रता के सम्बन्ध मे जीव-ब्रह्म की साँझ बहुत समीप की हो जाती है। अदृश्य डर तथा सहिम निकल कर जीव बिना झिझक के ईश्वर के पास प्यार जोर तथा गौरव से प्रार्थना कर सकता है। इस भाव को स्पष्ट करने वाले नाम है मित्र, मीत, प्रीतम प्यारा, सज्जन तथा यार।

(ख) गुरु साहिब ने अकाल पुरुष की निर्लिप्तता एव उच्चता (Transcendence) के भाव को लिप्तता, सर्वव्यापकता, (Immanure) से जोड कर एक नया विचार प्रस्तुत किया है। दोनो भावो को एक शब्द मे इकट्ठा करना कठिन है, क्योकि दोनो मे यदि भावार्थिक नही तो शाब्दिक विरोध अवश्य है और ये दोनो विचार एक दूसरे से साम्यता नही रखते। गुरबाणी मे अकाल पुरुष को तरुवर, पेड अथवा वृक्ष कह कर बताया गया है। तरुवर या पेड अकाल पुरुष का नाम नही अपितु उसका स्वरूप स्पष्ट करने के लिए एक अलकार है। यह एक दृष्टाँत है। ईश्वर की लिप्तता निर्लिप्त को निर्गुणता सगुणता को (Transcendence and Immanence) तरुवर के रूप मे बताया है। इस भाव का विस्तार पूर्वक विचार हम फिर करेंगे, इस समय इतना ही जान लेना पर्याप्त है। परमेश्वर को तरुवररूप मे बताना एक नया विचार है।

---

* अन्तिका मे गुरबाणी की वे पक्तिया भी दी गई हैं, जिन मे ये नाम प्रयुक्त हुये हैं।

(ग) श्री दशमेश जी ने अकाल पुरुष के लिए कुछ ऐसे भी कृत्रिम नाम प्रयुक्त किए हैं जिन से वीर रस का भाव प्रकट होता है। यह एक प्रकार से रणभूमिता का भाव प्रकट करते है। ये योद्धा, महाबलि शूरवीरो के लिए आवश्यक है और ऐसे नाम ईश्वर को महान् योद्धा एव प्रबल शक्ति के ही द्योतक है। ये नाम है — असिकेतु, असिपान, खडगकेत, महाकाल तथा सर्वलोह। इस श्रेणी मे और भी अनेक नाम हैं जो दशमेश पिता जी ने अकाल उसतत तथा जापु साहिब आदि बाणियो मे परमात्मा के लिए प्रयुक्त किए है। इन की पूर्ण सूचि अन्तिका मे देने का यत्न किया जायेगा।

(घ) गुरबाणी मे कुछ नाम ऐसे भी हैं जिन से अकाल पुरुष की असम्प्रदायिकता प्रतीत होती है। भाव यह कि वह सभी धर्मों तथा मत-मतान्तरो से ऊपर एव स्वतन्त्र है। यद्यपि लगभग सारे ही धर्मो वाले परमात्मा की सर्वव्यापकता और सर्वसाम्यता का होना सिद्ध करते हैं और इस बात पर जोर देते है कि समस्त मनुष्यो, जीव-जन्तुओ का ईश्वर एक ही है। परन्तु फिर भी दलबन्दी के जोर मे वे इतने सकुचित हो जाते हैं कि वे इस निश्चय को पक्का कर लेते हैं कि जितनी देर कोई मनुष्य उस विशेष धर्म को धारण न करेगा उसकी मुक्ति अथवा स्वाधीनता नही हो सकती। मुसलमान कहता है कि केवल मुसलमान अथवा मोमन ही मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे, ईसाई कहता है कि हजरत ईसा पर विश्वास रखने वाले ही बच सकेंगे। इस तरीके से वे ईश्वर को एक प्रकार से खरीद लेते हैं और दूसरो का अधिकार उस पर नही समझते। केवल उस धर्म मे आए विशेष नाम से याद करने के बिना परमात्मा की कृपा का भागी होना इस विचार से असम्भव बन जाता है। इस प्रकार से ये साम्प्रदायिक नामो का झमेला (समस्या) सासारिक जीवो मे पडा हुआ है। गुरु साहिब ने इस मानसिक सकुचिता को बुरा समझा और इस बात का डका वजाया कि ईश्वर 'अधर्म' है 'अमजहब' है। वह न मुसलमान है न ईसाई और न हिन्दु है तथा न वहाई। वह 'मजहब रहित है।

साम्प्रदायिकता का झगडा उन्होने यह कहकर बिल्कुल ही समाप्त कर दिया कि ईश्वर का कोई नाम ही नही है। उसे कोई नाम देना, मनुष्य का ढकोसला है। सब नाम कृत्रिम हैं और मनुष्य रचित

है। इसीलिए वाहिगुरु 'अनाम' है, नाम से रहित है। यह भी एक नया, बहुत नया विचार है।

'वाहिगुरु' एक ऐसा नाम है जिसे सिक्ख विशेष महत्ता मोह एव प्यार से प्रयुक्त करते हैं। जिस प्रकार मुसलमानो के लिए अल्ला, हिन्दुओ के लिए रामजी, हरिकृष्ण तथा यहूदियो के लिए जाहवे, इसी प्रकार सिक्खो के लिए वाहिगुरु समझा जाता है खालसा सजाए जाने के पश्चात् वाहिगुरु सिक्खो के लिए चाहे उसी प्रकार ईश्वर का साम्प्रदायिक नाम बन गया है जिस प्रकार कि मुसलमानो के लिए अल्ला आदि हैं। गुरु साहिब का शायद यह भाव नही था। वे सिक्खो के लिए कोई नया नाम मन्त्र-भावना के विचार से घडना नही चाहते थे। यह बात ठीक है कि सिक्खो के लिए वाहिगुरु पद का जाप आवश्यक है, परन्तु इससे भाव यह है कि गुर सिक्ख अकाल पुरुष के अस्तित्व को, उसकी सत्ता को, उसकी सत्य नामता को पहाडो तथा समुन्दरो, आकाशो से लेकर रेत के कणो तथा छोटे छोटे परमाणुओ मे अनुभव करे। अनुभव' करना बहुत आवश्यक है, किसी शब्द का रट लेना इतना आवश्यक नही। जब कोई सिक्ख अकाल पुरुष को आश्चर्य-मयता को प्रकृति मे देखेगा तो विस्माद मे आयेगा, उस पर वाहु-वाहु की स्थिति तारी हो जायगी तथा उस का रग-रग (लू, लू) वाहिगुरु वाहिगुरु पुकारेगा। अभिप्राय यह है कि वाहिगुरु मन की विस्मादी अवस्था का अन्तिम चिन्ह है, यह आन्तरिक वाहु दृष्टि का बाह्य चमत्कार है। यह कोई सज्ञक नाम अल्ला राम की भाति नही है। यह दशा अरब के रहने वाले सिक्ख पर तारी होगी तो वह अपनी बोली मे 'सुब्हान अल्ला' पुकारेगा। यह दशा एक अग्रेज सिक्ख पर काबु पायेगी तो वह 'वडरफुल लार्ड' का अलाप करेगा। वाहिगुरु कोई अक्षरी मन्त्र नही है। पजाबी सिक्ख के लिए वाहिगुरु, अग्रेज सिक्ख के लिए 'वडरफुल लार्ड' एक ही अर्थ रखते हैं। नाम आन्तरिक मानसिक अवस्था के आदान-प्रदान का नाम है यह किसी अक्षर का तोते की भान्ति रटना नही है। यह एक बहुत नया विचार और इस विचार के सहारे स्थित हुआ बहुत निराला मत और इस मत का बहुत विलक्षण दर्शन है। पहले किसी मत मे विस्माद तथा सौन्दर्य भाव महत्वपूर्ण तत्व नही बने थे, परन्तु गुरु साहिब के मत का मूल

ही 'वाहु वाहु' है, वह विस्मादी मानसिक रुचि है। इसलिए वाहिगुरु एक बिल्कुल नया शब्द है जो गुरसिक्ख की आन्तरिक दशा को जताने वाला है और वाहिगुरु की पृष्ठभूमि मे एक बिल्कुल नया दर्शन है जो गुरु साहिब ने ससार मे प्रस्तुत किया।

नौवां अध्याय

अकाल पुरुष के कृत्रिम नाम

१ कृत्रिम नामो का विभाजन

साधारण बोली मे ईश्वर के लिए मनुष्य जो नाम भी प्रयुक्त करता है वे सब कृत्रिम होते है, भाव ऐसे होते है जो कि परमात्मा के किसी न किसी गुण के द्योतक होते है। इससे पहले अध्याय मे जो नाम 'ऐतिहासिक' कह कर बताए हैं वे भी कृत्रिम हो है। हमने उन्हे ऐतिहासिक इसलिए कहा है कि ससार के धर्मो के इतिहास मे वे किसी न किसी धर्म ने विशेष अर्थो मे प्रयुक्त किए थे। अगले पृष्ठो मे उन नामो पर हम फिर विचार करेगे, क्योकि अब हमने यह देखना है कि इन से अकाल पुरुष के सम्बन्ध मे हम क्या कुछ जान सकते हैं। जपुजी साहिब मे गुरु साहिब ने बताया है कि परमात्मा के ऐसे कृत्रिम नाम असख्य और अनेक है। जब से सृष्टि बनी है मनष्यो तथा जीवो ने परमात्मा मे अनेक गुण देखे और उन्हे नामो के रूप मे बताने का यत्न किया। ये तो गुण है, जिनका भी अन्त नही, परन्तु अनेक ऐसे भाव है जो मनुष्यो के मन मे ही ईश्वर के सम्बन्ध मे उठ कर रह जाते हैं। वे अक्षरो की पोशाक नही पहनते, इसलिए नामो का रूप धारण नही करते —

अन्तु न सिफती कहणि न अन्तु ॥
अन्तु न जापै किया मनि मन्तु ॥

जो व्यक्ति ईश्वरीय गुणो का अन्त प्राप्त करना चाहते हैं, वे भी अनेक हैं।

अन्त कारणि केते बिललाहि ॥
ताके अन्त न पाय जाहि ॥

ऐसे नामो के द्वारा ईश्वर के गुणो का अंत प्राप्त करना असम्भव है। चाहे सात समुन्दरो का पानी स्याही बन जाए और समस्त वनस्पति की लेखनिया बना ली जाए और समस्त पृथ्वी को कागज बना कर हरि का यश लिखने लगें तो भी ईश्वर के सारे गुण नही कहे जा सकते। भले हो यह कथन काव्यमय है, परन्तु यह कोई भ्रांति या असत्य नही है। अभिप्राय यह है कि मनुष्य अकाल पुरुष को पूर्ण रूपेण नही जान सकता। उसे अच्छी तरह वह जाने जो उसके बराबर या उससे बडा हो।

एवड ऊचा होवै कोइ ।। तिस ऊचे काउ जाणै सोइ ।।

मनुष्य अपनी सीमा से बाहर नही जा सकता और ईश्वर मनुष्य के प्रत्येक अनुभव तथा कल्पना से बाहर है, इसलिए एक सीमित वस्तु असीम को और एक रचित रचयिता को कैसे जान सकते है।

मनुष्य ने ईश्वर के जो भी नाम रखे हैं, उनसे मानव-दृष्टिकोण से ज्ञान अवश्य होता है। इसीलिए गुरबाणी मे आए ईश्वरीय नामो को खोजना लाभदायक है। इन नामो की खोज का सरल तरीका यह है, कि इन नामो का खोज का वर्गीकरण करके भिन्न-भिन्न भावो वाले नामो को भिन्न-भिन्न शीर्षको के नीचे इकट्ठा किया जाए। इन नामो का वर्गीकरण (Classification) कई प्रकार से किया जा सकता है। मुसलमानी साहित्य मे दो बडे विचार प्रचलित रहे हैं। अकाल पुरुष के अस्तित्व का कोई और भिन्न चिन्ह द्योतक नही हो सकता। उसे हम इतना कह सकते है कि वह 'सत्य' है और सभी जगह विराजमान है, अर्थात् 'सतिनाम' है। मुसलमानी साहित्य मे वसल इब्नुलअता तथा उसके सहयोगी (अनुयायी) मुतज्ज़लियाँ ने इस भाव को 'जात' कह कर प्रकट किया था। उन्होने कहा वास्तविक वस्तु ज़ात है। गुरु साहिब ने इस विचार को 'सतिनाम' कह कर अथवा 'अनाम' से बताया है। इमाम गिजाली का मत था कि ज़ात हमारी सूझ से दूर है, इसलिए हमारे लिए ईश्वर है तो गुणो मे है। ज़ात के स्थान पर वह गुण को मानता था, अर्थात् निर्गुण की अपेक्षा सगुण को, गिज़ाली सगुण का उपासक था और मुतअज्ज़ली निर्गुण के। गुरु साहिब का मत

यह है कि निर्गुण ब्रह्म अपनी इच्छानुसार सगुण हो जाता है और सगुण भाव मे मनुष्य तथा अन्य समस्त ससार ब्रह्म मे ही है। गुरु जी जात और गुण दोनो को मानने थे। मनुष्य सगुण रूप मे ईश्वरीय अश है, इसलिए इसके समस्त भाव और ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुए नाम कृत्रिम नाम हैं, कृत्रिम अथवा सगुण भाव को प्रकट करते हैं। मुसलमानी साहित्य मे इन गुणो को सात मुख्य भागो मे विभक्त करते हैं, वे ये हैं —

हयात, इलम कुदरत, इरादा, सम्हा (सुनना), बसर (देखना), कलाम, (बोलना) अथवा जीवन, ज्ञान, शक्ति, हुक्म (इच्छा), श्रवण, दृष्टि, वाक।

इस विभाजन को गम्भीरता से देखने से प्रतीत होगा कि ये गुण सभी मनुष्य-नुमा हैं। मानव शक्तियो को ही ईश्वर मे देखा है, या ईश्वर को पुरुष का स्वरूप देने का यत्न किया है। हमने नीचे जो सफातो अथवा कृत्रिम नामो का विभाजन किया है, वह प्रसिद्ध धार्मिक दार्शनिक नियमो के अधार पर है। यह विभाजन कोई इतनी स्थायी नही है। कई गुण एक से अधिक भागो मे लिखे जा सकते हैं और न ही यह विभाजन सम्पूर्ण होने का दावा रखता है। गुरबाणी मे आए नामो को समझने के लिए एक स्थायी विभाजन की योजना बनाई गई है। यदि इस योजना को समूचे तौर पर एक स्थान पर लिखना हो तो नीचे लिखे क्रम के अनुसार इसकी धारायें होगी —

१ पहली धारा मे वे नाम हैं जो ईश्वर सम्बन्धी केवल एकता या अनेकता मे एकता आदि के भाव प्रकट करते है।

२ दूसरी धारा मे वे नाम हैं जो ईश्वर का सृष्टि से सम्बन्ध बताते हैं। भाव यह कि मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा ससार को किसी न किसी रूप मे अधूरा या पूरा जानता है। उस मानव ज्ञान मे आए ससार से मनुष्य अपने ईश्वर को किसी न किसी रूप मे सम्बन्धित करता है। इस सम्बन्ध के सूचक नाम बहुत हैं।

(क) पहला सम्बन्ध सृष्टि रचना का है।

(ख) सृष्टि को रच कर भी करतार स्वय सृष्टि से अलग रहता है या बीच मे हो, या अलग भी बीच मे भी। भाव टरासडट है कि इमेनेंट कि दोनो ही।

३ परम सत्यवादी नाम (Metaphysical Attributes)

(क) यह विचार बताने वाले नाम कि परमात्मा मानव ज्ञान का विषय नही है।

(ख) यह विचार बताने वाले कि परमात्मा का सम्पूर्ण ज्ञान तो असम्भव है परन्तु मानव सीमाओ के बीच वोच कुछ थोडा ज्ञान अवश्य प्राप्त है।

१ जितना कुछ ज्ञान सम्भव है वह बुद्धि के सहारे है कि अनुभव के सहारे ?

२ अकाल पुरुष सम्बन्धो ज्ञान का आरम्भ उसकी सत्यता से है।

३ यह सत्य हस्ती चेतन है, इसलिए मानव गुण रखती है।

(क) आकार है कि निराकर ? (निराकार चेतनता भी सम्भव है)

(ख) सज्ञात कि अज्ञात ? (कई पशु और कृमि चेतन है परन्तु मानव-स्तर का ज्ञान नही रखते)

(ग) क्या अकाल पुरुष की हस्तो स्थूल-तत्व है कि सूक्ष्म-तत्व ?

(घ) क्या यह हस्तो ममय के लेश मे है ?

(च) क्या यह हस्ती देश (space) की सीमा के गुण रखती है ? विशेष देश-काल आदि तक व्यापक है कि सर्व देश व्यापक ?

४ क्या यह हस्तो सर्व शक्तिमान है ?

५ क्या यह हस्तो त्रिकाल दर्शी है ?

४ सदाचारी गुण।

५ सौन्दर्य गुण।

६ राजसो तथा वीर रस के गुण।

अगले पृष्ठो मे ऊपर लिखे गुणो के सम्बन्ध मे सक्षिप्त विचार किया जाएगा।

यह है कि निर्गुण ब्रह्म अपनी इच्छानुसार सगुण हो जाता है और सगुण भाव मे मनष्य तथा अन्य समस्त ससार ब्रह्म मे ही है। गुरु जी जात और गुण दोनो को मानने थे। मनुष्य सगुण रूप मे ईश्वरीय अश है, इसलिए इसके समस्त भाव और ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुए नाम कृत्रिम नाम हैं, कृत्रिम अथवा सगुण भाव को प्रकट करते हैं। मुसलमानी साहित्य मे इन गुणो को सात मुख्य भागो में विभक्त करते हैं, वे ये हैं —

हयात, इलम, कुदरत, इरादा, सम्हा (सुनना), बसर (देखना), कलाम, (बोलना) अथवा जीवन, ज्ञान, शक्ति, हुक्म (इच्छा), श्रवण, दृष्टि, वाक।

इस विभाजन को गम्भीरता से देखने से प्रतीत होगा कि ये गुण सभी मनुष्य-नुमा है। मानव शक्तियो को ही ईश्वर मे देखा है, या ईश्वर को पुरुष का स्वरूप देने का यत्न किया है। हमने नीचे जो सफाती अथवा कृत्रिम नामो का विभाजन किया है, वह प्रसिद्ध धार्मिक दार्शनिक नियमो के अधार पर है। यह विभाजन कोई इतनी स्थायी नही है। कई गुण एक से अधिक भागो मे लिखे जा सकते हैं और न ही यह विभाजन सम्पूर्ण होने का दावा रखता है। गुरबाणी मे आए नामो को समझने के लिए एक स्थायी विभाजन की योजना बनाई गई है। यदि इस योजना को समूचे तौर पर एक स्थान पर लिखना हो तो नीचे लिखे क्रम के अनुसार इसकी धारायें होगी —

१ पहली धारा मे वे नाम है जो ईश्वर सम्बन्धी केवल एकता या अनेकता मे एकता आदि के भाव प्रकट करते है।

२ दूसरी धारा मे वे नाम हैं जो ईश्वर का सृष्टि से सम्बन्ध बताते हैं। भाव यह कि मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा ससार को किसी न किसी रूप मे अधूरा या पूरा जानता है। उस मानव ज्ञान मे आए ससार से मनुष्य अपने ईश्वर को किसी न किसी रूप मे सम्बन्धित करता है। इस सम्बन्ध के सूचक नाम बहुत हैं।

(क) पहला सम्बन्ध सृष्टि रचना का है।

(ख) सृष्टि को रच कर भी करतार स्वय सृष्टि से अलग रहता है या बीच मे हो, या अलग भी बीच मे भी। भाव टरासडट है कि इमेनेंट कि दोनो ही।

३ परम सत्यवादी नाम (Metaphysical Attributes)

(क) यह विचार बताने वाले नाम कि परमात्मा मानव ज्ञान का विषय नही है।

(ख) यह विचार बताने वाले कि परमात्मा का सम्पूर्ण ज्ञान तो असम्भव है परन्तु मानव सीमाओ के बीच बीच कुछ थोडा ज्ञान अवश्य प्राप्त है।

१ जितना कुछ ज्ञान सम्भव है वह बुद्धि के सहारे है कि अनुभव के सहारे ?

२ अकाल पुरुष सम्बन्धी ज्ञान का आरम्भ उसकी सत्यता से है।

३ यह सत्य हस्ती चेतन है, इसलिए मानव गुण रखती है।

(क) आकार है कि निराकर ? (निराकार चेतनता भी सम्भव है)

(ख) सज्ञात कि अज्ञात ? (कई पशु और कृमि चेतन हैं परन्तु मानव-स्तर का ज्ञान नही रखते)

(ग) क्या अकाल पुरुष की हस्ती स्थूल-तत्व है कि सूक्ष्म-तत्व ?

(घ) क्या यह हस्ती समय के लेश मे है ?

(च) क्या यह हस्ती देश (space) की सीमा के गुण रखती है ? विशेष देश-काल आदि तक व्यापक है कि सर्व देश व्यापक ?

४ क्या यह हस्ती सर्व शक्तिमान है ?

५ क्या यह हस्ती त्रिकाल दर्शी है ?

४ सदाचारी गुण।

५ सौन्दर्य गुण।

६ राजसी तथा वीर रस के गुण।

अगले पृष्ठो मे ऊपर लिखे गुणो के सम्बन्ध मे सक्षिप्त विचार किया जाएगा।

२ एकता–अनेकता

अकाल पुरुप की हस्तो (शक्ति) के सम्बन्ध मे मनुष्य के निश्चय के इतिहास को खोजने से दो मत ऊपर उठ कर (उभर कर) हमारे सामने आते है। एक तो है प्रकृति से परमेश्वर तक पहुचना अथवा सृष्टि से स्रष्टा का निश्चय होना, कारण-कार्य के आधार से नही वरम् अनेकता मे से एकता की झलक लेने से। दूसरा मत है कि पूर्वजो अथवा बडो को पूजा का भाव शनै शनै होता हुआ एक ईश्वर की पूजा की ओर ले आता है।

पूर्वीय तथा भारतोय विद्वान तो पहले मत के पक्ष मे है और पश्चिमी दूसरे मत के पक्ष मे। भारतोय शोधकर्ता कहते हैं कि मनुष्य ने पहले पहले प्राकृतिक वस्तुओ की पूजा आरम्भ की। सर राधा कृष्णन लिखते है — प्राचीन आर्य लोगो ने चन्द्रमा, तारे, समुद्र, आकाश, उषा और सध्या आदि को शक्तिशाली जान कर देवी देवते बना कर पूजा। आर्य लोगो का यह सबसे पुराना तथा प्रारम्भिक धर्म है, अथवा वैदिक धर्म का यह सबसे पहला स्वरूप है (इण्डियन फिलासफी पृष्ठ ७३)। इस प्रकार प्राकृतिक शक्तिया देवता स्वरूप हो गई और बहु-देव (ईश्वर) पूजा आरम्भ हो गई। आदि मे ईश्वर अनेक थे, एक नही था। पितृ पूजा तथा पूर्वजो के सत्कार से ईश्वर को खोज करने वाले प्रकृति पूजा के विचार को ईश्वर-पूजा का आरम्भ समझने से इन्कार करते है। प्रिंगल पैटीसन लिखता है कि "कई वर्तमान विद्वानो का यह विचार है कि प्रकृति की महान तथा प्रभावशाली वस्तुओ ने मनुष्य को अपने से बडी हस्ती या हस्तियो का विचार उत्पन्न किया और इन वस्तुओ की ही पूजा आरम्भ हो गई। हमारे वर्तमान धर्मो की महान् ईश्वरीय हस्ती को इस विचार के अनुसार चन्द्रमा, सूर्य तथा हवा पानी के प्यार एव सत्कारपूर्ण भावना मे से इन विद्वानो ने उत्पन्न किया है। ऐसे विद्वानो के ये सब यत्न निष्फल हो रहे है। इस समस्त खोज पर इनका लगाया हुआ समय एव परिश्रम व्यर्थ हो गए हैं। इस निश्चय का आधार ही गलत था। इस निश्चय के साथ साथ इतना ही प्रबल और बहुत सीमा तक उचित एक अन्य निश्चय भी है, वह है हम

से विछुडी रूहो (आत्माओ) का आकाश मे जाकर निवास करना। इन आत्माओ का प्राचीन लोगो ने प्यार एव सत्कार किया। इनमे से कबीले के मुखिया की, नेता या उस वृद्ध की रूह जिसने अपने जीवन मे कबीले की सहायता की थी, सेवा करके उसे उन्नति के पथ की ओर अग्रसर किया था, उसकी सुघडता तथा सभ्यता को सवारा था, शेष आत्माओ से बडी समझी जाने लगी। इसी बडी आत्मा से ही शनै शनै एक ईश्वरीय विचार उत्पन्न हो गया होगा। इसलिए ईश्वरीय हस्तो के निश्चय के आरम्भ को प्राकृतिक-शक्तियो मे जीवन डाल कर जोडना अवाछनीय है।" इस विचार पर भी यदि ईश्वरीय निश्चय निर्भर कहे तो भी आरम्भ अधिकतर (बहु) ईश्वरो से ही हुआ होगा, क्योकि प्रत्येक कबीले ने अपने अपने पूर्वजो की रूह को ऊचा किया और अपनाया होगा।

हमारा यहा इन दोनो मतो के सत्य असत्य होने पर वाद-विवाद करने का अभिप्राय नही है। सम्भव है कि दोनो विचार ही ठीक हो। पश्चिम विचार के विकास ने ईश्वर को आकाशो मे बिठा कर 'ट्रासेडेंट' ऊचे मे ऊचा' बना दिया और पूर्वी विचारो ने 'इमानेंट' करके जीव-जगत ब्रह्म की अभेदता बताई। इसलिए दोनो ही विचार ठीक प्रतीत होते हैं और गुरु साहिब ने दोनो विचारो से लगे फलो को सम्भाल लिया। ईश्वरीय निश्चय का आरम्भ चाहे प्राकृतिक पूजा से हुआ और चाहे पितृ पूजा से, परन्तु यह बात निश्चित है कि शुरु शुरु मे अनेक-ईश्वर विचार था, एक ईश्वरीय विचार कई सहस्र वर्ष पीछे अस्तित्व मे आया।

मनुष्य ने जब देखा कि प्राकृतिक शक्ति दूसरो से अधिक शक्तिशाली है, पानी पृथ्वी को सजीव करता है, पृथ्वी को खार लेता है, अग्नि या सूर्य पानी को सुखा देता है। इसी साम्यता से उन्होने इन्हे देवता रूप मे भी छोटे बडे करके मान लिया। पानी—देवता से अग्नि—देवता या सूर्य देवता बडा माना गया है। बात क्या इस प्रकार प्रकृति पुजारियो ने देवताओ मे से छोटे बडे देवता बना लिये। दूसरी ओर पितृ पूजा वालो ने भी ऐसा ही किया। एक कबीले के सरदार से दूसरे बडे कबीले का सरदार बलवान देखा तो उन कबीलो के वृद्ध बडे देवताओ को भी उसी प्रकार ही

कमज़ोर और बलवान समझ लिया। छोटे देवताओ को बडे के अधीन करके उसको उनका सरदार बनाया गया। इन सरदारो का एक और बडा सरदार बनाया गया। इन बडो का एक और बडा। अन्त मे सब का एक शिरोमणी अल्ला या ईश्वर हो गया। पहले पहल तो एक बडे ईश्वर के साथ दूसरे देवताओ की हस्ती को भी सहन करते रहे। परन्तु शनै शनै शेष सब देवते घटते घटते दो चार ही रह गए। कई फरिश्ते या आसमानी रूहे बन गई। ईश्वर केवल एक ही एक रह गया, लासानी और लामका।

आर्य तथा शामी लोगो मे एक ईश्वरीय विचार इसी प्रकार हो शनै शनै प्रकट हुआ। भारत मे बहु-देवो के झमेले मे एक परमेश्वर का निश्चय बहुत देर तक स्पष्ट न हो सका। हिन्दु स्वभाव प्राचीन बातो को छोडने मे विशेष सनातनी है। किसी न किसी रूप मे प्राचीन निश्चय हिन्दु पूजा के अग बने रहे है। एक ईश्वरीय निश्चय विशेषतया पश्चिमी देशो मे से ही आया प्रतीत होता है। सबसे पहले मिश्र के शहर तलायमरना के निवासियो ने केवल सूर्य को सबसे बडा जानकर एक ईश्वर के रूप मे पूजना आरम्भ किया। इससे भी बढ कर एक ईश्वरीय विचार ईरान के महापुरुष ज़रतुश्त ने सबसे पहले ससार को दिया। चीनियो का आसमानी ईश्वर भी पुराना एक ईश्वरीय विचार है, परन्तु इस से बहुत अच्छा और स्पष्ट एक ईश्वरीय विचार यहूदी मत ने जाहवे के नाम पर प्रचारित किया इसी विचार को हजरत ईसा और हज़रत मुहम्मद साहिब ने अपनाया। पहिंगल पैंटीसन के कथनानुसार यह यहूदो एक-ईश्वर विचार बहुत स्वच्छ एव ऊच्च अवस्था मे भारत मे सिक्ख धर्म मे प्रकट हुआ।

जिस प्रकार ईश्वरीय विचार के आरम्भ के सम्बन्ध मे विशेष मतभेद हम ऊपर देख आए है, उसी प्रकार इस ईश्वरीय विचार की अन्तिम अवस्था और अन्तिम स्तर भी हमारे वर्तमान धर्मो मे एक नही है। भारतीय विद्वानो का विचार तो यह है कि अकाल पुरुष सम्बन्धी अनेक की अपेक्षा एक और एक भी अभिन्न रूप अथवा अद्वैत स्वरूप मे विचार सबसे ऊचा है। ऐंथरोपालोजी वाले इस बात से भी मतभेद रखते है। उनके विचारानुसार आत्मा या

सर्वात्मवादी मत की नीव जादू टूणे (मन्त्रयोग) और प्रत्येक वस्तु को जीवन देकर उनमे अमर आत्मा देखनी है। जादु-टूणे का भाव तो यह है कि प्राकृतिक पदार्थों मे एक परोक्ष शक्ति है और सब बीमारिया रोग एव क्लेश इसी जड शक्ति के कारण है, इसे 'मजिक' कहते हैं। 'ऐनेमिजम' (Animism) का भाव है कि प्रत्येक पदार्थ मे आत्मा अथवा चेतन सत्ता है। इस जड शक्ति तथा चेतन शक्ति निश्चय ने प्रत्येक वस्तु मे जान डाली। यह जान भूत-प्रेतो के रूप मे आरम्भ हुई। मनुष्य मे बोलने वाली कोई परोक्ष शक्ति है, जीव है या आत्मा है। मरते समय वह शरीर को छोड कर अन्य शरीरो मे अथवा आकाश मे चली जाती है। स्वप्नो का कारण भी रूह (आत्मा) का दूसरे स्थान पर चले जाना बताया जाता था। इसी विचार से ही किसी उच्च रूह मे आवागमन अथवा चौरासी लाख जीवन भोगने का विचार उत्पन्न हुआ होगा। इस आत्मवादी मत को जब सुधारा गया और ऊचा किया गया तो परमात्मा सर्वात्मा तथा अद्वैतमत के स्वरूप उत्पन्न हो गए। बहु-आत्मा के स्थान पर एक आत्मा को सर्वव्यापक मान लिया गया। दृष्टमान (प्रत्यक्ष, चाक्षुष) मिथ्या तथा नाशवान है, बीच मे छिपी वस्तु है वह अमर है तथा अदृष्ट है। पहले यह अमर वस्तु-आत्मा जितने जीव उतनी ही थी परन्तु फिर एकेश्वर विचार की भाति यह भी एक आत्मा का विचार बना तथा शनै शनै यही से ही 'पैथीइजम' ससार प्रकृति को ही एक ईश्वर मान लेने का भाव उत्पन्न हो गया।

ऊपर हमने एक-अनेक ईश्वरीय विचार का आदि अन्त देखा है। यह विचार कई अवस्थाओ मे से गुजरा है। पीलोथीयजिम (बहु-ईश्वर मत), हैनोथीयज़िम (छोटे बडे ईश्वरो का विभाजन होकर उनपर पर एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर), मानोथीयजिम (एक सर्वोच्च आसमानी ईश्वर), मोनिज़म (अद्वैत मत), पैन्थीइज़म (हमाऊस्त का मत) ये पाँच मत धार्मिक इतिहास मे आगे पीछे आते हैं। परन्तु यह बात भी बडी रुचिपूर्ण है कि एक अकेले मनुष्य की मानसिक अवस्था का विकास देखे तो भी उसके मन मे जब ईश्वरीय निश्चय प्रफुल्लित होगा उसे ऊपर की मजिलो मे से गुज़रना होगा। छोटा बालक सर्वव्यापक चेतन सत्ता के रूप मे ब्रह्म को नही समझता, वह

तो स्थूल ईश्वर को ही जानेगा और यदि उस साकार ईश्वर के अधीन छोटे ईश्वर भिन्न भिन्न विभागो के अध्यक्ष बना दिए जाएं तो उसे और भी सुगमता हो जाएगी। इसलिए जिस प्रकार बालक का मानसिक विकास अनेक से एक की ओर स्थूल से सूक्ष्म की ओर धीरे-धीरे होता है इसी प्रकार ही मनुष्य जाति के समूचे मन ने शनै शनै ही एक-ईश्वर विचार के सूक्ष्म रूप को आत्मसात किया है। साथ ही यह भी बात है कि सारे मनुष्य एक प्रकार का मन और एक प्रकार की बुद्धि नही रखते। मोटा बुद्धि वाला मन स्थूल ईश्वर खोजता है और प्रखर वाला सूक्ष्म। गुरु साहिब का वास्ता प्रत्येक प्रकार के व्यक्तियो से पडा। किसी का कोई निश्चय और किसी का कोई। कोई मोटी बुद्धि वाला और कोई परख करने वाली सूक्ष्म बुद्धि वाला। कोई मानसिक अवस्था के कारण बालक और कोई उन्नत अवस्था वाला सुघड बुद्धिमान। यही कारण है कि गुरबाणी मे हम ईश्वर सम्बन्धी प्रत्येक प्रकार के भाव देखते हैं। यह ठीक है कि जब भी बहु-ईश्वर विचार सामने आया गुरु साहिब ने बडे कठोर शब्दो मे निंदित किया है। एक परमेश्वर के अधीन ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवो के हिन्दु विचारो को गुरु साहिब ने सहन (अपनाया) अवश्य किया है, परन्तु अपनाया नही। जिस जिस विचार की आवश्यकता थी, गुरु साहिब ने उसी रूप मे अपने उपदेश को रग दिया था। वही नियम "अथाइ साखो महा पुरख बोलदे साझो सगल जहानै।" गुरु साहिब के सम्मुख मुख्य प्रश्न उस सर्वव्यापक अकाल पुरुष के अस्तित्व को जीवन मे ठीक ढग से प्रतीत करने का था,क्रियात्मक रूप मे उस हस्ती से एक स्वर होने का था। इस लक्ष्य पर पहुचने के लिए हम सबको एक जैसा योग्य समझना ठीक नही। मनुष्यो की योग्यता मे बहुत भेद हैं। इन भेदो के कारण ही लोग ईश्वर को भिन्न-भिन्न निश्चय के द्वारा ग्राह्य करते हैं। इस भेद के कारण ही एक नेता (रक्षक) गुरु की आवश्यकता थी जो कि प्रत्येक मानसिक अवस्था के लिए ठीक मार्ग बनाता और प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार लक्ष्य की ओर गाडी को मार्ग पर चलाता। यह नेतृत्व गुरबाणी द्वारा प्रत्येक प्रकार की बुद्धि रखने वाला और प्रत्येक मानसिक अवस्था के व्यक्ति के लिए हमारे सम्मुख

प्रस्तुत है।

मनुष्य जब ईश्वर सम्बन्धी तथा उसके सृष्टि रचना के प्रबन्ध के सम्बध मे विचार करता है तो यह सब कुछ अपने घर के प्रबन्ध द्वारा देखता है। बालक के लिए तथा साधारण सीधे सरल मन के लिए ईश्वरीय प्रबन्ध को घरेलु प्रबन्ध की भाति समझना बहुत सरल है। घरेलु प्रबन्ध मे पिता सारे घर का बडा राजा एव स्वामी है। उसकी आज्ञा या नेतृत्व मे परिवार के शेष जीव अपने अपने कर्तव्य पूरे करते हैं। इसी प्रकार सृष्टि के प्रबन्ध के सम्बन्ध मे भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। भिन्न भिन्न जातियो के लिए भिन्न भिन्न देवते है और ये देवते एक बडे देव—ईश्वर के आदेश मे काम करते है। गुरबाणी मे इस भाव के शब्द भी आए है। ससार की उत्पत्ति, पालन एव सहार को तीन देवताओ के वश मे कह कर उन्हे एक अकाल पुरुष के अधीन दिखाया है। ये तीन प्राकृतिक शक्तिया हैं, जिन्हे हिन्दु पुराणो मे देवता कह कर बताया गया और गुरबाणी मे भी इस विचार का स्वीकार कर लिया गया, यह दिखाने के लिए कि इन सब देवी देवताओ के ऊपर एक परमब्रह्म परमेश्वर है। "एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।" वाली ३०वी पौडी मे ब्रह्मा, विष्णु शिव को कर्मानुसार ससार, भण्डारी तथा दिवाणी बता कर इन्हे ईश्वर के आदेश मे बताया है "जिव तिसु भावै तिव चलावै जिव होवै फुरमाणु।" आगे दशमेश जी ने रहिरास वाली प्रार्थना चौपाई मे बताया है—

काल पाइ ब्रह्मा वपु धरा। काल पाइ सिवजू अवतरा॥
काल पाइ कर बिसनु प्रकासा। सकल काल का किया तामासा॥७॥

ऐसी समस्त पक्तियो मे अपने विचार की सिद्धि शेष लोगो के निश्चयो द्वारा करते हैं। किसी पक्ति मे इन्द्र देवते को वर्षा का काम भी सौपा है

सचै सुणिआ कनु दे धीरक देवै सहजि सुभाइ॥
इन्द्रै नो फुरमाइआ वुठा छहब्बर लाइ॥
म ३ वार मलार—पृ० १२८१)

वैदिक देवता रुद्र का प्रसग है। एक ईश्वर निश्चय को यह सरल से सरल झलक है। अलग अलग काम अलग अलग देवताओ

को सौप कर उन सब को एक अकाल पुरुष के आदेश मे बताना। साधारण मन ऐसे विचार की सहज पकड करता है अपेक्षाकृत एक सर्वव्यापक सत्ता रूप ब्रह्म के। यह 'हैनोथिजम' की अवस्था है।

इससे अगली अवस्था मे देवताओ के विचार को अनावश्यक समझ कर एक अकाल पुरुष के भाव को बताया है। देवताओ को साधारण जोवो की भाँति सब दुख सुख के भागी बता कर उन से देवतापन छीन लिया प्रतोत होता है। इन देवताओ तथा साधारण व्यक्तियो मे कोई भिन्न भेद दिखाई नही देता और आम जोवो से इन मे कोई विशेषता नही मिलती। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी को काल के अधीन बताया है। जिज्ञासु इस दूसरी मजिल पर ईश्वरीय प्रबन्ध को घरेलु प्रबन्ध के रूप मे नही देखना, वरम् एक अकाल पुरुष के आदेशो की क्रीडा समझना है। इस स्टेज पर देवताओ का विचार छोडा नही, परन्तु इन देवताओ को साधारण जोवो की पदवी दे दी है, जिज्ञासुओ का मन इतनी जल्दी देवता-विचार को छोड नही सकता, परन्तु इन देवताओ का महत्व घटाया जा सकता है न! सो गुरु जी ने यही कुछ किया। गुरबाणी की पक्तिया जो इस विचार से सम्बन्ध रखती हैं पहले दूसरे भाग मे वैष्णव मत के सम्बन्ध मे आ चुकी हैं।

इससे अगली अवस्था है शुद्ध "मानोथियइज़म" एकेश्वर निश्चय की। इस अवस्था मे सब देवी देवताओ तथा अवतारो के विचार की निन्दा की है और कहा है कि बिना एक ईश्वर के और कुछ भी नही है। वह केवल एक है ੧ਓ है। हिन्दु ग्रथो मे ओ३म् या उ पद अकाल पुरुष को बताता था। इसके उ—अ—म रूप से, उ–अ—म—से, तीन देवता लिए जाते थे। तीनो अक्षर, तीनो ही देवताओ के लिए ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव। परन्तु उ का अर्थ ब्रह्म भी लिया जाता है। गुरु साहिब ने अपने पूर्ण एव पक्के एक ईश्वरीय विचार को स्पष्ट करने के लिए उ अ म बना दिया और पहले १ लगा दिया ताकि केवल ब्रह्म का भाव अच्छी प्रकार स्पष्ट हो जाए। उअकार—१ उअमकार का भाव है 'केवल' (कार) एक (१) परमब्रह्म (उ अ म)। एक का अक (हिन्दसा) एकता के भाव पर विशेष रूप से बल देता है।

ईश्वर की एकता को एक के अंक द्वारा स्पष्ट करने का विशेष भाव प्रतीत होता है। सम्भवत. इसमे यूनानी दार्शनिक फीसागोरस के गणित सिद्धात की झलक हो। इन अंगो के सिद्धात का भाव यह था कि ससार मे जो कुछ भी द्रष्टव्य है, अथवा आकार रखता है, वह सब कुछ अगो के आधार पर है। गोन पदार्थ त्रिकोण या वर्गाकार आदि सब अग-स्थापना का परिणाम होते हैं। इसी प्रकार कविता, राग, सौर मण्डल सब को नीव गणित विद्या है। ब्रह्माण्ड चक्र, सूर्य, चन्द्र, तारो का सम्बन्ध, पृथ्वी की गति, ऋतुओ का परिवर्तन, दिन रात का चक्र आदि सब ऐसी प्राकृतिक घटनायें हैं कि इनका कारण वही है जो रागो के स्वरो का है, भाव—अगो का हिसाब। इस प्रकार से अगो के विना ससार की किसी घटना को समझ नही पड सकती। इस अग दशन ने अनुसधानक फिलोलौस को इस बात पर ला खडा किया कि यदि ससार मे कोई सत्य वस्तु है जिस की खोज मे समस्त धर्म तथा दर्शन लगे हुए हैं, तो वह अगो मे है। अगो मे जो सत्यता है वह सदा के लिए स्थित है, आदि अनादि है, अविनाशी है, गतिमय नही है, भाव— परिवर्तन के प्रभाव से मुक्त है। परन्तु गुरु साहिब समस्त अगो को नही अपनाते। उन्होने केवल एक को लिया और इसे ही आदि–अत मे रखा। इसी कारण ही फीसा–गोरसी द्वैत भाव से गुरु साहिब का मत पवित्र है, क्योकि उनकी भाति गुरु जी एक के बिना अन्य किसी को सत्य नही मानते। फीसा-गोरसियो ने यह कहा कि भलाई-बुराई असीम और ससीम, अपूर्ण–सम्पूर्ण मे प्राकृतिक विरोध है। यह क्यो ? इसलिए कि इनकी नीव अग है और अगो मे भी विरोध है, टौंक-जुफज (आड-ईवन) अकेले और युगल अगो का। इसी प्रकार ससार की वस्तुओ मे भी विरोध है। गुरु साहिब का मत यह था कि यह सासारिक वस्तुओ का विरोध आर्थिक है, दिखावे का है, वास्तव मे नही है। अगो को ही लें। उनमे भी कोई विरोध नही है। प्रत्येक अग एके का दूसरा रूप है। चौका है तो वह चार एके हैं, नायआ— है तो एका ही है परन्तु नौ बार गिना हुआ। इसलिए न अगो मे और न भलाई बुराई आदि मे विरोध है, जो दिखावे का विरोध है यह अज्ञात अवस्था मे है। अग केवल एक ही है और वही सत्य

को सौप कर उन सब को एक अकाल पुरुष के आदेश मे बताना। साधारण मन ऐसे विचार की सहज पकड करता है अपेक्षाकृत एक सर्वव्यापक सत्ता रूप ब्रह्म के। यह 'हैनोथिज़्म' की अवस्था है।

इससे अगली अवस्था मे देवताओ के विचार को अनावश्यक समझ कर एक अकाल पुरुष के भाव को बताया है। देवताओ को साधारण जीवो की भाँति सब दुख सुख के भागी बता कर उन से देवतापन छीन लिया प्रतीत होता है। इन देवताओ तथा साधारण व्यक्तियो मे कोई भिन्न भेद दिखाई नही देता और आम जीवो से इन मे कोई विशेषता नही मिलती। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी को काल के अधीन बताया है। जिज्ञासु इस दूसरी मजिल पर ईश्वरीय प्रबन्ध को घरेलु प्रबन्ध के रूप मे नही देखना, वरम् एक अकाल पुरुष के आदेशो की क्रीडा समझना है। इस स्टेज पर देवताओ का विचार छोडा नही, परन्तु इन देवताओ को साधारण जीवो की पदवी दे दी है। जिज्ञासुओ का मन इतना जल्दी देवता-विचार को छोड नही सकता, परन्तु इन देवताओ का महत्व घटाया जा सकता है न! सो गुरु जी ने यही कुछ किया। गुरबाणी की पक्तिया जो इस विचार से सम्बन्ध रखती है पहले दूसरे भाग मे वैष्णव मत के सम्बन्ध मे आ चुकी है।

इससे अगली अवस्था है शुद्ध "मानोथियइज़्म" एकेश्वर निश्चय की। इस अवस्था मे सब देवी देवताओ तथा अवतारो के विचार की निन्दा की है और कहा है कि बिना एक ईश्वर के और कुछ भी नही है। वह केवल एक है १ੴ है। हिन्दु ग्रथो मे ओ३म् या उपद अकाल पुरुष को बताता था। इसके उ—अ—म रूप से, उ–अ—म—से, तीन देवता लिए जाते थे। तीनो अक्षर तीनो ही देवताओ के लिए ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव। परन्तु उ का अर्थ ब्रह्म भी लिया जाता है। गुरु साहिब ने अपने पूर्ण एव पक्के एक ईश्वरीय विचार को स्पष्ट करने के लिए उ अ म बना दिया और पहले १ लगा दिया ताकि केवल ब्रह्म का भाव अच्छी प्रकार स्पष्ट हो जाए। उअकार—१ उअमकार का भाव है 'केवल' (कार) एक (१) परमब्रह्म (उ अ म)। एक का अक (हिन्दसा) एकता के भाव पर विशेष रूप से बल देता है।

ईश्वर की एकता को एक के अंक द्वारा स्पष्ट करने का विशेष भाव प्रतीत होता है। सम्भवत. इसमे यूनानी दार्शनिक फीसागोरस के गणित सिद्धात की झलक हो। इन अंगो के सिद्धात का भाव यह था कि ससार मे जो कुछ भी द्रष्टव्य है, अथवा आकार रखता है, वह सब कुछ अगो के आधार पर है। गोल पदार्थ त्रिकोण या वर्गाकार आदि सब अग-स्थापना का परिणाम होते हैं। इसी प्रकार कविता, राग, सौर मण्डल सब को नीव गणित विद्या है। ब्रह्माण्ड चक्र, सूर्य, चन्द्र, तारो का सम्बन्ध, पृथ्वी की गति, ऋतुओ का परिवर्तन, दिन रात का चक्र आदि सब ऐसी प्राकृतिक घटनायें हैं कि इनका कारण वही है जो रागो के स्वरो का है, भाव —अगो का हिसाब। इस प्रकार से अगो के बिना ससार की किसी घटना को समझ नही पड सकती। इस अग दर्शन ने अनुसधानक फिलोलौस को इस बात पर ला खडा किया कि यदि ससार मे कोई सत्य वस्तु है जिस की खोज मे समस्त धर्म तथा दर्शन लगे हुए है, तो वह अगो मे है। अगो मे जो सत्यता है वह सदा के लिए स्थित है, आदि अनादि है, अविनाशी है, गतिमय नही है, भाव — परिवर्तन के प्रभाव से मुक्त है। परन्तु गुरु साहिब समस्त अगो को नही अपनाते। उन्होने केवल एक को लिया और इसे ही आदि–अत मे रखा। इसी कारण ही फीसा–गोरसी द्वैत भाव से गुरु साहिब का मत पवित्र है, क्योकि उनकी भाति गुरु जी एक के बिना अन्य किसी को सत्य नही मानते। फीसा-गोरसियो ने यह कहा कि भलाई-बुराई असीम और ससीम, अपूर्ण-सम्पूर्ण मे प्राकृतिक विरोध है। यह क्यो ? इसलिए कि इनकी नींव अग हैं और अगो मे भी विरोध है, टौंक-जुफ्त (आड-ईवन) - अकेले और युगल अगो का। इसी प्रकार ससार की वस्तुओ मे भी विरोध है। गुरु साहिब का मत यह था कि यह सासारिक वस्तुओ का विरोध आर्थिक है, दिखावे का है, वास्तव मे नही है। अगो को ही लें। उनमे भी कोई विरोध नही है। प्रत्येक अग एके का दूसरा रूप है। चौका है तो वह चार एके हैं, नायआ - है तो एका ही है परन्तु नौ बार गिना हुआ। इसलिए न अगो मे और न भलाई बुराई आदि मे विरोध है, जो दिखावे का विरोध है यह अज्ञात अवस्था मे है। अग केवल एक ही है और वही सत्य

वस्तु है। एके का मूल ही १ओ है। फीसा गोरस के पश्चात अरस्तु ने इस कमज़ोरी को भाप लिया था और उसने गुरु साहिब की भाति केवल एक को ही अग माना था। उसने कहा कि एक मे टौक-जुफत (समान, असमान) का प्रश्न उत्पन्न ही नही होता एक मे कोई विरोध नही है। यह एक १ श्री गुरु जी ने पुराने ओ३म् के आरम्भ मे तथा कार अत मे लगा कर केवल एकता के भाव को दृढ किया।

इसलिए गुरु साहिब के धार्मिक दर्शन का निचोड एक-परमेश्वर

१ओ है साहिब मेरा एको है, भाई एको है। परन्तु सिक्ख का मन जब आत्मिक उन्नति (विकास) प्राप्त करता है और सत्य वस्तु के सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान का दर्शन प्राप्त करता है तो वह ऐसे ईश्वर को जो एक हो परन्तु हो ससार से ऊचा और भिन्न अपने आन्तरिक ज्ञान से मेल खाता नही देखता। वह अपने आपको उसी एक मे समाविष्ट हुआ अनुभव करता है और अपने आपको एक सत्य वस्तु मे सम्मिलित हुआ अनुभव करता है। श्रद्धा भावना के साथ विवेक विचार भी उत्पन्न होता है, प्रेम-भक्ति की भावना जो पहले अपने आप से ईश्वर को ऊचा और दूर जानने मे स्थित थी वह अब अभेदता मे बदल जाती है, ज्ञाता—ज्ञान—गेय, ध्याता—ध्यान—धेय की एकता का अनुभव होता है। इसका परिणाम दार्शनिक एक ब्रह्म-सत्यता है। यह भाव बुद्धि तथा प्रमाणो के आधार पर बौद्धिक स्तर पर प्राप्त हुआ चुच ज्ञान नही होता, यह वह दृढ विस्मादी भाव है जिसे विवेक विचार की प्योद (कलम) नही लगी होती है और इसका निष्कर्ष अनेकता मे एकना और एकता मे अनेकता के अनुभव की परिपक्वता होता है। एकता अनेकता के अस्तित्व—अनस्तित्व भाव को वह भली प्रकार जानता है।

इस विधि के साथ अकाल पुरुप को एकता—अनेकता की समस्या का सिक्ख धर्म मे समाधान किया गया है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह अनेकता भाव पुरातन बहु-ईश्वर मत नही है। यह तो एक—अनेक—फिर एक की समस्या है 'अनेक है। फिर एक है'।

(जापु साहिब ८३) एक परमात्मा जब अपनी इच्छानुसार अपना विस्तार करता है तो अनेक रूप होता है और यदि सकुचित होता है तो एक है—खेल सकोचै तउ नानक एको। ज्ञान वान के लिए अनेक बह वचनीय सत्यता का भाव नही देता वरम् यह दिखाई देने वाला अनेक वास्तव मे एक है

बूझै देखै करै विवेक ॥
आपहि एक आपहि अनेक ॥

(गउडो सुखमनी म ५, पृष्ठ २७६)

इस एक अनेक के भाव को गणित विद्या के एक प्रमाण से स्पष्ट किया जा सकता है। केवल जात या सत्य स्वरूप मे अकाल पुरुष गुणो से रहित है, निर्गुण है। इसलिए बुद्धि या ज्ञान का विषय नही है। इस रूप मे अकाल पुरुष को हम केवल बिन्दू ० शून्य समझ ले। सिफर का ज्ञान गुणानुवाद मे कोई नही है। परन्तु जब यह सिफर (बिन्दी) विस्तृत होती है तो जाना जाता है। सिफर का विस्तार है १ एक। अर्थात वही सिफर बहु सिफरी रूप मे एक है, और एक बहु स्वरूप ढग से समस्त मायामय ससार है—अनेक है। वही सिफर एक मे प्रस्तुत है और एक शेष समस्त अगो मे प्रवृत्त हुआ है। सिफर से एक, एक से दस, सौ, हजार, लाख, क्रोड, असख्य, अनोल सब कुछ हो जाता है। फिर जब विस्तृत सकुचित होता है तो अनोल से नील, फिर असख्य—हजार, सौ, दस एक से एक फिर सिफर, निर्गुण—सगुण—निर्गुण। यथार्थ तो समस्त क्रिया चक्र मे है।

निर्गुण

निर्गुण ( ) सगुण

Being Becoming-Being

सगुण

इस प्रकार से अकाल पुरुष एक भी है और अनेक भी। गुरु साहिब ने एकता—अनेकता को समस्या को इसी प्रकार ही समझाया है।

बाजीगरि जैसे बाजी पाई। नाना रूप भेख दिखलाई।
सागु उतारि थमिउ पासारा। तब एको एककारा।

सहस्र घटा महि एक आकासु। घट फूटे ते उही प्रगासु।

(सूही म ५ पृष्ठ ७३६)

निरकार आकार आपि निरगुन सरगुन एक।
एकहि एक बखाननो नानक एक अनेक।

(गउडी बावन अखरी म ५ पृष्ठ २५०)

दसवाँ अध्याय

सम्बन्ध वाचक नाम
अकाल पुरुष

१ कर्ता

सम्बन्ध वाचक नामो के विचार मे अकाल पुरुष के उन गुणो का प्रसग है जो कि सृष्टि के साथ सम्बन्ध बताते हैं। पहले तो वे नाम हैं जो सृष्टि की रचना मे ईश्वर का हाथ बताते हैं। गुरबाणी के आरम्भ मे भी जब कि गुरु साहिब अकाल पुरुष की विशुद्ध एकता एवं सत्यता को स्पष्ट करते है तो इनके पश्चात् सबसे पहला गुण अकाल पुरुष का 'कर्ता' होने का है, भाव यह कि परमात्मा सृष्टि का रचने वाला है। वैदिक मन्त्रो के बड़े ईश्वरीय भाग मे परम ब्रह्म को सृष्टि का कर्ता बताने पर अधिक जोर नही दिया। सृष्टि के भिन्न-भिन्न काम भिन्न-भिन्न देवताओ को सौपे गए बताए हैं। चिरकाल के पश्चात् सृष्टि रचना का काम ब्रह्मा को भी सौपा है, किन्तु ब्रह्मा को पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र नही बनाया। परन्तु गुरु साहिब का १ओ स्वतन्त्र कर्ता है। उसी प्रकार का जैसे यहूदियो का 'जाहवे' तथा मुसलमानो का 'अल्ला'। अकाल पुरुष के कर्ता होने का विचार मनुष्य के सदाचारक तथा आत्मिक जीवन से अधिकतर सम्बन्धित है। यही भाव ज़रतुश्ती अहुरमज़्द का है। हिन्दु एव यूनानी पौराणिक कथाओ मे सृष्टि रचना को ईश्वर की ज़ात से इतना सम्बन्धित नही किया गया जितना उसकी प्रकृति के नियमो के अधीन

बताया है। गुरबाणी मे जहा कही ब्रह्म, विष्णु, शिव जी को प्रकृति की तीन क्रियाओ के साथ सम्बन्धित किया है वहा साथ ही यह भी कहा है कि ये तीनो ही साधारण मनुष्यो की भाति अकाल पुरुष के पैदा किए हुए है। सृष्टि रचना के सम्बन्ध मे इन 'देवताओ' को किसी प्रकार कर्ता पुरुष के बराबर, या सहायक या अधीन नही लिखा। अकाल पुरुष को विशुद्ध कर्ता माना है। कर्ता भाव को प्रकट करने वाले और भी कई नाम गुरबाणी मे आए हैं, जैसे करतार, सिरदा, सृजनहार, उसारने वाला, खालिक, करण हार आदि।

जब हम अकाल पुरुष को सृष्टि का कर्ता मानते हैं तो हमारे मस्तिष्क मे झट विचार आता है, मनुष्य के किए कार्यों का। एक कारीगर चारपाई, पीढी का कर्ता है, कुम्हार घडो का कर्ता है। कारीगर चारपाई, पीढी को लकडी, या कुम्हार मिट्टी अपने मे से पैदा नही करता। यह पहले ही विद्यमान होती है। कुम्हार घडे का विशुद्ध कारण नही, यह केवल साधन मात्र है। घड का मिट्टी उपादान (सहायक) कारण है कुम्हार साधन रूप मे कारण है, मिट्टी मे घडे का आकार धारण करने का गुण सयोगिक (असमवाय) कारण है और घडा जो मिट्टी से बनना है यह कार्य अथवा अन्तिम कारण है। अरस्तु का मत यह था कि सृष्टि रचना सम्बन्धी उक्त चारो कारणो मे से अकाल पुरुष तीन कारण तो है परन्तु उपादान कारण नही है। हमारे भारत मे भी कई मत जैसे कि साख्य शास्त्र अकाल पुरुष को साधारण रूप कारण ही मानते थे। परमात्मा पुरुष है और प्रकृति भी उसके साथ साथ स्थित है। सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति और साधन कारण पुरुष है। परन्त गुरमत के अनुसार अकाल पुरुष समस्त कारण है। उसके बिना सृष्टि रचना का अन्य कोई कारण नही—

"करण कारण प्रभु एकु है दूसरा नाही कोइ॥

यदि अकाल पुरुष समस्त कारण, उपादान कारण सहित, स्वय ही है तो यह मत कुछ ऐसा भ्रम उत्पन्न करता है जैसे सृष्टि शून्य अथवा अस्तित्व के बिना अस्तित्व मे आती है। यह बात असम्भव है कि 'नेस्त' मे मे 'हस्त' तथा अभाव अथवा अनस्तित्व मे से अस्तित्व पैदा हो सके। परन्तु गुरु साहिब का भाव यह नही

था। गुरु साहिब सृष्टि को अकारण नही मानते। सृष्टि रचना आदेश (हुक्म) को क्षोडा है। चाहे कुरान शरीफ तथा वाईबल आदि मे आदेश का विचार बहुत प्रधान है, परन्तु गुरु साहिब ने आदेश पद से बिल्कुल मिलता जुलता मुसलमानी भाव नही लिया। आदश का अरबी भाव यह है कि हाकम आदेश देता है और उसकी आज्ञा से कोई बात या घटना क्रिया मे आती है। यह बात या घटना हाकम अथवा हुकमी से भिन्न है। इसी प्रकार ईश्वर ने आदेश दिया और सृष्टि रची गई। ईश्वर की हस्ती इस सृष्टि मे नही। परन्तु गुरु साहिब का हुक्म (आदेश) से भाव यह है कि अकाल पुरुष ने चाहा (इच्छा प्रकट की) कि मैं प्रकट Manifest हो जाऊ और यह सृष्टि रची गई। सृष्टि अकाल पुरुष के ही अस्तित्व से उसकी इच्छा से बनी है। 'चाहना' 'इच्छा' आदेश है। यहा हुक्म का भाव यह नही कि कोई अन्य बाह्य वस्तु उस आदेश को मानने वाली है। अकाल पुरुष की इच्छा ही हुक्म है। जिस प्रकार समुद्र के पानी मे कोई ऐसी शक्ति हो कि वह स्वय ही अन्दर से ज्वार भाटे की लहरे उत्पन्न कर सके तो फिर ये लहरे सृष्टि का स्थान ले सकती है। गुरु साहिब के 'हुक्म' विचार की नीव अद्वैतवाद है और अरबी पद के भाव मे द्वैत की झलक है, अथवा हुक्म से पता नही कहा से और किस प्रकार सृष्टि रची गई। अकाल पुरुष सृष्टि कर्ता उस प्रकार नही जिस प्रकार कुम्हार घडे का कर्ता है। यह कुछ उस प्रकार है जैसे कवि अपनी कविता रचता है। कविता से भाव कागज या पुस्तक मे अकित कोई कविता नही वर उच्चारित शब्द हैं। परन्तु अकाल पुरुष की Will (इच्छा) कोई शाब्दिक उच्चारण नही। यह एक कल्पना है और कल्पना ही सृष्टि का अस्तित्व है। जिस प्रकार सत्य वस्तु Being अपने अपने वास्तविक प्रारम्भिक निर्गुण स्वरूप मे ज्ञान का विषय नही, इसी प्रकार आदेश या वाणी भी वास्तविक स्वरूप मे कानो का विषय नही। अज्ञात निर्गुण जब कल्पना मे आया तो सृष्टि रची गई या कहिए अकाल पुरुष सगुण बन गया। वह वाणी या आदेश जो पहले कान का विषय नही था अब श्रव्य शब्द हो गया अथवा निर्गुण आदेश सगुण श्रव्य-वाणी होकर फैल गया और सृष्टि अस्तित्व मे आई।

हुकम देने वाला ईश्वर निर्गुण स्वरूप मे कोई नाम, रूप, रग या आकार भेम नही रखता—परन्तु वह जान जाता है हुकम शब्द द्वारा—"सत्य शब्द की निशानी द्वारा :—

सोरठ महला १।
अलख अपार अगम्म अगोचर ना तिसु कालु न करमा ॥
जाति अजाति अजोनी सम्भउ ना तिसु भाउ न भरमा ॥१॥
साचे सचिआर विटहु कुरबाणु ॥
ना तिसु रूप वरनु नही रेखिया साचै सबदि नीसाणु ॥

२ कर्तृ भाववाचक अन्य नाम

इस प्रकार से अकाल पुरुष कर्ता है, सृष्टि का कार्य कारण है अपने आदेश द्वारा और यह आदेश सूक्ष्म रूप मे 'सच्चे शब्द' (Word) वाणी द्वारा प्रकट है तथा स्थूल स्वरूप मे (World) सृष्टि द्वारा ज्ञान का विषय है। सृष्टि का कर्ता होने का सम्बन्ध कई अन्य विचारो से भी दिखाया है, चाहे यह विचार बिल्कुल कर्तृ भाववाचक नही परन्तु उसी भाव को अन्य रूप मे सिद्ध करते है। सृष्टि का 'मूल' ईश्वर है अर्थात आरम्भ या बुनियाद है। ससार के लिए अकाल पुरुष 'टेक' है, 'सहारा' है, 'आधार' है। बात क्या सृष्टि को रचने वाला भी और सृष्टि को बनाए रखने वाला भी वही है। इस प्रकार से ससार का Ratio Essendi है। जब अकाल पुरुष स्वय को ज्ञात होने की इच्छा को सकुचित करता है तो स्वत सिद्ध ही सृष्टि का अभाव आरम्भ हो जाता है। यह भी वही विचार है कि सृष्टि अकाल पुरुष का सगुण रूप है। 'मूल' टेक' 'सहारा' या 'आधार' आदि पदो से यह भाव नही लेना चाहिए कि अकाल पुरुष ससार की टेक या सहारा उस प्रकार है जिस प्रकार छत्त का सहारा स्तम्भ या मेज, चारपाई का सहारा उसको टागे या पाये होते है। इसका भाव तो यह होगा कि यदि 'टेक या 'सहारा' निकाल दिया जाए तो छत तथा मेज या चारपाई स्थित तो रहेगे

भले ही परिवर्तित रूप में। सृष्टि का सहारा ईश्वर है परन्तु यह भिन्न-भिन्न वस्तुए नही हैं। एक अन्य मोटा सा उदाहरण ले। बाजार मे कई खिलौने कच्छुआ या चिडी तोता रूप मे बिकते देखे जाते हैं। उनके पेट दबाओ तो मुह के द्वारा अन्दर से दाँतो, जिह्वा या चोच आदि बाहर निकलेगी। पेट को ढीला छोड दें तो वही जिह्वा चोच अन्दर वापस चली जाएगी। कछवे की दाँती और टागे भी इसी प्रकार उसकी इच्छा से बाहर निकलती और अन्दर छिप जाती हैं। ईश्वर सृष्टि रचना का कारण या मूल अथवा टेक उस खिलौने या कछवे की भाँति है, ईश्वर के अन्दर से ही इच्छा उत्पन्न होती है और कछवे की भाति सृष्टि उत्पन्न होकर प्रकट होती है और फिर आवश्यकता पडने पर उसमे ही समाविष्ट हो जाती है। आन्तरिक इच्छा ही सारा कारण है, बाहर से डराने या दबाने वाली कोई शक्ति नही है।

'मूल और 'आधार' के साथ-साथ परमात्मा को सृष्टि के सम्बन्ध मे धरणीधर, धुरन्धर, सारगपाणि, बसुन्धर भी कहा है। इन विचारो मे कुछ गम्भीर अर्थ हैं। यह भार दायित्व का भी है पुरातन धवल बलद वाला भी है कि पृथ्वी किसी धवल बलद के सीगो अथवा कछवे की पीठ पर अवस्थित है। परन्तु गुरु साहिब इन समस्त पौराणिक विचारो को ईश्वरीय नियमो के रूप मे बताते हैं। वे जपुजी मे बताते हैं 'धौल धरम'। बलद एक प्राकृतिक नियम है। ऐसे नियमो से ही सृष्टि का प्रबन्ध चल रहा है। यह नियम भी ईश्वरीय आदेश का रूप है। कोई नियम ईश्वर से तथा ईश्वर के आदेश से भिन्न नही है।

३ तू पेड़ साख तेरी फूली

सृष्टि के साथ अकाल पुरुष का सम्बन्ध गुरु साहिब ने एक अन्य विचार द्वारा बहुत नवीन ढग से बताया है। वह है ईश्वर को

हुकम देने वाला ईश्वर निर्गुण स्वरूप मे कोई नाम, रूप, रग या आकार भेस नही रखता—परन्तु वह जान जाता है हुकम शब्द द्वारा—"सत्य शब्द की निशानी द्वारा —

सोरठ महला १ ।

अलख अपार अगम्म अगोचर ना तिसु कालु न करमा ।।
जाति अजाति अजोनी सम्भउ ना तिसु भाउ न भरमा ।।१।।
साचे सचिआर विटहु कुरबाणु ।।
ना तिसु रूप वरनु नही रेखिया साचै सबदि नीसाणु ।।

२ कर्तृ भाववाचक अन्य नाम

इस प्रकार से अकाल पुरुष कर्ता है, सृष्टि का कार्य कारण है अपने आदेश द्वारा और यह आदेश सूक्ष्म रूप मे 'सच्चे शब्द' (Word) वाणी द्वारा प्रकट है तथा स्थूल स्वरूप मे (World) सृष्टि द्वारा ज्ञान का विषय है। सृष्टि का कर्ता होने का सम्बन्ध कई अन्य विचारो से भी दिखाया है, चाहे यह विचार बिल्कुल कर्तृ भाववाचक नही परन्तु उसी भाव को अन्य रूप मे सिद्ध करते है। सष्टि का 'मूल' ईश्वर है अर्थात आरम्भ या बुनियाद है। ससार के लिए अकाल पुरुष 'टेक' है, 'सहारा' है, 'आधार' है। बात क्या सृष्टि को रचने वाला भी और सृष्टि को बनाए रखने वाला भी वही है। इस प्रकार से ससार का Ratio Essendi है। जब अकाल पुरुष स्वय को ज्ञात होने की इच्छा को सकुचित करता है तो स्वत सिद्ध ही सृष्टि का अभाव आरम्भ हो जाता है। यह भी वही विचार है कि सृष्टि अकाल पुरुष का सगुण रूप है। 'मूल' टेक' 'सहारा' या 'आधार' आदि पदो से यह भाव नही लेना चाहिए कि अकाल पुरुष ससार की टेक या सहारा उस प्रकार है जिस प्रकार छत्त का सहारा स्तम्भ या मेज़, चारपाई का सहारा उसको टागे या पाये होते है। इसका भाव तो यह होगा कि यदि 'टेक या 'सहारा' निकाल दिया जाए तो छत तथा मेज या चारपाई स्थित तो रहेगे

भले ही परिवर्तित रूप मे। सृष्टि का सहारा ईश्वर है परन्तु यह भिन्न भिन्न वस्तुए नही हैं। एक अन्य मोटा सा उदाहरण लें। बाज़ार मे कई खिलौने कच्छुआ या चिडी तोता रूप मे बिकते देखे जाते हैं। उनके पेट दबाओ तो मुह के द्वारा अन्दर से दाँतो, जिह्वा या चोंच आदि बाहर निकलेगी। पेट को ढीला छोड दे तो वही जिह्वा चोंच अन्दर वापस चली जाएगी। कछुवे की दाँती और टांगे भी इसी प्रकार उसकी इच्छा से बाहर निकलती और अन्दर छिप जाती हैं। ईश्वर सृष्टि रचना का कारण या मूल अथवा टेक उस खिलौने या कछुवे की भाँति है, ईश्वर के अन्दर से ही इच्छा उत्पन्न होती है और कछुवे की भाति सृष्टि उत्पन्न होकर प्रकट होती है और फिर आवश्यकता पडने पर उसमे ही समाविष्ट हो जाती है। आन्तरिक इच्छा ही सारा कारण है, बाहर से डराने या दबाने वाली कोई शक्ति नही है।

'मूल और 'आधार' के साथ-साथ परमात्मा को सृष्टि के सम्बन्ध मे धरणीधर, धुरन्धर, सारगपाणि, बसुन्धर भी कहा है। इन विचारो मे कुछ गम्भीर अर्थ हैं। यह भार दायित्व का भी है पुरातन धवल बलद वाला भी है कि पृथ्वी किसी धवल बलद के सीगो अथवा कछुवे की पीठ पर अवस्थित है। परन्तु गुरु साहिब इन समस्त पौराणिक विचारो को ईश्वरीय नियमो के रूप मे बताते हैं। वे जपुजी मे बताते हैं 'धौल धरम'। बलद एक प्राकृतिक नियम है। ऐसे नियमो से ही सृष्टि का प्रबन्ध चल रहा है। यह नियम भी ईश्वरीय आदेश का रूप है। कोई नियम ईश्वर से तथा ईश्वर के आदेश से भिन्न नही है।

३ तू पेड साख तेरी फूली

सृष्टि के साथ अकाल पुरुष का सम्बन्ध गुरु साहिब ने एक अन्य विचार द्वारा बहुत नवीन ढग से बताया है। वह है ईश्वर को

वृक्ष या तरुवर कहना। वृक्ष और तरुवर के भाव परम सत्यवादक सच्चाई को भी पुष्ट करते हैं और अलकारक अर्थों मे लुप्त भाव के चिन्ह भी है। वृक्ष हर समय हरा भरा है। प्रतिदिन प्रात काल ताज़ा और नया है। नए फ्ल, नई पत्तियाँ, नई कलियाँ, हर समय शैली के मन को आकर्षित करती है और सदा किसी निर·तर प्यार का कारण बनती रहती है, इसीलिए ससार प्रसिद्ध कवि जान कीट्स ने कहा है —

वस्तु है जो सोहणी, देवे खुशी है सदीव जी !

A thing of beauty is a joy for ever

वृक्ष प्राकृतिक सुन्दरता का एक नमूना है और वृक्ष के रूप मे ईश्वर भी सदा ताजा-नया और सुन्दर प्रतीत होता है। मानव स्वभाव का वह नियम कि एक ही वस्तु को बार-बार देखना या प्यार करना उसके लिए आकर्षण-प्यार तथा चाव को घटा देता है, परन्तु यहाँ वह एक ही वस्तु एक नही है वह सदा नई है। इसलिए वृक्ष या तरुवर है। तरुवर के रूप मे अकाल पुरुष 'नित नया' है, इसीलिए 'सदा सदा मन चाउ' है।

साहिब मेरा नित्त नवाँ सदा सदा मनु चाउ ॥

वद 'नवतन' है, भाव सदा यौवन के जोश मे है। सम्भवत इसीलिए पुरातन मिश्र के धार्मिक ऋषियो ने ईश्वर को 'यौवन से परिपूर्ण नवतन' कहा था। इस यौवन और नवीनता के कारण मन मे सदा चाव है और अनुपम (परमात्मा) का सौन्दर्य सच्चा होने के कारण चाव भी सदा सच्चा है।

सति सुहाण सदा मनि चाउ ॥

अकाल पुरुष सच्चे अर्थों मे सुन्दर है इसी लिए उसके लिए भक्तो के मन का चाव निरन्तर है। यह परमात्मा के पेड या तरुवर होने का भाव है। अकाल पुरुष तरुवर की भाँति हम रैन बसेरा कर रहे पक्षियो को आश्रय देता है।

तू वड पुरखु अगम्म तरुवरु हम पखी तुझ माही।
(गुजरी म १ पृष्ठ ५०५)

गीता मे भी परमात्मा तथा सृष्टि के सम्बन्ध को दिखाने के

लिए वृक्ष रूपी अलकार को प्रयुक्त किया गया है। यह उदाहरण पहले 'कथोपनिषद' मे भी आ चुका था। परन्तु यह वृक्ष रूपी अलकार गुरु साहिब के प्रयुक्त किए भाव से बहुत भिन्न है। वहाँ लिखा है — "यह एक पुराना असवेता वृक्ष है। इसकी जढे आकाश की ओर ऊची हैं, शाखायें और पत्ते नीचे को हैं। पत्ते वेद है, जो इस बात को जान ले वह वेदो के भाव को समझ लेगा। इस वृक्ष की शाखाये नीचे ऊपर सब ओर फैली हुई है। इसके पत्तो अथवा पदार्थों को तीन गुण (रजो, तमो, सतो) खुराक देते हैं। इसकी जडे ससार से कर्मों द्वारा बन्धो हुई है। इस ससार मे इसकी वास्तविकता का ज्ञान नही हो सकता। इसका आदि अन्त है, परन्तु इसके आन्तरिक भेद का पता नही लगता। इस असवेता वृक्ष की जडो को त्याग वैराग्य के कुठार से काटा जाए तो वह पदवो प्राप्त होती है जहाँ से कि मनुष्य फिर नीचे नही गिर सकता।" गोता के इस अलकार का भाव कुछ और है तथा गुरबाणी मे ईश्वर को पेड एव तरुवर कहने का उद्देश्य और है। भले ही वृक्ष का भाव नवतनी एव तरो ताज़गी बताने का है।

यदि हम अकाल पुरुष को पेड या तरुवर समझे तो अन्य कई उलझनें हमारे लिए उत्पन्न हो जातो हैं। वृक्ष का परिवर्तन प्रत्येक ऋतु, प्रति दिन तथा प्रत्येक मौसम मे होता है। वृक्ष सदा फलता-फूलता है ? क्या ईश्वर भी फल फूल रहा है और परिवर्तनशील है ? अर्थात् ईश्वर का (Evolution) विकास हो रहा है ? नही इस विचार का यह भाव नही है। 'उत्कर्ष' (विकास) (Evolution) तो जड चेतन प्रकृति के नियमो मे बन्धी हुई एक लहर का नाम है और इस बन्धन मे 'नित नये' का भाव नही आ सकता। परन्तु सम्भवत यह विकास का नया रूप (Emergent Evolution) या (Creative Evolution) 'उपजाउ' उत्कर्ष (विकास) न हो। खीच-तान करके यह भाव निकाला जा सकता है। वास्तविक भाव तो यह है। निरन्तर तथा सर्वमय चलायमानता का। डाक्टर मारगन जो 'उपजाउ उत्कर्ष' की समस्या के सस्थापको मे से है, अपने विचार को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं। सल्फर-गधक तथा कार्बन—कोयले—को जब मिलाया जाता है तो इस मिश्रण से बनी वस्तु का वज़न तो वही

होगा जो दोनो तत्वो का था। मिश्रण का भार तो साधारण मेल का फल है। परन्तु नई बनी वस्तु के गुण बिल्कुल नये है और सल्फर या कार्बन के गुणो से साम्यता नही रखते। यह नई वस्तु 'उत्पादित' वस्तु है। इसी प्रकार का उदाहरण चार्वाको ने आत्मा का अनस्तित्व बताने के लिए दिया है कि जिस प्रकार चूने और हल्दी के मेल से लाल रग बनता है उसी प्रकार पाच तत्वा के मेल से आत्मा उत्पन्न होकर उनके विनाश के साथ ही विनष्ट हो जाता है। इसलिए वह 'उपजाउ उत्कर्ष' की समस्या नई नही है परन्तु इसे सृष्टि रचना का ईश्वर से सम्बन्ध बताने का भाव नया ही है, किन्तु यदि यह कह ले कि ईश्वर से सृष्टि 'उत्कर्षित उत्पादित' भाव मे बनती है तो फिर ईश्वर भी चलायमान बन जाता है। परन्तु गुरु साहिब ने स्थान-स्थान पर अकाल पुरुष को सत्य, अचल, निश्चल और एकरस आदि कह कर परिवर्तन के प्रभावो से बाहर तथा ऊचा कहा है। फिर ये दो विरोधी विचार किस प्रकार मिलाए जा सकते है ?

इन दोनो विचारो को कि अकाल पुरुष निश्चल तथा एकरस है और साथ ही तरुवर तथा पेड होकर नित नया है इस प्रकार

समझा जा सकता है वाहिगुरु परमात्मा '੧ਓ सतिनाम . अकाल' होने के कारण एकरस, निश्चल तथा अटल है और हमेशा के लिए एक प्रकार से स्थित है। यह तो देश काल से दूर की स्थिति मे है, वह स्थिति जो काल एव गुणो से ऊपर है। परन्तु सगुण की स्थिति मे, जब 'खालक खलक महि है तो यह तरुवर की भाति है और 'उपजाउ उत्कृष' के नियम मे प्रकृति (Nature) है तथा इस प्रकार नित नया और नवीनतम है। परन्तु यह नया पन, नवीनता, परिवर्तन, मनुष्य मन के लिए है, ईश्वर के लिए नही है। सगुणता (Becoming) मे है, निर्गुणता (Being) मे नही है। कारण यह है कि नया पन तथा नवीनता का भाव 'काल' समय से सम्बन्ध रखता है। नया पुराना समय के नाम है और 'अकाल' पुरुप के अस्तित्व से समय का कोई भाव नही आ सकता है, हा मनुष्यो के लिए परिवर्तन एव नवीनता है। ये बातें समय मे हैं और ये हैं भी

मनुष्य-मन का विषय। ईश्वर अकाल है इसलिए निश्चल तथा एकरस है। ये एक ही हस्ती के दोनो पहलु हैं Phenomenal (स्थूल दृष्टमान) तथा Nomenal (सूक्ष्म अदृष्टमान)। इसका भाव यह है कि बुद्धि का विषय जो कुछ भी है वह पराधीन सत्यता (Relative Reality) रखता है और वास्तव या स्वतन्त्र सत्यता मानव सूझ से दूर है— अगम्य अगोचर (अदृश्य) है। इस पराधीन सत्यता को मारगन ने एक तालिका द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। सबसे प्रथम या निचली धरातल पर ऐटम (सूक्ष्म) प्रमाणु है, इनसे अधिक दृष्टिगत-अवस्था मे मालो-कियूल-स्थूल प्रमाणु हैं। इन से ऊपर कण अथवा जर्रे है और इन से ऊपर बनस्पति है। ये सब वस्तुए स्तर के अनुरूप 'उपजाउ उत्कर्ष' के प्रभाव स्वरूप एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा रूप धारण करती हैं। वनस्पति मे अभी 'मन' तत्व उत्पन्न नही हुआ होता। बनस्पति से ऊपर है पशु और फिर हैं मनुष्य। इन समस्त अवस्थाओ मे चेतन सत्ता, ईश्वरीय तत्व, अकाल पुरुष का अश प्रस्तुत होता है, परन्तु नीचे बहुत गुप्त, फिर कम गुप्त, फिर प्रकट, और फिर बहुत प्रकट आदि। परन्तु है सब मे। इसी लिए वस्तुए (पदार्थ) अद्वैत भाव से ब्रह्म स्वरूप हैं।

मारगन के मत मे आरम्भ ऐटम प्रमाणुओ से था। परन्तु रुदरफोर्ड आदि अन्वीषको ने और भी नीचे जाकर इलैक्ट्रान तथा परोटान खोजे हैं। इस विश्लेषण मे हम कितना भी नीचे जाए तो भी इन वैज्ञानिको के मत मे ईश्वरीय भाग केवल कारण मात्र के रूप मे ही रहेगा। उपादान कारण तथा नमित कारण का द्वैत-भाव गुरमत अनुसार नही है और न ही यह ईश्वर के तरुवर भाव से मेल खाता है। चाहे ससार कितना भी स्थूल एव भौतिक है परन्तु बुनियादी तत्व 'चेतन सत्ता' ही है। आधुनिक वैज्ञानिक, आरथर एडिंगटन जैसो ने भी यह कहना आरम्भ कर दिया है कि सृष्टि का वास्तविक तत्व चेतनता ही है। इसलिए 'ब्रह्म दीसै ब्रह्म सुणिये' अन्दर बाहर ब्रह्म ही ब्रह्म है। वैसे दो पहलु अवश्य हैं। एक जो ज्ञान का विषय नही है निर्गुण रूप— Pure Being और दूसरा सगुण स्वरूप— Becoming पहले भाव मे वह अचल और आदि अनादि एक रस है और दूसरे भाव मे नित नवीन, सुन्दर वृक्ष की भाँति है।

होगा जो दोनो तत्वो का था। मिश्रण का भार तो साधारण मेल का फल है। परन्तु नई बनी वस्तु के गुण बिल्कुल नये है और सल्फर या कार्बन के गुणो से साम्यता नही रखते। यह नई वस्तु 'उत्पादित' वस्तु है। इसी प्रकार का उदाहरण चार्वाको ने आत्मा का अनस्तित्व बताने के लिए दिया है कि जिस प्रकार चूने और हल्दी के मेल से लाल रग बनता है उसी प्रकार पाच तत्वो के मेल से आत्मा उत्पन्न होकर उनके विनाश के साथ ही विनष्ट हो जाता है। इसलिए वह 'उपजाउ उत्कर्ष' की समस्या नई नही है परन्तु इसे सृष्टि रचना का ईश्वर से सम्बन्ध बताने का भाव नया ही है, किन्तु यदि यह कह लें कि ईश्वर से सृष्टि 'उत्कर्षित उत्पादित' भाव मे बनती है तो फिर ईश्वर भी चलायमान बन जाता है। परन्तु गुरु साहिब ने स्थान-स्थान पर अकाल पुरुष को सत्य, अचल, निश्चल और एकरस आदि कह कर परिवर्तन के प्रभावो से बाहर तथा ऊचा कहा है। फिर ये दो विरोधी विचार किस प्रकार मिलाए जा सकते है?

इन दोनो विचारो को कि अकाल पुरुष निश्चल तथा एकरस है और साथ ही तरुवर तथा पेड होकर नित नया है इस प्रकार समझा जा सकता है वाहिगुरु परमात्मा '੧ੴ सतिनाम अकाल' होने के कारण एकरस, निश्चल तथा अटल है और हमेशा के लिए एक प्रकार से स्थित है। यह तो देश काल से दूर की स्थिति मे है, वह स्थिति जो काल एव गुणो से ऊपर है। परन्तु सगुण की स्थिति मे, जब 'खालक खलक महि है तो यह तरुवर की भाति है और 'उपजाउ उत्कृष' के नियम मे प्रकृति (Nature) है तथा इस प्रकार नित नया और नवीनतम है। परन्तु यह नया पन, नवीनता, परिवर्तन, मनुष्य मन के लिए है, ईश्वर के लिए नही है। सगुणता (Becoming) मे है, निर्गुणता (Being) मे नही है। कारण यह है कि नया पन तथा नवीनता का भाव 'काल' समय से सम्बन्ध रखता है। नया पुराना समय के नाम है और 'अकाल' पुरुष के अस्तित्व से समय का कोई भाव नही आ सकता है, हा मनुष्यो के लिए परिवर्तन एव नवीनता है। ये बातें समय मे है और ये है भी

मनुष्य-मन का विषय। ईश्वर अकाल है इसलिए निश्चल तथा एकरस है। ये एक ही हस्ती के दोनो पहलु हैं Phenomenal (स्थूल दृष्टमान) तथा Nomenal (सूक्ष्म अदृष्टमान)। इसका भाव यह है कि बुद्धि का विषय जो कुछ भी है वह पराधीन सत्यता (Relative Reality) रखता है और वास्तव या स्वतन्त्र सत्यता मानव सूझ से दूर है— अगम्य अगोचर (अदृश्य) है। इस पराधीन सत्यता को मारगन ने एक तालिका द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। सबसे प्रथम या निचली धरातल पर ऐटम (सूक्ष्म) प्रमाणु है, इनसे अधिक दृष्टिगत-अवस्था मे माली-कियूल-स्थूल प्रमाणु हैं। इन से ऊपर कण अथवा जर्रे है और इन से ऊपर बनस्पति है। ये सब वस्तुए स्तर के अनुरूप 'उपजाउ उत्कर्ष' के प्रभाव स्वरूप एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा रूप धारण करती हैं। बनस्पति मे अभी 'मन' तत्व उत्पन्न नही हुआ होता। बनस्पति से ऊपर है पशु और फिर है मनुष्य। इन समस्त अवस्थाओ मे चेतन सत्ता, ईश्वरीय तत्व, अकाल पुरुष का अश प्रस्तुत होता है, परन्तु नीचे बहुत गुप्त, फिर कम गुप्त, फिर प्रकट, और फिर बहुत प्रकट आदि। परन्तु है सब मे। इसी लिए वस्तुए (पदार्थ) अद्वैत भाव से ब्रह्म स्वरूप हैं।

मारगन के मत मे आरम्भ ऐटम प्रमाणुओ से था। परन्तु रुदरफोर्ड आदि अन्वीषको ने और भी नीचे जाकर इलैक्ट्रान तथा परोटान खोजे हैं। इस विश्लेषण मे हम कितना भी नीचे जाए तो भी इन वैज्ञानिको के मत मे ईश्वरीय भाग केवल कारण मात्र के रूप मे ही रहेगा। उपादान कारण तथा नमित कारण का द्वैत-भाव गुरमत अनुसार नही है और न ही यह ईश्वर के तरुवर भाव से मेल खाता है। चाहे ससार कितना भी स्थूल एव भौतिक है परन्तु बुनियादी तत्व 'चेतन सत्ता' ही है। आधुनिक वैज्ञानिक, आरथर एडिंगटन जैसो ने भी यह कहना आरम्भ कर दिया है कि सृष्टि का वास्तविक तत्व चेतनता ही है। इसलिए 'ब्रह्म दीसै ब्रह्म सुणिये' अन्दर बाहर ब्रह्म ही ब्रह्म है। वैसे दो पहलु अवश्य हैं। एक जो ज्ञान का विषय नही है निर्गुण रूप— Pure Being और दूसरा सगुण स्वरूप— Becoming पहले भाव मे वह अचल और आदि अनादि एक रस है और दूसरे भाव में नित नवीन, सुन्दर वृक्ष की भाँति है।

माझ महला ५

तू पेडु साख तेरी फूली ॥
तू सूखमु होआ असथूली ॥
तू जलनिधि तू फेनु बुदबुदा—
तुधु बिनु अवरु न भालीऐ जीउ ॥१॥

तू सूतु मणीये भी तू है ॥
तू गठी मेरु सिरि तू है ॥
आदि मधि अन्ति प्रभु सोई—
अवरु न कोइ दिखालीऐ जीउ ॥२॥

तू निरगुणु सरगुणु सुखदाता ॥
तू निरवाणु रसीआ रगि राता ॥
अपणे करतब आपे जाणहि—
आपे तुधु समालीऐ जीउ ॥३॥

तू ठाकुरु सेवकु फुनि आपे ॥
तू गुपतु प्रगटु प्रभ आपे ॥
नानक दासु सदा गुण गावै—
इक भोरी नदिर निहालीऐ जीउ ॥४॥

ईश्वर के सिवाय और कुछ नही है। सब कुछ वही है। ठाकुर भी वह और सेवक भी। पूज्य भी और पुजारी भी। इस अभेदता के बावजूद पुजारी पूजता है, अरदास करने वाला अरदास करता है ताकि उस पर कृपा दृष्टि हो। फिर यह भेद क्यो? उत्तर वही जो पहले भी दिया जा चुका है। विभिन्न मानसिक स्थितियो के लिए विभिन्न रूपो मे ईश्वर प्रस्तुत किया गया है। स्थूलो के लिए स्थूल और सूक्ष्मो के लिए सूक्ष्म। या तो हमे यह कहना चाहिए कि गुरु साहिब ने सीधे साधे मन के लिए भक्ति भावना वाला ईश्वर प्रस्तुत किया है और अन्तर मानसिक अन्वीषको के लिए स्वय-स्वरूप अद्वैतवाद वाला। देखने वाले के लिए यह भिन्न-भेद हैं, परन्तु वास्तव मे ये स्तर हैं। धार्मिक भावनाओ के लिए सगुण स्वरूप ईश्वर की आवश्यकता है और दार्शनिक खोजियो के लिए चेतन सत्ता रूपी निर्गुण ब्रह्म की। कई स्थानो पर एक

शब्द मे ही ये दो पहलु स्पष्ट दिखाई देते है। इस द्विपक्षीय समस्या का हल भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओ के विना और क्या हो सकता है। या फिर प्रोफेसर दास गुप्ता ने जो शब्द गीता के सम्बन्ध मे कहे है वे गुरबाणी मे बताए गए अकाल पुरुष के स्वरूप के सम्बन्ध मे भी शकावादी को अनुभव होगे। प्रोफेसर गुप्ता लिखते है गीता यह नही जानती कि हमाऊस्त, अहं ब्रह्मास्मि पूज्य परमेश्वर, बहु देवो का बडा देव ईश्वर ये सभी भाव एक ही हस्ती मे समाविष्ट नही किए जा सकते। न ही गीता अकाल पुरुष सम्बन्धी इन छिन्न-भिन्न विरोधी भावो से सम्बधित किए गए विरोध (आपत्तियो) का कोई उत्तर ही देती है। परन्तु इन समस्त शकाओ का उत्तर यही है कि दिखावे का विरोध जो हम परमात्मा के स्वरूप के सम्बन्ध मे देखते हैं वह धार्मिक भावना के क्रियात्मक अनुभवो मे हिल मिल जाता है और परमात्मा के दृश्यो या झलकियो मे फिर कोई बुद्धि द्वारा अलग किए हुए भिन्न-भेद एव निर्णय मिट जाते है। धार्मिक ज्ञान उद्वेगिक अनुभव होते हैं। ये कोई दार्शनिक परम तत्व सत्य की बुद्धि के सहारे अनुसन्धान नही होते।

सृष्टि के साथ ईश्वर का सम्बन्ध खोजने मे हम इस दृष्टिकोण से चले थे कि अकाल पुरुष सृष्टि का स्रष्टा है। अब हम इस बात पर पहुचे हैं कि सृष्टि-रचना से अकाल पुरुष बाहर नही रहता, वह इसके बीच है और जो कुछ है सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। परन्तु सृष्टि रची गई, जीव जन्तु बन गए। इनको बनाए रखना और इनका पालन करना एक बडा काम है जो अन्तत किसी के अपने वश मे नही है। यह काम भी ईश्वर का ही है। अद्वैत भाव से हमे फिर थोडा नीचे आना पडेगा क्योकि एक ओर सृष्टि और जीव जन्तु हैं और दूसरी ओर इनका पालन पोषण करने वाला वाहिगुरु अकाल पुरुष है। ऐसे कार्य के लिए विष्णु भगवान को आवश्यकता पडती है, दयामय प्रतिपालक पिता की आवश्यकता पडती है। जिस प्रकार एक घर मे बाप का कार्य यही है कि सभी छोटे बडो को रोज़ी की चिन्ता करे उसी प्रकार पिता परमेश्वर का दायित्व भी यही है कि वह शेर को मास, गऊ के लिए घास, और मनुष्य को रोटी दे। "सिरि सिर रिजकु सम्बाहे ठाकुरु" गुरु वाक् है—"सैल पथर महि जत

उपाय ता।। रिजकु आगै करि धरिया" एक अन्य महा वाक् है। इसलिए सदगुरुओ ने परमात्मा को गोपाल, गोविन्द प्रतिपालक आदि नामो द्वारा उसे पृथ्वी के पालने वाला इसे सुरक्षित रखने वाला और इसे सम्भालने वाला बताया है ।

प्रतिपालक पिता परमात्मा हमे धन देगा और हमे आरोग्य जीवन प्रदान करेगा परन्तु गुरु साहिब अकाल पुरुष को कोमल कलाकार भी मानते है। जीवन केवल सास पूरे करना ही नही और मनुष्य की तुष्ट केवल अन्न और वस्त्र से नही होती। मनुष्य चाहता है आनन्द। आनन्द प्राप्ति का एक साधन है कोमल कलाओ द्वारा भावात्मक भूख की निवृत्ति। कोमल भावनाओ का पुरातन एव सूखी सडी वस्तुए घर पूरा नही करती। पुराने के स्थान पर नया और कुरूप के स्थान पर सुन्दर का आना आवश्यक है। इस सुन्दरता तथा कोमलता का स्रोत भी गुरु साहिब ने ईश्वर को ही बताया है। वह सवारन हार' (सवारने वाला) है। उसके समस्त कार्य मे अथवा सृष्टि के प्रबन्ध मे कोई झगडा, अनियमितता नही है, अपितु प्रत्येक काम सुचारु नियमावली मे हो रहा है। इसलिए अकाल पुरुष केवल सृष्टि का रचता ही नही अपितु इसे सवार कर रखता है और सौन्दर्य की पाण चढाता है (अर्थात् रूप देता है), परन्तु क्या इसका यह अर्थ है कि ससार मे कोई वस्तु कुरूप नही है? यदि ससार मे कुरूपता भी है तो क्या फिर यह कुरूपता ईश्वर के सिवाय किसी और ने बनाई? इसका उत्तर यह है कि यह सब कुछ देखने वाले के अपने मन का प्रतिबिम्ब है। प्रेमी के लिए प्रेमिका की प्रत्येक वस्तु सुन्दर होती है। कहते है कि किसी ने लैला को कहा कि तू काली है? उसने कहा मजनू को पूछो। निंदक के लिए सब जगह अवगुण ही अवगुण है, कही कोई विशेषता नही है। पीलिया के रोगी को प्रत्येक वस्तु पीली नजर आएगी और जिस मन मे धार्मिक कट्टरता रूपी पीलिया समाविष्ट हो गया है वह भी मृतग्रस्त होने के कारण सत्य वस्तु को देख नही सकता। बात क्या यह सब कुछ देखने वाले पर निर्भर है। टेढे गिलास मे अथवा चमकती ऊची नीची तलवार (खजर) मे से कोई सुन्दर मुख देखे तो कुरूप दिखाई देता है। इसलिए दूसरा उपाय सुन्दरता के मार्ग मे देखने वाले के साधनो

मे भी हो सकता है। परन्तु प्रश्न तो यह उठता है कि टेडापन साधन मे या निन्दा का भाव निंदक में या तअस्सब का पक्ष मुतअस्सब मे कहा से आए ?इन्हे उत्पन्न करने वाला कौन है ? यदि सब कुछ ईश्वर ही ईश्वर है, ब्रह्म ही ब्रह्म है, हमाऊस्त है तो फिर इनका स्रोत कौन सा रह जाता है ? अद्वैतवाद मत में यह एक बड़ी कठिनाई है। गुरबाणी मे इसका उत्तर और कुछ नही सिवाय इसके कि यह सब कुछ विशेष अवस्था तक है या Relative यानि अवस्था भेद के कारण है और वास्तव मे ये न्यूनतायें नही है। यह माया अविद्या के कारण है।

मनुष्य सदा जीवित नही रहता, खाने पीने के बावजूद शरीर का अन्त आवश्यक है। मृत्यु अवश्य आयेगी, यह भी कोमल कलाकार वाहिगुरु अकाल पुरुष की ही इच्छा है। पुराने के स्थान पर नया इसी लिए नियम बना है। पुराने खड खडाते पत्ते झड जाते हैं और ऋतु के अनुसार नये उत्पन्न हो जाते है ताकि पीपल रूपी संसार की सुन्दरता मे अन्तर न आये। इसी लिए ईश्वर सृष्टि रचता है, जीव जन्तुओ का पालण पोषण करता है, परन्तु आवश्यकता पडने पर वापिस भी बुला लेता है। "घले आवहि नानका सदे उठी जाहि' सारग राग मे महावाक् है। यह सब कुछ कोमल कलाकार ईश्वर की इच्छा से बने नियमो, धर्मो के अनुसार हो रहा है। बनाने का, विनष्ट करने का उत्तरदायी परमात्मा ही है —

ढाहि उसारे हुकमि समावै ॥
हुकमो वरतै जो तिसु भावै ॥

(आसा म १ पृष्ठ ४१४)

अटलु अडोलु अतोलु मुरारे ॥
खिन महि ढाहे फेरि उसारे ॥

(मारू म १ पृष्ठ १०३४)

हरन भरन जा का नेत्र फोरु ॥

(पृष्ठ २८४, गौड़ी सुखमनी म. ५)

कुरान शरीफ मे ईश्वर को "अलहयी" जीवित कहा है। बाईबल में भी कहा है. "अब तुम्हे पता चलेगा कि तुम्हारे अन्दर जीवित ईश्वर हैं।" गुरु साहिब ने ईश्वर को मनुष्य की भाति जीवन

वाला नही कहा, हा मनुष्य का क्या समस्त ससार का जीवन दाता बताया है। वह जगजीवन है, प्राणदाता है प्राणपति है।

अकाल पुरुष की रचनाा मे कई घटनाये ऐसी घटती हैं जिन्हे मनुष्य का मस्तिष्क समझने मे असमर्थ रहता है। कई बार ऐसी घटनाओ मे कोई सच्चाई या अच्छाई अनुभव नही होती, इसलिए सृष्टि रचना के प्रयोजनवाद सम्बन्धी शकाये उठती है। यदि सब कुछ अन्तर्यामी परमात्मा करता है तो उसके प्रत्येक काम मे कोई न कोई उद्देश्य और भलाई अवश्य होनी चाहिए। जब ऐसी घटनायें निर्दयता और प्रयोजनहीन-भूचाल और बाढ प्रतीत होते हैं तो कई व्यक्ति अश्रद्धालु होकर नास्तिक बन जाते है। ईश्वर--इच्छा मानने वाला ऐसे अवसरो पर अकाल पुरुष की आज्ञा समझ से दूर कह कर सन्तुष्ट रहता है, और यह सब कुछ ईश्वर क्रीडा कही जाती है। यह उसकी लीला है, क्रीडा है। एक बालक मिट्टी या कागजो या कपडो का खिलौना बना कर क्यो गिरा देता है या तोड फोड देता है। उत्तर है उसकी इच्छा, मौज। यही उसका प्रयोजन है। कई स्थितियो मे हम विवश होते है, काई बात नही सूझती, हम समझते है कि ईश्वर एक जादूगर का अभिनय कर रहा है। महापुरुषो ने ईश्वर को जादूगर, बाजीगर आदि भी कहा है। वेदातसूत्र मे भी ऐसे ही विचार बताए गए है ३४वी पुस्तक पृष्ठ १६० पर लिखा है सबसे ऊचा और महान स्वामी एक है जो अपरिवर्तनशील है (बदलता नही), जिसका तत्व-ज्ञान है और अपनी आन्तरिक परोक्ष शक्ति को कई भिन्न-भिन्न रूपो मे दिखाता है, जिस प्रकार एक जादूगर अपने बल से बहुरूपीये की भांति रूप धारण करके दिखाता है . । यह सृष्टि रचना भी समस्त उसकी जादूमय क्रीड़ा है।" ऐसा ही भाव गुरबाणी मे भी कई स्थानो पर बताया गया है —

> बबै बाजी खेलण लागा चउपडि कीते चारि जुगा।
> जीअ जत सभ सारी कीते पासा ढालणि आपि लगा ॥२६॥
>
> (आसा म १ पट्टी लिखी)
>
> पपै पातिसाहु परमेसरु वेखण कउ परपचु कीआ ॥
> देखै बूझै सभ किछु जाणै अन्तरि बाहरि रवि रहिआ ॥२४॥
>
> (पट्टी लिखी)

ऐसे गुरुवाक्यों को पढ़ कर डाक्टर टरम्प ने यह लिख दिया कि सिक्ख धर्म मे सृष्टि के उत्पत्ति प्रलय सम्बन्धी कोई प्रयोजन-सिद्धि का नियम स्थित नही किया गया। समस्त रचना का जन्म मृत्यु रूप मे परमेश्वर की क्रीडा ही बताया है। टरम्प ने इस एक पक्ष को बहुत लम्बा खीच लिया है। इस विचार के खण्डन की हमे यहाँ आवश्यकता नही क्योंकि ऊपर हम लिख आये है कि गुरु साहिब सृष्टि तत्व के अश-अश मे ईश्वरीय सच्चाई और कोई विशेष प्रयोजन सिद्धि देखते थे, परन्तु इस क्रीडा भाव से भी हम विमुख नही हो सकते। गुरु साहिब ने परमात्मा को अच्छा खिलाडी बाजीगर कहा है। अच्छा खिलाडी तगदिल नही होता। बदला नही लेता, साथियो की भूलो का सशोधन कर के उनका नेतृत्व करता है। परमेश्वर का यही व्यवहार जीवो के साथ है। वह अपने कर्तव्य की पालना करता है और हमारे अवगुणो को नही देखता।

उपर्युक्त समस्त विचार अकाल पुरुष के उन गुणो को दिखाने के लिए जो सृष्टि रचना सम्बन्धी प्रकट होते हैं, यदि सक्षिप्त करें तो इस प्रकार हैं। अकाल पुरुष सृष्टि का रचयिता है। यह कर्तृ भाव कुम्हार के बर्तन घडने वाला नही, प्रत्युत **ईश्वर** समस्त ही कारण स्वय ही स्वय है। चार प्रकार के कारणो मे से कोई भी परमात्मा से बाहर नही है। सृष्टि रचना की यह विचार अवस्था, कुरान तथा बाईबल मे भी है। परन्तु गुरु साहिब ने ईश्वर को सृष्टि का स्रोत, मूल, तथा आधार भी बताया है और इस विचार का सुचारु रूप ईश्वर को पेड या तरुवर कहने मे है, परन्तु इस भाव को वर्तमान विकासवाद, उपजाऊ उत्कर्ष आदि की वैज्ञानिक थियूरियो से नही मिला सकने, क्योंकि विज्ञान पदार्थ से नीचे ऊपर नही होता और गुरु साहिब के लिए यह सब कुछ ब्रह्म रुप है चेतन सत्ता का प्रकाश है। ससार की रचना के पश्चात् अकाल पुरुष इसे सभालता है, सासारिको की पालना के लिए नियम पहले ही रच रखे हैं और उनके अनुसार सांसारिक सम्बन्ध चल रहा है। ससार को सवारने और सुन्दर बनाने वाला कोमल कलाकार भी वही है। इसी लिए नियमानुसार पुराने जरजर होकर विनष्ट हो जाते हैं और नए कोमल सुन्दर आकार उनका स्थान ले लेते हैं। ईश्वर सब को जीवन देने वाला, जीवन दाता, जग-

जीवन है। जीवन का स्वामी प्राणपति है। परन्तु इन सूझो एव प्रयत्नो के बावजूद अकाल पुरुष के काम मनुष्य की समझ के अन्तंगत नही है। वे अगम्य अदृष्य है और मनुष्य को वह जादू के खेल प्रतीत होते हैं। वह जादूगर ईश्वर अपनी इच्छानुसार क्रीडा करता है, खेलता खिलाता है, परन्तु कोई बात विना नियम के, बिना हिसाव के और क्रमहीन नही है। वह सब से वडा प्रबन्धक और वाजीगर है।

४. भीतर कि बाहर ?

Transcendent or Immanent ?

अब प्रश्न यह है कि सृष्टि को रचकर अकाल पुरुष इस से अलग होकर रहता है या इस मे हो ? इस विषय पर हजारो वर्षों से विचार होते रहे है और अभी तक सब को तुष्टि करने वाला हल नही मिल सका। हमने यहा इस समस्या के हल ढूढने का प्रयत्न नहो करना, हम केवल यह बतायेंगे कि गुरु साहिब ने इस विषय पर क्या कुछ कहा है, या इस प्रकार कहे कि हम ने यहा यह जानना है कि अकाल पुरुष के नामो मे से कौन कौन से नाम इस विषय पर क्या क्या प्रकाश डालते हैं ?

प्रकृति के पुजारी हिन्दु ने प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक वस्तु मे ब्रह्म होने का डका बजाया। इसलिए वाहिगुरु परमात्मा हिन्दु पुस्तको मे इमेनैन्ट—अन्तर, घट घट अन्तर है। दूसरी ओर अल्ला तआला बहुत ऊचा, ऊचे से ऊचा है, ऊचे आकाशो मे है, इसलिए वह ट्रांसेंडेंट है, सब से और बाहर निर्लिप्त है।

उलझन तो यह हैं कि वह ईश्वर एक अप्राधो और पापी पुरुष के शरीर मे किस पर निवास कर सकता है। फिर वह सत महा पुरुष ईश्वरीय आत्मा वाले नेक ईश्वरीय व्यक्ति से बाहर किस प्रकार रह सकता है या ऐसे व्यक्ति का हृदय उस से किस प्रकार खाली रह सकता है ?

इन उलझनो का हल दोनो विचारो का समझौता था। पीछे आने वाला महापुरुष स्वाभाविक रुप मे पहले विचारो के अन्तर से लाभ उठा कर उन का मेल बतायेगा। ऐसा ही प्रयत्न हम गुरवाणी मे देखते हैं।

ईश्वर भक्त के लिए और 'हमाऊस्त' की समस्या को मानने वाले के लिए, भाव यह कि दोनो के लिए परम ब्रह्म इमेनैंट है—अन्तर-व्यापक है। परन्तु दोनो मे बुनियादी अन्तर है। भक्ति-भावना वाला विचार तो ईसाइयो और मुसलमानो मे प्रचलित है। ईश्वर ने अपने आदेश द्वारा सृष्टि की रचना की और रचकर स्वय बाहर बैठ कर अपना आनन्द देखने लगा। उसकी आज्ञा तो सर्व व्यापक है, आदेश से बाहर कोई नही, परन्तु उसका अस्तित्व बाहर है अर्थात् आज्ञा के रूप मे वह घट-घट अन्तर इमेनैन्ट है और हाकम या हुकमी होने के कारण वह सर्वोच्च एव निर्लिप्त है। गुरु साहिब का मत यह है कि अपनी इच्छानुसार अकाल पुरुष जब गुण धारण करता है अथवा सगुण बनता है तो 'दुनाआउ माफीहा' सृष्टि पर जो कुछ उसमे है सब आकार धारण कर लेते हैं और सब उसी अकाल पुरुष का प्रकाश है। परन्तु यह सगुणता की क्रिया सम्पूर्ण अकाल पुरुष को समाविष्ट नही करती। वह सृष्टि से बहुत बडा, ऊचा भी है। जैसे कहे आकाश प्रत्येक वस्तु मे है और प्रत्येक वस्तु आकाश (Space) मे है, परन्तु समस्त ब्रह्माण्ड आकाश को अपने मे समाविष्ट करके उस समस्त को समाप्त नही कर देता, असीम आकाश बाहर भी है। इसी प्रकार ब्रह्म है। प्रत्येक वस्तु मे है परन्तु परम ब्रह्म ब्रह्माण्ड से परे भी है। अब हमने अन्तर बाहर के भाव को बताने वाले महावाक्यो का विचार करना है।

सब हू से बाहर !
Transcendent

ईश्वर संसार से बाहर है इसलिए उसे 'निर्लिप्त' कहा है। संसार अथवा सृष्टि की रचना तीनो गुण रजो, तमो, सतो के भिन्न

भिन्न मेल के अधीन हैं, परन्तु अकाल पुरुष 'निर्गुण' है। सृष्टि उत्पत्ति-प्रलय का प्रभाव उसकी हस्ती पर कोई नही पडता। है भी ठीक। केवल ऐसा ही ईश्वर-भक्ति भावना का भाव उत्पन कर सकता है। यदि मैं—तू—वह सब ब्रह्म ही ब्रह्म है तो फिर कौन भक्ति करे? किसकी भक्ति करे और किस लिए भक्ति करे? भक्ति भावना मे ही गुरु साहिब ने परमात्मा को निर्लिप्त और निर्गुण जान कर ईश्वर को 'तू' कहा था। चाहे समस्त ज्योति उसकी है, सारा प्रकाश उसी के कारण है, परन्तु फिर भी वह 'परम ज्योति' है।

निर्लिप्ता के भाव को गुरु साहिब ने ईश्वर को हम से दूर होने के पदो मे भी बताया है। ईश्वर 'दूर' बहुत दूर है। दूर से दूर अपरमपार है। चीनियो ने तो उसे कहा ही आकाश था। परन्तु इस पद के दो भाव थे· एक तो यह कि वह बहुत ऊचा है। दूसरा यह कि सत्कार रूप मे वे ईश्वर का नाम नही लेना चाहते थे। जसे कह दिया जाता है सरकार याद करती है, अर्थात् अमुक राजा या अफसर बुलाता है। यहा सत्कार के कारण बडे का नाम नही लिया, केवल सरकार कह दिया। इसी प्रकार 'अदालत' 'दरबार आदि के पद भी प्रयुक्त किए जाते हैं। गुरु साहिब ने भी कई शब्द महानता प्रकट करने वाले प्रयुक्त किए हैं। एक स्थान पर ईवश्र के लिए 'आकाश" का शब्द प्रयुक्त किया है। अकाल पुरुष की महानता को कई और पदो से भी प्रदर्शित किया है। सबसे महान बैकुठ मे निवास करनें वाला परमार्थ आदि कहा है, उसकी महानता को 'मालिक, 'साहिब', 'जगन्नाथ', 'नरहि-नरिन्द, 'नरपति', 'जगदीश', 'त्रिभवधनी' आदि नामो से प्रकट किया है। यद्यपि इन नामो मे सामाजिक दलबन्दी की झलक है, परन्तु हैं ये सब परमात्मा को मनुष्य से भिन्न करके ऊचा बताने वाले नाम—

अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखनहारा।।
नाना रूप धरे बहुरगी सभ ते रहे निआरा।।
(राग विहागडा म ६ पृ० ५३७)

सब ते ऊचा जा का दरबारु।।
सदा सदा ता कउ जोहारु।।

ऊचे ते ऊचा जा का थान ।।
कोट अघा मिटहि हरिनाम ।।

(भैरो म ५ पृ० ११४४)

गुरु साहिब ने परमात्मा को आदेश देने वाले का आदेश अकथनीय कह कर भी अगम्य अदृश्य बताया है और इस प्रकार भी मनुष्य से दूरी का भाव जताया है। उसके आदेश से सब आकार बनते हैं, परन्तु "हुकमु न कहिआ जाई।" भाव यह कि आदेश देने वाला अपनी रचना से बाहर रह कर आदेश को ही प्रचलित करताहै—रचना के स्वरूप मे। इसो विचार को ए० ऐन वाईटहैड ने नीचे लिखे शब्दो मे कहा है "ईश्वरीय आदेश मे कई सम्भावनायें होनी है, परन्तु वे समस्त सम्भावनायें प्रत्यक्ष अस्तित्व का रूप धारण नही कर सकती क्योकि यह हुक्म की क्रीडा (लीला) है और आदेशानुसार ही सम्भावनाओ से आकार बनते हैं। यह आदेश हमारी सूझ से बाहर है और कौन सी सम्भावना कौन सा रूप (आकार) धारण करेगी तथा क्यो और कैसे ? यह विचार का विपय नही है।" परन्तु यह वाइट हैड वाला मत विशुद्ध ट्रासनैन्स का है। अर्थात् इस विचार से ईश्वर सृष्टि रचना से सदा ही निलिप्त रह कर बाहर हो रहता है। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि जिस प्रकार शक्ति-भावना के लिए ऊचे से ऊचे ईश्वर की आवश्यकता है उसो प्रकार मे हो "समोप से समीप" "घट घट महि हरिजू" की भो आवश्यकता है। यह हमारे मानसिक स्वभाव के कारण भो है। और इस को आवश्यकताओ के कारण ही यह समस्त दिखावे मात्र विरोधी नाम अस्तित्व मे आए तथा अब समीप से समीप ईश्वर को बताने वाले नामो की आवश्यकता है

Immanent

तिम से भिन्न नही को थाउ ।।

मारगन लिखता है कि हम ईश्वर को ऊचे से ऊचा और दूर से दूर कहते हैं। परन्तु जितनी देर तक हम उसको सत्ता का आनन्द अपने

भीतर यह अनुभव न करें और जिननी देर तक हमे यह अनुभव न हो कि हम किसी न किसो प्रकार वास्तव मे वाहिगुरु के अश है हमे कारण-कार्य का उचित और स्पष्ट ज्ञान नही हो सकता और न ही हमे यह पता लग सकना है कि हमारे अस्तित्व का और हमारे विकास का साधन परमात्मा ही है। मारगन को यह कहने की आवश्यकता अपने विकास वादी मत को पुष्टि के लिए पडी। इसी प्रकार सूफी मत को परमानन्द प्राप्ति तथा अद्वैत वेदात का ब्रह्म रूप होना सम्भव नही है जितनी देर कि हम परमात्मा को सर्वव्यापक और घट घट मे निवास करने वाला न माने। परमात्मा की अद्वैतवादी एकता और सर्वव्यापकता को बताने वाले गुरबाणी मे आए कई नाम तीन प्रकार के भाव स्पष्ट करते हैं। एक तो वे नाम हैं जो यह बताते हैं कि परमात्मा प्रत्येक स्थान पर रमा हुआ है, दूसरे वे नाम है जो ब्रह्माण्ड की और ब्रह्म को अभेदता बताते है, अर्थात 'हमाऊम्त' का भाव बताते हैं और तीसरा भाव यह है कि परमात्मा वास्तव मे प्रत्येक वस्तु का वास्तविक तत्व है। प्रत्येक अस्तित्व का स्रोत है (हेतु है)।

पहला भाव मानने वाले नाम ईश्वर को समस्त ससार की ज्योति बताते हैं। वह आत्मा है, सर्व ज्योति है। भाव यह कि ब्रह्माण्ड का जीवन तत्व सत्य है और प्रकाश का स्रोत है। सर्वत्र रमा है, 'नाम है 'राम' है मौला तथा सर्वात्मा है, सर्व निवासी है,'तेरे ही ते तेरे हैं'। वह भोगी है, अर्थात् सृष्टि रचना की प्रत्येक वस्तु मे होकर उसका रस प्राप्त करता है। स्वय रसिया भी है और रस भी है।

टरम्प लिखता कि हम गुरु ग्रथ मे से दो प्रकार का पैन्थीइजम हमाउस्त-ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म' भाव देखते हैं। एक तो स्थूल रूप मे और एक सूक्ष्म रूप मे। स्थूल भाव तो प्रत्येक वस्तु को ब्रह्म समझता है और ससार केवल उस ब्रह्म का फैलाव(प्रचार) ही है तथा सूक्ष्म अभेदभाव के अनुसार ब्रह्म और जीव के सूक्ष्म भेद को मानना है एव साधरण स्थितियो मे यह अद्वैत भक्ति का रूप धारण करके पैन्थोइजम (अभेदवाद) के स्थान पर थोयइजम (एक-ईश्वर-पूजा) के अधिकतर समीप है।

दूसरी ओर कारपैन्टर कहता है कि गुरु साहिब वहुधा अभेदवादी है। जीव-ईश्वर मे वे कोई अधिकतर न मिल जाने वालो

दूरी नही डालते। मैकालिफ साहिब ने पैथोइजम और थीयइज़म के परस्पर विचार के पश्चात् इस प्रकार लिखा है —कोई धार्मिक प्रवर्तक भी थीयइज़म (एकेश्वर पूजा) को पैन्थीइजम (अभेदवाद) मे भिन्न करने मे सफल नही हुआ। गुरुबाणी के कई शब्दो मे पैन्थीइजम बिल्कुल स्पष्ट रूप मे लिखा है और कई अन्य शब्दो मे उपादान कारण मादे को कर्ता पुरुष से विभिन्न बताया है परन्तु साथ यह भी कहा है कि यह मादा कर्ता पुरुष के बीच ही मे से उत्पन्न हुआ है। चाहे अकाल पुरुष मे विश्वास रखना धार्मिक पक्ष मे और अभेदवाद दार्शनिक पक्ष मे सम्मिलित है और एक अकाल मे विश्वास रख कर उसकी पूजा करना ईमान मे शामल है और मैं ईश्वर हू या तूं ईश्वर है अथवा हमाऊस्त आदि कहना धार्मिक दोष है परन्तु फिर भी सर्वव्यापक एव असाम देशकाल से रहित हस्ती को अक्षरो द्वारा प्रकट करना कठिन एव असम्भव है और इसी कारण पारमार्थिक तथा व्यावहारिक साहित्य मे महाँ पुरुषो एव साधारण लेखको ने धर्म तथा दर्शन को मिला कर प्रस्तुत किया है।" (पहली पुस्तक पृष्ठ ६२ उत्थानिका)

बाईबल मे भी उक्त विचार सम्बन्धी कठिनाइया आती हैं और दोनो प्रकार के विचार बताये गए हैं। लिखा है —"क्या अकाल पुरुष परमात्मा धरती और अकाश मे भरपूर नही है?" 'वह ईश्वर जिस के वश मे हमारा जीवन है और हमारा समस्त कार्यभार है।" पूर्व पश्चिम के दार्शनिक साहित्य मे अभेदता "पैन्थीइज़म' का विचार प्राय प्रचलित है। परन्तु फिर भी गारडन ने पश्चिम अभेदवाद तथा पूर्वी अभेदवाद का अन्तर इस प्रकार लिखा है—"पश्चिमी अभेदवाद तो ईश्वर को सृष्टि और प्रकृति मे रमा हुआ मानता है और भारतीय मत के अनुसार सृष्टि ईश्वर मे है। युरोपीय मत पर सम्भवत कोई दोष न आ जाए यदि कह दिया जाए कि यह मत अपनी दृष्टि ससार पर रखता हुआ ईश्वर को ससार के बीच समझता है। भारतीय मत के लिए ब्रह्म के बिना अन्य कुछ है ही नही। यदि यह मत सृष्टि आदि का विचार करता है तो केवल इसलिए कि क्रियात्मक जीवन मे इससे बाहर गुजारा नही और सृष्टि के अस्तित्व से विमुख नही हुआ जाता। यह बात तो ठीक है कि

इस प्रकार से भारतीय मत ब्रह्म की एकता, निर्लिप्तता को बनाये रखता है तथा ससार को भ्राति और घोखा कह कर अन्तरीत्र नियायक विरोध से बच जाता है, इसलिए भारतीय मत का नाम यदि 'अभेदवादी एकता' कह दे तो सम्भवत सच्चाई के अधिकतर समीप हो।"

परन्तु गारडन साहिब का किया गया अन्तर गुरबाणी मे बताये अभेदवाद से नही मिलता। कारण यह कि गुरु साहिब सृष्टि के अस्तित्व को भ्रम एव धोखा नही बताते। जैसे पहले भी बताया गया है गुरु साहिब ब्रह्माण्ड को अकाल पुरुष का अग समझते हैं। अकाल पुरुष सब प्रकार से सम्पूर्ण है इसलिए वह पूर्ण सत्य है, सृष्टि अकाल पुरुष के खेल का एक अग है, इसलिए इसकी सत्यता भी अधूरी है, पूर्ण नही। ईश्वर सृष्टि मे उसी प्रकार है जिस प्रकार एक परिवार अपने तत्व मे होता है और सृष्टि भी ईश्वर मे उसी प्रकार है, जिस प्रकार एक तत्व परिवार मे होता है। पीछे दिए गए शून्य एव १ आदि के दृष्टात को फिर ले। शून्य तो निर्गुण ब्रह्म है। अलख, अगम अगोचर और भय से रहित। परन्तु जब शून्य का एक बना तो सगुण हो गया। यह एक सीमा मे आ गया, इसका मूल्य एव अनुमान निश्चित हो गया। शून्य असीम है, उसकी सम्भावनायें अनन्त हैं। शून्य कुछ का कुछ बन सकता है। इन अनन्त सम्भावनाओ मे अमल से शून्य का एक बनना एक सम्भावना का अमल आना है। शून्य एक मे है परन्तु बहुत थोडी। अनन्त सम्भावनाओ मे से एका एक सम्भावना जो हुआ, इसलिए उतना ही शून्य एके मे है। एका भी शून्य मे है, परन्तु क्या एका सम्पूर्ण शून्य के बराबर है, अथवा समस्त सम्भावनाओ को समेटे बैठा है ? नही। शून्य के बहुत थोडे भाग को एके ने घेरा है। यही निर्गुण सगुण ब्रह्म ब्रह्मण्ड, जीव-ईश्वर की अभेदता है। इन्ही अर्थो मे ब्रह्म को गुरबाणी मे सगुण, खलक, स्वय आप, सो अह सर्वज्ञ आदि कहा है। इसमे जीव ब्रह्म की अभेदता अवश्य है परन्त समानता नही ह।

अभेदवादी मे पुण्य पाप की समस्या बहुत रुकावट डालती है, यदि सब कुछ ब्रह्म हो ब्रह्म है। प्रत्येक हृदय मे वह आप ही आप है तो फिर पाप कहा से आया ? इससे इन्कार नही किया जा सकता कि

पापी एव अधर्मी जीव भी पर्याप्त हैं । इस पाप एव अधर्म का निकास (स्रोत) क्या है ?

ईश्वर भय से रहित है, उसके समीप होने पर मनुष्य डरता है । उसके समीप होने पर पाप से नही डरता । कही इस ईश्वर के सग होने से कोई पण्डित है, कोई मूर्ख है, कोई अच्छा कोई बुरा ।

गउडी महला ५ (पृष्ठ २०६)

उहु अबिनासी राइआ ।।

नरभउ सगि तुमरै बसते इहु डरनु कहा ते आइआ ।।१।।रहाऊ।।
एक महलि तू होहि अफारो एक महलि निमानो ।।
एक महलि तू आपे आपे एक महलि गरीबानो ।।१।।
एक महलि तू पण्डितु बकता एक महलि खलु होता ।।
एक महलि तू सभु किछु ग्राहजु एक महलि कछु न लेता ।।

... .. • ... ...

सोरठ महला ५ (पृष्ठ ६१३)

हम मैले तुम ऊजल करते हम निर्गुन तू दाता ।।
हम मूरख तुम चतुर सिआणे तू सरब कला का गिआता ।।१।।
माधो हम ऐसे तू ऐसा ।।
हम पापी तुम पाप खण्डन नीको ठाकुर देसा ।।रहाउ ।।

• • ...

अकाल पुरुष के समीप मे समीप और दूर से दूर होने के कारण ऐसी उलझने आ पडती हैं कि इनका सरल हल नही मिल सकता । सम्भवत इस प्रकार कहने से काम चल जाए कि मन की कई अवस्थायें हैं । एक दृष्टिकोण से यह बात कही जा सकती है और दूसरे दृष्टिकोण से दूसरी । वास्तव मे इनमे कोई विरोध नही है । व्हाइट हैड ने अपनी पुस्तक "रिलेजन इन दी मेकिंग' मे इस समस्या को टाला ह ईश्वर को पुण्य पाप से एक ओर करके उसका काम अटल नियमो को प्रयोग मे ही लाना है । वह एक आमिल है कादिर नही है । परन्तु यह विचार मनुष्य का नेतृत्व करने वाले धर्म मे नही समा सकेगा । वहा तो सर्वशक्तिमान परमात्मा की आवश्यकता है । गुरु साहिब का कथन है कि पाप और अधर्म हमारे अह के कारण है ।

यह अह बन्धनो मे है, इसलिए वह स्वतन्त्र नही है, परन्तु ये बन्धन कहा से आए ? यहा फिर वही एक वाला दृष्टात ले। भला एक ने अपना मूल्य क्यो एक मे ही सीमित कर लिया। एके को भी चाहिए था कि शून्य को भाति अनन्त सम्भावना वाला रहता। परन्तु यह कथन ही असम्भव एव असत्य है। जो हो ही एक गया उसने अपनी कीमत (मूल्य) नियत कर दी। वह इस नियत कीमत से अधिक और थोडा नही हो सकता। शून्य अनन्त है, अथवा कुछ भी नही। ये दोनो गुण शून्य से एक का बनावट मे है, स्वभाव मे है। इनके ये गुण है, लक्षण है। इन गुणो के अभाव से उनकी हस्ती का अभाव है। यदि एकत्व भाव न रहा तो एका नही रहेगा और शून्य भाव न हुआ तो शून्य नही रहेगा। इसी प्रकार जीव और ब्रह्माण्ड की सीमाबन्दी है। जीव-ब्रह्माण्ड ब्रह्म नही हैं। ये असीम नही हैं। ये तत्व है, परिपूर्ण नही हैं, अपूर्ण है सम्पूर्ण नही। अपूर्णता के साथ पुण्य पाप, अहम और उससे सम्बन्धित गुण आ जाते हैं। इन सब मे ब्रह्म है परन्तु सम्पूर्ण रूप में नही। ब्रह्म के अस्तित्व के कारण अकाल पुरुष को गुरु साहिब ने गौहर कहा है, सभी चीज़ो का तत्व कहा है। जो दिखाई देता है उसका तत्व भी ईश्वर है। दिखाई देने वाला नष्ट हो जाएगा, परन्तु तत्व अविनाशी है। ऊपर लिखे विचारो को पुष्टि करने वाले महावाक्य गुरबाणी मे अनन्त है। कुछ एक नीचे लिखे जाते है—

(क) राजन महि तू राजा कहीअहि भूमन महि भूमा ।।
ठाकुर महि ठकुराई तेरी कोमन सिरि कोमा ।।१।।
सूरन महि सूरा तू कही अहि भोगन महि भोगी ।।
ग्रसतन महि तू बडो ग्रसती जोगन महि जोगी ।।३।।
करतन महि तू करता कहीअहि आचारन महि आचारी ।।
साहन महि तू साचा साहा वापारन महि वापारी ।।४।।८।।

(गुजरी म ५ पृष्ठ ५०७)

(ख) मै बहु बिधि पेखिउ दूजा नाही री काऊ ।।
खण्ड दीप सभ भीतरि रविआ पूरि रहिउ सभ लोऊ ।।
।।२।।२।।३३।।

एकै रे हरि एकै जान ।।
एकै रे गुरमुखि जान ।। १ ।। रहाउ ।।

काहे भ्रमत हउ तुम भ्रमहु न भाई
रविश्रा रे रविश्रा स्रब थान ॥२॥१॥३४॥

(देव गन्धारी म ५ पृ० ५३५)

(ग) सगल बनसपति महि बैसन्तरु दूध महि घीश्रा ॥
ऊच नीच महि जोति समाणी घटि घटि माधउ जीश्रा ॥
॥२॥१॥२६॥

(सोरठ म ५ पृ० ६१७)

(घ) काहे रे बनि खोजनि जाई ॥
सरब निवासो सदा अलेपा तोही संगि समाई ॥१॥रहाउ॥
पुहप मधि जिउ बासु बसत है मुकर माहि जैसे छाई ॥
तैसे ही हरि बसे निरन्तरि घट ही खोजहु भाई ॥

(धनासरी म ६ पृ० ६८४)

(च) जिउ पसरी सूरज किरणी जोति ॥
तिउ घटि घटि रमइश्रा उति पोति ॥४॥१॥

(बसन्त म ४, पृ० ११७७)

भीतर भी और बाहर भी

जैसे कि इस अध्याय के आरम्भ मे कहा गया है कि गुरु साहिब ने अकाल पुरुष को एक ही शब्द तथा एक एक पंक्ति मे अन्तर एव बाहर Immanent तथा Transcendent दोनो प्रकार ही कहा है। वह संसार का कर्ता भी है और संसार मे समस्त भोगो का भुक्ता भी है। यूरोप के पूर्वी देशो में सालवाकियो ने ईश्वर को 'बोग' कहा था, जिस का भाव था परमात्मा अपनी रचनाओं मे होकर अनन्त प्रसन्नता प्राप्त करता है और अनेक विधियो से रसास्वादन करता है। गुरु साहिब ने कहा है —

श्री राग महला १ (पृ० २३)

आपे रसीश्रा आपि रसु आपे रावणहारु ॥
आपे होवै चोलडा आपे सेज भंतारु ॥१॥
रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिश्रा भरपूरि ॥१॥रहाउ॥

आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु ॥
आपे जाल मणकडा आपे अन्दरि लालु ॥२॥
आपे बहुविधि रगुला सखीए मेरा लालु ॥
नित रवै सोहागणी देखु हमारा हाल ॥३॥
प्रणवै नानकु बेनती तू सरवरु तू हसु ॥
कउलु तू है कवीआ तू है आपे वेखि विगसु ॥४॥ (५॥

उपर्युक्त पक्तियो से अकाल पुरुष की प्रत्येक रूप मे अभेदता प्रकट होती है । आनन्द, आनन्द भोगने वाला तथा आनन्द भोगने वाले के मन मे आनन्दमय स्थिति तीनो अवस्थाये ही परमात्मा स्वय आप है। उसके बिना और कुछ नही है। कमल के फूल का अलकार गुरु साहिब ने प्राय प्रयुक्त किया है और यह अलङ्कार गुरु साहिब के अकाल पुरुष को सब के अन्तर और सबसे बाहर कहने के भाव को भली प्रकार पुष्ट करता है। कमल पानी के अन्दर भी है और बाहर भी। पानी उसके पत्तो पर पडता है, परन्तु वह बिना भीगें हो रहते हैं। इसी प्रकार मुरगाबो के पखो की स्थिति है। एक ही ज्योति है और एक ही प्रकाश है। परन्तु जब किसी ज्योति का एक भाग किसी एक स्थान किसी उपाय के कारण अलग हो जाता है तो वह अलग ज्योति सर्वज्योति के साथ अभिन्न भी है तथा भिन्न भी। वह अलग ज्योति सर्वज्योति का अग है परन्तु सर्वज्योति नही है। यही दशा ब्रह्म तथा ब्रह्माण्ड की अथवा जीव एव परमात्मा की है। इन्ही भावो से ही ईश्वर को अलिप्त, निर्लिप्त, निरालम तथा निरजन कहा है। वेदांत शास्त्र मे भी कवल का अलकार प्रयुक्त हुआ है और यही भाव ही प्रकट किया गया है कि अकाल पुरुष सृष्टि को रचना करके उस मे रहता हुआ भी बाहर है— निर्लिप्त है। बाह्य ईश्वर को ऊचे से ऊचा तथा दूर कहा था और आन्तरिक भाव को समीप से समीप कहा था। घट घट मे कहा था। यहाँ दोनो भावो को जोड कर भी कहा है स्वय समीप स्वय दूर। दोनो ही विचार एक ही पक्ति मे बताए हैं निरगुण आप सरगुण भी उही। धनासरी राग के आरती वाले शब्द मे ईश्वर की हजारो आखे कही है तथा साथ ही आखो से रहित कहा है,हज़ारो पाव कहे हैं और पैरो के विना भी, हज़ारो नाक और नाक से खाली भी.—

सहस तव नैन नन नैन हहि तुहि-
कउ सहस मूरति नना एक तो ही ॥
सहस पद बिमल नन एक पद-
गध बिन सहस तव गध इव चलत मोही ॥

भाव वह कि दोनो विचार साथ साथ प्रकट करके पूर्वी पश्चिमी भावो की एकता दिखाई है, भोगी-अभोगी, मुक्ता-अमुक्ता कह कर अकाल पुरुष की आश्चर्यमय क्रीड़ा की झलक दिखाई है।

ग्यारहवाँ अध्याय

अन्तिम (परम) सत्यवादक नाम

क्या अकाल पुरुष का ज्ञान सम्भव है ?

ब्रह्म तथा ब्रह्मण्ड की तह खोजते २ कई विद्वान इस परिणाम पर पहुच जाते है कि ईश्वर को जाना ही नही जा सकता। ईश्वर तो ईश्वर, मानव मस्तिष्क कई प्रत्यक्ष ससार की घटनाओ को भी पूर्ण रूप से समझने मे असमर्थ है और स्थूल ससार सम्बन्धो ज्ञान जिसे 'विज्ञान' कहा जाता है अनेक काम मे पूरी तरह सफल नही हो रहा और विद्वानो ने 'विज्ञान' को छायावाद* (प्रतिबिम्ब) भी कहना आरम्भ कर दिया है। ऐसे शब्द अब वैज्ञानिक लिखने लग पडे है :— "विज्ञान की अन्तिम सच्चाईया आन्तरिक आत्मवेताओ की बोली ही कही जा सकती हैं या दार्शनिको की भावनाओ द्वारा या कवियो की सजीव कल्पनाओ के द्वारा या फिर गम्भीर गणित-विद्या के बारीक (सूक्ष्म) चिन्हो द्वारा। गहन सत्यता के असीम तत्व को अन्य किसी प्रकार देखा नही जा सकता।" ये शब्द धार्मिक मण्डल मे आत्मिक झलकियो के सम्बध मे और भी सगत हैं। 'जपुजी' साहिब मे गुरु साहिब लिखते हैं कि अक्षरो द्वारा नाम लिए जा सकते है, अक्षरो द्वारा गुणों की प्रशसा की जा सकती है, अक्षरो द्वारा ज्ञान, सूक्ष्म विद्या तथा कोमल कला भी समझे जा सकती है। ये सब बाते

---

* देखें जनवरी 1937—हिबर्ट जनरल' मे जान ओसीनख का लेख — Mysticism of Science.

अक्षरो द्वारा लिखने को बोलने की आम प्रथा है परन्तु ये अक्षर उस हस्ती के सम्बन्ध मे कुछ लिख बोल नही सकते जिस हस्ती ने ये रचे है। उसके लिए ये अक्षर नही आ सकते —

अखरी नामु अखरी सालाह ॥
अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥
अखरी लिखणु बोलणु बाणि ॥
अखरी सिरि सजोगु वखाणि ॥
जिनि एहि लिखे तिसु-सिरि नाहि ॥
जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥

(१६ पौडी)

गुरबाणी में इस भाव के अन्य भी बहुत शबद आए हैं, जिन से न केवल अकाल पुरुष वाहिगुरु की अकथनीय तथा अगाध कथा का भाव ही प्रकट होता है, अपितु वह झलक जो आत्मा-परमात्मा तत्व के मेल की है, अथवा वाहिगुरु दर्शन की है, वह भी अकथनीय तथा न लिखो जाने वाली है। हरबर्ट सपैन्सर अपनी ससार प्रसिद्ध पुस्तक 'फर्स्ट प्रिन्सीपल' मे लिखता है कि "वह सत्ता जिसका कि यह ससार रचा हुआ है, हम से सर्वथा अगोचर (अदृश्य) है तथा मानव सूझ से दूर है।" स्पैन्सर का कथन है कि विज्ञान जो कुछ जानता है या जान सकता है वह ससार की अदृष्ट मूल शक्ति नही है। यह आदि सत्ता न विज्ञान जान सकता है और न ही धर्म। जानने से भाव यहा बुद्धि का विषय बनने का है। धार्मिक मण्डल मे उस सत्ता के अस्तित्व का अनुभव तो हो सकता है। इसी आधार पर सपैन्सर कहता है कि चूकि मूल सत्ता सूझ से दूर है, इसलिए हमे नही चाहिए कि हम उसके कोई नाम रखे या अपने ही मन के प्रतिबिम्ब में से उसके कोई गुण ढूण्ढें। एक प्रकार से सपैन्सर गुरु साहिब के उस भाव के समीप आ गया है जो उन्होने अकाल पुरुष सम्बन्धो निर्गुण, अदृश्य, निराकार आदि शब्द कह कर बताया था। डेविड हियूम ने भी अपनी गोष्ठी मे ईश्वर को मनुष्य के कथन, सूझ बूझ से बाहर ही कहा है। अपने एक पात्र डीमिया के मुख से हियूम कहलाता है समस्त ज्ञान का तत्व यह है कि ईश्वर के सम्बन्धो मे मनुष्य अज्ञानी है।

मानव सूझ इतनी छोटी, निम्न एव अल्पज्ञ है कि अकाल पुरुष को वह सर्वथा ही नही जान सकती। ईश्वर सदा अदृश्य अगम्य, एव अकथनोय ही रहेगा। ईश्वर की अदृश्यता को बाईबल मे भी कई स्थानो पर बडे ज़ोर से पुष्ट किया गया है। वैदिक मन्त्रो मे अकाल पुरुष को अबूझ एव न मालूम कहा है। यहा तक कि ऋग्वेद के दसवे मण्डल का १२९वा मत्र जो नेषधो (निषिद्ध) के रूप मे प्रसिद्ध है इस परिणाम पर पहुचा है कि वास्तविक सत्य वस्तु का ज्ञान शायद परमात्मा को भी न हो। भाव यह कि कर्ता पुरुष को भो तत्व-सत्य ज्ञान से खाली होने का सन्देह प्रकट किया है? यह मत्र "अरबद नरबद धुन्दूकारा" से आरम्भ होने वाले मारु राग म १ के शब्द से बहुत मिलता है। परन्तु इस मत्र की अन्तिम पक्ति विलक्षण है। लिखा है कि "वह, जिससे यह सृष्टि उत्पन्न हुई उसने इसे बनाया कि नही? परन्तु सम्भवत आकाशो मे बैठा ऊचा ईश्वर यह सब कुछ जानता हो, कि वह भी नही जानता?" यह सन्देह गुरबाणी मे नही है "जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई" महावाक्य है। हाँ यह अवश्य कहा है कि उसकी गति-विधि वही जानता है, मनुष्य नही जान सकता। इस भाव को स्पष्ट करने वाले गुरु साहिब ने कई नाम प्रयुक्त किये है — जैसा कि असूझ, निरबूझ, गुप्त, गैबुल, गैब, अगाध, अगहु, अगहू, अगहूचा, अगम तथा अकथनीय आदि।

परन्तु वह ईश्वर जो सर्वथा ही नही जाना जा सकता, जिसके साथ मनुष्य का मेल स्थापित नही हो सकता, जो मनुष्य के समीप नही हो सकता तथा जिसके समीप मनुष्य नही हो सकता ऐसा ईश्वर जैसा हुआ जैसा न हुआ। धर्मो के लिए तो मेल वाले ईश्वर की, जाने जा सकने वाले परमात्मा की आवश्यकता है। व्यक्ति समस्त ससार को अपने मन मे ही देखता है तथा अपने मन द्वारा ही वह ईश्वर को अनुभव करता है। इसीलिए वह अबूझ तथा अदृश्य हस्ती को उचित (आवश्यक) स्थान पर टिकाता है और वहा से समस्त भावनाओ को पेवोद लगाता है। तभी तो प्रत्येक धर्म मे अकाल पुरुष को मनुष्य के लिए समीप से समीप करके दिखाया है।

ईश्वर जाना जा सकता है, पूर्ण पूर्ण से नही अपितु अपूर्ण रूप से बुद्धि तथा अनुभूति Reason and Intuition

अबूझ तथा असूझ परम सत्यवादक हस्ती को धर्म मानव ससार मे ले आता है तथा मनष्यो मे विराजमान होता हुआ वह मानव रग मे कुछ जाना भी जा सकता है। चाहे वह है तो अबूझ एव अदृश्य और समग्र रूप मे मानव ज्ञान का विषय नही हो सकता, परन्तु फिर भी तात्विक रूप मे उसकी कुछ न कुछ अनुभूति मनुष्य को अवश्य होती है। इस प्रकार से धर्म मे ईश्वर के ज्ञान–अज्ञान या मारफत तथा अनभिज्ञता को जोडा जाता है तथा दोनो के बीच वाली स्थिति को धर्म अपनाता है। परन्तु यह तात्विक ज्ञान एव अधूरी सूझ जो आरफ या ब्रह्मज्ञानी को प्राप्त होती है, सिक्ख धर्म के अनुसार यह बुद्धि या दलील से नही आती। यह अलौकिक (ईश्वरीय) ज्ञान प्राप्त करने के लिए सबसे पहली आवश्यक बात तो सिक्ख धर्म के अनुमार है अकाल पुरुष की कृपा दृष्टि तथा दयालुता। जिस प्राणी पर वाहिगुरु अकाल पुरुष की कृपा होती है उसे इस परम पद की अनुभूति होती है। जिसे वह जानता है, वही जान सकता है —

जिस नो तू जाणाइहि सोई जनु जाणै ॥

(आसा महला ४ पृ० ११)

तू जाणाइहि ता कोई जाणै ॥

(वडहस महला ५ पृ० ५६३)

इसीलिए गुरबाणी मे स्थान स्थान पर प्रार्थनाए है। विवेक विचार के दान के लिए एव परमात्मा को सूझ के लिए प्रार्थनाए। यह अनुभूति तथा ज्ञान जब प्राप्त होता है तो बुद्धि या ज्ञानेन्द्रियो द्वारा नही आता। यह आता है अनुभव द्वारा। इसी लिए वाहिगुरु अकाल-पुरुष को दशमेश जी ने 'अनुभव प्रकाश' कहा है (जापु साहिब का पहला छद)। ईश्वर के समीप हमे हृदय ले जाता है मस्तिष्क नही, हाँ हृदय के उद्वेग तथा अनुभूतियो को मस्तिष्क विवेक बुद्धि द्वारा परिपक्व (दृढ) करता है। फ्रास के दार्शनिक पासकल ने कहा है कि हृदय की दलीलें ऐसी है जिन्हे बौद्धिक ज्ञान नही जान सकता। फ्रास के एक अन्य प्रसिद्ध विचारक विद्वान बर्गसौन ने अनुभवी ज्ञान पर

बहुत जोर दिया है और सत्य वस्तु के शुद्ध ज्ञान के लिए बुद्धि को नाकारा (असफल) बताया है। बर्गसौन लिखता है कि प्रत्येक वस्तु को, चाहे दृश्य है या अदृश्य, जानने के दो तरीके हैं। एक विधि तो बुद्धि की है, जिसकी सहायता से हम जानने वाली वस्तु के आस पास रह जाते है और हमारा ज्ञान ऊपर ऊपर का ही होताहै। दूसरी विधि है अनुभव या हृदय को आतरिक शुद्ध भावनाओ द्वारा। इस विधि से हम वस्तु के अन्दर पहुच जाते हैं और प्रत्येक वस्तु हमारा अग नजर आती है और हमे उसका गम्भीर ज्ञान प्राप्त होता है।

गुरु साहिब बुद्धि को ज्ञान मण्डल मे से सर्वथा ही बाहर नही निकालते, चाहे कई पक्तियो से यह भाव खीच तान कर निकाला जा सकता है, परन्तु बुद्धि से अधिकतर वे अनुभव तथा हार्दिक अनुभूतियो पर जोर देते हैं।

जाइ पुछहु सुहागणी वाहै किनी बाती सहु पाईऐ ॥

जो किछु करे सो भला करि मानिऐ हिकमित हुकमु चुकाईऐ ॥

टैनीसन, प्रसिद्ध अग्रेजी कवि लिखता है कि बुद्धि की शुष्क एव सूखी दलीलो के विरुद्ध हृदय क्रोध मे आकर तिलमिला जाता है। बुद्धि तथा अनुभव मस्तिष्क एव हृदय की टक्कर ज्ञान प्राप्ति के लिए चिरकाल से चली आती है। यहा तक कि अन्तिम (परम) सत्य के ज्ञान के लिए दार्शनिक भी बहुत बार बुद्धि को छोड कर अनुभव की शरण लेते हैं। हमारा समकालीन दार्शनिक व्हाइट हैड कहता है कि बुद्धि तो तत्व वस्त के ज्ञान को छिन्न भिन्न करती है और हार्दिक अनुभूति उसे जोड कर, एक लडी मे पिरो कर समूचे का ज्ञान हमे देती है। यह हार्दिक आभास भी अनुभव का ही नाम है। पश्चिमी देशो मे छानवीन करने वाला मस्तिष्क तथा कारण-कार्य का विश्लेषण करने वाली बुद्धि पिछले दो सौ वर्ष प्रधान रहे है। परन्तु अब जैसे २ दृष्टिमान की खोज उन्हे आगे ही आगे लिए जाती है तो बुद्धि उनका घर पूरा नही कर सकती तथा वे अब अनुभूति ज्ञान का सहारा (आश्रय) लेने लगे है। सदाचारक जीवन मण्डल मे भी, किड्ड लिखता है, बुद्धि समूचे जीवन प्रवाह को अलग अलग मार्ग पर ले जाती है और एक सुचारु तथा सुगठित समूचे जीवन का रूप नही लेने देती।

बुद्धि अहकार तथा निजि-स्वार्थमय सदाचार सिखाती है। टैगौर जी ने भी लिखा था कि सम्‌ची एव परिपूर्ण वस्‌तु के ज्ञान के लिए हमे बुद्धि को अलग रख कर किसी आन्तरिक शक्ति की सहायता लेनी पडती है। यह आन्तरिक शक्ति टैगोर के अनुसार प्रकाशमय कल्पना Luminous Imagination है। कीटस, अग्रेज कवि ने कहा है "मुझे किसी वस्तु पर भी इतना विश्वास नही है जितना कि हार्दिक प्यार की पवित्रता तथा कल्पनापूर्ण सच्चाई पर है।"

वास्तव मे तो कल्पना एव अनुभव भिन्न भिन्न शक्तिया हैं। अनुभव तो हमे वस्तुओ की आन्तरिक सत्यता के साथ जोडता है तथा परम सत्य का ज्ञान देता है और कल्पना मे कुछ अस्थायी सिद्धात का अग भी होता है। दोनो मे कुछ साम्यता तो है क्योंकि दोनो ही इन्द्रीय ज्ञान एव दृष्टिमान से ऊपर जाते हैं तथा इनके पीछे परोक्ष वास्तविकता को देखते हैं तथा बौद्धिक दलीलो एव उक्ति-युक्ति दिखावे मे नही फसते। ईश्वरीय ज्ञान प्राप्ति के लिए ज्ञानेन्द्रियाँ एव बुद्धि बेचारे विवश हैं। प्रसिद्ध पजाबी कवि भाई वीर सिह लिखते हैं—

जिन्हा उचिआइयाँ तो 'बुद्धि' खम्भ साड ढट्ठी,
मल्लों मल्ली उथे दिल मारदा उडारियाँ,
प्याल अणडिठे नाल बुल्ह लग्ग जाण उथे,
रस ते सरूर चढे झूमा आउण पियारिया,
'ज्ञानी' सानू होडदा है 'वहिमी ढोला" आखदा ए
"मारे गए जिन्हा लाइया बुधो पार डारिया"।
"बैठ वे ज्ञानी बुद्धि-मडले दी कैद विच,
"वलवले दे देस' साडियाँ लग गइया यारिया"।

वास्तव मे बात यह है कि ब्रह्म ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नही है, इसलिए ज्ञानेन्द्रियो का विषय नही है, न ही प्रमाण ज्ञान है इसलिए बुद्धि का विषय नही है, वह तो परोक्ष ज्ञान है जो अनुभव तथा भावनाओ द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। जब मन आन्तरिक सत्ता से एकस्वर हो जाता है तो यह प्रकाश या अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त होता है। इसमे ज्ञान प्राप्ति के लिए किसी बोली चिन्ह या इन्द्रीय उत्तेजना की आवश्यकता नही है। यह ज्ञान रूप होने मे ही ज्ञान है। ज्ञाता-ज्ञान ज्ञेय का अभाव हो, तब यह प्राप्त होता है। इसलिए यह

बुद्धि के बल से सम्भव नही है। वस्तुओ की सत्यता का अनुभव एकता के भाव (अश) के जागने मे होता है। हम ज्ञान प्राप्त करने वाले अनुभूति ज्ञान मे सत्य का रूप हो कर वस्तु से एक रूप हो जाते हैं। ज्ञेय पदार्थ हम से भिन्न नही लगता, अपितु हमारा ही अपना आप लगता है, हमारे अपनतत्व का अग हो जाता है। दूसरे शब्दो मे अनुभूत ज्ञान कोई समस्याओ का ज्ञान नही, कोई नियमो की जानकारी नही, यह तो निजि स्वरूप का ज्ञान है। यह तो एक मानसिक अवस्था का नाम है, यह कोई ज्ञेय-पदार्थ के लक्षणो का विश्लेषण नही है। इस अनुभूत ज्ञान के सम्बन्ध मे बोली, दलील तथा मानसिक दृष्टिकोण बहुत नीचे रह जाते है, उनका दिया ज्ञान अनुभूत ज्ञान का छोटा रूप सा होता है। यही कारण है कि अनुभव द्वारा प्राप्त किया ज्ञान 'अकथनीय' है, कहने, सुनने तथा लिखने, बोलने मे नही आ सकता। परन्तु जाग्रत अनुभवी लोगो के लिए यह प्रत्यक्ष से भी अधिक है। यह 'प्रत्यक्ष प्रकाश है। इसीलिए गुरबाणी मे कहा है कि यह ईश्वरीय ज्ञान वेदो कतेबो मे नही, श्रुतियो सिमृतियो मे नही और अन्य किसी दार्शनिक शास्त्रो अथवा ग्रथो मे भी नही है।

ऊपर लिखे विचारो से यह परिणाम नही निकालना चाहिए कि सिक्ख धर्म मे बुद्धि के लिए कोई स्थान ही नही है। गुरु साहिब विवेक बुद्धि को धर्म का एक आवश्यक स्तम्भ बताते है। किड्ड का यह कहना है कि 'विवेक बुद्धि के सहारे बना धर्म एक वैज्ञानिक असम्भवता है' अर्थात् धर्म एव बुद्धि का मेल नही हो सकता, ये विचार गुरु साहिब के आशय से मेल नही खाते। यह बात तो ठीक है कि आत्मिक उन्नति के मार्ग पर चलने वाले जिज्ञासु के लिए श्रद्धा अत्यन्त आवश्यक है परन्तु उसकी श्रद्धा विवेक बुद्धि के तराजू पर भी पूरी उतरनी चाहिए। इसीलिए गुरु साहिब अकाल पुरुष से विवेक बुद्धि का दान मागते हैं

"हारि परिउ सुआमी कै द्वारै दीजै बुद्धि विवेका'॥

(सोरठ म ५ पृष्ठ ६४१)

गुरु साहिब तो यह बताते हैं, कि शुद्ध विचार से अकाल पुरुष की पूजा होनी चाहिए, विवेक विचार से ही प्रत्येक स्थान पर सम्मान प्राप्त किया जाता है। वे सिक्ख को अन्धविश्वासी नहीं बनाते

ग्रन्धे बाहरे किग्रा तिन सिउ कहीग्रै ॥

(गौडी म १ पृष्ठ २२६)

इसीलिए बुद्धिमत्ता से जीवन व्यतीत करना बताया है

सचै धरमै बाहरे ग्रगै लहहि न दादि ॥
ग्रकलि एह न ग्राखीग्रै ग्रकलि गवाईग्रै बादि ॥
ग्रकली साहिबु सेवीग्रै ग्रकली पाईग्रै मानु ॥
ग्रकली पडिकै बूझीग्रै ग्रकली कीजै दानु ॥
नानकु ग्राखै राहु एहु होरि गलां शैतानु ॥२०॥

(सारग सलोक म १ पृ० १२४५)

बुद्धि का प्रयोग जीवन के समस्त पक्षो मे ग्रावश्यक है, प्रस्तुत ईश्वर का ग्रनुभूत ज्ञान भी विवेक सहित होना चाहिए, विवेकी ही समस्त समस्याये समझ सकता है

बूझै बूझनहारु विवेक ॥

(गउडी म ५ सुखमनी पृष्ठ २८५)

इसीलिए गुरु साहिव बताते हैं कि वह जिज्ञासु जो विवेक बुद्धि के ग्राश्रय सत्य वस्तु की खोज जारी रखेगा उन्नति कर जाएगा तथा जो ग्राखे बन्द किए ग्रपने विचारो को ही श्रेष्ठ मान कर वाद विवाद करके झगडा करेगा वह नष्ट हो जाएगा .

सेवा सुरति रहसि गुण गावा गुरमुखि गिग्रानु बीचारा ॥
खोजी उपजै बादी बिनसै हउ बलि बलि गुर करतारा ॥

(मलार म १ पृष्ठ १२५५)

विवेक विचार से खोज करने वाला यदि ठीक ज्ञान प्राप्त कर ले ग्रौर उसे ग्रनुभूति के सहारे क्रियात्मक रूप मे ग्रात्मसात कर ले तो यह ज्ञान विचार ग्रात्मिक उन्नति के लिए बहुत सहायक है तथा यह विचार सत्य एव सदा स्थित रहने वाला है

थिरु नाराइणु थिरु गुरु थिरु साचा बीचारु ॥३४॥

(रामकली म १ पृ० ९३४)

यह सत्य विद्या, सत्य ज्ञान तथा सच्चा विचार गुरु–नारायण की भाँति ग्रटल तथा स्थिर है। इस ज्ञान वाले को ही वास्तविक ग्रर्थों मे पण्डित कहना चाहिए। पण्डित वह नही जिसने वेदो पुराणो को रटा हुग्रा है। पण्डित तो वह है जिसके मन मे धार्मिक ग्रथो का

गहन भाव बसा है और जिसके मन को सूझ मिली हुई है और क्रियात्मक जीवन उन आदर्शों पर व्यतीत कर रहा है। ऐसा पण्डित ही सगुण तथा स्थूल ससार मे निर्गुण एव सूक्ष्म तत्व को अनुभव कर सकेगा। सुखमनी साहिब की नौवी अष्टपदी को चौथी पौडी इस प्रकार है। (पृष्ठ २७४)

सो पण्डितु जो मन परबोधै ॥
राम नामु आतम महि सोधै ॥

बेद पुरान सिमृति बूझै मूलु ॥
सूखम महि जानै असथूलु ॥

भाव यह कि पण्डताई भी अच्छी है यदि साथ हृदय भी प्रबुद्ध है। अर्थात अनुभव एव बुद्धि दोनो ही मिल कर काम करते है और दोनो के प्रयोग के लिए सिक्ख धर्म मे आदेश है। सर राधा कृष्णन हमारे समय के भारत के उच्चकोटि के दार्शनिक लिखते है अनुभूति एव बुद्धि मे कोई अन्तर नही है और न ही दोनो का अमेल है। जब हम बौद्धिक मण्डल से अनुभूति मण्डल मे आते हैं तो किसी बुद्धि हीन देश मे नही चले जाते, बल्कि सूक्ष्म से सूक्ष्म बुद्धि, जो कि मानव सत्ता मे है, के मण्डल मे आते है। इस मण्डल मे हम अधिकतर गम्भीर रूप से सोच सकते हैं और अधिकतर सच्चाई से देख सकते हैं। अनुभूति मण्डल कोई अज्ञात अथवा बुद्धिहीन मण्डल नही है। केवल मात्र बुद्धि के बल से हमारा केवल मस्तिष्क ही काम करता है और एक पक्षीय सच्चाई प्राप्त करता है। अनुभूति की सहायता से हमारा सम्पूर्ण अपनत्व क्रिया मे आता है और हमारा ज्ञान एव हमारा अनुभव एकदम निचली तह से चलता है। अनुभव के द्वारा हमारा विचार सर्वमय हो जाता है, जिसके साथ समस्त निजत्व प्रभावित होता है। बुद्धि एव अनुभूति हमारे निजत्व के ही अग हैं। इतनी बात है कि बुद्धि एक विशेष प्रकार की सत्ता का नाम है तथा अनुभूति हमारे समस्त अपनत्व की जड है और सम्पूर्ण निजत्व मे दोनो का मेल है और दोनो का काम एक दूसरे से मिल कर सरल, शुद्ध एव सुघड होता है।" इग्लैण्ड के समकालीन चोटी के दार्शनिक बरट्रैण्ड रसल ने बुद्धि एव अनुभूति के सम्बन्ध

में इस प्रकार लिखा है : "अनुभूति हमे जो निश्चय दिलाती है, बुद्धि उसकी परख करती है, खण्डन करती है या मण्डन, बुद्धि कोई नई बात उत्पन्न नही करती। यह तो हमारे विचार मण्डल की अधिकारणी है। परस्पर विचारो को जोडना या एकस्वर करना इसका कार्य है। नए अनुभव, नई सच्चाइयाँ और नए चमत्कार अनुभूति द्वारा ही मनुष्य को प्राप्त होते हैं। न्यायिक अथवा मानसिक घेरे में भी नवीनता खोजने का श्रेय अनुभूति को ही होता है, बुद्धि को नही।" परन्तु साथ ही रमल ने यह भी कहा है कि परख रहित एव प्रौढता के बिना अनुभत ज्ञान सच्चाई के लिए पूरा साधन नही है। भाव यह है कि गुरु साहिब ने ज्ञान के जो दो साधन माने हैं, एक अनुभव तथा दूसरा विवेक बुद्धि, वे दोनो ही मिल कर काम करें तो ठीक ज्ञान प्राप्त होता है। अनुभूति आगे आगे चल कर नेतृत्व करती है और बुद्धि पीछे पीछे सहायक का काम देती है। डाक बेल-सरवे-अनुभव करता है और खुदाई बुद्धि की कुदालो से होती है। दोनो के सहयोग से हमारा समस्त जीवन पूरे तोल (अनुपात) मे रहता है।

अब हमने यह देखना है कि विवेक बुद्धि ने अनुभूति के नेतृत्व मे अकाल पुरुष सम्बन्धी परम सत्यवादक दृष्टिकोण से कौन कौन से नाम प्रयुक्त किए हैं। वे समस्त ही गुरबाणी के मूल मन्त्र मे आ गए है। ੧ੳ तो वह हस्ती है और शेष उसके नाम हैं। है तो ੧ੳ भी नाम ही, परन्तु यह एक विशुद्ध एकता को सूचित करने वाला चिन्ह है।

सत्य सच्चा अस्तित्व

शकराचार्य ने ब्रह्म को सत्-चित-आनन्द कहा था। यह भाव गुरबाणी मे बहुत आया है और श्री दशमेश जी ने भी "सदा 'सच्चदानद' सर्वम् प्रणासी" मे 'सच्चदानद' से भाव सत्-चित-आनद ही लिया है।

गहन भाव बसा है और जिसके मन को सूझ मिली हुई है और क्रियात्मक जीवन उन आदर्शों पर व्यतीत कर रहा है। ऐसा पण्डित ही सगुण तथा स्थूल ससार मे निर्गुण एव सूक्ष्म तत्व को अनुभव कर सकेगा। सुखमनी साहिब की नौवी अष्टपदी की चौथी पौडी इस प्रकार है। (पृष्ठ २७४)

सो पण्डितु जो मन परबोधै ।।
राम नामु आतम महि सोधै ।।

वेद पुरान सिमृति बूझै मूलु ।।
सूखम महि जानै असथूलु ।।

भाव यह कि पण्डिताई भी अच्छी है यदि साथ हृदय भी प्रबुद्ध है। अर्थात अनुभव एव बुद्धि दोनो ही मिल कर काम करते है और दोनो के प्रयोग के लिए सिक्ख धर्म मे आदेश है। सर राधा कृष्णन हमारे समय के भारत के उच्चकोटि के दार्शनिक लिखते है अनुभूति एव बुद्धि मे कोई अन्तर नही है और न ही दोनो का अमेल है। जब हम बौद्धिक मण्डल से अनुभूति मण्डल मे आते है तो किसी बुद्धि हीन देश मे नही चले जाते, बल्कि सूक्ष्म से सूक्ष्म बुद्धि, जो कि मानव सत्ता मे है, के मण्डल मे आते है। इस मण्डल मे हम अधिकतर गम्भीर रूप से सोच सकते है और अधिकतर सच्चाई से देख सकते हैं। अनुभूति मण्डल कोई अज्ञात अथवा बुद्धिहीन मण्डल नही है। केवल मात्र बुद्धि के बल से हमारा केवल मस्तिष्क ही काम करता है और एक पक्षीय सच्चाई प्राप्त करता है। अनुभूति की सहायता से हमारा सम्पूर्ण अपनत्व क्रिया मे आता है और हमारा ज्ञान एव हमारा अनुभव एकदम निचली तह से चलता है। अनुभव के द्वारा हमारा विचार सर्वमय हो जाता है, जिसके साथ समस्त निजत्व प्रभावित होता है। बुद्धि एव अनुभूति हमारे निजत्व के ही अग है। इतनी बात है कि बुद्धि एक विशेष प्रकार की सत्ता का नाम है तथा अनुभूति हमारे समस्त अपनत्व की जड है और सम्पूर्ण निजत्व मे दोनो का मेल है और दोनो का काम एक दूसरे से मिल कर सरल, शुद्ध एव सुघड होता है।" इग्लैण्ड के समकालीन चोटी के दार्शनिक बरट्रैण्ड रसल ने बुद्धि एव अनुभूति के सम्बन्ध

में इस प्रकार लिखा है : "अनुभूति हमे जो निश्चय दिलाती है, बुद्धि उसकी परख करती है, खण्डन करती है या मण्डन, बुद्धि कोई नई बात उत्पन्न नही करती। यह तो हमारे विचार मण्डल की अधिकारणी है। परस्पर विचारो को जोडना या एकस्वर करना इसका कार्य है। नए अनुभव, नई सच्चाइयाँ और नए चमत्कार अनुभूति द्वारा ही मनुष्य को प्राप्त होते है। न्यायिक अथवा मानसिक घेरे मे भी नवीनता खोजनें का श्रेय अनुभूति को ही होता है, बुद्धि को नही।" परन्तु साथ ही रमल ने यह भी कहा है कि परख रहित एव प्रौढता के बिना अनुभत ज्ञान सच्चाई के लिए पूरा साधन नही है। भाव यह है कि गुरु साहिब ने ज्ञान के जो दो साधन माने हैं, एक अनुभव तथा दूसरा विवेक बुद्धि, वे दोनो ही मिल कर काम करें तो ठीक ज्ञान प्राप्त होता है। अनुभूति आगे आगे चल कर नेतृत्व करती है और बुद्धि पीछे पीछे सहायक का काम देती है। डाक बेल-सरवे-अनुभव करता है और खुदाई बुद्धि को कुदालो से होती है। दोनो के सहयोग से हमारा समस्त जीवन पूरे तोल (अनुपात) मे रहता है।

अब हमने यह देखना है कि विवेक बुद्धि ने अनुभूति के नेतृत्व मे अकाल पुरुष सम्बन्धी परम सत्यवादक दृष्टिकोण से कौन कौन से नाम प्रयुक्त किए हैं। वे समस्त ही गुरबाणी के मूल मन्त्र मे आ गए है। ੧ੳ तो वह हस्ती है और शेष उसके नाम हैं। है तो ੧ੳ भी नाम ही, परन्तु यह एक विशुद्ध एकता को सूचित करने वाला चिन्ह है।

सत्य सच्चा अस्तित्व

शकराचार्य ने ब्रह्म को सत्-चित-आनन्द कहा था। यह भाव गुरबाणी मे बहुत आया है और श्री दशमेश जी ने भी "सदा 'सच्चदानद' सर्वम् प्रणासी" मे 'सच्चदानद' से भाव सत्-चित-आनद ही लिया है।

मूलमत्र मे आए नाम भी इसी भाव के सूचक है। सत से आगे 'नामु' से लेकर संभग' तक समस्त 'चित' भाव को ही नए तथा विस्तृत रूप मे बताते है। गुर प्रसादि महान एव परम आनन्द का भाव देता है।

एक वाहिगुरु परमात्मा—१ॐ सबसे पहला परम सत्यता को प्रकट करने वाला नाम जो गुरु साहिब को ईश्वरीय मत्र मत्र द्वारा प्रकट हुआ वह 'सति' (सत्य) था भाव यह कि केवल परम ब्रह्म 'है' वास्तविक अस्तित्व वाला है। स्वामी दया नन्द, ने सत्यार्थ प्रकाश मे 'सति' का सस्कृत पद 'सतो' या 'सति' जिसका अर्थ 'होना' से लेकर भूत—भविष्य वर्तमान मे सदा और काल की सीमा से भी परे अस्तित्व का लिया है। शेष समस्त रचना (सृष्टि) का अस्तित्व परिवर्तन के अधीन है, सदा एकरस नही रहती, वास्तविक अर्थो मे अस्तित्व नही रखती, परन्तु परमात्मा वास्तविक अस्तित्व रखता है। जब उस शक्ति को काल के भाव मे प्रकट किया है तो गुरु साहिब ने कहा है

"आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु, नानक होसी भी सचु।"

तात्पर्य यह कि सबके आदि और उसके भी आदि, अर्थात् काल-भाव शुरु होने से भी पहले 'सचु' था, भूत मे भी था, वर्तमान मे भी है और आगे को भी रहेगा। परन्तु काल तथा समय के अभाव के कारण उस हस्ती को प्रकट करते है तो सतिगुरु उसे 'सति' कहते है और तीन वार 'सति' कह कर पुष्ट करते है—

ससा सति सति सति सोऊ ॥
सति पुरख ते भिन्न न कोऊ ॥

(गौडी म ५ बावन अखरी)

कई लेखक 'सति' के अर्थ सच्चा करते हैं, सच्चे का भाव झूठे के विपरीत है। कई 'सति' को अगले पद 'नाम' का विशेषण बनाते है। वास्तव मे 'सति' अपने आप एक नाम है और 'नामु' अपने स्थान पर भिन्न नाम है। 'सति' से देशकाल से रहित सदा यथार्थ अस्तित्व का भाव है। डाक्टर टरम्प जो एक सस्कृत का अच्छा विद्वान था उसने मूल मत्र मे आए 'सति' का अग्रेजी अनुवाद (Really existing) वास्तविक अस्तित्व वाला कहा है। यह नाम देने का भाव शेष समस्त ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध मे है। शेष जो कुछ भी

है 'असत्य' है। 'सति' पद द्वारा न केवल गुरु साहिब अकाल पुरुष का अस्तित्व बताते है अपितु यह भाव भी जताते है कि वास्तविक अस्तित्व वाली केवल यही एक हस्ती है, अन्य कोई नही। 'सति' का यह भाव ज़रतुश्त की रचना मे भी मिलता है और उसके समस्त सिद्धान्तो का स्रोत भी 'सचु' ही है।"सच्चा एकु है" उसका कहना था। उस हस्ती को गुरु साहिब 'सति' कह कर 'नामु' कहते है। भाव यह कि वह एक सत्ता है जो सब मे रमी हुई है। वह चेतना है। चेतना समस्त ब्रह्माण्ड के अस्तित्व का मूल नियम है। प्रत्येक स्थान और प्रत्येक मे है। यह 'नामु' है। सारा-ब्रह्माण्ड उसी सत्ता का प्रकाश है। दृष्टिमान की नीव ही वह सत्ता है। इसी लिए नाम के ही सारे ब्रह्माण्ड, खण्ड, जीव जन्तु समस्त स्वरूप धारण किए हुए हैं (देखें सुखमनी साहिब)। परन्तु इन खण्डो, ब्रह्माण्डो, जीव जन्तुओ एव लोक पातालो का अस्तित्व बहुत देर पश्चात हुआ। इन सबसे पहले 'सति' था और वह अपने आप सब ओर रमा हुआ था। इसी लिए 'सतिनामु'—दोनो मिल कर—अकाल पुरुष के अस्तित्व के वास्तविक एव प्रारम्भिक (मूल) भाव को बताते है। यह नाम "परा पूरबला" है तथा शेष नाम तब बने जब प्रत्यक्ष ससार अस्तित्व मे आया। भाव यह कि जब 'सतिनामु' ने क्रिया भाव की इच्छा प्रकट की और इसी लिए शेष समस्त नाम कृत्रिम है। यही हस्ती सृष्टि की 'कर्ता' भी है।

पुरुष

ससा सति सति सति सोऊ॥
सति पुरख ते भिन्न न कोउ॥

सदा स्थित रहने वाले वास्तविक अस्तित्व को गुरु साहिब ने पुरुष कहा है। सर्वव्यापक, निराकार एव अदृश्य वस्तु का विचार इस प्रकार भी बैठ जाता है कि वह कुछ नही, शून्य है, खाली आकाश की भाँति है। गुरु साहिब इस विचार को नही अपनाते। उनके अनुसार १९ सत्य नाम 'पुरुष' है। चेतन सत्ता है। चेतन सत्ता केवल

नियमिक शक्ति ही नही। एक शक्ति रूपी नियम व्यक्ति की धार्मिक प्रवत्ति को पूरा नहीं करता। आत्मिक उन्नति के इच्छुक धार्मिक जीव के लिए पुरुष-ईश्वर को आवश्यकता है। पुरुष ईश्वर के विना धर्म कर्म मनुष्यो के लिए एक जीवित (जीती जागती) तस्वीर बना कर मन को आकर्षित नही कर सकता और बल एव दृढता नही दे सकता। पुरुष का भाव यहा मानव शरीर से नही है अपितु पुरुषत्व चेतनता से है। दशम ग्रथ मे एक बडी आनदायक वार्ता एक पण्डित और राजकुमारी का आती है। इस वार्ता द्वारा गुरु साहिब ने यह स्पष्ट किया है कि निर्जीव पत्थर पूजन का कोई लाभ नही। पिलाना है तो पिलाओ सजीव पुरुष इश्वर को। कारण यह है कि जिस प्रकार के इष्ट की कोई पूजा करता है, वह वैसा ही हो जाता है — "जैसा सेवै तैसो होवै"। पुरुष सदाचारक एव आत्मिक जीवन को उन्नत तथा प्रफुल्लित करने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य का पूज्य इष्ट उसको साम्यता वाला हो और उसी प्रकार का हो। जड निर्जीव इष्ट सजीव चेतन मनुष्य की पूजा का स्थान नही बन सकता। यदि बना लिया जाए तो उसकी पूजा अर्चना निष्फल है।

मानव भाव का तत्व इस बात मे है कि वह दूसरो के हावो भावो के लिए जवाबी मेल जोल रखता हो। मनुष्य के जीवन प्रवाह के वेग को तीव्र कर दे और निर्विघ्न बना दे। एक निर्जीव तथा अचेतन ईश्वर जो पुरुषत्व भाव से रहित है किस प्रकार माता पिता के भाव रख कर अपने भक्तो के लिए प्यार एव सहानुभूति रख सकता है? ईश्वर वह जो दयालु हो और अपने भक्तो की सार ले, और रक्षा करे। यदि ये बातें उसमे न हो तो फिर धार्मिक जीवन एक भ्रांति और आत्मिक अनुभव एक सन्देह है। इसलिए परमात्मा न केवल 'सति' है, वह साथ ही पुरुष भी है। बहुत आश्चर्य वाली बात यह है कि टरम्प ने यह कैसे लिख दिया कि सिक्ख धर्म मे किसी चेतन ईश्वर की मान्यता नही है। गुरबाणी का आधार ही अकाल 'पुरुष' है और गुरु ग्रथ की पहली पक्ति—मूल—मत्र मे ही

ੴ सतिनामु कह कर 'पुरुष' कहा है जो सृष्टि का कर्ता है, वह कोई

हमारी तरह पुरुष नही है। मानवीय पुरुष नही है। वह चेतन पुरुष है। हम सब काल के अधीन है, नाशवान है, वह अविनाशी अकाल 'पुरुष' है।

पुरुष—मूर्त—स्थूल

गुरबाणी में कई स्थानो पर अकाल पुरुष का देहधारी स्वरूप दिखाया गया है। चाहे यह काव्य-अलकार के रूप मे है, परन्तु ईश्वर को मनुष्य की भाँति शरीर वाला समझना एक प्रसिद्ध साधारण निश्चय है, अनपढ सीधे सरल साधारण मन के लिए आवश्यकता है किसी मानव शरीर ईश्वर की। ऐसी मानसिक अवस्था वाले अशरीरी ईश्वर को एक सर्वव्यापक चेतन सत्ता के नियामिक रूप मे नही पूज सकते। उनका ईश्वर उन जैसा ही होना आवश्यक है। ऐसे ईश्वर का शरीर, शरीर के नाक, कान, आखे, हाथ, पैर होने आवश्यक हैं। बाईबल मे ईश्वर की प्रारम्भिक अवस्था का स्वरूप शरीर धारी हाथ पैरो वाला बताया है। "ईश्वर ने मनुष्य को अपने जैसा बनाया" बाईबल की पक्ति है। भारत मे भी यही विचार प्रचलित रहा है। हिन्दु ग्रंथो मे ईश्वर को शरीर वाला, टागो, बाहो वाला बताया है। चतुर्भुज, चार भुजाओ वाला भी कहा है। पुराने मिश्र वालो का ईश्वर भी ऐसा ही शरीर धारी था। उसे भूख प्यास मनुष्यो की भाति लगती थी और मनुष्यो की भाति ही वह दुख, सुख, खुशी एव क्रोध रखता था। इसी लिए मिश्र मै भी और भारत मे भी ईश्वर को खाने पीने के लिए भोजन आदि दिया जाता था। मिश्र वालो ने तो कई ईश्वर अथवा देवता माने हुए थे वह दुख सुख के भागी होकर भय एव इच्छा भी रखते थे। बीमार भी तथा बूढे भी होते थे और मर भी जाते थे।

गुरबाणी मे ईश्वर की स्थूल मूर्ति दिखाई है, परन्तु उसे मिश्र वालो या प्राचीन भारतीयो की भाति दुख, सुख, भूख प्यार, एव भय क्रोध का भागी नही बताया। केवल पुजारी की भावनाओ की

अपील के लिए ईश्वर मे सौन्दर्य गुण दिखाए हैं उसकी सुन्दरता तथा कोमलता आदि भी। उमे सौन्दर्य का भण्डार कहा है। ससार मे जो भी सुन्दर तत्व है उसका निकास (उद्गमस्रोत) पुरुष है। इसी विचार से सुन्दर-कुण्डल, कमल-नयन, दत-रोमाला, लम्बे केश आदि सुन्दरता के चिन्ह उसमे वताए है —

तेरे बके लोइण दत रोमाला ।।
सोहणे नक जिन लम्मडे वाला ।।

(वडहस म १ पृष्ठ ५६७)

वागे कापड वोलै वैण ।।
लम्मा नकु काले तेरे नैण ।

(मलार म १ पृष्ठ १२५६)

ईश्वर के चरणो की पूजा का भी बहुत शब्दो मे वर्णन है,* परन्तु ये समस्त विस्मादी भावना का प्रकाश है। जब मनुष्य के मन मे सौन्दर्य प्रवृति जाग्रत होती है तो वह अपने प्रीतम को अत्यन्त सुन्दर जान कर प्यार एव सत्कार करता है। ये समस्त नाम विस्मादी रगत का परिणाम है। वैसे भी व्यक्ति अकाल पुरुष मे जितने भी गुण देखता है वे समस्त मनुष्य के अपने मन का प्रतिबिम्ब होते हैं या उसकी रचना से प्रतीत किए कृत्रिम भाव को सूचित करते हैं। इसी लिए जर्मनी के प्रसिद्ध कवि गोयटे ने कहा हैं व्यक्ति यह कभी अनुमान लगा ही नही सकता कि उसके विचार मे व्यक्तिपन, प्रत्येक बात को अपने मन मे से देखना कहा तक है।" इसी लिए फारनल लिखता है कि मनुष्य अपने धर्म को कितना भी ऊचा एव सूक्ष्म बना ले और अपने ईश्वर को कितना भी निर्लिप्त एव निराकार दिखाने का यत्न करे, परन्तु उसके प्रयत्नो तथा भाषणो मे—मानव मन की रगत व्यक्तिपन नही जाएगा।" व्यक्ति ईश्वर को मनुष्य की भाति देहधारी बना कर पूजना शुरु करता है फिर उसे एक ऊचो

---

*देखें मास्टर इकबाल सिंह जी का लेख 'चरण' गुर सेवक १७ फरवरी १९३७ "चरन कवल की मउज" लेखक भाई साहिब भाई रणधीर सिंह जी, १९३९।

हस्ती बनाता है जो देश काल से दूर है, परन्तु है वह पुरुषत्व के गुणो वाली और अन्त मे मनुष्य ईश्वर को बनाता है— सर्वव्यापक शक्ति— सर्वात्मा एव परमात्मा, जैसे वेदातियो का ब्रह्म है।

गुरबाणी मे अकाल पुरुष सम्बन्धी कई ऐसे नाम भी आए हैं जो मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित हैं। भेड बकरियां चराने वाले देशो मे ईश्वर को गडरिया कहा है। बाईबल मे यह नाम प्राय है। कृषि प्रधान देशो मे उसे किसान और व्यापारी लोगो ने सौदागर या बनिया आदि भी कहा। ये समस्त अलकारिक नाम हैं। इन भावो मे ही गुरबाणी मे अकाल पुरुष के लिए किसान, बनिया, धनि, वीर, मीर, शाह एव पातशाह, शहनशाह आदि कहा है। कई नाम धार्मिक भाव भी प्रकट करते हैं। ईश्वर को जोगी (योगी) करके लिखा है, बनवारी या बनमाली (बनवाली) भी कहा है भाव यह कि बनस्पति का स्वामी भी है अथवा उसकी माला सारी बनस्पति की मनको के रूप मे बदल कर बनाई गई है। ईश्वर के जलवे (दर्शन) को बहुत प्रकाश वाला कहा जाता है। मूसा, कहते है कि, जलवा देख कर बेहोश हो गया था। गुरु साहिब ने परमात्मा को 'सैभग' स्वत सिद्ध प्रकाश कहा है और प्रकाश की गम्भीरता (गहनता) को बताने के लिए, लाल गुलाल भी कहा है। विद्या मण्डल मे उसे बडा पण्डित भी कहा है। भाव यह कि वह सब कुछ है। परन्तु ये नाम जो हमने स्थूल भाव का 'मूर्त' रूप दिखाने के लिए बताये हैं, वे है जिन से अकाल पुरुष का आकार वाला भौतिक स्वरूप प्रकट होता है। जिज्ञासु की पहली अवस्था मे ऐसा ईश्वर ही मन को टिकाए रखता है। साथ यह भी बात है कि कवि-रचना मे अलकारो के प्रयोग से भी कई नाम आ गए हैं।

पुरुष—मूर्त्त—अदृष्ट—सूक्ष्म

जब हम ईश्वर ज्ञान सम्बन्धी उच्च अवस्था मे पहुचते हैं तो ईश्वर का मूर्त्त भाव बहुत सूक्ष्म हो जाता है। चाहे कई नाम

गुर-शब्द-भण्डार मे इस सूक्ष्म मूर्त के द्योतक हैं, परन्तु यह मूर्त अदृष्ट है, ज्ञानेन्द्रियो द्वारा इसको वास्तविकता का पता नही चलता। अनुभव एव विवेक द्वारा इसकी सूझ होती है। यह एक प्रकार का अफलातूनी मूर्त भाव Platonic form का अर्थ रखती है। इस विचार से ही मिलता जुलना रसल (बरट्रैण्ड) के Universal 'सर्वव्यापक रूप' का विचार है। अदृष्ट मूर्त का भाव गुरु साहिब का यह है, और यह भाव ही लगभग अफलातून अथवा रसल आदि ने लिया है कि जितनी आकार एव रूप वाली (साकार) वस्तुए हम देखते हैं इनके स्थूल रूप के पीछे एक अदृष्ट रूप है जो सदा स्थित रहता है। दृष्टिमान वस्तुए नष्ट हो जाता है, परन्तु उनका सूक्ष्म रूप नष्ट नही होना। वह हमारे विवेक अनुभव मे सदा ही स्थित रहता है। जिस प्रकार एक घडा है, दूसरा घडा है, तीसरा घडा है। ये तीन घडे कोई रूप रखते है जो भिन्न भिन्न है। इन तीनो के पीछे एक ऐसा रूप या मूर्त भाव भी है जो इन तीनो मे साम्य है, जो हमारे विवेक अनुभव मे स्थित है। ये तीनो घडे टूट जाए तो एक तो इन तीनो को भिन्न भिन्न प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली तस्वीर हमारी स्मरण शक्ति के रूप मे स्थित रहती है और यह समय पाकर भूल जाएगी या मिट जाएगी। दूसरा सूक्ष्म रूप है तीनो घडो के लिए एक समान। घडे जाने वाला रूप या साम्य घडा रूप। कह बात दस घडो, बीस घडो या हजारो, लाखो घडो के सम्बन्ध मे कही जा सकती है। इन लाखो करोडो घडो का एक मिलता जुलता रूप हमारे मन मे स्थित रहता है जो नष्ट नही होता। इसी प्रकार घडो का एक साम्य रूप है, मनुष्यो का सादृश्य रूप है, पत्थरो का एक साझा रूप है। इन समस्त मूर्तो एव रूपो का

स्रोत एक अविनाशी अदृष्ट रूप है। वह ईश्वरीय है, ब्रह्म है, ੧ੳ है। मूर्त का यह बहुत सूक्ष्म भाव है और मूल मत्र मे आए शब्द मूर्ति का अर्थ भी यही है। अकाल स्वयमेव ही नाम है और मूर्त से लगा देने से भाव यह निकलता है कि यह मूर्त देशकाल की सीमा से दूर है। परन्तु यह भाव अकेले मूर्त शब्द से भी निकलता है, इसलिए 'अकाल' को स्वयमेव नाम समझना चाहिए।

इसी भाव को प्रकट करने वाले गुरु शब्द कई हैं रूप, निर्मल

रूप आदि। जब साधारण अर्थों मे रूप एव आकार जैसे शब्द प्रयुक्त किए जाते है, जैसे कि दिखाई देने वाला रूप और हजम का भाव हो तो इन अर्थो को सम्मुख रख कर उसी अदृष्ट मूर्त का भाव स्पष्ट करने के लिए गुरु साहिब ने परमेश्वर को अरूप, निरकार, अगम्य, अनोल, निराकार आदि कहा है।

इन समस्त पदो से ब्रह्म के पुरुष Parsonal होने का निश्चय कराना है। देहधारी रूप वाला बता कर, अदृश्य रूप वाला भी कहा है और अरूप भी बनाया है। परन्तु इनसे १ॐ के मनुष्य रूप होने का भाव ऐसा नही लेना चाहिए जैसा कि प्राचीन मिश्र निवासियो एव भारतीयो ने लिया था। मनुष्य-भाव का शरीर उत्पन्न होता है, विकसित होता है नष्ट होता है। काल समय और मृत्यु के अधीन है। यदि इस भाव को ईश्वरीय आकार अथवा मूर्त से स्पर्श करा कर देखे तो गुरुबाणी मे इस विचार का बहुत प्रबल खण्डन होता है। इसी विचार को ईश्वर सम्बन्धी प्रकट करने वाले पर गुरु साहिब बहुत क्रुद्ध होते है और बताते है कि वह जिह्वा नष्ट हो जाए जो कहती है कि १ॐ मनुष्य की भाँति उत्पन्न एव नष्ट होता है। वह कभी योनि मे नही आता—अजूना है, माता के गर्भ मे नही आता—निराकार है परन्तु अजूनी होने के बावजूद वह पुरुष है। परन्तु मनुष्य का शरीर काल (time age) आयु के अधीन परिवर्तित होता रहता है। परन्तु ईश्वर ऐसा नही, वह निश्चल या अचल है, चलायमान नही है। नष्ट नही होता—अविनाशी एव अच्युत है और असीम है।

यह तो परमात्मा का वास्तविक तत्व स्वरूप है, परन्तु जब मनुष्य उसे पूज्य बनाता है, मन का विषय बनाता है तो सर्वत्र नये से नवीन है नित नवीन है उसका शरीर सदा यौवन मे हैं— सदा नवतन है। इस भाव को हम अकाल पुरुष के तरुवर रूप मे भली प्रकार बता चुके है। ये समस्त नाम अकाल पुरुष के सगुण रूप को स्पष्ट करते है। उसकी Becoming विकसित होने की इच्छा का निश्चय करवाते हैं। उसका रचयिता, कर्ता-सरक्षक होना, विकसित होने की इच्छा तथा सीमित होना ये सब कर्म सगुणता को ही सिद्ध करते

हैं। हम वही कुछ जानते है जो हमारे सम्मुख है परन्तु उनकी पूर्ण शक्ति को नही जान सकते, जो अस्तित्व मे आ चुका है वह तो ज्ञान का विषय, कुछ विज्ञान के द्वारा और कुछ काल्पनिक दर्शन के द्वारा, जाना जा चुका है या शेष जाना जाएगा, परन्तु जो अस्तित्व मे आ सकता हे इस 'सकने का, 'शक्ति' का Potentiality का (परिमाण) माप लेना एक कृत्रिम जीव-मनुष्य के वश की बात नही। "करते की मिति किया जाने कौग्रा।" Actually — जो अस्तित्व मे आ चुका है, उसे मनुष्य जानता है या जान सकता है। उन थोडे बहुत ज्ञान के सहारे ही ये समस्त विज्ञान, धर्म एव दर्शन स्थित है।

पुरुष—चित (चेतन)—Conscious

चित के दो भाव है। एक तो आत्मिक सत्ता (Spirituality) अथवा चेतनता। दूसरा है ज्ञान (Consciousness)। पहले भाव का विचार किसी अन्य स्थान पर वर्णित है और नाम के अर्थों मे यह भाव प्रधान है। परन्तु चेतन सत्ता के विचार से ज्ञान-भाव बहुत अधिक सम्बन्धित है। अथवा इस प्रकार कह लीजिए कि चेतन-सत्ता निर्गुण आत्मिक भाव को सूचित करती है और चेतनता-सजगता (Consciousness) ज्ञात अवस्था को बताती है। सजगता (सचेतन) मे तीन गुण अवश्य होते है ज्ञेय (जानी गई वस्तु Object) का ज्ञान—(Cognition) इस ज्ञान मे उत्पन्न हुई प्रसन्नता अप्रसन्नता का अनुभव—सवेदन—(Feeling), और प्रसन्नता अप्रसन्नता के आधार पर कोई इच्छा करना या कर्म करना—(Action-Conation) ज्ञात अवस्था के ये तीन पक्ष है। उदाहरणार्थ किसी राग का मधुर स्वर, सुन्दर फूल या कोई भयानक वस्तु सर्प शेर या बाघ लें, जानने वाला— ज्ञानी (Subject Conscious agent) है ज्ञेय—जानी गई वस्तु—(object) है। ज्ञानी और ज्ञेय के बिना एक तीसरी वस्तु है चेतनता—(Consciousness)। यह चेतनता ज्ञानी के मन मे ज्ञेय वस्तु सम्बन्धी है। इसी चेतनता के ही ऊपर लिखे तीन अग है—

ज्ञान, सवेदन और इच्छाक्रम। अब देखना यह है कि क्या इन अर्थों मे ईश्वर ज्ञानी है या नही ?

इस प्रश्न का उत्तर 'हा' मे भी है और 'न' मे भी। सगुण रूप मे 'हा' 'सहस तव नैन, निर्गुण अवस्था मे 'न'—नन नैन हे तुहि कउ'। यदि ईश्वर सचेतन हो तभी तो हमारे दुखो सुखो को जानेगा, हमारा प्रार्थना सुनेगा। हमारे अच्छे कामो पर प्रसन्न होगा, बुरे कामो पर अप्रसन्न। प्रसन्न होकर हम पर कृपा करेगा और अप्रसन्न होकर दण्ड देगा। ऐसा ही मानवीय ईश्वर साधारण मन के लिए काम आ सकता है और साधारण धर्म का काम दे सकता है। चेतना भाव को प्रकट करने के लिए ही गुरबाणी मे परमात्मा को चित्त कहा है। इस चेतनता के तीनो अग भी उसमे दिखाये है। उसे 'जाणोई' एव ज्ञानी कहा है, सुयोग्य एव बुद्धमान कहा है। सवेदनशील कहा है भाव रतम्। इच्छा करने वाला कहा है—उसकी इच्छा, जिब तिस भावे आदि उसके कर्तृ पक्ष को बताते है।

परन्तु इन विचारो के साथ साथ ही वे नाम भी हैं जो इन भावो के विरोधी है। ये परमात्मा के साधारण पुरुष भाव का खण्डन करने के लिए है— वह (impersonal) अपुरुष भी है। इसीलिए उने साधारण मनुष्य रूप के ज्ञान आदि से रहित कहा है। वह 'राग दोख ते नियारा' है, वह तीन गुणो—रजो तमो सतो से दूर है 'त्रिगुणातीत' है। वह 'अपोह' है, अर्थात दख सुख, शादो अप्रसन्नता उसे छू नही पाते। वह अकथनीय है और अकर्मिक है।

इन विरोधी पक्षो को साथ साथ स्थित रखने का क्या भाव है। बात यह है कि मनुष्य की सूझ की समस्या बडी अद्भुत है। ईश्वर को मनुष्य के समीप से समीप करके भी दिखाना है और साथ ही मानवीय न्यूनताओ एव कमजोरियो से पवित्र भी दिखाना है। ईश्वर सर्वज्ञ (सज्ञात है) पर हमारी तरह नही है। हमारे ज्ञान मे कमी है। उसकी अनुभूति एव कर्म हमारे जैसा नही है। हम किसी न्ययूनता अथवा प्राप्ति से दुख सुख का अनुभव करते हैं। उसकी इच्छा किसी प्राप्ति के लिए, किसी हानि को पूरा करने के लिए नही है। इसलिए उसे गुरु साहिब ने केवल 'चित्त' ही नही कहा 'विशुद्ध चित्त' (Pure Consciousness) कहा है।

हैं। हम वही कुछ जानते है जो हमारे सम्मुख है परन्तु उसकी पूर्ण शक्ति को नही जान सकते, जो अस्तित्व मे आ चुका है वह तो ज्ञान का विषय, कुछ विज्ञान के द्वारा और कुछ काल्पनिक दर्शन के द्वारा, जाना जा चुका है या शेष जाना जाएगा, परन्तु जो अस्तित्व मे आ सकता है इस 'सकने' का, 'शक्ति' का Potentiality का (परिमाण) माप लेना एक कृत्रिम जीव-मनुष्य के वश की बात नही। "करते की मिति किआ जाने कीआ।" Actually— जो अस्तित्व मे आ चुका है, उसे मनुष्य जानता है या जान सकता है। उस थोडे बहुत ज्ञान के सहारे ही ये समस्त विज्ञान, धर्म एव दर्शन स्थित हैं।

पुरुष—चित (चेतन)—Conscious

चित के दो भाव हैं। एक तो आत्मिक सत्ता (Spirituality) अथवा चेतनता। दूसरा है ज्ञान (Consciousness)। पहले भाव का विचार किसी अन्य स्थान पर वर्णित है और नाम के अर्थों मे यह भाव प्रधान है। परन्तु चेतन सत्ता के विचार से ज्ञान-भाव बहुत अधिक सम्बन्धित है। अथवा इस प्रकार कह लीजिए कि चेतन-सत्ता निर्गुण आत्मिक भाव को सूचित करती है और चेतनता-सजगता (Consciousness) ज्ञात अवस्था को बताती है। सजगता (सचेतन) मे तीन गुण अवश्य होते हैं ज्ञेय (जानी गई वस्तु Object) का ज्ञान—(Cognition) इस ज्ञान मे उत्पन्न हुई प्रसन्नता अप्रसन्नता का अनुभव—संवेदन— (Feeling), और प्रसन्नता अप्रसन्नता के आधार पर कोई इच्छा करना या कर्म करना —(Action-Conation) ज्ञात अवस्था के ये तीन पक्ष हैं। उदाहरणार्थ किसी राग का मधुर स्वर, सुन्दर फूल या कोई भयानक वस्तु सर्प शेर या बाघ लें, जानने वाला— ज्ञानी (Subject Conscious agent) है ज्ञेय—जानी गई वस्तु— (object) है। ज्ञानी और ज्ञेय के बिना एक तीसरी वस्तु है चेतनता—(Consciousness)। यह चेतनता ज्ञानी के मन मे ज्ञेय वस्तु सम्बन्धी है। इसी चेतनता के ही ऊपर लिखे तीन अग हैं—

ज्ञान, सवेदन और इच्छाक्रम। अब देखना यह है कि क्या इन अर्थों मे ईश्वर ज्ञानी है या नही ?

इस प्रश्न का उत्तर 'हा' मे भी है और 'न' मे भी। सगुण रूप मे 'हा' 'सहस तव नैन, निर्गुण अवस्था मे 'न'—नन नैन है तुहि कउ'। यदि ईश्वर सचेतन हो तभी तो हमारे दुखो सुखो को जानेगा, हमारी प्रार्थना सुनेगा। हमारे अच्छे कामो पर प्रसन्न होगा, बुरे कामो पर अप्रसन्न। प्रसन्न होकर हम पर कृपा करेगा और अप्रसन्न होकर दण्ड देगा। ऐसा ही मानवीय ईश्वर साधारण मन के लिए काम आ सकता है और साधारण धर्म का काम दे सकता है। चेतना भाव को प्रकट करने के लिए ही गुरबाणी मे परमात्मा को चित्त कहा है। इस चेतनता के तीनो अग भी उसमे दिखाये हैं। उसे 'जाणोई' एव ज्ञानी कहा है, सुयोग्य एव बुद्धमान कहा है। सवेदनशील कहा है भाव रतम्। इच्छा करने वाला कहा है—उसकी इचछा, जिब तिस भावै आदि उसके कर्तृ पक्ष को बताते है।

परन्तु इन विचारो के साथ साथ ही वे नाम भी हैं जो इन भावो के विरोधी हैं। ये परमात्मा के साधारण पुरुष भाव का खण्डन करने के लिए हैं— वह (impersonal) अपुरुष भी है। इसीलिए उसे साधारण मनुष्य रूप के ज्ञान आदि से रहित कहा है। वह 'राग दोख ते नियारा' है, वह तीन गुणो—रजो तमो सतो से दूर है 'त्रिगुणातीत' है। वह 'अपोह' है, अर्थात दख सुख, शादी अप्रसन्नता उसे छू नही पाते। वह अकथनीय है और अकर्मिक है।

इन विरोधी पक्षो को साथ साथ स्थित रखने का क्या भाव है। बात यह है कि मनुष्य की सूझ की समस्या बडी अद्‌भुत है। ईश्वर को मनुष्य के समीप से समीप करके भी दिखाना है और साथ ही मानवीय न्यूनताओ एव कमजोरियो से पवित्र भी दिखाना है। ईश्वर सर्वज्ञ (सज्ञात है) पर हमारी तरह नही है। हमारे ज्ञान मे कमी है। उसकी अनुभूति एव कर्म हमारे जैसा नही है। हम किसी न्यूनता अथवा प्राप्ति से दुख सुख का अनुभव करते हैं। उसकी इच्छा किसी प्राप्ति के लिए, किसी हानि को पूरा करने के लिए नही है। इसलिए उसे गुरु साहिब ने केवल 'चित्त' ही नही कहा 'विशुद्ध चित्त' (Pure Consciousness) कहा है।

पुरुषत्व–हस्ती (शक्ति)
देश, काल तथा प्रकृति के सम्बन्ध मे

मनुष्य की अपनी हस्ती देश, काल तथा प्रकृति से अलग करके विचार मे ही नही आ सकती, अस्तित्व मे तो क्या आनी थी। मनुष्य समझता है कि हस्त-नेस्त, अस्तित्व-अनस्तित्व इन तीनो तत्वो पर निर्भर है। है भी इसी प्रकार। प्रत्यक्ष ससार प्रकृति—काल—देश—(Matter—time space) - से बाहर कोई अस्तित्व नही रखता। यही स्थिति मानवीय हस्ती की है। मनुष्य ने यदि ईश्वर को पुरुषत्व रूप मे जाना है तो अवश्य ही ऐसे नाम ईश्वर के आवश्यक हैं जिन से इन तीनो गुणो से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध प्रकट होता हो। जब तो परमात्मा को पुरुषत्व–हस्ती रखता हुआ बताया तो उसे प्रकृति काल एव देश को धारण करने वाला कहा है और जब उसे अपुरुषत्व (impersonal) रूप मे बताया है तो इन तीनो गुणो का उसकी हस्ती के सम्बन्ध मे खण्डन किया है। क्योकि अमानवीय भाव अगम्य अगोचर है और मनुष्य की पहुच से बहुत दूर है। अब तीनो गुणो के सम्बन्ध को क्रमश जाच करेगे।

फ्रांस के दार्शनिक तथा आधुनिक (नवीन) पश्चिमी दर्शन के जन्मदाता डेकार्ट ने प्रकृति का सबसे यथार्थ गुण उसका आकार बताया था। अर्थात् जहा भी प्राकृतिक वस्तु है उसने थोडा बहुत स्थान घेरा हुआ है, अथवा उसका कोई न कोई आकार है। आकार के साथ ही परिमाण (भार तोल) का भव भी आ जाता है छोटा बडा, हल्का भारी ये सब प्राकृतिक गुण है। इसी लिए गुरबाणी मे अकाल पुरुष को गौरा एव अतुलनीय समुद्र सागर की भाति कहा है। भाव अलकारक हैं, अर्थात् उसकी महानता को प्रदर्शित किया है। उसे दरिआउ (दरिया) भी कहा है। भरपूर कहा है, भाव यह कि उसने समस्त स्थान घेरा हुआ है और कोई स्थान उसके बिना नही है तथा न ही उसमे कोई रिक्त स्थान है। जिस प्रकृति से हमारा वास्ता पडता है, वह तोडी व जोडी जा सकती है और उसमे छेद निकाले जा सकते है। परन्तु परमात्मा अभग, अछेद है। प्रकृति सतत परिवर्तन के नियम के अधीन है, परन्तु अकाल पुरुष इस से दूर है।

मनुष्य प्रकृति का मूल्य भी डालता है। कई वस्तुओ के कई भाव (मूल्य) है। महगे भी और ससते भी। परन्तु अकाल पुरुष अमूल्य है, बिना मूल्य के है। रत्न बडे बहुमूल्य होते है और ईश्वर रत्नो का समुद्र—रत्नागार है। ये निम्न अवस्था के मन वालो के लिए ईश्वर के भाव है। थोडा ऊचे भाव मे अथवा उन्नत भाव मे ईश्वर अदृष्ट है। प्राकृतिक रूप मे तथा सगुण भाव से अकाल पुरुष को 'सख चक्र' अनगिणत रूपो वाला कहा है, वह रूप है। परन्तु अपुरुषत्व भाव से निराकार एव अरूप भी कहा है, तत्त मयम्—यथार्थ रूप, रूप को रूह (आत्मा) कहा है 'वरना चिहना बाहरा' कहा है

क— चक्र चिहन अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जिह।
रूप रग अरु रेख पेख कोऊ कहि न सकत किह।
अचल मूरति अनभउ प्रकान अमितोजि कहिज्जै॥
(जापु पा १०)

. . .

ख— रूपु न रेख न रगु किछु त्रिहु गुण ते प्रभु भिन्न।
(सलोक गउडी म ५ सुखमनी)

ग— बरनि न साकउ जैसा तू है सचे अलख अपारा।
(रामकली म ५ पृष्ठ ८८३)

घ— न सख न चक्र न गदा न सिआम।
असचरज रूप रहत जनम।
(सलोक सहसक्रिती म ५ पृष्ठ १३५९)

'वरना चिहना बाहरा' भाव शिरोमणि भाव है और इस अवस्था मे परमात्मा 'सैभग' स्वत सिद्ध प्रकाश है तथा सर्वमय 'आतम राम' है।

पुरुषत्व हस्ती समय (देश) काल के सम्बन्ध मे

गुरुवाणी मे आये हुए शब्द जो समय के भाव का अकाल पुरुष से सम्बन्ध अथवा असम्बन्ध बताते है, शेष सम्बन्धो की भाति दोनो

पुरुषत्व –हस्ती (शक्ति)
देश, काल तथा प्रकृति के सम्बन्ध मे

मनुष्य की अपनी हस्ती देश, काल तथा प्रकृति से अलग करके विचार मे ही नही आ सकनी, अस्तित्व मे तो क्या आनी थी। मनुष्य समझता है कि हस्त-नेस्त, अस्तित्व-अनस्तित्व इन तीनो तत्वो पर निर्भर है। है भी इसी प्रकार। प्रत्यक्ष ससार प्रकृति—काल—देश—(Matter—time space) - से बाहर कोई अस्तित्व नही रखना। यही स्थिति मानवीय हस्ती की है। मनुष्य ने यदि ईश्वर को पुरुषत्व रूप मे जाना है तो अवश्य ही ऐसे नाम ईश्वर के आवश्यक हैं जिन से इन तीनो गुणो से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध प्रकट होता हो। जब तो परमात्मा को पुरुषत्व—हस्ती रखता हुआ बताया तो उसे प्रकृति काल एव देश को धारण करने वाला कहा है और जब उसे अपुरुषत्व (impersonal) रूप मे बताया है तो इन तीनो गुणो का उसकी हस्ती के सम्बन्ध मे खण्डन किया है। क्योकि अमानवीय भाव अगम्य अगोचर है और मनुष्य की पहुच से बहुत दूर है। अब तीनो गुणो के सम्बन्ध को क्रमश जाच करेंगे।

फ्रांस के दार्शनिक तथा आधुनिक (नवीन) पश्चिमी दर्शन के जन्मदाता डेकार्ट ने प्रकृति का सबसे यथार्थ गुण उसका आकार बताया था। अर्थात् जहा भी प्राकृतिक वस्तु है उसने थोडा बहुत स्थान घेरा हुआ है, अथवा उसका कोई न कोई आकार है। आकार के साथ ही परिमाण (भार तोल) का भव भी आ जाता है छोटा बडा, हल्का भारी ये सब प्राकृतिक गुण है। इसी लिए गुरबाणी मे अकाल पुरुष को गौरा एव अतुलनीय समुद्र सागर की भाति कहा है। भाव अलकारक है, अर्थात् उसकी महानता को प्रदर्शित किया है। उसे दरिआउ (दरिया) भी कहा है। भरपूर कहा है, भाव यह कि उसने समस्त स्थान घेरा हुआ है और कोई स्थान उसके बिना नही है तथा न ही उसमे कोई रिक्त स्थान है। जिस प्रकृति से हमारा वास्ता पडता है, वह तोडी व जोडी जा सकती है और उसमे छेद निकाले जा सकते है। परन्तु परमात्मा अभग, अछेद है। प्रकृति सतत परिवर्तन के नियम के अधीन है, परन्तु अकाल पुरुष इस से दूर है।

मनुष्य प्रकृति का मूल्य भी डालता है। कई वस्तुओ के कई भाव (मूल्य) है। महगे भी और ससते भी। परन्तु अकाल पुरुष अमूल्य है, बिना मूल्य के है। रत्न बडे बहुमूल्य होते हैं और ईश्वर रत्नो का समुद्र—रत्नागार है। ये निम्न अवस्था के मन वालो के लिए ईश्वर के भाव है। थोडा ऊचे भाव मे अथवा उन्नत भाव मे ईश्वर अदृष्ट है। प्राकृतिक रूप मे तथा सगुण भाव से अकाल पुरुष को 'सख चक्र' अनगिणत रूपो वाला कहा है, वह रूप है। परन्तु अपुरुषत्व भाव से निराकार एव अरूप भी कहा है, तत्त मयम्—यथार्थ रूप, रूप को रूह (आत्मा) कहा है 'वरना चिहना बाहरा" कहा है

क— चक्र चिहन अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जिह।
रूप रग अरु रेख पेख कोऊ कहि न सकत किह।
अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोजि कहिज्जै॥
(जापु पा १०)

ख— रूपु न रेख न रगु किछु त्रिहु गुण ते प्रभु भिन्न।
(सलोक गउडी म ५ सुखमनी)

ग— बरनि न साकउ जैसा तू है सचे अलख अपारा।
(रामकली म ५ पृष्ठ ८८३)

घ— न सख न चक्र न गदा न सिआम।
असचरज रूप रहत जनम।
(सलोक सहसक्रिती म ५ पृष्ठ १३५९)

'वरना चिहना बाहरा' भाव शिरोमणि भाव है और इस अवस्था मे परमात्मा 'सैभग' स्वत सिद्ध प्रकाश है तथा सर्वमय 'आतम राम' है।

पुरुषत्व हस्ती समय (देश) काल के सम्बन्ध मे

गुरुवाणी मे आये हुए शब्द जो समय के भाव का अकाल पुरुष से सम्बन्ध अथवा असम्बन्ध बताते है, शेष सम्बन्धो की भाति दोनो

हो प्रकार के है। एक तो समय-भाव का खण्डन करने वाले और दूसरा मण्डन करने वाले। यह सब कुछ परमात्मा की पुरुषत्व-अपुरुषत्व अथवा निर्गुण सगुण हस्ती के भाव से जुड़े हुए है। समय के अर्थों मे पूर्वज पुरातन तथा लम्बी आयु से सम्बन्धित है। वेदात सूत्र मे भी ब्रह्म को "पुरातन जो देखना कठिन है" (४८वी पुस्तक, पृष्ठ ३६१) कह कर बताया है। गुरु साहिब भी उसी भाव को 'पौरातन' शब्द द्वारा पुष्ट करते है। इस से भी विकसित भाव जो समय के साथ सम्बन्धित तो है, परन्तु उसकी सीमा की, अन्तिम अवस्था में है, वह है जिसके द्वारा गुरु साहिब उस हस्ती को, आदि, अनन्त तथा अटल मानते है। पीछे की ओर देखे तो समय के मूल के मूल मे भी वह हस्ती विद्यमान थी, वह आदि परमादि है। परन्तु नही, इससे भी पहले वह अनादि है। जब समय के चक्र, को आगे से देखे तो अगले किनारे पर है, आखिर पर—अन्त है वह प्रत्येक वस्तु का, अनन्त—हिसाबो से बाहर। इस आदि—अन्त, अनादि—अनन्त के भाव से उस हस्ती का अचल अटल होना तथा अपरिवर्तनशील होना सम्बन्धित है। सिरी राग मे गुरु नानक देव जी बताते है कि स्थानीय स्थित (मुकामी-कायम) रहने वाला बस एक ही है—

अलाहु अलखु अगम्मु कादरु करणहारु करीमु ॥
सभ दुनी आवण जावणी मुकामु एकु रहीमु ॥६॥

मुकामु तिस नो आखीऐ जिसु सिसि न होवी लेखु ॥
असमानु धरती चलसी मुकामु उही एकु ॥७॥

दिन रवि चलै निसि ससि चलै तारिका लख पलोइ ॥
मुकामु उही एकु है नानका सचु बुगोइ ॥८॥१७॥

(पृष्ठ ६४)

सदा स्थित रहने का भाव स्थिर, अवगति, एक ही भेस आदि भी देते है। वह परिवर्तित नही होता और सदा ही गतिशील है, रुकता नही इसलिए "हमेसुल रवन" कहा है। वह, भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनो ही कालो मे है इसलिए 'समबिअ' कहा है।

अगली अवस्था मे परमात्मा काल की सीमा से पार (ऊपर) प्रतीत होता है। पहले तो 'चक्रधर' है, भाव यह कि अकालपुरुष ने

समय के चक्र को वश मे किया हुआ है। परन्तु यह बात अवश्य है, कि काल-भाव, समय का ज्ञान मानवीय है, अर्थात् मानवीय रचनाओ का ही परिणाम है। इसलिए मनुष्य का स्रष्टा परमेश्वर उस रचना की पकड मे किस प्रकार आ सकता है जिसका रचयिता मनुष्य है। काल—समय—का बनाने वाला मनुष्य है, इसलिए मनुष्य की रचना करने वाला न केवल 'चक्रधर' ही है अपितु 'अकाल', भी है। वह त्रिगुणातीत है और तीनो गुणो, तीनो भवनो तथा तीनो कालो की कैद से बाहर है।

परन्तु यदि परमात्मा अकाल—समय के भाव से रहित है, तो फिर सृष्टि रचना की क्रिया इस सिद्धान्त—मार्ग मे विशेष रुकावट है। सृष्टि का आदि मे अन्त उत्पत्ति प्रलय, सब समय के साथ सम्बन्धित है। जिस प्रकार बेकन ने कहा था— काल नाम ही गतिशीलता का है, गतिशीलता का भाव है परिवर्तन और परिवर्तन से अभिप्राय यह है कि दृष्टिगत ससार बनता है, नष्ट होता है और इस ससार मे अनन्त घटनाये घटित हो हो कर चली जाती है। यह समय का प्रवाह है। हिन्दुओ के पौराणिक ग्रथो मे समय के भाव को भिन्न भिन्न हस्तियो (शक्तियो) के स्तर से सम्बन्धित किया है। कीडा का स्तर मनुष्य से बहुत छोटा है। उसका एक वर्ष शायद मनुष्य का एक पल ही हो। मनुष्य का एक वर्ष देवताओ का केवल एक दिन रात ही है तथा मनुष्य गिनती के ३६० वर्ष देवताओ का एक वर्ष है। इन देवताओ के १२००० वर्षो को चार युगो मे बाटा गया है। यह किसी मानवीय गिनती के लगभग चार सवा चार करोड वर्ष बन जाते है। यह चार युगो की अवधि देवताओ के हिसाब का एक चक्र है। ऐसे सतहर चक्रो का एक मानवत्र बनता है। देवताओ का बडा अथवा शिरोमणि ब्रह्मा देवता है। पन्द्रह मानवत्रो या कहिये लगभग एक हजार युगो के चक्रो का, ब्रह्मा का एक दिन बनता है। इतने ही—एक हजार युगो का चक्र ब्रह्मा की एक रात बनाता है। दूसरे शब्दो मे मनुष्य के हिसाब के ३४,३२०,००००००० वर्ष ब्रह्मा का एक दिन और इतने ही और वर्ष एक रात बनाते है। जब ब्रह्मा का दिन निकलता है अर्थात् कल्प आरम्भ होता है तो अनस्तित्व से अस्तित्व भी आरम्भ होता है तथा सृष्टि रचना का

आदि (श्री गणेश) होता है, विकास आरम्भ होता है। अदृष्ट ब्रह्म दृष्टिगोचर होने लगता है। जब फिर ब्रह्मा की रात आरम्भ होती है तो दृष्टिगत का अन्त आरभ होता है। भात्र सृष्टि का सिकुडना (सकुचित) शुरू होता है—अपकर्षण—सिमटना—आरम्भ होता है—दृष्टिगत अदृष्ट रूप धारण करने लगता है। यदि इसका अनुमान अकाल पुरुष के स्तर अथवा परिणाम से लगाया जाए तो यह सब कुछ क्षण भर—आख के फेर—मे भी थोडे समय मे होता है इसी लिए सब स्वप्न समान है। हमारे लिए तो लाखो करोडो, अरबो वर्षो का कोई समय हो अकाल पुरुष के लिए वह पल तथा क्षण भी नही है। इस विचार से सृष्टि रचना का आदि अन्त—समय का चक्र—अकाल पुरुष के लिए कोई अर्थ नही रखता तथा रचना के सिद्धात मे यह कोई रुकावट नही है। आइन्सटाईन, हमारा समकालीन वैज्ञानिक एव गणितज्ञ, एक ऐसे ही सिद्धात का सस्थापक है जिसे Theory of Relativity (सापेक्षता का सिद्धांत) कहते हैं। कुछ भी हो अकाल पुरुष की हस्ती मानवीय कल्पित समय के हिसाब से गुरु साहिब ने बाहर रखी है।

पुरुषत्व—हस्ती—देश (Space) के सम्बन्ध मे

पुरुषत्व हस्ती का मानवीय दृष्टिकोण से तीसरा अग है, देश अथवा अकाश, प्रत्येक हस्ती का दाया बाया, नीचे ऊपर, अन्दर बाहर तथा छोटा बडा है। ये समस्त शब्द देश-भाव को बताने वाले है। यदि ੧ਓ पुरुष है तो उस हस्ती के सम्बन्ध मे देश भाव किस प्रकार प्रकट होता है। गुरबाणी मे कई पद आये है, जिन से यह भाव निकाला जा सकता है। देश से बाहर भी है और अन्दर भी, यह तो सर्वथा ठीक है कि कोई बडा धर्म ईश्वर को किसी स्थान मे सीमित नही करता। सेंटजान की गासपल मे बाईबल के ये शब्द है शीघ्र ही समय आएगा जब आप अनुभव करेंगे कि ईश्वर की पूजा किसी विशेष स्थान से बन्धी नही रहेगी—इस पहाड से या जीरोशलम मे।

ईश्वर की आत्मा सर्वव्यापक है और जिसे उसकी पूजा करनी है वह आध्यात्मिक सत्यता के भाव मे ही करनी चाहिए। कुरान शरीफ मे भी ईश्वर का 'लामकान' कहा है। गुरबाणी मे आए कई पद इस भाव को स्पष्ट करते हैं। उसे अथाव, अलोक, अदेस कहा है। जब गुरु नानक देव जी मक्के गए तो काबे की ओर पाव करके सो गए। काजी को ज्ञात हुआ तो क्रोध मे आकर कहने लगा. तुम कितने काफर हो जो ईश्वर के घर की ओर पाव करके पडे हो? गुरु साहिब ने प्रेम सहित कहा, "भाई जिधर ईश्वर नही है, मेरे पाव उधर कर दो।" गुरु साहिब के शब्दो का भाव काजी के मन मे घर कर गया और उसने गुरु जी के चरण पकड लिए और याचना की कि आपने मुझे ज्ञान प्रकाश दिया है। ईश्वर तो प्रत्येक ओर है प्रत्येक स्थान तथा प्रत्येक दिशा मे है। मैं आपके चरण किस दिशा की ओर करू? यह हम देख ही आये हैं कि ईश्वरीय महानता एव विशिष्ठता को अनकारक रूप मे ईश्वर को आकाश कहा है। अलोक तथा आदेश कह कर अकाल पुरुष को आकाश-रहित बताया है। सब जगह व्यापक भी है। ऐसे भावो को प्रकट करने वाले नाम सर्वव्यापक सर्व निवासी, अनन्त, अपार, अमित, बसियार, अधिकाधिक, अपर, अपार आदि नाम हैं।

सर्व—देशीय—पुरुष Omnipresen t

देश निवास के भाव से परमात्मा के हजार हजूर होने के विचार का गहरा सम्बन्ध है। इसलिए गुरबाणी मे अकाल पुरुष को प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक समय हाजर नाजर (विद्यमान) कहा है। देश काल (स्थान एव समय) का भाव हमारे मानसिक अनुभव मे इकट्ठा ही आता है। हमारे जीवन मार्ग मे देश को काल से भिन्न करना असम्भव है। कल्पना के आधार पर भिन्न करके समझना अन्य बात है। हम देख ही आए हैं कि परमात्मा सदा स्थित रहने वाला त्रिकाल हाजर नाजर है, बल्कि काल चक्र को वश मे करने वाला है।

परन्तु साथ ही यह सर्व स्थान हाजर होने (विद्यमानता) के साथ साथ ही चलता है। ये भाव हमारे नैतिक जीवन के साथ विशेष रूप से जोडे गए हैं। गुरवाणी मे अकाल पुरुष के हाजर नाज़र होने से पापो से बचने की शिक्षा देने का काम लिया गया है। यदि अकाल पुरुष प्रत्येक स्थान पर सदा विद्यमान है तो फिर उसमे कौन छिपा रह सकता है। पाप करते समय इधर-उधर देखकर मनुष्य दूसरे मनुष्यो से तो छिपकर ~र्म कर लेगा परन्तु ईश्वर से कैसे छिपायेगा —

हट पटण बिज मदि ~न्नै करि चोरी घरि आवै ॥
अगहु देखै पिछहु दे~ ~झ ते कहा छपावै ॥

(गौडी चेती म , पृ० १५६)

ईश्वर तो प्रत्येक ~ पर सदा विद्यमान है। इस प्रकार से प~ ~। के स्वरूप भिन्न स्थितियो मे दिखाए है। पुरुष रूप मे ~श, काल, प्रकृति ~न्धित है और अपु~ रूप मे सत्ता है ~ कल वही है ~ गत नष्ट होने पर ~ह अदृष्ट रूप

।

इस सर्वशक्तिमानता का भाव क्या है ?

जे० एस० मिल कहता है कि यदि ईश्वर अपने आदेश से ही सब कुछ अस्तित्व मे नही ला सकता, अर्थात् यदि उसे अपनी इच्छापूर्ति के लिए अन्य साधनो की आवश्यकता है तो वह ईश्वर सर्वशक्तिमान नही है, प्रत्युत वह दूसरे कारणो के अधीन होकर काम कर सकता है। परन्तु क्या यह सम्भव नही है कि परमात्मा ने स्वय ही साधन तथा कारण भी पैदा कर लिए हो और फिर उन्हे स्वय ही प्रयोग मे लाए। ये उसी के आदेश मे उत्पन्न होते हैं और उसी के आदेशानुसार वे प्रयुक्त होते है। जब उसके आदेश की ही लीला है तो फिर दोष अथवा अधीनता कैसी ? अपने हुक्म मे ही वह सब कुछ करता है : 'जे तिसु भावै सोई होइ' और 'हुकमै अदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ।'

इस हुक्म का इस्लामी, ईसाई तथा यहूदी भाव तो यह है कि बस उसकी कल्पना मात्र से सब कुछ प्रकाश मे आता है, वह भले ही किसी नियमानुसार है या नही। 'कुन के कहने से किया आलम बपा।' गुरु साहिब के अनुसार, प्रत्येक बात हुक्म के अनुरूप तो होती है, परन्तु उसके अपने बनाये हुए नियमो के अनुसार ही सब कुछ होता है। इन नियमो-धर्मो मे से कुछेक का मनुष्य को ज्ञान है और कुछेक का, सम्भवत बहुत का अभी कोई ज्ञान ही नही है। जिस बात को हम चमत्कार अथवा अचम्भा समझते हैं वह कोई ऐसी घटना होती है जो नियमो के विरुद्ध होती है। परन्तु वास्तविक बात यह होती है कि वह घटना मनुष्य के उस समय तक जाने हुए नियमो के विरुद्ध हो तो हो, परन्तु वह ईश्वरीय नियमो के विरुद्ध नही हो सकती। इसी लिए ईश्वर अपनी शक्ति से कई प्रकार की आश्चर्यजनक तथा विलक्षण (अद्भुत) बातें ध्यान मे अथवा विचार केन्द्र मे ला सकता है

सलोक महला १ ॥

सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवाले घाह ॥
घाहु खानि तिना मासु खवाले एहि चलाए राह ॥
नदीआ विचि टिबे दिखाले थली करे असगाह ॥
कीड़ा थापि देइ पातिसाही लसकर करे सुआह ॥

परन्तु साथ ही यह सर्व स्थान हाजर होने (विद्यमानता) के साथ साथ ही चलता है। ये भाव हमारे नैतिक जीवन के साथ विशेष रूप से जोडे गए हैं। गुरबाणी मे अकाल पुरुष के हाज़र नाजर होने से पापो से बचने की शिक्षा देने का काम लिया गया है। यदि अकाल पुरुष प्रत्येक स्थान पर सदा विद्यमान है तो फिर उसमे कौन छिपा रह सकता है। पाप करते समय इधर-उधर देखकर मनुष्य दूसरे मनुष्यो से तो छिपकर कुकर्म कर लेगा परन्तु ईश्वर से कैसे छिपायेगा —

हट पटण बिज मदिर भन्नै करि चोरी घरि आवै ॥
अगहु देखै पिछहु देखै तुझ ते कहा छपावै ॥

(गौडी चेती म , पृ० १५६)

ईश्वर तो प्रत्येक स्थान पर सदा विद्यमान है। इस प्रकार से परमात्मा के स्वरूप भिन्न भिन्न स्थितियो मे दिखाये हैं। पुरुष रूप मे वह देश, काल, प्रकृति से सम्बन्धित है और अपुरुषत्व रूप मे सत्ता है। सब कुछ वही है। दृष्टिगत नष्ट होने पर भी वह अदृष्ट रुप मे स्थिर (स्थित) है।

सर्व-शक्तिमान (Omnipotent)

सर्व शक्ति-मानता तथा सर्वज्ञता अथवा अन्तर्यामी होने के दो अन्य ऐसे गुण हैं जिन के बिना मानव निश्चय के अनुसार किसी प्रकार के ईश्वर का स्वरूप भी पूरा नही कहा जा सकता। साधारण सामाजिक जीवन तथा मनुष्य धर्म के लिए ये दो गुण परमावश्यक है।

शक्ति का गुण ईश्वर मे होना इतना आवश्यक है कि इसके अनस्तित्व का निश्चय ईश्वर के अनस्तित्व के बराबर है। मनुष्य का पूज्य (इष्टदेव) चाहे कैसा भी है, चाह देव है या देवता, एक ईश्वर है या अधिक परन्तु प्रत्येक मे शक्ति अवश्य देखी जाती है। वास्तव मे अकाल पुरुष की सर्वशक्तिमानता ही उसके अस्तित्व का प्रमाण है। जो कुछ पुजारी करने का सामर्थ्य नही रखता, वह सब कुछ तथा उससे भी बढ कर उसके पूज्य को करने का सामर्थ्य रखना चाहिए। परन्तु

इस सर्वशक्तिमानता का भाव क्या है ?

जे० एस० मिल कहता है कि यदि ईश्वर अपने आदेश से ही सब कुछ अस्तित्व मे नही ला सकता, अर्थात् यदि उसे अपनी इच्छापूर्ति के लिए अन्य साधनो की आवश्यकता है तो वह ईश्वर सर्वशक्तिमान नही है, प्रत्युत वह दूसरे कारणो के अधीन होकर काम कर सकता है। परन्तु क्या यह सम्भव नही है कि परमात्मा ने स्वय ही साधन तथा कारण भी पैदा कर लिए हो और फिर उन्हे स्वय ही प्रयोग मे लाए। ये उसी के आदेश मे उत्पन्न होते है और उसी के आदेशानुसार वे प्रयुक्त होते है। जब उसके आदेश की ही लीला है तो फिर दोष अथवा अधीनता कैसी ? अपने हुक्म मे ही वह सब कुछ करता है 'जे तिसु भावै सोई होइ' और 'हुकमै अदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ।'

इस हुक्म का इस्लामी, ईसाई तथा यहूदी भाव तो यह है कि बस उसकी कल्पना मात्र से सब कुछ प्रकाश मे आता है, वह भले ही किसी नियमानुसार है या नही। 'कुन के कहने से किया आलम बपा।' गुरु साहिब के अनुसार, प्रत्येक बात हुक्म के अनुरूप तो होती है, परन्तु उसके अपने बनाये हुए नियमो के अनुसार ही सब कुछ होता है। इन नियमो-धर्मों मे से कुछेक का मनुष्य को ज्ञान है और कुछेक का, सम्भवत बहुत का अभी कोई ज्ञान ही नही है। जिस बात को हम चमत्कार अथवा अचम्भा समझते हैं वह कोई ऐसी घटना होती है जो नियमो के विरुद्ध होती है। परन्तु वास्तविक बात यह होती है कि वह घटना मनुष्य के उस समय तक जाने हुए नियमो के विरुद्ध हो तो हो, परन्तु वह ईश्वरीय नियमो के विरुद्ध नही हो सकती। इसी लिए ईश्वर अपनी शक्ति से कई प्रकार की आश्चर्यजनक तथा विलक्षण (अद्‌भुत) बातें ध्यान मे अथवा विचार केन्द्र मे ला सकता है

सलोक महला १ ॥

सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवाले घाह ॥
घाहु खानि तिना मासु खवाले एहि चलाए राह ॥
नदीआ विचि टिबे दिखाले थली करे असगाह ॥
कीडा थापि देइ पातिसाही लसकर करे सुआह ॥

जेते जीग्र जीवहि लै साहा जीवाले ता कि ग्रसाह ॥
नानक जिउ जिउ साचे भावै तिउ तिउ देइ गिराह ॥१॥
(वार माझ, पृष्ठ १४४)

ऐसे सामर्थ्य, शक्ति तथा बल के कारण ही गुरबाणी मे ग्रकाल पुरुप को शक्ति सम्पन्न कहा है। वह इतना बडा तथा बलवान है कि हम उसके बल तथा महानता का ग्रनुमान ही नही लगा सकते। प्रत्येक प्राणी उसे बडा बडा कहता है, परन्तु यह सब कुछ ग्रनुभूति तथा कल्पना द्वारा ही है।

सुणि वडा ग्राखै सभु कोइ ॥
केवडु वडा डीठा होइ ॥
(ग्रासा महला १)

एवडु ऊचा होवै कोइ ॥
तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ॥
(जपुजी)

सिरि राग के दूसरे (द्वितीय) शबद मे ही गुरु नानक देव जी बताते है कि ग्रकाल पुरुष की महानता तथा शक्ति का कोई ग्रनुमान नही लगा सकता, भले ही मनुष्य कितने भी बडे से बडे तथा ग्रकथनीय यत्न करे। इस कारण ही वह परमात्मा समस्त देवो देवताग्रो का सिरमौर है। सब योद्धा, बली, सूरवीर (सूरमे) उससे ही शक्ति एव बल का दान मागते है। देवो तथा दैत्यो ग्रादि सब को वह वश मे करने वाला है। सुर–ग्रसुर का स्वामी है प्रत्युत ग्रसुर-सहारक है। ग्रर्थात दैत्यो तथा बुरे देवताग्रो को मारने वाला है। उसने 'सब कुछ वश मे किया' है क्योकि वह सर्वशक्तिमान तथा शक्ति सम्पन्न है। इसलिए सारगधर तथा सारगपाणी है। बलवान से बलवान को भी वह नष्ट करता है क्योकि वह सबल मलन तथा विपत्तियो को दूर करने वाला है। उसकी शक्ति का ग्रनुमान ही नही लग सकता ग्रौर वह ग्रकल-कला है। परमात्मा के बलवान होने को मानवीय भाव मे शक्तिशाली भुजाग्रो वाला कह कर बताया है ग्रौर उसे भुजबल तथा चतर्भुज कहा है।

अन्तर्यामी OMNISCIENT

शक्ति के साथ ज्ञान का होना आवश्यक है। कोई शक्ति भली प्रकार तथा लाभदायक ढग से प्रयोग मे नही लाई जा सकती जब तक हमे यह ज्ञान न हो कि यह शक्ति कहाँ और किस प्रकार प्रयोग मे लानी है? कर्म करने से पहले हमे ज्ञानवान होना चाहिए और कर्म करना है ही शक्ति का प्रदर्शन अथवा प्रकाशन। इसलिए शक्ति-भाव से ज्ञान सम्बन्धित है तथा सर्वशक्तिमान के लिए अन्तरात्मा एक आवश्यक शर्त बन जाती है। प्रत्यक्ष (दृष्टिगत) ससार मे जो कुछ घटित होता है उसे मनुष्य जानता है अथवा जान सकता है। इसलिए आवश्यक है कि मनुष्य की सृष्टि करने वाला पुरुष इस ज्ञान से बहुत अधिक ज्ञान रखता हो, भले ही उस स्रष्टा (कर्ता) पुरुष को किसी काट जैसे दार्शनिक ने सदाचारी जीवन के लिए एक आवश्यक मनोभाव ही समझा हो। अकाल पुरुष को न केवल हमारे वचनो तथा कर्मो का ही ज्ञान होता है, यह तो प्रकट रूप मे होने के कारण समस्त शरीरधारी जान सकते है, अपितु परमात्मा तो हमारे आन्तरिक भावो को भी जानता है, वे विचार (कल्पनाये) जो अभी मन मे ही है और जिन्होने अभी शाब्दिक रूप धारण ही नही किया, बल्कि अचेत एव अकल्पित अवस्था के मन को भी परमात्मा जानता है। इसी लिए अकाल पुरुष को प्रत्येक अच्छे धर्म मे अन्तर्यामी कहा है। बाईबल तथा कुरान शरीफ मे ईश्वरीय ज्ञान को बहुत विशेषता दी गई है। 'कोई कही एक पत्ता भी नही हिल सकता जिसका कि इलम खुदा को नही है' यह कुरान शरीफ की पक्ति है। ईश्वर के अन्तर्यामी होने की आवश्यकता जहा हमारे सदाचारक जीवन के लिए है, वहा धार्मिक जीवन के लिए और भी अधिक है। उसने हमारी प्रार्थनाओ को जानना है, हमारे भावो को समझना है, उसने बिना बोले और बिना माँगे शैल पत्थरो मे जीवो के लिये खुराक का साधन बनाना है। परमात्मा को अपनी रची सृष्टि की प्रत्येक बात का ज्ञान होना आवश्यक है क्योकि उसने इस का पालण पोषण भी करना है। वह हमारी आवश्यकताओ को हमारे कहने से पहले ही जानता है।

ईश्वर का ज्ञान मानवीय ज्ञान की तुलना मे आरम्भ किया जाता है। पहले तो ईश्वर को मनुष्य से समझदार बुद्धिमान कहा है, फिर गुप्त बातो को जानने वाला कहा है तथा अन्त मे उसका अन्तर्यामी गुण बताया है। इसलिए वह बुद्धिमान है, योग्य है तथा प्रवीण है। वह तो हमातन—नख—शिख ज्ञान रूप है, बोध है। वह अन्तर्यामी है।

देखै बूझै सभ किछु जाणै अन्तरि बाहरि रवि रहिआ ॥
(आसा म १ पट्टी)

अद्वैत मत मे ईश्वर को अन्तर्यामी सिद्ध करने मे कोई रुकावट प्रस्तुत नही हो सकती। जैसा कि डेकार्ट ने कहा था कि मुझे किसी वस्तु (पदार्थ) की हस्ती (शक्ति) का उतना विश्वास नही है जितना कि मेरे आत्मज्ञान अथवा स्व-ज्ञान का। जब सब कुछ अपने आप है तो फिर ईश्वर के स्व-ज्ञान का भाव ही अन्तर्यामियता है। जब—'बाहर हुकम न कोइ" है तो फिर सब कुछ उसके ज्ञान मे है "तू जाणोई सभ से" गुरु वाक है।

बारहवां अध्याय

सदाचारक, सौन्दर्य सूचक, एवं राजसी भाव वाले नाम

(१)

सदाचार वाचक नाम

ईश्वर को सदाचारक रग मे रगना मानवीय प्रयत्नो का परिणाम है। उसे सदाचार का सरक्षक और उसमे सम्पूर्ण सदाचार का अस्तित्व दिखाया गया है। यह केवल मानवीय भाव है और इसका ब्रह्माण्ड की कला से सम्बन्ध नही है। हमारे आचारण के वे गुण और विशेषतायें जो हम मानव-समाज के लिए उपयुक्त एव आवश्यक समझते है, वे तो समस्त ही अकाल पुरुष मे पूर्णरूप से पूरी सीमा तक प्रस्तुत दिखाई जाती हैं। वे अवगुण एव बुराइया जो मनुष्यो मे हैं और हैं वे मानव समाज के लिए हानिकारक, उन सब का ईश्वर मे अभाव है, उसके समीप तक वे नही जा सकते। कुछ विशेषतायें ऐसी भी हैं जो केवल मात्र दैवी अथवा ईश्वरीय ही हैं, भाव यह कि वे ईश्वर मे ही हैं और मनुष्य मे नही हैं या वे मानवीय नही है।

गुरबाणी मे प्रयुक्त सदाचार वाचक नामो का विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है

१ मानवीय गुण जो ईश्वर मे हैं।

अ—पूरे कमाल मे है।

ब—मनुष्य के साधारण सम्बन्ध के कारण है।

द—मनुष्य के निजि एव मानवीय सम्बन्ध के कारण हैं।

२. मानवीय गुण जो ईश्वर मे नही हैं।

३. केवल दैवी गुण।

(अ)

हमारी विचारधारा उन मानवीय गुणो मे आरम्भ होती है जो ईश्वर मे सम्पूर्णतया विद्यमान है। मनुष्य अपने आप मे जितने भी गुण देखता है वे सारे सम्पूर्ण रूप मे अपने ईश्वर मे भी देखता है। यह तो मनोवैज्ञानिक नियमो के अनुसार है। परन्तु धर्म तो इस बात की शिक्षा देता है कि जितने भी अच्छे गुण मनुष्य मे हैं, उन सब का स्रोत परमात्मा है। उसकी कृपा से उनमे वृद्धि होती है और बुरी रुचि से वे घट भी जाते है। वह तो है सर्वशुभगुण सम्पन्न। अञील मे तो इस प्रकार लिखा है कि ईश्वर के बिना और कोई नेक है ही नही। इसका भाव भी यही प्रतीत होता है कि यदि मनुष्य मे नेकी है तो वह भी ईश्वर से प्राप्त हुई है। बात यह कि परमेश्वर (सृष्टि की रचना करने वाला) शुभ सदाचार का स्रोत, मूल एव भण्डार है और इसी लिए इन गुणो का देने वाला भी है।

तो फिर अवगुण और दुख कहाँ से आते है? बाईबल की भांति गुरबाणी मे भी परमात्मा को ही उचित-अनुचित, गुण-अवगुण क उत्तरदायी ठहराया गया है। बाईबल मे हजरत ईसा जी प्रार्थना करते हैं 'हमे, हे प्रभु! बुराई की ओर न ले जा!" यह ओल्ड टैस्टेमैंट मे से है। नई म सेंट जेमज ने कुछ शोध किया और कहा "किसी भी मनुष्य को यह नही समझना चाहिए कि जब कभी वह पाप करता है तो वह ईश्वर के आदेश से होता है। ईश्वर न कभी बुराई की ओर जाता है और न ही ले जाता है।" सिक्ख-धर्म के अनुसार यद्यपि ईश्वर (अकाल पुरुप) पूर्णरूप मे कार्यकारण है और प्रत्येक वस्तु का कर्ता है, परन्तु पाप-पुण्य और विशेषत पाप का भाव मनुष्य के लिए उतनी देर तक विद्यमान है जितनी देर वह अज्ञान

अवस्था में है। दूसरे शब्दो मे पाप (बदी) मनुष्य की उन्नति के साथ साथ एक Relative Concept अवस्था भेद से सम्बन्धित विषय है। यद्यपि गुरबाणी मे अनेक स्थानो पर प्रार्थनाए सकलित हैं कि ईश्वर कृपा करके कुकर्मों, पापो तथा अधर्मों से अपने सेवक जन को बचाए, परन्तु साथ ही यह भी लिखा है कि जब जीवात्मा परमात्मा के साथ एकस्वर हो जाता है, जब ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होकर पूर्ण प्रकाश हो जाता है तो अधर्म तथा पाप का विचार ही समाप्त हो जाता है। पुण्य-पाप का भेद ही नही रहता। फिर वह जीव स्वभाविक दैवी गुणो वाला बन जाता है।

वास्तविक बात तो यह है कि सिक्ख-धर्म मे दुख भोगना या बलिदान करना अथवा यज्ञ करना ईश्वर के गुणो मे से नही है। ईश्वर के समीप दुखो का पश्चाताप भी नही है। दुख-भोगने-वाला ईश्वर केवल ईसाइयो ने ही माना है। यूनानी धर्मों एव सभ्यता मे कभी भी दुख भोगने वाले ईश्वर का विचार प्रचलित नही हुआ। सटोइक्स मत मे तो इस विचार को बिल्कुल ही नही माना गया, इसीलिए वे ईश्वर को कृपालु भी कहने के लिए तैय्यार नही थे, क्योकि दयालुता एव कृपा उस समय होती है जब दुख का ज्ञान हो। दूसरे के दुख का अनुभव हो। यह अनुभव भी तो एक प्रकार का दुख ही है। इसलिए सटोइक्स मत मे ईश्वर को न दुख भोगने वाला और न ही रहीम और दयालु माना गया है। दुख भोगने वाले ईश्वर का विचार यहूदियो तथा मुसलमानो के लिए भी अपरिचित है। प्राचीन ईसाई भी इस विचार को अपनाने के लिए तत्पर नही थे। कई लोगो के विचार के अनुसार हिन्दु धर्म मे ईश्वर में दुख भोगने का गुण माना गया है। उनका निश्चय (विश्वास) है कि ईश्वर के सृष्टि रचना का काम ही ईश्वर के लिए दुख का कारण अथवा बलिदान का काम है। इस विचार से बलिदान अथवा यज्ञ का आरम्भ हो इसी रचना के आदि से है। भाव यह कि सबसे पहले ईश्वर ने बलिदान करके दिखाया। सिक्ख धर्म जो कि अद्वैतवाद के सिद्धात को मानता है, इस दुख भोगने वाले विचार को नही अपनता। वेदात मत की भाति सिक्ख धर्म मे भी दुख का भाव भ्रान्ति ही है। इसका कारण ही अज्ञानता है। जिज्ञासु के लिए अथवा

नीचे की अवस्था वाले मन के लिए इसके कुछ अर्थ हैं। अर्थात् उनके लिए यह Relatively Real अवस्था भेद के कारण अस्तित्व रखता है, परन्तु पूर्ण-ज्ञान-प्रकाश होने पर इसका अभाव है। इसलिए "दुख नाही सभ सुख ही हैरे।"

अकाल पुरुष 'दुख लत्थ' है अर्थात् उसे कोई दुख नही और न ही उन्हे कोई दुख है जो उसके सग रहते है, उसके समीप हैं। वह सब सुख ही सुख है, सुखो का सागर है, समस्त सुखो का सागर है। इन भावो को बताने वाले (प्रकट करने वाले) गुरबाणी मे प्रयुक्त नाम सुख, सुख सागर, सकल सुख सागर और गामी आदि हैं। इसीलिए ही वह सब को सुख दे सकता और देता है। वह 'सुखदायी' और 'सुख दाता' है। परम आनन्द की अवस्था को, 'सहज' कहते हैं और बाणी मे भी परमात्मा का नाम भी 'सहज' आया है। उसके गुणो मे 'न वृद्धि है न कमी है' और 'न ही वृद्धि अथवा कमी होती है' ('ना वाघ घाट होत है')। इसी लिए 'पूर्ण' एव 'सम्पूर्ण' है। वह गुणो का समुद्र, गुणो की खान है और इसी विचार से उसे 'गुणतास' 'गुणो गहीर' और 'गुणो निधान' कहा है। सुख एव आनन्द के साथ शान्ति तथा शीतलता का भाव भी सम्बन्धित है, इसलिए परमात्मा 'शीतल' तथा शीलवत भी है। वह सदा ही प्रसन्न रहता है और 'निहाल' 'प्रसन्न', 'हर्ष-वत (हरख-वत) 'रग' 'आनन्द' तथा 'विनोदी' है। सत महापुरुष की शीतलता एव शान्ति को बताने के लिए अथवा प्रकट करने के लिए सदल आदि के अलङ्कारों का प्रयोग किया है और इसी प्रकार अकाल पुरुष की शीतलता को सम्मुख रख कर उसे 'चन्दन' कहा है। इन समस्त गुणो के प्रयायवाची गुण हैं मधुरता एव विनम्रता। स्वभाव प्यार एव सुख वाला। इसी लिए अकाल पुरुष को 'अमृत 'मधुरभाषी' 'विनम्रभूत' बताया है। पीछे हम ईश्वर को सतचित गुणो वाला कह आये है। अब उसे आनन्द भी कहा है। तीनो को मिला कर वेदान्त वाले 'सत चित आनन्द' कहते है और गुरबाणी मे इस का पजाबी रूप 'सच्चदानन्द' है। परन्तु यह प्रसन्नता, शीतलता आदि गुण ईश्वर मे इस प्रकार नहीं हैं, जिस प्रकार हम मनुष्यो मे है। मनुष्य मे गुणो की सीमा है और उनकी उत्तमता का प्रभाव दूसरी ओर के उलटे गुणो के कारण परिलाक्षत

होता है। पाप के कारण पुण्य, असत्य के कारण सत्य, दुख के कारण सुख आदि। परन्तु ईश्वरीय गुणो के सम्बध मे यह बात नही है। इसी लिए, निर्गुण रूप मे गुरु जी ने अकाल पुरुष को 'दुख सुख रहित' कहा हैं, अतीत कहा है और त्रिवेका भी कहा है, क्योकि वह इन भिन्न भेदो से ऊपर है।

(व)

साधारण मनुष्य जब अपने आपको ईश्वर के सन्मुख रखता है तो उसे सदा अपने से बलवान एव नैसर्गिक शक्ति का भण्डार समझ कर उसके आगे प्रार्थना करता है। दुखो मे दुख निवृति के लिए, कठिनाइयो के दूर होने के लिए, मुसीबतो के टल जाने के लिए तथा अन्य अनगिणत, मागो के लिए वह हाथ जोड कर प्रार्थना करता है। मनुष्य का ईश्वर से यह सब से पुराना एव आरम्भिक सम्बध है। अकाल पुरुष हरि हर है, सहायक है, रक्षक है। जिस प्रकार ग्वाला गऊओ की देख भाल करता है, इसी प्रकार परमात्मा जीवो को रक्षा करता है और निशि दिन उनका पालन करके उन्हे सुखी रखता है

जिउ गाई कउ गोइली राखहि करि सारा ॥
अहि निसि पालहि राखि लेहि आतम सुखु धारा ॥ १ ॥
इत उत राखसु दीन दइआला।
तउ सरणागति नदरि निहाला ॥ १ ॥

(गउडी म १ पृ० २२८)

इसीलिए अकाल पुरुष गरीब नेवाज है, दीन दर्द है, दीन-बन्धु है, दीन दयाल है, अनाथो का नाथ है, बिना स्थानो वालो का स्थान है, आश्रय है। वह हमारी सहायता क्यो करता है? क्यो न करे? वह दयाल है, करीम है, रहीम है, कृपालु है, करुणामय है, ईश्वर है रक्षक है, दया है, कृपा निधान है। उसने हम पर अपार कृपा की है, हमारा शरीर, मन, आत्मा सब उसी के दिए हुए हैं। वह शरीर और

आत्मा का देने वाला है। अनन कृपा करने वाला है दानी, दाता, दातार, दिहद है। वह 'सर्वलोक का दाता' है, इच्छा दान करणज्ञ है। जब हम दुखी होते है तो हम दुख निवृत्ति के लिए उसके आगे विनय करते है क्योकि वह दुख भजन है। अकाल पुरुष अपनी रिद्धिया सिद्धिया देकर हम से कुछ कर्तव्यो का पालन मागता है। इन मे से महान कर्तव्य पूर्ण मानव बनने का है। परम पुरुष बनने का है। हमे उन समस्त गुणो का जो ईश्वर प्रदत्त हे पूर्ण रूपेण उन्नत करना चाहिए। वह हमारे किए कराये (समस्त कार्यो) का पूरा हिसाब रखता है, इसलिए 'बनिया' है। हमारे कर्मो की जाच पडताल करके वह पूरा न्याय करता है क्योकि वह 'अदली है, 'पूरा न्याय करने वाला है।

सदाचारक उन्नति और साधारण मनुष्यो के सदाचारक जीवन मे वह प्रौढता (परिपक्वता) एव आकर्षण नही रहती यदि न्यायकर्ता अकाल पुरुष का न्याय दण्ड देने के विचार से रहित हो। अपराधी (दोषी) के लिए दण्ड आवश्यक है। इस दण्ड के सम्बध मे गुरु साहिब का मत हिन्दु एव मुसलमान विचारो से भिन्न है। हिन्दु शास्त्रो के कर्मो का नियम इतना कठोर है कि उससे कोई बच नही सकता और इस लिए कृतज्ञता और क्षमा करने वाले ईश्वर के लिए अधिकतर गुजाइश नही है। इस नियम के अनुसार पश्चाताप करने के कोई अर्थ ही नही है। किए हुए कार्य का फल भोगना पडेगा। इसके विपरीत इस्लामी विचार इतना विशाल है कि ईश्वर चाहे तो बिना किसी के पश्चाताप करने के भी क्षमा कर देता है। पश्चाताप एव परेशानी की कोई आवश्यकता नही है।

गुरु साहिब ने इन दोनो अति विचारो की मध्य अवस्था को सम्मुख रखा है। गुरमत के अनुसार यदि कोई अपराधी हृदय से पश्चाताप करे और सच्चे मन से क्षमा के लिए प्रार्थना करे और भविष्य मे सोच समझ कर चलने का प्रण करे तो उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली जाती है और उसके जीवन का सारा ढाचा बदल जाता है। उसके सदाचारक (नैतिक) जीवन मे क्रांति आ जाती है। पिछले बुरे कर्मो के समस्त पाप धुल जाते है और सारी 'शीट रोल' साफ एव कोरी हो जाती है। अकाल पुरुष प्रसन्न हो जाता है और

कृपा पूर्वक अपराधी के समस्त अपराध अथवा दोष क्षमा कर देता है। पुराने किए कुकर्मो के बदले वह मनुष्य को निराश्रित नही करता और निस्सहाय नही बनाता। क्रोधी तथा प्रतिकार की भावना रखने वाले मनुष्य की भाति निर्दयी होकर वह दुखी नही करता, किसी के स्वाभिमान को भग नही करता। प्रत्युत वह तो मनुष्य का आश्रय है। वह पर्वत की भाति मनुष्य को अपनी ओट मे रखता है आश्रय देता है। उसके पास मनुष्य अपने समस्त भेद एव समस्त निर्बलताये प्रकट कर सकता है, अपना सर्वस्व उसे देकर निश्चिंत हो सकता है। वह "पैज राखणहार" है अर्थात् लाज रखने वाला है। इस प्रकार ईश्वर न केवल हमारी शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति करता है अपितु हमारे जीवन के प्रत्येक पहलु को ऊचा करने मे सहायता करता है। वह जीवन दान करता है, सदाचारक पूर्णता को ओर ले जाता है। अपराधियो को दण्ड देता है परन्तू वह शत्रु भाव नही रखता, प्रतिशोध नही लेता। वह क्षमा करने वाला ह और हमारा भलाई के लिए सब कुछ करता है।

परमात्मा के इन शुभ गुणो को, कि वह दयावान है, क्षमा करने वाला है और प्रत्येक ढग से हमारी सहायता करता है, गुरबाणी मे कई प्रकार से दिखाया गया है। वह उबारने वाला है, उद्धार करने वाला है वह पतित-पावन है, वह भूलने वालो को समझाता है और अपने प्रेमियो को प्यार करता है—भक्त वत्सल है।

(ज)

मनुष्य ईश्वर को प्रत्येक सम्बध मे अपने साथ जुडा हुआ देखता है और देखना चाहता है। प्रत्येक वह सम्बध जो प्यार जताये और प्रेम द्वारा उसकी कृपा का पात्र बनाए। इसी लिए सारे निजी सम्बध एव नाते उस अकाल पुरुष से गिने गए है, बल्कि कई धर्मो मे तो कथाये भी प्रचलित है कि ईश्वर ने पहले अपने मे से आदम-हव्वा उत्पन्न किए अथवा शिव-पार्वती उत्पन्न किए इत्यादि और फिर उनसे समय पाकर

समस्त मनुष्य जाति उत्पन्न हुई। भाव यह कि ईश्वर के पुत्र-पौत्र हैं। इसीलिए ईश्वर हमारे कार्य-व्यवहार मे पूरी रुचि रखता है। वह हम सबका पूर्वज (बाबा) है। बाबे की हैसियत मे हमारे कार्य-व्यवहार मे उसे रुचि है। वह हमारे दुखो एव कठिनाइयो से अनभिज्ञ नही रह सकता। बल्कि वह हमारा माता-पिता है। जीव-ईश्वर के परस्पर प्रेम को गुरु जी ने कई सम्बन्धो द्वारा जताया है। आज कल मानसिक विश्लेषण करने वाले, फ्रायड आदि साईकोऐनेलिस्ट (Pschoanalysts), यह कहते हैं कि मनुष्यो के मन मे सबसे अधिक आकर्षण वाला प्रेम स्त्री-पुरुष का है। बाबा, माता पिता होने के कारण ईश्वर मे हमारा प्रेम तो है और इस प्रेम मे आदर, सत्कार एव मान भी है और सम्भवत भय भी है, परन्तु भारतीय दृष्टि-कोण से पति-पत्नी का प्यार बे-मिसाल है अर्थात् अद्वितीय है। विशेषत स्त्री का मनोभाव पति के लिए एक अकथनीय मनोभाव है। इसीलिए ईश्वर को भर्ता कन्त, भतार, खसम, दूल्हा आदि कहकर पति भाव प्रकट किया गया है और मनुष्यो का उसकी स्त्रियाँ (पत्नियां)। इस स्त्री-भर्ता के प्रेम मे भी सत्कार, आदर और सम्भवत, भय का भाव भी है, परन्तु यह बहुत समीप होकर है। भारतीय स्त्री के लिए पति पूज्य है और प्रिय भी है, इसी प्रकार मनुष्य के लिए ईश्वर है।

उक्त सम्बधो मे मनुष्य-ईश्वर की समानता नही पाई जाती। प्रेम तो है परन्तु साथ ही सत्कार भरा डर भी है, किन्तु महान प्यार समानता का प्यार है, जहाँ कि उपालम्भ दिए जा सकें, निर्भीक होकर रोष प्रकट किया जा सके। प्यार की यह अवस्था भी गुरबाणी मे ईश्वर सम्बधी जीवो को बताई गई है। वह भ्राता है भाई है, मित्र और सबसे बढकर यह कि वह यार है, मित्र है। ईश्वर को मनुष्य के समीप लाने मे गुरु साहिब ने यह मित्र-भाई, यार के सम्बध बताकर एक प्रकार का समस्त धर्मो से नवीन एव विचित्र अथवा निराला जीव-ईश्वर-सम्बध स्थापित किया है। मित्र-भाव सर्वथा तो नवीन नहीं है। हिन्दू धार्मिक पुस्तको मे एक देवता ही मित्र था और उसकी पूजा आवश्यक बताई है। गुरु जी ने ईश्वर को मित्र, सगी, साथी, साजन एव सखा कहा है। परन्तु जो गम्भीर प्रेम भाव, समानता एव बराबरी सहित, गुरु जी ने बताया है, वह पहले कभी किसी धर्म मे नही बताया

गया। गुरु साहब ने तो एक रूप का प्यार, 'हमराज़' हम निवाले और हम प्याले वाला प्यार जताया है। तभी तो वह यार है, गहरा यार, और परम मित्र है। यार एव परम मित्र भाव मे इतना प्यार एव माण भरा हुआ है कि इस से बढ़कर प्रेम का चित्र नही खीचा जा सकता। यह सम्बध बहुत गहन, अत्यत सामीप्य वाला और दिखावे से रहित हे। ऐसे भाव के सूचक अन्य नाम प्रिय, प्यारा, प्रीतम, प्रिया आदि है। श्री दशमेश जी उस प्यारे को सन्देश भेजते हैं

मित्र पिआरे नू हाल मुरीदाँ का कहिणा ।।
तुध बिन रोगु रजाइयाँ दा ओढण, नाग निवासा दे रहिणा ।।
सूल सुराही खजर पिआला बिग कसाइयाँ दा सहिणा ।।
यारडे दा सानू सथरु चगा, भट्ठ खेडिआ दा रहिणा ।। १ ।।

प्यारे मित्र के बिना समस्त ऐश्वर्य और सुख आराम, सुख एव आराम वाले गदेलो को शैय्या सापो को भाति प्रतीत होती है, सुराहियाँ प्याले शूल एव खजर की भाति लगते हैं। उस यार के बिना जीवन किसी काम का नही है। अकाल पुरुष को सखा समझना मनुष्य को बहुत ऊचा उठाना है और ईश्वर को उसके बहुत समीप लाना है। मनुष्य परमात्मा के सम्बध को दृढ करने वाली यह एक नया भाव था।

क्या कभी अपुरुषत्व एव अचेतन परमात्मा ऐसे सम्बध मनुष्य के साथ रख सकता है? इसी लिए गुरु साहिब ब्रह्म को अकाल 'पुरुष' कहकर मनुष्य से कई प्रकार से सम्बधित करते है, परन्तु जब गुरु जी परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का ध्यान करते हैं तो ੧ਓ को समस्त सम्बधो से निर्लिप्त बताते हैं। उस अवस्था मे न उसका कोई बाप है न मा, न वह किसी का बाप न भाई। उसके कोई पुत्र-पौत्र नही है। उसका किसी के साथ सम्मोह अथवा प्रेम नही है। उसका कोई घर अथवा स्थान, शत्रु मित्र आदि नही है। न ही उसकी कोई स्त्री और न ही परिवार या जाति है।

अकाल पुरुष सांसारिक जोव नही है, वह इसमे ऊपर है। इस ससार एव ब्रह्माण्ड का वह कर्ता है। इसलिए वे बाते जो सांसारिक जीवो मे इनके चलायमान और अल्पज्ञ होने के कारण आ गई है वे ईश्वर मे नही हो सकती, चाहे अकाल पुरुष प्रत्येक स्थान पर प्रस्तुत है और परमब्रह्म वृक्ष, तृण एव पर्वत मे है परन्तु फिर भी अपने निरन्तर एव वास्तविक रूप मे वह किसो बन्धन मे नही है, किसी कर्मो मे नही हैं और किसी नियम के अधीन नही है। यद्यपि उसने ससार की सृष्टि करके अपने को ही बन्धन मे डाल लिया है और खालक खलक (स्रष्टा-सृष्टि) मे होने के कारण सृष्टि की नियमावली से वह बाहर नही हो सकता, परन्तु फिर भी वह स्वतत्र एव निर्लिप्त है। यह विचार है तो एक अद्भुत उलझन एव पहेली परन्तु परमात्मा के समस्त कौतुक ही आश्चर्य चकित कर देने वाले और मानव मस्तिष्क को पराजित कर देने वाले हैं।

मनुष्य स्वभाव एव जोवन मे हम कई बातें देखते हैं, जैसे कि दुख, न्यूनता कलेश, अधर्म एव अन्याय। इनमे से कोई भी बात ईश्वर के साथ सम्बधित नही की जा सकती। इसी लिए कई पहलुओ को सम्मुख रखकर गुरबाणी मे ईश्वर सम्बधी कई नाम आए है। हिन्दु शास्त्रो मे तीनो गुणो की समस्या बडी प्रमुख है। कपिल मुनि जी ने अपने साख्य दर्शन मे इस त्रिगुण समस्या को बडे परिश्रम से प्रयुक्त किया है। रजो, तमो, सतो, रजस्व, तमस, सात्विक ये तीन गुण है। सतो (सत्व) तो चेतन सत्ता का अश है और परम आनद का कारण है। रजस्व समस्त क्रियाओ एव कर्म का कारण है और इसका परिणाम दुख है। तमस कर्म एव क्रिया को घटाने वाला, आलस्य एव दरिद्र उत्पन्न करने वाला है। परन्तु ये तीन गुण जो सृष्टि विकास के प्रारम्भिक नियम स्थिर करते हैं, ये अकाल पुरुष को प्रभावित नही करते। वह त्रिगुणातीत है। तमा एक अरबी शब्द है और इसके अर्थ है लालच परन्तु गुरु साहिब बताते है कि अकाल पुरुष मे "तिल न तमाइ" तमा अथवा लोभ लेशमात्र भी नही है। इसी प्रकार अन्य कई मनुष्य कर्मो को ईश्वरीय शक्ति से अलग किया है। हम भोजन खाकर

जीवित रहते हैं, वह निराहारी है हम पापो से परिपूर्ण हैं, वह पापो से रहित है। हम किसी पर निर्भर हैं, वह नही, बलवान है। हम डरते हैं, वह निर्भीक है हम मे शत्रु भाव है, वह इस भाव से रहित है। हम इच्छावान हैं, वह इच्छा रहित एव मोह के बिना है और दुख एव कष्ट से रहित है, दुख रहित एव निष्कटक है। वह निर्मल है और हम मलीन, वह बे प्रवाह है और हम चिन्ता दुखो मे डूबे हुए। वह अभुल्ल, अडोल, अछल, अचल तथा अटल है और हम पग पग पर भूलने तथा डोलने वाले, छले जाने वाले और किसी को छलने वाले हैं।

विशुद्ध दैवी गुण

जहा तक ज्ञात हो सका है इस प्रकार ही अनुभव होता है कि कोई भी गुण ऐसा नही है जो ईश्वर मे है और वह मनुष्य मे, चाहे थोडा हो या अधूरा, परन्तु होता है वह आत्मिक जीवन से पूर्ण मनुष्य मे, नहीं है, और है भी ठीक। यदि ईश्वर सागर है तथा मनुष्य बून्द, परमात्मा अग्नि है जीव चिंगारी तो फिर दोनो मे जाति भेद नही है, हा स्तर का भेद अवश्य है। जाति एक ही है, परन्तु स्तर एक नही। कई गुण ऐसे भी है जो ईश्वर मे कभी न होते यदि मनुष्य तथा सृष्टि अस्तित्व मे न होती। भाव यह कि उन गुणो की आवश्यकता ही मनुष्य तथा सृष्टि की रचना होने से पडी, जैसे कि ईश्वर की दयालुता का गुण या परमात्मा का पितृ सम्बध। गुरबाणी मे वर्णित है कि यदि मनुष्य पाप न करता तो फिर ईश्वर को क्षमा करने वाला अथवा बख्शिद तथा मोक्ष प्रदान करने वाला कौन कहता। ऐसे समस्त नाम 'कृत्रिम' नाम हैं। वास्तविक तथा विशुद्ध दैवी गुण तो 'सतिनाम' है। सत्य को दृढ अथवा पुष्ट करने वाला, पवित्रता तथा प्रकाश देने वाला। ईश्वर ही सत्य है, ईश्वर ही पवित्र है और ईश्वर ही 'स्वभग' है। वह पवित्र, पावन, पाक, पुनीत है। वह अतुलनीय है। पवित्रता मे सन्देह हो ही नही सकता। ऐसे ही नाम

गुरबाणी मे सन्तो, महापुरुषो के सम्बध मे प्रयुक्त किये गए है। इसका भाव यह है कि सत्यता, पवित्रता तथा शुद्धता मे, ईश्वर फकीर तथा मर्द एक ही पक्ति मे है, यद्यपि है नीचे ऊपर या आगे पीछे। इसी पक्ति के एक किनारे पर कह लें ईश्वर है और दूसरे पर दूर जाकर पत्थर परन्तु परमात्मा का स्तर अद्वितीय है, वह सम्पूर्ण सत्य, प्रकाश, रघुराई, देव, गुरु सद्गुरु तथा ऐसे गुणो वाला 'केवल' है।

(२)

सौन्दर्यसूचक अथवा सौन्दर्य वाचक नाम

सिक्ख धर्म वास्तव मे सौन्दर्यसूचक सत्यवादक मत है। नाम जपने का भाव ही विस्मादी वृति उत्पन्न करना है। अकाल पुरुष को उसकी रचना द्वारा वाहु वाहु का भाव जागृत करके अनुभव करना। इसी लिए गुरबाणी मे प्रयुक्त अकाल-पुरुष-वाचक नामो मे सौन्दर्य भाव के नामो ने विशेष स्थान गृहण किया हुआ है। प्राकृतिक सौन्दर्य, सृष्टि रचना की कला तथा विशेषताओ को सम्मुख रख कर गुरु साहिब ने अकाल पुरुष को एक परिपूर्ण कोमल प्रवीण कलाकार का एक स्तर दिया। कैरिट लिखता है कि जो प्रभु-प्रेम मे रत (पगे हुए) जीव प्राकृतिक सुन्दरता को देख कर आनन्द प्राप्त करते है उन्हे रसकिन तथा वर्ड्सवर्थ की भाँति एक अकथनीय तथा अथाह खुशी प्राप्त होती है। जब वे पर्वत के पीछे सूर्य को उदय होते देखते हैं, अथवा बनकशा के फूल को, अथवा वे चहकती चिडिया को सुनते हैं या खण्ड ब्रह्माण्ड की सूत्र बद्ध एक स्वरता (गति) को तो किसी गम्भीर (परोक्ष) शक्ति का प्रभाव अनुभव करते है, किसी अप्रत्यक्ष मन की तरगो से एक सुर(स्वर) होते है। वह शक्ति तथा मन कोई मानवीय मन नही है, वह दैवी मन है, ईश्वरीय आह्लाद है और अकाल पुरुष की सुर है। यह ईश्वर को अनुभव करने का सौन्दर्यमय तथा विस्मादी ढग नवीन तथा निराला था।

सिक्ख-धर्म से पूर्व किसी धर्म के प्रवर्तक ने विस्माद (उन्माद) को परमात्मा के समीप होने का साधन नही बनाया था। यहूदी मत मे ईश्वरीय स्वरूप का गुण सु दरता नही है और न ही सुन्दरता का अग ईसाई मत ने अकाल पुरुप की शक्ति मे निखार कर दिखाया है। प्राचीन मिश्र के धर्मो मे ईश्वर के सुन्दर अथवा कोमल होने का कही भाव नही आया। यदि सूर्य देवता की पूजा को इस ओर लगा ले तो एक अलग बात है। इसी प्रकार ही इस्लामी मत मे, अथवा किसी ईरानी या ईराकी धर्म या वैदिक धम मे ईश्वर के सुन्दर होने का सकेत है। हा यूनानी मत-मतान्तरो का वहा के उच्च विचारको के दर्शन से ईश्वर के सौन्दर्य सम्बन्धी गुणो को बडी गवाही मिलती है। अर्थात् पुष्टि होती है। अफलातून तथा यूनान के प्राचीन दशन की तह मे विस्माद की भावना तथा सौन्दर्यमय अग प्रधान है। पुरातन मतो मे से ईश्वर के सुन्दर होने के भाव के न होने पर यह परिणाम नही निकालना चाहिए कि यह कोई अमानवीय भाव है, अथवा कोई ऐसा अग है जो मनुष्य मन का पहुच (पकड) से बाहर है। धर्म तथा सौन्दर्य भावो का जड मानव मन की बनावट मे विद्यमान है और ये सब बहुत समीप हो कर रहते है। बल्कि कई कोमल निपुण कलाकारो का मत है (देखें इटली के निपुण डैला सेटा की पुस्तक 'रिलेजन एण्ड आर्ट) कि कोमल कलामय भाव धार्मिक पूजा द्वारा उत्पन्न हुआ। डैलासेटा लिखता है कि यदि कोमल कला ने उन्नति करनी है और प्रफुल्लित होना है तो इसकी जड धर्म मे लगनी चाहिए अथवा धर्म मे लगनी अपेक्षित है और धर्म के आश्रय मे अर्थात् छत्र-छाया मे इसे खडा होना चाहिए।

इस बात के अतिरिक्त मनुष्य स्वभाव मे धार्मिक तथा कोमल कलात्मक भाव मिले जुले मिलते हैं परन्तु फिर भी कोमल कलामय भाव को ससार प्रसिद्ध धर्मो मे स्थान कम ही मिला है, और एक ईश्वरीय मत का अग सुन्दरता कभी नही हुई। जो बल गुरु साहिब ने ईश्वर के स्वरूप, ईश्वर की पूजा तथा ईश्वर के ज्ञान के सम्बध मे इस विस्मादी भाव पर दिया है, वह किसी भी धर्म मे देखने मे नही आया। इसके साथ ही यह कहने मे भी सकोच नही हो सकता कि गुरमत के इस पक्ष को जिन सिक्खो ने लापरवाही से लिया है शायद ही अन्य किसी पैगम्बर अवतार के अनुयाइयो ने उनकी शिक्षा के सम्बध मे इतनी

लाप्रवाही दिखाई हो। सिक्खी जीवन कठोरता तथा कोमलता—शक्ति एव विनमृता, देग तेग का मेल था परन्तु परिस्थितियो का रुख ऐसा ही रहा कि सिक्खो जावन मे शक्ति ही प्रधान रही, वह शूर वोर योद्धा ही बनते गए, कोमल कलामय भाव (उद्वग) रसपगे जीव कम बने। यह दोष मिक्ख जाति के राजनैतिक इतिहास का है। बेचारे अभी तक राजाओ की ओर से अथवा पडौसी जातियो को ओर से निश्चित नही हुए। इसलिए शक्ति पक्ष को सिक्खी जीवन मे प्रधानता मिलती रही है और आज भी मिलती है। विचार करे तो परिस्थितिया इस शक्ति पक्ष को विकसित करने की माग भी करती है।

सिक्ख का इष्टदेव सैनिक (सिपाहीयाना) तेग का धनि (तलवार का धनि)—'खडग केत' भी है, परन्तु वह देग का स्रोत (सोमा) नाम भी है। वह हमारे विस्मादी भाव को स्पर्श करके विकसित करता है। समस्त सौदर्य भाव का वह उद्गम स्रोत है। परमात्मा प्रत्येक दृष्टि-कोण से पूर्णरूपेण सुन्दर है, उसका रूप एव रग सुन्दर है, सुन्दर है उसका बो· तथा कथन, और सुन्दर है उसकी चाल एव अवस्था। उसकी सुन्दरता आदर्शमय है। ससार मे मानवीय चेहरो पर तथा प्राकृतिक दृश्यो मे जितना रूप तथा मुन्दरता है, इस समस्त का उद्गम स्रोत अकाल पुरुष है। उसके बोल तथा शब्दो की सुदरता ने मनुष्य को कविता एव सगीत का दान दिया। समस्त प्रकृति ही सगीत का नमूना है। राग नाद केवल मनुष्य की आवाज़ मे ही नही, ये तो प्रत्येक स्थान तथा प्रकृति के प्रत्येक दृश्य मे है, यदि कोई सुने तो। ईश्वरीय गतिशीलता एव गति की कोमलता के कारण यह ब्रह्माण्ड किसी नियमिक सूत्र मणि मे बद्ध चल रहा है। समस्त खण्ड ब्रह्माण्ड किसी सुर एव लय मे नृत्य कर रहे हैं। एक पाँव (कदम) गलत चला जाए तो समस्त खेल समाप्त हो जाए, परन्तु गलत हो किस प्रकार ? वह पूर्ण नर्तक है, इस नर्तक के रग मे ही समस्त प्राकृतिक नियम काम कर रहे हैं। हमारे अगो की क्रमबद्ध गति, हृदय की, रक्त की, शारीरिक अगो की, हमारे पृथ्वी सूर्य चन्द्र आदि के नियमिक चक्र ब्रह्माण्डो के चक्र ये समस्त किसी कलाकार की अति सूक्ष्म कला का परिणाम है।

बात क्या ईश्वर सुन्दर है पूर्णरूपेण सुन्दर है सुन्दरता रूप मे है, चाल मे है और प्रत्येक स्थिति मे है। पीछे इनका प्रसग आ चुका

है। वह सुन्दर, मनमोहक, मन को रमाने वाला, जगमोहक, नदनेति है, सुन्दर है। हुसनल वजूह हुसनल चराग है। उसको आवाज की सुन्दरता के कारण उसे 'गीत गीते' कहा है, अच्छे गीतो वाला 'तान ताने', 'नाद नादे' है। उसके नृत्य की सुन्दरता का कोई अनुमान नही और वह 'निरत निरते' है। ऐसे अकाल पुरुष को गुरु साहिब प्रतिक्षण, प्रतिपल नमस्कार करते हैं। देखे जापु पा १०)। वह आश्चर्यजनक कौतुको वाला है, सुन्दरता के ऐसे उद्गम स्रोत के साथ जब मानव मन जुडता है तो एक अकथनीय आनन्द की प्राप्ति होती है, और उन्माद की अवस्था में अथवा विस्मादी स्थिति मे आकर "वाहिगुरु वाहिगुरु" की धुन लग जाती है। गुरु साहिब ने इस 'वाहु वाहु' के भाव को "बडा कौतुक (तमाशा)" कहा है। गूजरी की वार तथा सवैय्यो मे 'वाहु वाहु' तथा 'खूब खूब' की ध्वनि का सुन्दर वर्णन है —

गूजरी को वार म ३ (पृष्ट ५१४—५१५)

नानक वाहु वाहु करतिआ प्रभु पाइआ करमि परापति होइ ॥ (१४)
वाहु वाहु करतिआ सदा अनन्दु होवै मेरी माइ ॥ (१५)
वाहु वाहु तिस नो आखीऐ जि सभ महि रहिआ समाइ ॥ (१६)
वाहु वाहु करतिआ मनु निरमलु होवै हउमै विचहु जाइ ॥ (१७)
वाहु वाहु हिरदै उचरा मुखहु भी वाहु करेउ ॥

•

नानक वाहु वाहु जो मनि चिति करे तिसु जम ककरु नेडि न आवै ॥ (१७)
वाहु वाहु वेपरवाहु है वाहु वाहु करे सो होइ ॥ (१८)

सवैय्ये (पृ० १४०२-१४०३)

वाहि गुरु वाहि गुरु वाहि गुरु वाहि जीउ ॥

सति साचु सिरी निवासु आदि पुरखु तुही ॥
वाहि गुरु वाहि गुरु वाहि गुरु वाहि जीउ ॥ १ ॥ ६ ॥
सेवक कै भरपूर जुगु जुगु वाह गुरु तेरा सभु सदका ॥
निरकारु प्रभु सदा सलामति कहि न सकै कोऊ तू कद का ॥१॥११॥

वाहु वाहु का बडा तमासा ॥
गुरमुखि सगति सभै बिचारहु वाहु वाहु का वडा तमासा ॥२॥१२॥
खूबु खूबु खूबु खूबु खूबु तेरो नामु ॥ (भैरउ म ५)

राजसी नाम

अकाल पुरुष के वे नाम 'राजसी' भाव मे लिए जाते हैं जिन से राज दरबारी तथा सरकारी राज्य प्रबन्धक गुणो की झलक पडती है। ऐसे समस्त नामो की नीव सिवल या फौजी शक्ति है। ऐसी दोनो प्रकार की अगाह तथा अथाह शक्ति, गुरु साहिब ने, परमात्मा मे दिखाई है। इन राजनैतिक राजसी) नामो का उद्गम उतना भारतीय भाव नही है जितना कि मुसलमानी है। भारतीय धर्मों मे परमात्मा के राजसी गुण कम ही दिखाये है। जरतुशती मत के ईश्वरीय नामो मे भी कोई राजसी प्रभाव नही है, प्रत्युत अहुरमजदी विचार का ही अधिक प्रभाव है। कारपैन्टर के कथनानुसार परिपूर्ण तथा प्रफुल्लित वैदिक साहित्य मे ईश्वरीय हस्ती के सम्बन्ध मे मनोरजक ढग से प्रत्येक पहलु का वर्णन किया गया है,—परन्तु परमात्मा के सम्बध मे राजसी भावो का कोई प्रसग नही है। राजनतिक गुणो वाले नाम वेदो मे नही हैं। भारतीय कल्पना बडी गहन एव सूक्ष्म थी, इसलिए वैदिक ऋषियो की कल्पना की उडान आस-पास के वातावरण से बहुत ऊचा या बहुत गहरी जाती थी। मानव समाज की सस्थाओ ने ईश्वरीय हस्ती को कोई रगत नही दी थी। परन्तु जिन कालो मे गुरबाणी की रचना की गई उन शताब्दियो मे बडे बडे साम्राज्य स्थापित हुए और बडे बडे सम्राटो ने राज किए। कई पराजित हुए और कई विजयी। मानव शक्ति ने अपने आपको कई रूपो मे दिखाया। ये समस्त राजसी ठाठ बाठ (ऐश्वर्य के प्रसाधन) एव दरबारी शान ईश्वरीय गुणो का रूप धारण कर गए। सासारिक अदालतो एव दरबारो से ईश्वरीय कचहरियो तथा दरबारो का विचार आया। जिस प्रकार सासारिक राजा सम्राट) अत्याचारो एव बर्बरता से बचाता है और अभियुक्तो

को दण्ड देता है, उसी प्रकार ईश्वर से भी पूर्ण न्याय की आशा रखी गई। उसकी कृपा (आशीर्वाद) पर आशायें लगाई गई।

उक्त भावों को प्रकट करने वाले कई नाम गुरबाणी मे आये हैं। गुरु साहिब ने अकाल पुरुष को राजा, राजान राजा, शाह, सुलतान, मीया, पातशाह, शाहन शाह आदि नाम दिए है। सासारिक राजाओ को शक्तिशाली राजाओ के हाथो पराजित होते तथा मरते देखा और उनके राजदरबार छिनते तथा बिगडते देखे। इनकी तुलना मे अथवा इसके विपरीत ईश्वरीय राज्य को 'निश्चल राज्य' और ईश्वर को 'सच्चा पातशाह' सदा रहने वाला बताया है। वह सच्ची सरकार है, छत्रपति हैं, प्रतापी है और 'अति ऊचा ताका दरबार' है। श्री गुरु नानक देव जी का सिरी मुखवाक् है·

सिरी राग पहला १

... ...

मेरे ठाकुर पूरै तखति अडोलु ॥

... .

प्रभु हरिमन्दरु सोहणा तिसु महि माणक लाल ॥
मोती हीरा निरमला कचन कोट रीसाल ॥

..

पूरो पूरो आखीऐ पूरै तखति निवास ॥

इस महावाक मे परमात्मा को 'अडोल तखति' वाला स्वर्ण के कोट—किले-वाला तथा माणक, लाल, मोती हीरो से जडित महलो वाला बताया है।

श्री दशमेश जी के महावाको मे शाही सिंहासन तथा मुकुट (ताज) एव सरकार दरबार के साथ सामाजिक सस्थाओ द्वारा भी प्रभुता दिखाई है। सेनाओ तथा शस्त्रो के स्वामी परमात्मा को मानव समाज मे रमा हुआ बताया है। मानव समाज को ही, यदि वह आदर्शमय नमूने का है, ईश्वर का रूप कहा है। समाज के उच्च से उच्च तथा निम्न से निम्न सदस्य के साथ भी ईश्वर को अभेद (अभिन्न) बताया है। यदि वह राजाओ का राजा है तो रको का रक भी है। ये सामाजिक गुण ईश्वर के स्वरूप मे दशमेश जी से पहले भी

बताये गए थे। यहा तक कि सिक्खी जीवन मे इन विचारो की झलक एव प्रयोग विद्यमान थे। सिक्खी रहन सहन को प्रकाश मे लाने वाले पहले विद्वान सिक्ख भाई गुरदास ने इक सिक्ख' दुइ साध सग तथा पचि परमेश्वर' के विचार को पचम पातशाह के समय भो प्रयुक्त होता देखा था (वार १३, पौडी १६। यह एक बडा नवीन एव युग बदलने वाला विचार था। इसके वास्तविक भाव को तथा इस विचार के हमारे धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन पर प्रभाव को (सम्भावना को दूसरो ने तो क्या सिक्खो ने भी भली प्रकार ग्रहण नही किया। इसी विचार के प्रभाव स्वरूप ही श्री दशमेश जो ने खालसा सुसज्जित किया था तथा खालसे की महत्ता इतनी थी कि वह विशिष्ठ गुरु रूप भो था तथा अकाल रूप भी। परन्तु क्रियात्मक रूप मे समस्त सृष्टि अकाल रूप तभी होगी जब सर्वत्र 'खालसा' हो 'खालसा' 'साकार रूप सत्य' राज करेगा, तथा कोई शत्रु (आकी) नही रहेगा। फिर सत्य सूर्य की भाति चमकेगा और असत्य लुप्त हो जायेगा। सब अपने आप ही होगा। इस प्रकार से अकाल पुरुष को राजाधिराज (शहन शाह) बताकर साधारण से साधारण मनुष्य के रूप मे भी बताया है और इसी लिए सत्य विशुद्ध पवित्र मनुष्यो के सगठन को ही परमेश्वर कहा है।

अकाल पुरुष के राजसी गुणो मे वे गुण भी सम्मिलित हैं जिनका सम्बध सैनिक शक्ति तथा शस्त्रो से है। यदि परमात्मा रक्षक है तो उसके लिए आवश्यक है कि वह शूरवोर एव बहादुर हा इसलिए शूरवीरता तथा शक्ति को इतना बताया हैं कि सब को पराजित कर सकता है। वह 'सरब जीते' (सर्व विजयता) तथा 'शस्त्र प्रणासी' है। इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि गुरमत के अनुसार अकाल पुरुष को रक्षा का काम करने के लिए किसी बाह्य सहायता एव शस्त्र आदि की आवश्यकता नही। उसका हुकम हो अटल है। वह सर्व शक्तिमान है। सनिक शक्ति वाले ईश्वर के गुणो का वास्तविक मूल श्री दशमेश जी की उस समय की विशेष आवश्यकता थो। सेनाओ तथा शस्त्रो का समय था। ऐसे ममय मे शूरवीर योद्धा ईश्वर को महा शूरवीर तथा आदर्श योद्धा समझ कर उसकी पूजा करता है। इसी विचार से वह अकथनीय वल एव अपूर्व (असीम) शक्ति प्राप्त (ग्रहण)

करता है। यह एक योद्धा के इष्टदेव (ईश्वर का रूप तथा चित्र होता है। जब असत्य तथा पाप को नष्ट करनें के लिए अन्य साधन असफल हो जाये तो ईश्वर शूरवीर योद्धे का रूप धारण कर लेता है। वह सैनिक शक्ति का प्रयोग करता है। इस शक्ति का वास्तविक चिन्ह तलवार अथवा कृपाण या खड्ग है। ये शस्त्र एव शक्तिया परमात्मा की हस्ती के चिन्ह बन जाते हैं। इसी लिए श्री दशमेश जी की वाणी मे अकाल पुरुष को असिपान, असिधुज, असिकेतु, खड्गकेत, अस्त्रपाणे तथा अस्त्र माण कहा गया हैं। शस्त्र नाम माला मे तो श्री साहिब स्वय भगवति का रूप धारण कर के अकाल पुरुष का परिचायिक चिन्ह बन जाती है। परमात्मा सव लोह कह कर पुकारा जाता है। तलवार को अकाल स्वरूप बताकर उसे समस्त सृष्टि का मूल कारण और सृष्टि रचना तथा सृष्टि के पालन का उत्तरदायो ठहराया है —

सिरी मुख वाक पातशाही । १० ।

दोहरा —नमसकार सिरी खडग को करौ सुहितु चितु लाइ ।
पूरन करौ गिरथ इह तुम मुहि करहु सहाइ । १ ।

त्रिभगी छद ।

खग खड बिहण्ड खल दल खण्ड अति रण मण्ड वरबण्डम ।
भुजदड अखण्ड तेज प्रचण्ड जोति अमण्ड भान प्रभम् ।
सुख सताम् करण दुरमति दरण किल बिख हरण अस जरणम् ।
जै जै जग कारण स्रिसृट उबारण मम प्रति पार जे तेगम् । २ ।
(वचित्र नाटक—पृ० ८६)

आगे जाकर पृष्ठ ११९ पर वार सिरी भगोती मे श्री दशमेश जी यह भी बताते हैं कि सृष्टि रचना का क्रिया मे सब से पहले रची जाने वाली वस्तु 'खण्डा ही थी।

खण्डा प्रिथमै साज कै जिन सभ सैसार उपाइआ । (२)

ऐसे समस्त नामो के विचार के मूल मे अकाल पुरुष की शक्ति का ही भाव है। अकाल पुरुष है ही शक्ति रूप। इसे एनर्जी (Energy) अथवा वाईटल प्रिंसीपल (Vital Principle) कह लें, यह शक्ति है। शक्ति का प्रारम्भिक चिन्ह है खण्डा, खडग। सृष्टि रचना भी शक्ति का ही अस्तित्व अथवा रूप है, या कहिये कि शक्ति ही स्थूल रुप मे

सृष्टि है, कर्ता एव कर्तृ भाव की द्योतक है। कोई कर्म या रचना सत्ता के बिना नही हो सकती और सत्ता ही शक्ति या चेतन अकाल पुरुष है। किसी की बौद्धिक कल्पना ने परमात्मा की सत्ता को चतुर-भुज कहकर प्रकट किया, किसी ने खड्गकेत कहकर। समस्त विचारो का मूल भाव एक ही है।

इस प्रसग को समाप्त करने से पहले कुछेक ऐसे ईश्वरीय नामो का वर्णन करना भी आवश्यक प्रतीत होता है जो ऊपर की किमी श्रेणी मे नही आए अथवा जिन का सम्बन्ध वेदो की प्रकृति पूजा के मत से या पुराणो की अवतार प्रणाली से है। इस मे सन्देह नही कि गुरु साहिब ने ये समस्त नाम एक अकाल पुरुष के लिए ही प्रयुक्त किए थे। पुराने नामो को नए एव उच्च (श्रेष्ठ) अर्थो मे प्रयुक्त किया था। प्रकृति पूजा से सम्बन्ध रखने वाले नाम इन्द्र, रुद्र, रविंद, भानु, भान भाने, सूरज, सूरज सूरजे, आदि है। पौराणिक कथाओ से सम्बधित नाम है बावन रूप, ब्राह, गजपति नरसिह, कुरम, मच्छ, कच्छ चतुर्भुज, कमलाकत, लक्ष्मीवर, चारुचरण, अम्पतिपीर, चक्रघर, चक्रपाणि आदि।

ईश्वरी गुणो को बताने वाले गुरबाणी मे आए इस प्रकार से भिन्न भिन्न भावो से प्रयुक्त किए गए नाम बहुत हैं। कई लोगो ने इनकी सख्या हज़ार तक भी पहुचाई है। ईश्वर सम्बन्धी मानव निश्चय शनै शनै उन्नत होता रहा है। किसी मज़िल पर मानव मस्तिष्क ने ईश्वर को किसी प्रकार समझा तथा किसी ने किसी प्रकार। परन्तु प्रत्येक नवीन निश्चय पहले से श्रेष्ठ तथा पवित्र था। इसलिए ईश्वरीय ज्ञान एक बडे लम्बे एव पुराने चले आ रहे पेचीदा (उलझे हुए) अमल (क्रिया) द्वारा शनै शनै घडा गया है। अग्रेज़ी शब्द 'गाड' का इतिहास तथा मुसलमानी शब्द 'अल्ला' का इतिहास या हिन्दु शब्द 'ब्रह्म' आदि के भाव को मूल से खोजे तो इस लम्बे सोपान का अनेक रूप प्रकाश झलकता है। ईश्वरीय ज्ञान न केवल मानव जाति तथा कौमो द्वारा शनै शनै उन्नति करता है, वरम् प्रत्येक व्यक्ति के अपने अपने मस्तिष्क मे भी अकाल पुरुष का निश्चय कई अवस्थाओ मे से गुजरता है। इस निश्चय पर मनुष्य के वातावरण का भी वहुत प्रभाव है। राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ बहुत प्रभाव रखती है। धार्मिक नैतिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी इस निश्चय को सवारा या विगाडा करते हैं। इन समस्त

कारणो से मनुष्य ईश्वर मे भिन्न भिन्न अवस्थाओ मे ईश्वर को भिन्न भिन्न गुणो से याद करता है।

ईश्वर का एक नाम सदा स्थित है और प्रत्येक प्रकार के प्रभावो से स्वतन्त्र तथा परिवर्तन से निर्लिप्त है। वह नाम गुरु साहिब ने 'सतिनाम' कहा है। यह अकाल पुरुष के सर्वव्यापक निरन्तर स्थित रहने वाले चेतन अस्तित्व का परिचायिक है। शेष समस्त नाम 'कृत्रिम' हैं। उसके समस्त नाम कौन कह सकता है। 'करम नाम' गुरु साहिब ने अक्षरो द्वारा बताये हैं। उसका वास्तविक स्वरूप अक्षरो एव कर्मों मे नही है। वह 'अनुभव प्रकाश' है। (पा० १०) 'कृत्रिम नाम' या 'करम नाम कोई असत्य या बनावटी नही है। ये झूठे नही हैं। ये वे नाम हैं जिनके द्वारा मनुष्य-जीव—अपने ईश्वर को जानता है। जीव भी तो ईश्वर का अश है। ब्रह्म का स्वरूप मनुष्य भी तो है। इसलिए ये नाम असत्य या काल्पनिक अथवा झूठे नहीं हो सकते। मनुष्य अकाल पुरुष के अश मे से हैं इस लिए मनुष्य ज्ञान यद्यपि है तो अधूरा तथा सीमित परन्तु है तो ईश्वर का ही न! ईश्वर का पूर्ण ज्ञान मनुष्य प्राप्त नही कर सकता। "करते की मित किया जाने कोआ" परन्तु "आपु आपनी बुधि है जेती। बरनत भिन्न भिन्न तुहि तेतो।"

ईश्वरीय गुणो को प्रकट करने वाले अनेक नाम ससार के धार्मिक साहित्य मे आ चुके हैं। गुरबाणी मे भी कई पुराने नाम प्रयुक्त किए गए हैं। परन्तु अनुसन्धानक के लिए गुरबाणी मे दो प्रकार के नाम सर्वथा नवीन तथा अदभुत हैं! परमात्मा का यह ज्ञान जो गुरु साहिब ने दिया बिल्कुल अनोखा एव निराला है। वह एक तो परमात्मा का सामाजिक (Social) स्वरूप है और दूसरा परमात्मा के सौन्दर्य (Aesthetic) गुण हैं। वह सत्य है तथा सुहाण भी है। पवित्र तथा उन्नत समाज (खालसा) को ईश्वर का विशिष्ठ रूप कहा है। "इक सिख, दुइ साध सग, पजी प्रमेश्वर" उसी भाव को स्पष्ट करता है। सासारिक उन्नति की मजिलो मे से गुज़रता मानुष जामा(शरीर) धारण करता है। मनुष्य उन्नति करते करते एक सत्य सुन्दर समाज बनाते है, खालसा! खालसे मे ईश्वर स्वय निवास करता है। God realises himself in the Khalsa खालसा ईश्वर है और ईश्वर खालसा है।

तेरहवां अध्याय

सृष्टि रचना

गुरबाणी तथा भाई गुरदास जी की रचनाओ मे से हमे यह निश्चय होता है कि इस ब्रह्माण्ड के अस्तित्व का आदि है और उससे पूर्व सब ब्रह्म ही ब्रह्म निर्गुण रूप मे था, सर्वत्र धुन्धनाकार था, न पृथ्वी न आकाश, न सूर्य न भानु, न दिन और न रात, न जल हवा तथा न जीव जाति (जन्तु)। उत्पत्ति, प्रलय, ब्रह्मा विष्णु शिव कुछ भी नही था। सब अकाल ही अकाल था। मारू राग मे श्री गुरु नानक देव जी का महावाक् है —

मारू महला १

अरबद नरबद धुधूकारा। धरणि न गगना हुकमु अपारा॥
ना दिनु रैनि न चदु न सूरजु सुन्न समाधि लगाइदा॥१॥
खाणी न बाणी पउण न पाणी। उपति खपति न आवण जाणी॥
खण्ड पताल सपत नही सागर नदी न नीरु वहाइदा॥२॥
ना तदि सुरगु मछु पइआला। दोजकु भिसतु नही खै काला॥
नरकु सुरगु नही जम्मणु मरणा न को आइ न जाइदा॥३॥
ब्रह्मा बिसनु महेसु न कोई। अवरु न दीसै एको सोई॥
नारि पुरखु नही जाति न जनमा न को दुखु सुखु पाइदा॥४॥
ना तदि जती सती बनवासी। न तदि सिध साधिक सुख वासी॥
जोगी जगम भेखु न कोई ना को नाथु कहाइदा॥५॥
जप तप सजम ना ब्रत पूजा। ना को आखि वखाणै दूजा॥
आपे आपि उपाइ विगसै आपे कीमति पाइदा॥६॥
ना सुचि सजमु तुलसी माला। गोपी कानु न गऊ गुआला॥
ततु मतु पाखडु न कोई ना को वसु वजाइदा॥७॥

करम धरम नही माइआ माखी । जाति जनमु नही दीसै आखी ॥
ममता जालु कालु नही माथै ना को किसै धिआइदा ॥८॥
निन्दु बिन्दु नही जीउ न जिन्दो । न तदि गोरखु ना माछिन्दो ॥
ना तदि गिआनु धिआनु कुल उपति ना को गणत गणाइदा ॥९॥
वरन भेख नही ब्रह्मण खत्री । देउ न देहुरा गऊ गाइत्री ॥
होम जग नही तीरथि नावणु ना को पूजा लाइदा ॥१०॥
ना को मुला ना को काजी । ना को सेखु मसाइकु हाजी ॥
रईअति राउ न हउमै दुनीआ ना को कहणु कहाइदा ॥११॥
भाउ न भगती ना सिव सकती । साजनु मीतु बिंद नही रकती ॥
आपे साहु आपे वणजारा साचे एहो भाइदा ॥१२॥
वेद कतेब न सिम्रिति सासत । पाठ पुराण उदै नही आसत ॥
कहता बकता आपि अगोचरु आपे अलखु लखाइदा ॥१३॥
जा तिसु भाणा ता जगतु उपाइआ । बाझु कला आडाणु रहाइआ ॥
ब्रह्मा बिसनु महेसु उपाये माइआ मोहु वधाइदा ॥१४।
विरले कउ गुरि सबदु सुणाइआ । करि करि देखै हुकमु सबाइआ ॥
खण्ड ब्रह्मण्ड पाताल अरम्भे गुपतहु परगटी आइदा ॥१५॥
ता का अंतु न जाणै कोई । पूरे गुर ते सोझी होई ॥
नानक साचि रते बिसमादी बिसम भए गुण गाइदा ॥१६॥३॥१५॥

यह महावाक् ऋग्वेद के दसवे मण्डल के १२९वे नासद्य मत्र से कई बातो मे मिलता जुलता है। सर राधा कृष्णन के विचार मे इस मत्र मे एक ईश्वरीय मत की पुष्टि की गई है तथा समस्त विचार वैदिक ऋषियो के मन की श्रेष्ठतम अवस्था का परिणाम है। वैदिक मत्र मे समस्त विचार बताकर यह कहा गया है कि सृष्टि से पूर्व की स्थिति (अवस्था) की कोई सूझ नही था। उस अवस्था का ज्ञान सम्भवत रचना करने वाले को भी नही था। रचना तो है ही नही थी। रचन हार किसी अन्य क्रीडा मे था तो फिर सम्भवन साधारण अर्थो मे ब्रह्म को भी उस अवस्था का ज्ञान न हो। वैदिक ऋषियो ने इस प्रकार की शका प्रकट की है। कुछ ऐसा विचार ही ऊपर लिखे शवद के नौवें चरण से भी प्रकट होता है —

ना तदि गिआनु धिआनु कुल उपति, ना को गणत गणाइदा ॥

भाव यह कि यह सृष्टि रचना सदा से नही है। कब नही थी।

उस समय की स्थिति का किसी को कुछ पता नही है।

सृष्टि रचना से पहले की अवस्था के सम्बध मे अन्य मतो मे भी ऐसे ही विचार आए है। बाईबल मे लिखा है कि "उस समय सृष्टि का कोई अस्तित्व नही था और सुनसान तथा घोर अधकार प्रधान था।" दाऊद ने परमात्मा से पूछा "सृष्टि रचना से पूर्व तुम इसको रचना करने वाले कहाँ थे?" परमात्मा ने उत्तर दिया "मैं उस समय गुप्त था, मैं ने ज्ञात होने की इच्छा प्रकट की और यह सृष्टि रच दी।' इसी प्रकार कुरान शरीफ मे है। किसी अबी जरारा से पैगम्बर से पूछा सृष्टि रचना से पहले ईश्वर कहा था? उत्तर मिला कि "वह एक युद (बादल) मे था जिस के न नीचे कोई वायु थी और न ऊपर।" कुछ ऐसे ही विचार चीनी मतो तथा अन्य धर्मो वालो ने प्रकट किए थे।

परन्तु यह विचार कि पहले सृष्टि का कोई अस्तित्व नही था और फिर किसी समय इस की रचना का गई दार्शनिक समस्याये तथा विचार क्षेत्र मे बडी कठिनाइया प्रस्तुत करता है। जैसे कि गैलोवे लिखता है "इस विचार मे आन्तरिक विरोध है कि पहले बहुत समय तक अकाल पुरुष सुप्त अवस्था मे रहा और फिर किसी समय आकर उसे यह इच्छा प्रकट हुई कि वह सृष्टि की रचना करे और इस इच्छा के अधीन यह सृष्टि रची गई। यदि सृष्टि रचना एक उत्तम कर्म था या ऐसी इच्छा एक शुभ इच्छा थी तो फिर क्या परमात्मा सृष्टि रचने से पूर्व इस उत्तम कर्म से शुभ इच्छा के बिना ही सन्तुष्ट रहा। जब कि उसमे यह शक्ति थी कि वह उत्तमता तथा चमत्कार अद्भुतता) को बढा सकता था अथवा विकसित कर सकता था तो फिर वह उस से घटिया स्थिति (अहस्था) मे क्यो सोया रहा। इस बात का दोष परमात्मा पर आता है। यदि उस घटिया अवस्था मे वह सन्तुष्ट नही था तो वह चाहता कि उत्तमता विकसित हो तो फिर यह अनुमान होता है कि उसके सकल्प एव इच्छा मे पूर्ण बल नही था ताकि उस इच्छा को प्राप्त कर सकता। न ही अपूर्ण उत्तमता की स्थिति मे सन्तुष्टता और न ही उसकी इच्छा पूर्ति के लिए पूर्ण बल का अनस्तित्व ईश्वर के स्वरूप तथा गुणो के साथ मेल खाता है। ये दोनो ही विचार सर्व-शक्तिमान अकाल पुरुष के सम्बध मे घटाये

नही जा सकते। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि वह कौन सा कारण था जिस के अनिस्तित्व के कारण सृष्टि न रची गई और फिर उस कारण के उत्पन्न हो जाने पर सृष्टि रचना हुई। इन शकाओ का कोई सन्तोष-जनक उत्तर नही मिलता।

गैलोवे आगे जाकर लिखता है कि वास्तव मे सारी समस्या को ठोक ढग से प्रस्तुत नही किया गया। वास्तविक बात यह है कि अकाल पुरुष का सृष्टि रचना से सम्बध समय-काल के अर्थो मे नही है। काल भाव से तो पहले पोछे (पूर्व-पश्चात) का प्रश्न उत्पन्न होना है परन्तु यदि इस प्रकार कहे ईश्वर मानसिक काल्पनिक रूप मे रचना से पहले है काल-समय के अर्थो मे नही। काल विचार (कल्पना) को प्रभावित नहो करता और कल्पना अथवा विचार काल के अधीन नही है। यह उत्तर घर पूरा करता हैं या नही परन्तु गुरु साहिब तो निश्चित ही यह बताते है कि अनन्त कालो एव कालान्तरो तक पहले अकाल पुरुष अपने आप था। स्वाध्याय रूप समाधि अवस्था मे मग्न था और फिर किसी समय सृष्टि रची गई। इस विचार मे भले ही कोई विरोध या कमी है अथवा नहो परन्तु गुरु साहिब का मत यही है।

वास्तविक बात यह है कि सृष्टि तथा इसकी रचना एव काल की सीमा निर्धारण तथा गणना परिमाण मनुष्य के लिए तो भले ही बडी महत्वपूर्ण समस्याये हो परन्तु अकाल पुरुष के अस्तित्व तथा सत्यता की तुलना मे उतना महत्व भो नहो रखते जितना कि हजारो मोल लम्बे एव चाडे कई मोल लम्बे ऊचे हिमालय पर्वत की तुलना मे एक राइ या तिल का दाना रखता है। हमारा ब्रह्माण्ड तो है हा एक और ऐसे अन्य पता नही कितने है। इन समस्त विचारो की महत्ता केवल सम्बधित (Relative) भाव मे ही ली जा सकती है। एक छोटे से कृमि (कोडे) के लिए एक घण्टे का जोवन मनुष्य के लिए उसकी सौ वर्ष की तपस्या से भी सम्भवत कई गुणा लम्बा लगना हो। कीडी के लिए तो ठूठा (एक छोटा बरतन) ही नदो है—मनुष्य अपनो हस्ती एव आयु की तुलना मे उस कृमि के एक मिन्ट या एक घण्टे के जीवन को कुछ भी नही समझता और किसी गणना मे ही नही लाता। इसी प्रकार से अकाल पुरुष के लिए यह सृष्टि तथा इसकी रचना सम्भवत इतनी ही महत्ता रखतो हो जैसे कोई व्यक्ति

उस समय की स्थिति का किसी को कुछ पता नही है।

सृष्टि रचना से पहले की अवस्था के सम्बध मे अन्य मतो मे भी ऐसे ही विचार आए है। बाईबल मे लिखा है कि "उस समय सृष्टि का कोई अस्तित्व नही था और सुनसान तथा घोर अधकार प्रधान था।" दाऊद ने परमात्मा से पूछा "सृष्टि रचना से पूर्व तुम इसको रचना करने वाले कहाँ थे?" परमात्मा ने उत्तर दिया "मैं उस समय गुप्त था, मैं ने ज्ञात होने की इच्छा प्रकट की और यह सृष्टि रच दी।' इसी प्रकार कुरान शरीफ मे है। किसी अबी जरारा से पैगम्बर से पूछा सृष्टि रचना से पहले ईश्वर कहा था? उत्तर मिला कि "वह एक युद (बादल) मे था जिस के न नीचे कोई वायु थी और न ऊपर।" कुछ ऐसे ही विचार चीनी मतो तथा अन्य धर्मो वालो ने प्रकट किए थे।

परन्तु यह विचार कि पहले सृष्टि का कोई अस्तित्व नही था और फिर किसी समय इस की रचना की गई दार्शनिक समस्याये तथा विचार क्षेत्र मे बडी कठिनाइया प्रस्तुत करता है। जैसे कि गैलोवे लिखता है "इस विचार मे आन्तरिक विरोध है कि पहले बहुत समय तक अकाल पुरुष सुप्त अवस्था मे रहा और फिर किसी समय आकर उसे यह इच्छा प्रकट हुई कि वह सृष्टि की रचना करे और इस इच्छा के अधीन यह सृष्टि रची गई। यदि सृष्टि रचना एक उत्तम कर्म था या ऐसी इच्छा एक शुभ इच्छा थी तो फिर क्या परमात्मा सृष्टि रचने से पूर्व इस उत्तम कर्म से शुभ इच्छा के बिना ही सन्तुष्ट रहा। जब कि उसमे यह शक्ति थी कि वह उत्तमता तथा चमत्कार अद्भुतता) को बढा सकता था अथवा विकसित कर सकता था तो फिर वह उस से घटिया स्थिति (ग्रहस्था) मे क्यो सोया रहा। इस बात का दोष परमात्मा पर आता है। यदि उस घटिया अवस्था मे वह सन्तुष्ट नही था तो वह चाहता कि उत्तमता विकसित हो तो फिर यह अनुमान होता है कि उसके सकल्प एव इच्छा मे पूर्ण बल नही था ताकि उस इच्छा को प्राप्त कर सकता। न ही अपूर्ण उत्तमता की स्थिति मे सन्तुष्टता और न ही उसकी इच्छा पूर्ति के लिए पूर्ण बल का अनस्तित्व ईश्वर के स्वरूप तथा गुणो के साथ मेल खाता है। ये दोनो ही विचार सर्व-शक्तिमान अकाल पुरुष के सम्बध मे घटाये

नही जा सकते। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि वह कौन सा कारण था जिस के अनिस्तित्व के कारण सृष्टि न रची गई और फिर उस कारण के उत्पन्न हो जाने पर सृष्टि रचना हुई। इन शकाओ का कोई सन्तोष-जनक उत्तर नही मिलता।

गैलोवे आगे जाकर लिखता है कि वास्तव मे सारी समस्या को ठीक ढग से प्रस्तुत नही किया गया। वास्तविक बात यह है कि अकाल पुरुष का सृष्टि रचना से सम्बध समय-काल के अर्थो मे नही है। काल भाव से तो पहले पीछे (पूर्व-पश्चात) का प्रश्न उत्पन्न होता है परन्तु यदि इस प्रकार कहे ईश्वर मानसिक काल्पनिक रुप मे रचना से पहले है काल-समय के अर्थो मे नही। काल विचार (कल्पना) को प्रभावित नही करता और कल्पना अथवा विचार काल के अधीन नही है। यह उत्तर घर पूरा करता हैं या नही परन्तु गुरु साहिब तो निश्चित ही यह बताते हैं कि अनन्त कालो एव कालान्तरो तक पहले अकाल पुरुष अपने आप था। स्वाध्याय रूप समाधि अवस्था मे मग्न था और फिर किसी समय सृष्टि रची गई। इस विचार मे भले ही कोई विरोध या कमी है अथवा नही परन्तु गुरु साहिब का मत यही है।

वास्तविक बात यह है कि सृष्टि तथा इसकी रचना एव काल की सीमा निर्धारण तथा गणना परिमाण मनुष्य के लिए तो भले ही बडी महत्वपूर्ण समस्यायें हो परन्तु अकाल पुरुष के अस्तित्व तथा सत्यता की तुलना मे उतना महत्व भी नही रखते जितना कि हजारो मील लम्बे एव चौडे कई मील लम्बे ऊचे हिमालय पर्वत की तुलना मे एक राइ या तिल का दाना रखता है। हमारा ब्रह्मण्ड तो है हा एक और ऐसे अन्य पता नही कितने है। इन समस्त विचारो की महत्ता केवल सम्बधित (Relative) भाव मे ही ली जा सकती है। एक छोटे से कृमि (कीडे) के लिए एक घण्टे का जीवन मनुष्य के लिए उसकी सौ वर्ष की तपस्या से भी सम्भवत कई गुणा लम्बा लगता हो। कीडी के लिए तो ठूठा (एक छोटा बरतन) ही नदी है—मनुष्य अपनी हस्ती एव आयु की तुलना मे उस कृमि के एक मिन्ट या एक घण्टे के जीवन को कुछ भी नही समझता और किसी गणना मे ही नही लाता। इसी प्रकार से अकाल पुरुष के लिए यह सृष्टि तथा इसकी रचना सम्भवत इतनी ही महत्ता रखती हो जैसे कोई व्यक्ति

कभी जमाई ले अथवा छीक मारे। एक जभाई या छीक एक व्यक्ति के जीवन चर्या मे क्या महत्ता रखती हैं। इसी प्रकार जिस समय को हम युग युगान्तरो तक तथा अत्यत लम्बा कहते हैं वह सारा समय परमात्मा के लिए शायद एक आँख के फेर के बराबर भी न हो। इस लिए अकाल पुरुष के लिए सृष्टि रचना के बिना होना या सृष्टि रचना का कार्य करना आदि तथा क्यो करना और कैसे करना ये सब कोई महानता नही रखते। इसलिए इन का अस्तित्व या अनस्तित्व ईश्वर के लिए न्यूनता अथवा पूर्णता और नेकी या बदी के अधिक या कम का भाव नही रख सकते। सृष्टि का रचा जाना या न रचा जाना यह सब कुछ मनुष्य के लिए तो बडी बातें है परन्तु परमात्मा— 'हरन भरन जाका नेत्र फोर'' के लिए ये क्या अन्तर डाल सकती हैं ? इस लिए सृष्टि रचना से पूर्व युग युगान्तरो का "अरबद नरबद धन्धूकार" का समय मानने मे अकाल पुरुष के दृष्टिकोण से कोई विरोध नही है।

सृष्टि रचना से पूर्व अवस्था को विचार के पश्चात् अब हम सृष्टि रचना के विचार की ओर आते हैं। जड तथा चेतन, सजीव तथा निर्जीव वस्तुओ और इनके परस्पर भेदो आदि के विचार से सृष्टि रचना सम्बधी कई मत मानव मस्तिष्को से निकले। कई लोगो के लिए पुरुष तथा प्रकृति, रूह एव मादा (आत्मा-अश), चेतन तथा जड वस्तुए सर्वथा भिन्न भिन्न गुणो वाली है। ये दो बिल्कुल भिन्न जातिया हैं। ये दोनो किसी एक समान उद्गम स्रोत से नही बन सकती। ये आदि अनादि से ही दो भिन्न भिन्न तत्व हैं। भारत मे साख्य शास्त्र का पुरुप-प्रकृति मत तथा यूरोप आदि देशो मे 'मैटर' 'माईण्ड का द्वैत मत बहुत प्रसिद्ध है। पुरुप तथा प्रकृति दोनो ही अनादि मानते हैं और सृष्टि रचना के लिए दोनो मे से अकेला कुछ भी नही कर सकता। दोनो के सहयोग से ही सृष्टि अस्तित्व मे आती है। जिस प्रकार कुम्हार अथवा तरखाण (बढई) मिट्टी से बरतन तथा लकडी से चारपाई बनाता है उसी प्रकार पुरुप–परमात्मा ने प्रकृति से सृष्टि की रचना की। यह प्रकृति मूल आदि से उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार पुरुप। गुरु साहिब ऐसे मत का घोर खण्डन करते हैं। अकाल पुरुप के बिना अन्य कोई वस्तु सत्य तथा अनादि

नही है न ही गुरु साहिब इस विचार को अपनाते है कि सृष्टि रचना बिना किसी उपादान कारण के ही हो गई। अनस्तित्व अस्तित्व का कारण कैसे हो सकता है। सिक्ख धर्म के अनुसार सृष्टि रचना का कारण 'हुक्म' है। यह 'हुकम' किस समय प्रयोग मे आना आरम्भ हुआ, क्यो प्रयोग मे आया, किस प्रकार आया और उससे पूर्व क्यो न आया? इन समस्त प्रश्नो का उत्तर यही है कि इन बातो को कर्ता, हुक्म देने वाला स्वय ही जानता है। उसके द्वारा रचित' एव 'बनाये' गये जीव अल्पज्ञ है, वे नही जान सकते कि यह सृष्टि कब, कौन से वर्ष तथा कौन सी ऋतु अथवा तिथि एव कौन से वार रची गई। 'कोई नही जान सकता' रचने वाला स्वय ही जानता है –

थित वार न जोगी जाणै रुत माहु ना कोई।
जा करता स्रिषटी कउ साजे आपे जाणै सोई॥

(जपुजी २१)

ऐसे ही विचार महाभारत (गीता) उपनिषदो तथा मनु-स्मृति आदि मे आए हैं। वास्तव मे कोई ऐसा साधन नही है, जिससे जान सके कि अकाल पुरुष के आदेशानुसार सृष्टि रचना किस प्रकार अस्तित्व में आती है। सद्‌गुरुओ ने कहा है –

हुकमी होवन आकार हुकम न कहिआ जाई।

(जपुजी)

जीव की अल्पज्ञता तथा मानव सूझ की विवशता के बावजूद मानव मस्तिष्क सदैव सृष्टि रचना के मूल कारण तथा सासारिक गोरख धन्धे के कारण कार्य के क्रम के सम्बध मे अपनी कल्पनायें करता रहा है। न जाने हुए को जानना या जानने का प्रयत्न करना मनुष्य के आवश्यक स्वभाव मे है। इसी लिए हम गुरबाणी मे से भी कई ऐसे सकेत तथा विचार एकत्रित कर सकते हैं जिन से सृष्टि रचना से, सम्बधित गुरु साहिब के अपने मत का ज्ञान होता है तथा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति-प्रलय से सम्बधित उनके विचारो का पता चलता है। सिक्ख धर्म के सृष्टि रचना सम्बधी आशय को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उस समय के प्रमुख हिन्दु मतो के इस विषय से सम्बधित विचारो का थोडा अनुमान लगाया जाए। इन सब का सक्षिप्त सा भाव

पण्डित बाल गगाधर तिलक जी ने अपनी पुस्तक 'गीता रहस्य' मे इस प्रकार दिया है —

साँख्य शास्त्र वाले कहते हैं कि जब पुरुष एव प्रकृति का सयोग होता है तो झट पट ही सृष्टि रचना आरम्भ हो जाती है। जिस प्रकार वसन ऋतु मे वृक्षो को पहले नई कोपले फूटनी है उन मे फिर पत्ते बनते है और फिर समय पाकर क्रमश फुल एव फल लगते हैं। इसी प्रकार पुरुष के मेल के पश्चात् प्रकृति का विकास आरम्भ होता है और सृष्टि रचना का समस्त विस्तार अस्तित्व मे आता है। वेद-सहिता, उपनिषदो तथा सिमृतियो आदि मे परमब्रह्म को ही प्रधान तत्व माना गया तथा उसके बिना अन्य किसी तत्व को सत्य एव अनादि नही माना गया। उस परमब्रह्म से सृष्टि किस प्रकार अस्तित्व मे आती है, इस सम्बन्ध मे भी कई विचार हैं —एक तो यह विचार है कि सबसे पहले निर्णय गर्भ Golden Egg उत्पन्न हुआ और इस से 'सत' (मति) तथा 'सत से समस्त ब्रह्माण्ड। एक अन्य विचार इस प्रकार भी है पहले परमब्रह्म से जल उत्पन्न हुआ और जल से समस्त ससार। यह भी लिखा है कि जल मे अण्डा बना और अण्डे मे मे ब्रह्मदेव उत्पन्न हुआ और इस अण्डे मे से या उससे उपजे ब्रह्मदेव से समस्त सृष्टि बनी। यह भी लिखा है कि ब्रह्मदेव पुरुष था और उसमे उसका दूसरा अर्द्ध स्त्री बनी और फिर सारी सृष्टि। यह भी लिखा है कि ब्रह्मदेव पहले पुरुष था, उस पुरुष से जल और जल मे फिर समस्त उत्पत्ति हुई। अन्य विचार यह भी है कि परमब्रह्म से तीन तत्व उत्पन्न हुए, पानी, पृथ्वी और तेज तथा इन तीनो के मेल से सारी सृष्टि बनी (रजो, तमो सतो गुणो के विचार की नीव यही होगी)। अन्ततोगत्वा यद्यपि ऐसे कई विचार अकित है परन्तु वेदात सूत्रो मे यह स्पष्ट लिखा है कि परमब्रह्म से आत्मा के स्वरूप मे पहले पाँच तत्वो पृथ्वी, आकाश, अग्नि तथा वायु ने रूप धारण किया। कथा, मैत्रैणी एव स्वैतस्वता उपनिषदो आदि मे महत्त प्रकृति आदि तत्वो का भी स्पष्ट वर्णन है। इन से फिर अन्य तत्त्व बने।

इन विचारो मे प्रतीत होता है कि यद्यपि वेदान्त के अनुसार मूल तत्व एक परमब्रह्म ही है, परन्तु जब उस परमब्रह्म से प्रकृति-माया रूप धारण करते हैं तो आगे जाकर समस्त विधि वही है जो साख्य

शास्त्र वालो की है। आगे विस्तार मे साख्य तथा वेदांत मतो में कोई भेद नही।

साख्य मत तथा वेदात मत के विचार तथा पदार्थ गुरवाणी मे कई स्थानो पर आए हैं तथा सृष्टि रचना सम्बन्धी उपरिलिखित अन्य मतो की ओर भी सकेत है। गुरबाणी मे सृष्टि रचना से सम्बन्धित कोई विस्तार पूर्वक क्रमानुसार विचार नही है। एक आध विचार जो कही कही आए हैं, उन्हे जोड कर हम एक क्रमबद्ध विचार पर पहुच सकते है। पहले तो हमने यह देखना है कि सृष्टि रचना सम्बन्धी किन किन प्रचलित मतो की ओर गुरबाणी मे सकेत प्रस्तुत हैं। पश्चिमी मतो का यह एक प्रसिद्ध विचार है कि ईश्वर ने आदेश दिया कि सृष्टि बन जाए और इतना कहने से सृष्टि बन गई 'कुन के कहने से किया आलम बपा'। गुरवाणी मे इसी विचार को अपनाने वाली पक्ति का 'जपुजी' साहिब मे से प्रमाण दिया जाता है कीता पसाउ एको कवाउ ॥ तिस ते होइ लख दरिआऊ'॥ पसाउ का भाव यह नही है कि सृष्टि झटपट ही अनस्तित्व से अस्तित्व मे आ गई। पसाउ का धातु है पसरना, फैलना, बढना, फूलना। इसका भाव Evolution (ऐवोलियूशन–विकासवाद) से है। 'कवाउ' के अर्थ हैं 'वचन' 'शब्द'। 'हुक्म' का भाव है। 'हुक्म' से 'कुन' 'होजा' का भाव गुरु साहिब नही लेते। इस विचार का विवेचन आगे चल कर किया जाएगा। 'हुक्म' के अर्थ 'Order' या 'Command' नही है। हुक्म का भाव Will इच्छा या सकल्प है। इसका भाव "ईश्वराय अनुभूति" है। यह 'ईश्वरीय अनुभूति' ही समस्त ससार के अस्तित्व का कारण है। साथ ही यह 'कुन' झट पट सृष्टि रची जाने का भाव गुरु साहिब के शेष विचारो से मेल नही खाता। गुरु नानक देव जी बारा महा राग तुखारी मे बताते हैं कि निरकार (परमात्मा) के हुक्म मे अर्थात् आदेशानुरूप सृष्टि रचना का कार्य सदैव चलता रहता है। राग माझ तथा राग आसा मे गुरु साहिब ने सृष्टि रचना तथा ब्रह्माण्ड स्थापित होने के कार्य को 'पेड एव 'तरुवर' से उपमा दी है। जिस प्रकार वृक्ष के बीच से ही शाखाए तथा पत्ते फूल फल रूप धारण करते हैं उसी प्रकार ब्रह्म मे से ही सब कुछ उत्पन्न होता है। यदि इस विचार की किसी पश्चिमी वैज्ञानिक मत से

तुलना करे तो यह विचार 'Evolution' एव 'Emnation' (ऐवो-लियूशन तथा ऐमनेशन) के इतना समीप नही है जितना कि एक नये विचार Emergent Evolution (ऐमरजेंट ऐवोलियूशन) के है। गुरु साहिब ने इस विचार को प्रकट करने के लिए अथवा इसका स्पष्टीकरण करने के लिए एक हिन्दी शब्द 'उत्कर्षण' प्रयुक्त किया है

जब उदकरख करा करतारा ॥
पूजा धरत तब देह अपारा ॥
(पा १०)

और जब फिर विपरीत क्रिया आरम्भ होगी अर्थात् यह प्रसारित फैला हुआ ब्रह्माण्ड सुकडना आरम्भ होगा तो फिर सारा फैलाव लिपटना शुरू होगा तथा पुन सब कुछ ब्रह्म मे ही समाविष्ट हो जाएगा

जब आकरख करत हो कबहू ॥
तुम मै मिलत देह-धर सभहू ॥
(पा १०)

यह सिकुडने की क्रिया 'अपकर्षण' है। फिर इस प्रकार भी निर्णय किया है

तुमरा लखा न जाइ पसारा ॥
किह विधि सजा प्रथम ससारा ॥
(पा १०)

यद्यपि ऊपर बताया गया विचार साख्य मत से बहुत मिलता जुलता है। परन्तु यह सादृश्य वेदांत मत की भाति विस्तार मे जाकर ही है। आरम्भ मे साख्य-वेदात तथा सिक्ख धर्म मे बुनियादी अन्तर है। परन्तु गुरु साहिब का भाव समझने के लिए आवश्यक है कि पहले साख्य मत का सृष्टि रचना सम्बन्धी विचार सम्यक रूप मे समझ लिया जाए। साख्य मत का प्रभाव वेदांत पर भी है तथा सिक्ख धर्म पर भी। परन्तु यह निचले विस्तार मे है। वैसे 'उत्कर्षण' शब्द तथा अन्य कई पदार्थ सभी साख्य मत के ही है।

साख्य शास्त्र के अनुसार सृष्टि रचना की पद्धति (क्रम) इस प्रकार है — पुरुष एव प्रकृति दो मूल तत्त्व है। सारी सृष्टि प्रकृति

से बनती है तथा प्रकृति विशेषतया स्वतन्त्र ही कार्य करती है। गुप्त रूप मे प्रकृति विरोधी तत्वो का मेल है। यह अनुपातिन मेल उतनी देर तक बना रहता है जितनी देर विरोधी तत्वो मे अनुपात रहता है। भाव जितनी देर तीनो तत्व-सत्व, रजिस, तमस-एक समानुपात मे एक स्थान पर मिले रहे। इस एक जैसी समानता (अनुपात) मे कोई कर्म, कोई परिवर्तन, कोई गतिशीलन, या कोई रचना नही होती। ये तीनो तत्व प्रकृति मे स्वाभाविकत प्रस्तुत हैं। प्रकृति के ये प्राकृतिक (नैसर्गिक) अथवा स्वाभाविक गुण है। जब इन तीनो गुणो के अनुपात मे विघ्न पड जाता है, भाव यह कि एक जैसी स्थिति नही रहती तो पुरुष के प्रभाव मे प्रकृति हल चल आरम्भ करती है और उसका प्रसार आरम्भ होता है। प्रकृति अपने आप मे प्रत्येक वस्तु को अस्तित्व मे लाने की शक्ति एव सम्भावना रखती है तथा अपने आप मे से ही ज्ञान विचार एव ज्ञान विचार के विषय पदार्थ उत्पन्न करती है। प्राकृतिक फैलाव से सबसे प्रथम वस्तु जो अस्तित्व मे आती है वह महत्त है। यह महत्त जीव की बुद्धि का आश्रय (सहारा) है। महत्त से समस्त ससार और उसका आकार रूप धारण करता है तथा महत्त के दूसरे रूप बुद्धि से जीवो की विचार शक्ति एव मानसिक जीवन आदि। महत्त तथा बुद्धि के पश्चात् अहकार (अहम्) अस्तित्व मे आता है। यह अह Principle of Individuation वस्तुओ के भिन्न भिन्न अस्तित्व मे आने का कारण बनता है। तीन गुण—सतो, रजो, तमो—अनगिणत भागो तथा सम्बन्धो मे सहायता करते हैं। इस अनन्त समानानुपात मे तीनो गुणो के मेल से अत्यन्त भाँति भाति की वस्तुए, जातिया, योनिया आकार धारण करती हैं। बात क्या ये तीन गुण ही सृष्टि मे भिन्न भेद से समस्त अस्तित्व को रूप प्रदान करते है। अहकार से सात्विक पक्ष मे—विकारो से—मन, पाच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होते है। उसी अहकार के तामसी अथवा भूतादि पक्ष से पाच तन-मात्र-सूक्ष्म-तत्व उत्पन्न होते है। रजस का प्रभाव अथवा तेजस्वी पद प्रत्येक मे प्रस्तुत होता है। तनमात्रो मे जब तामसी अग प्रदान होता है तो पाच स्थूल तत्व उत्पन्न होते है। इस समस्त प्रसार तथा सृष्टि के निर्माण मे यद्यपि एक अवस्था मे एक गुण ही प्रधान होता है, परन्तु प्रत्येक

वस्तु, तथा अवस्था मे दूसरे दो भी प्रस्तुत होते हैं। एक गुण प्रधान होता है और दूसरे दो समान रूप मे रहते है। प्रत्येक वस्तु के निर्माण तथा विकसित होने मे प्रधान गुण शेष दो समान गुणो के प्रभाव से ही कार्य करता है। पाच ज्ञानेन्द्रिया तो आखें, कान, नाक, मुह एव त्वचा (मास) हैं तथा पाच तनमात्र इन से सम्बन्धित पांच इन्द्रीय अनुभव है। इस प्रकार से समस्त बीस तत्व है। अद्वैत वेदांत के अनुसार तो केवल ब्रह्म सत्य है और शेष सब कुछ माया, भ्रान्ति, असत्य है सन्देह है। जब ब्रह्म का सम्बन्ध माया के साथ होता है तो उसे ईश्वर कहते हैं। जीव तथा ईश्वरीय अवस्था मे प्रकृतम, बुद्धि, अहकार, पाँच तनमात्र ये सब सम्बन्धित (Relative) सत्यता रखते है। शेष सोलह तत्व इन्ही का हो विकार होते हैं और कोई महत्ता या सत्यता नही रखते।

गुरबाणी मे जो विचार मिलते है उनके अनुसार सृष्टि रचना का क्रम इस प्रकार है परम सत्य तत्व केवल अकाल पुरुष, परमब्रह्म, अपनी सुन्न (अफुर) अवस्था मे है। इस अफुर शब्द के विवेचन की आवश्यकता है। यह शून्य-अनस्तित्व-अवस्था नही है। सुन्न अवस्था चेतनता का वह स्वरूप है जिसमे मानसिक कल्पनाओं का अभाव है। इस अवस्था मे ज्ञान-ध्यान, सम्वेदन-दुख सुख, इच्छा-वासना का कोई लेश नही होता। चेतनता होती है। जागृत, सुप्त सचेतन मन की अवस्थाये हैं। यदि शुद्ध चेतनता मे कोई सचेतन अवस्था हो तो वह सुप्त ब्रह्म का स्वरूप होगा। ऐसा ही विचार यूरोप मे जर्मन के फकीरो एव सन्तो महापुरुषो ने लगभग उसी समय मे प्रचारित किया जब कि गुरु साहिब भारत मे अकाल पुरुष का सन्देश दे रहे थे। जैकब बोहमि (१५७५-१६२४) का उपदेश था सृष्टि रचना से पहले अकाल पुरुष चेतन स्वरूप अफुर था। कोई कर्तृ भाव या कर्म की इच्छा-वासना नही थी। विशुद्ध आदेश। शुद्ध स्वरूप चेतनता। समस्त ससार का आधार परन्तु किसी विशेष स्वरूप के। इस शुद्ध चेतन अथवा अफर अवस्था को छोड कर, जब अकाल की क्रीडा हो तो वह इच्छा करता है, अथवा स्फुर्त होता है। यह स्फूरण धारण करना, हुक्म रूप धारण करना है। यदि पहले अकाल था, परम ब्रह्म था तो अब अकाल पुरुष कर्ता है। उसकी इच्छा ही कर्म है, हुक्म का अस्तित्व

है। हमारी तरह नही कि मैं इच्छा करू कि एक सुन्दर शीतल पर्वत हो, उस पर एक सुन्दर भवन हो और साथ ही अच्छे फलदार पेड पौधो वाला उद्यान हो। यह मेरी इच्छा है। इसे पूरा करने के लिए कितने साधनो की आवश्यकता है और कितने ही वर्षों की आवश्यकता है तथा फिर भी सब कुछ मेरे काल्पनिक मानचित्र (रूपरेखा) एव इच्छा के साथ सर्वथा एक जैसा नही होगा। परन्तु अकाल पुरुष का फुरना, इच्छा - हुक्म -ही कर्म है। उसके इस फुरना फुरने का अभिप्राय ही इन वस्तुओ का अस्तित्व मे आ जाना है। अकाल पुरुष का फुरना ही कर्म है। ईश्वर के लिए मानसिक फुरने तथा प्राकृतिक कर्म मे कोई भिन्न भेद नही है। इस फुरने के अस्तित्व मे आने से ही—हुक्म के साथ ही—अह (हौमै) रू। धारण करता है। यह अह, साख्य–वेदात का अहकार ही सृष्टि का कारण है। 'हउमै एहो हुकम है', गुरु साहिब का आदेश है। इसी आसा की वार के ७वे श्लोक मे समस्त ससार को तथा सासारिक कार्य व्यवहार को 'हउमै' मे कहा है। 'हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ ।। हउमै करि करि सन्त उपाइआ"।। यह अह ही समस्त भौतिक एव मानसिक ससार का कारण है। माया, अविद्या एव तीनो गुण तथा उनके भिन्न भिन्न सहयोग के कारण समस्त विकास सब अह मे ही हैं। ब्रह्म मे भिन्न प्रकृति की कोई हस्ती नही है। प्रकृति भी अह से ही उत्पन्न होती है, यह क्रम साँख्या-वेदान्त से भिन्न है। प्रकृति के कारण अह उत्पन्न नही होता प्रत्युत अह के कारण प्रकृति रूप धारण करती है। तीनो गुण भी अह के बीच ही हैं तथा अह के कारण ही सयोग वियोग की क्रियाओ द्वारा सृष्टि रचना का कारण बनते है। यह अह क्या है? यह समझना बहुत कठिन है। दार्शनिक काट ने एक शब्द Intellective Intuition 'बुद्धि अनुभव' (अनुभूति) मनुष्य मण्डल तथा मनुष्य कार्य व्यवहार मे प्रयुक्त किया है। ईश्वरीय मण्डल मे इस ससार का कारण अह समझा जा सकता है। यदि इस प्रकार समझे तो अफुर स्वरूप मे परमब्रह्म निर्गुण है और सफुर स्वरूप मे सगुण। सगुण ब्रह्म ही हुक्म स्वरूप है। यह सफुर ब्रह्म ही सृष्टि रचना है। स्फूर्त होना सृष्टि रचना है तथा अफुर होना इसका सुकड कर

वास्तविक निर्गुण स्वरूप मे आना है। यह आदेश कोई छू मन्त्र नही है। यह नियमबद्ध क्रम का नाम है। यह सब कुछ धर्म है। यह प्रकृति है। प्रयोजन हीन नही है। धर्मों के अनुसार है। कई धर्म उदार है और कई सकुचित तथा छोटे। सभी एक शृखला मे पिरोये हुए है और हुक्म-अह-मे बन्धे हुए हैं। भौतिक मन, आत्मा तथा उत्पत्ति-प्रलय आदि के समस्त कार्य नियमानुसार हैं। धर्म के सहारे है तथा आदेश मे है। यह सब कुछ माया भी है, क्योंकि यह हुक्म की क्रीडा है तथा सत्य नही है। यह "दृष्टिमान सगल मथेना" है। वास्तविक सत्य वस्तु ब्रह्म है।

श्री बाल गगाधर तिलक जी ने साख्य, वेदान तथा गीता के सृष्टि रचना के मतो के अनुसार समस्त तत्वो को तीन शृखलाये बना कर एक मानचित्र के रूप मे दिया है। उनके साथ चौथी शृखला सिक्ख धर्म के तत्वो को मिला कर नीचे लिखे जाते हैं, ताकि सारे मानचित्र से चारो मतो के बुनियादी (मूल) अन्तर झटपट स्पष्ट हो जाये

साख्य	वेदांत	गीता	सिक्ख धर्म (गुरमति)
१—पुरुष	१—परमब्रह्म	१—प्राप्रकृति	१—अफुर-अकाल
२—प्रकृति	२ ३, ४, ५-६	२—अप्राप्रकृति	२—सफुर-कर्ता-हुक्म
३—महत्त या बुद्धि	ये आठ तत्व ईश्वरीय अवस्था के।	३—१० अप्राकृति का विस्तार	३—अह—विशेष ससार का कारण
४—अहकार	१०-१५ ये सोलह तत्व विकास रूप	११—२५	४—जीवात्मा-चेतन सत्ता
५—६-पाच तनमात्र	होने के कारण असत्य है और	वेदात मत वाला निश्चय	५-जड पदार्थ प्रकृति-तीनो गुणो के सयोग—वियोग से २० तत्व अस्तित्व मे आकर सारा विकास होता है।
१०—मन	तत्वो की गणना		
११-१५ ज्ञानेन्द्रिया	मे नही हैं।		
१६-२० कर्मेन्द्रिया			६—१० पाँच तन मात्र।
२१—२५ पाच तत्व			

११–१५ पाच
ज्ञानेन्द्रियाँ।
१६–२० पाच
कर्मेन्द्रिया।
२१–२५ पाँच
तत्व (मिट्टी, पानी, अग्नि,
वायु, आकाश)।

सिक्ख धर्म के अनुसार समस्त पच्चीस तत्वो के पाच विभाजन है और प्रत्येक विभाजन मे पाच पाच तत्व है। पाच प्रधान हैं और प्रत्येक प्रधान के पाच पाच गौण है।

ऊपर की तालिका से सृष्टि रचना मे सम्बन्धित सिक्ख धर्म का तथा दूसरे धर्मों के सिद्धाँत का अन्तर स्पष्ट हो गया होगा। सारा विचार विशुद्ध अद्वैतवादी है परन्तु यह केवल मात्र 'पैथोइज्म सर्व ईश्वरोय मत नहो है। गुरमत के अनुसार सृष्टि न तो निराधार भ्राति है ओर न ही ईश्वर है। टरम्प आदि लेखको के ऐसे विचार वास्तविकता से दूर हैं। सृष्टि अह से उत्पन्न होती है और स्थूल रूप मे अह तथा नाम एक दूसरे के घोर विरोधी हैं। अह अनेकता एव द्वैत भाव की ओर ले जाता है ओर नाम सर्वव्यापक एकता है। अनेकता है तो एकता नही और एकता है तो अनेकता नही। "हउमैं नावैं नाल विरोध है, दुइ ना वसहि इक ठाइ' गुरुवाक है वडहंस म ३)। साथ ही अह हुक्म से उत्पन्न होता है तथा जगत की उत्पत्ति का कारण बनता है। सिद्धो ने पूछा

कितु कितु बिधि जगु उपजै पुरखा॥
कितु कित दुखि बिनसि जाई॥

गुरु साहिब ने उत्तर दिया

हउमै विचि जगु उपजै पुरखा,
नामि विसरिऐ दुख पाई।

अह मे रजो, तमो, सतो तीनो गुणो का अनेक प्रकार से मेल होता है और अनेक रगो मे सृष्टि बनती रहती है, सयोग वियोग सदैव कार्य करते है, इसलिए जहा एक ओर सृष्टि रची जाती है,

दूसरी ओर विनाश भी होता है। विनाश-निर्माण, निर्माण-विनाश, उत्पत्ति-प्रलय प्रत्येक समय और प्रतिपल हो रहे है। परन्तु इन समस्त परिवर्तनो से शुद्ध स्वरूप ब्रह्म निर्लिप्त रहता है। भले ही उत्कर्षण एव अपकर्षण उसी ब्रह्म का ही फैलना और सिकुडना है, परन्तु फिर भी वह इनके बीच होता हुआ भी इनके प्रभावो से परे है अर्थात् रहित है। मकडी जाल बुनती है और फिर उसे अपने मे लपेट भी लेती है। मकडी जाल नही है परन्तु फिर भी जाल मकडी से भिन्न नही है। सिक्ख धर्म एव वेदांत मत मे ऐसे दृष्टात बहुत प्रयुक्त किए गए है। रामकृष्ण परमहस जी का कथन है मेरी माता शक्ति देवी सृष्टि की मा है और सृष्टि की प्रत्येक वस्तु मे मेरी माता का आवास है। मेरी माता मकडी है, वह जाल बुनती है, फिर जाल को अपने आप मे खीच लेती है। सारी सृष्टि मेरी माता का बुना हुआ जाल है। वह जाल मे है और जाल उसमे है। वह स्वय ही अन्दर और बाहर भी है। गुठली भी और छिलका भी है। भीतर बाहर वही है। कई स्थानो पर सागर एव लहर का दृष्टात भी दिया गया है। कही सर्पणी और उसके चक्रो का अलकार प्रयुक्त किया गया है। सर्पणी कुण्डल खाये बैठी है। कुण्डलो का अस्तित्व क्या है? भ्रांति है। इसी प्रकार सृष्टि भ्रांति है। इस प्रकार के वेदातिक दृष्टात सिक्ख धर्म मे भी कई स्थानो पर आते है। भाव सब का यही है कि परम सत्य वस्तु अकाल पुरुष अफुर ब्रह्म है। अह तथा सृष्टि आदि सब अवस्था भेद है।

यह ठीक है कि वेदातियो की भाँति गुरु साहिब अद्वैतवादी है और केवल ੧ੳ को ही परम सत्य मानते है। परन्तु वे साधारण वेदातियो की भाति सृष्टि को भ्रांति अथवा निराधार भ्राति नही समझते। अकाल पुरुष स्वय ही कार्य कारण है और दूसरा अन्य कोई नही है।

करण कारण प्रभु एकु है दूसर नाही कोइ ॥

(सुखमनी म ५ पृष्ठ २७६)

आसा म ५ पृ० ३८७

आपे पेडु बिसथारी साख ॥ कत देखउ एकै उही ॥

गौडी की वार म ३ पृ० ५०९

आपणा आपु उपाइउनु तदहु होरु न कोई ॥

जिऊ तिम भावै तिवै करे तिस बिनु अवरु ना कोई ॥

अकाल पुरुष के अतिरिक्त अन्य किसी हस्ती या पदार्थ को परम सत्यता प्राप्त नही है। परन्तु गुरु साहिब सृष्टि की भाति भाति को हस्तियो तथा भिन्न भिन्न रचनाओ को केवल मात्र भ्रांति नही कहते। ये भिन्न भेद है, कर्ता ने स्वय बनाये है परन्तु सब गतिशील है, स्थिर तथा सत्य वस्तु वह केवल स्वय ही है। शेष सब क्रीडा है।

राग सूही महला ५ पृ० ७३६

बाजीगर जैसे बाजी पाई ॥ नाना रूप भेख दिखलाई ॥
सागु उतारि थमिउ पासारा तब एको एककारा ॥१-४-१

नट महला ४ पृ० ९७७

एह परपचु कीआ प्रभ सुआमी, सभु जगु जीवनु जुगणे ॥
जिउ सललै सलल उठहि बहु लहरी,
मिलि सललै सलल समणे ॥२—४—६

ससार उसी की क्रीडा होने के कारण छाया एव निर्मूल असत्य नही है। इस सम्पूर्ण ब्रह्म का वह स्वय जीवन है। सृष्टि रचना तो एक माला है मणि है और बीच का धागा (सूत) वह स्वय है। मनके बाहर से यद्यपि भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं बीच मे एक शृखला (कडी) मे पिरोए हुए हैं। दिखावे मात्र भेद तथा अन्तरो की तह मे एकता है।

मारू महला ३ पृष्ठ १०५५

मेरै प्रभि साचै इकु खेलु रचाइआ।
कोइ न किसही जेहा उपाइआ ॥
आपे फरकु करे वेखि विगसै—
सभि रस देही माहा हे ॥१६—४—१३॥

इन्ही रचित पदार्थों मे प्रकाश एव अन्धकार भो हैं। एक दूसरे के कितने विरोधी परन्तु फिर भी बीच मे इनका मूल भी एक है। यह सब विरोध दिखावे का है। सब को तह मे वह स्वयमेव है। जीवन प्रवाह प्रकाश है, चेतनता है। निर्जीवता, जडता, प्रकृति-भौतिकता है। पिछले शबद की तीसरी पक्ति है

अन्धेरा चानणु आपे कीआ ॥
एको वरतै अवरु न बीआ ॥
गुर परसादी आपु पछाणै
कमलु बिगसै बुधि ताहा हे ॥३।

इसी विचार की पुष्टि करते हुए हमारा समकालीन प्रसिद्ध दार्शनिक ए० एन० वाईटहैड लिखता है अन्धकार तथा प्रकाश दो भिन्न भिन्न पदार्थ नही हैं। ब्रह्माण्ड एक है और इसको चलाने वाला या इसकी तह मे कार्य करने वाला महान नियम एक है शेष समस्त नियम उसी महान नियम की शाखाये है। इस महान नियम के प्रयोग मे अन्धकार तथा प्रकाश भी दो रस्सियाँ है जिनके प्रगाढ मेल से तथा एक दूसरे पर चढ कर बल खाने से एक सुदृढ रस्सा बनता है या इस ब्रह्माण्ड का उसी एक महान नियम के अधीन समस्त कार्य व्यवहार चलता है। प्रकाश तथा अन्धकार एक ही वस्तु के दो पहलू (आयाम) है। ऐसे और भी कई पहलू है जो साधारणतया देखने मे भी और वैज्ञानिक दृष्टि से भी भिन्न भिन्न तथा विरोधी प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव मे ये सब एक ही माला के मनके है, एक ही बडे नियम के अधीन है। वे लिखते है कि मेरा मत यह है कि जीवन के गम्भीर भेद तथा प्राकृतिक उलझने किसी अन्य सन्तोषजनक ढग से हल नही हो सकती जितनी देर कि इन समस्त भिन्न भेदो को, जड-चेतन को, प्रकाश-अन्धकार को भली प्रकार मिला कर एक सादृश्य एव सर्वव्यापक नियम के दृष्टिकोण से नही देखेगे। यह नियम एक है, सर्वमय है, परम सत्य है और सृष्टि के समस्त रूप रग, सारे विरोध, समस्त भिन्न भेद उसी एक नियम मे घुल मिल जाते है। इसी प्रकार देखने से ही ब्रह्माण्ड के गहरे भेदो को समझने वालो के कुछ हाथ लग जाता है। नही तो विज्ञान एक ओर को खीचता है, दर्शन दूसरी ओर को, धर्म तीसरी तरफ और कोमल कलाये चौथी ओर। इस खीचा तानी

मे ज्ञान तो चीथडे चीथडे (टुकडे टुकडे) हो जाता है और ज्ञान को प्राप्त करने वाले थक हार कर मर जाते है। आवश्यकता है सब के सहयोग की, सब सच्चाइयो को आदर एव सत्कार से देख कर एक सर्व सम्मत सच्चाई मे सम्बन्धित करने का। उस सर्व सम्मत सच्चाई को गुरु साहिब न 'सतिनाम कह कर पुकारा है। यह नाम समस्त ब्रह्मण्ड को धारण करने वाला है*।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध मे 'माया' का विचार भारतीय मतो मे, विशेषतया वेदात के प्रभाव स्वरूप बहुत प्रचलित है। इस प्रसग का समाप्त करने से पूर्व यह आवश्यक है कि गुरमत क अनुसार 'माया' का स्वरूप समझने का कुछ प्रयत्न किया जाए। माया गुरु साहिब के विचारानुसार कोई अचल नियम नही है। यह मानव मन बुद्धि क कारण रूप धारण करती है। इसका अस्तित्व मन-बुद्धि क अस्तित्व के साथ बना हुआ है। मन-बुद्धि-माया, सब अह के अन्तर्गत हैं। इसलिए मनुष्य को इस माया का ज्ञान अनुभवजन्य ज्ञान नही है। यह प्रत्यक्ष ससार के ज्ञान का परिणाम है। यह अनुभव के आधार पर अवस्थित है। गुरु साहिब ने देखा कि प्रत्यक्ष (दृष्टिगोचर) ससार मे परिवर्तन का नियम अटल है। नये पुराने हो हो कर विनष्ट हो जाते है। पुरातन के स्थान पर अन्य नवीन आ जाते हैं। "जो दीस सो चालणहार' है। दृष्टिगोचर 'सगल मथेना' है। मानसिक एव प्राकृतिक पदार्थ, जड तथा चेतन समस्त परिवर्तन के नियम के अधीन हैं। किसी ओर देखो यह 'चलायमानता' (गतिशीलता) प्रत्यक्ष रूप मे प्रधान है। मनुष्य के जीवन के परिवतनो की ओर ही देखो

---

*सृष्टि रचना सम्बन्धी गुरबाणी के अन्य प्रमाण देखे सिरी राग महला ३ पृष्ठ ६७ शबद १०-६-२३, गोडी महला १ पृष्ठ २८३ शबद ९-५, गोडी सुखमनी महला ५ पृष्ठ २७६ दसवी असटपदी पोडी ७, १६वी असटपदी की ५वी पोडी, आसा महला १ पृष्ठ ३५० शबद ४-७, आसा महला १ पृष्ठ ४ ४ तीसरा चौथा श्लोक, रामकली महला १ दखणी ओअंकार पृष्ठ ९२९-३०, रामकली सिद्ध गोष्ठ पृष्ठ ९४० शबद २०-२४ तक, मारू महला ५ पृष्ठ १००४ शबद४-१-१७।

(गौडी महला ५ पृष्ठ २३७)

प्रथमे गरभ वास ते टरिग्रा । पुत्र कलत्र कुटम्ब संगि जुरिग्रा ।
भोजनु ग्रनिक प्रकार बहु कपरे । सरपर गवनु करहिगे बपुरे ।१।

क्या कोई ऐसा स्थान है जो परिवर्तन के अधीन नही है

कवनु ग्रसथान जो कबहु न टरै ।।
कवनु सबदु जितु दुरमति हरै ।।१।।रहाउ।।

इन्द्रपुरी, ब्रह्मा आदि के स्थान, सूर्य चन्द्र, तारे, जाति वरण, पशु पक्षी सब कुछ चला जाएगा

इन्द्रपुरी महि सरपर मरणा ।
ब्रह्मपुरी निहचलु नही रहणा ।।
सिवपुरी का होइगा काला ।
त्रैगुण माइग्रा बिनसि बिताला ।।२।।
गिरि तर धरणि गगन ग्ररु तारे ।
रवि ससि पवणु पावकु नीनारे ।।
दिनस रैणि बरत ग्ररु भेदा ।
सासत सिम्रिति बिनसहिगे बेदा ।।३।।
तीरथ देव देहुरा पोथी ।
माला तिलकु सोच पाक होती ।।
धोती डंडउति परसादन भोगा ।
गवनु करैगो सगलो लोगा ।।४।।
जाति वरन तुरक ग्ररु हिन्दू ।
पसु पखी ग्रनिक जोनि जिंदू ।।
सगल पासारु दीसै पासारा ।
बिनसि जाइगो सगल ग्राकारा ।।५।।

इसलिए सब कुछ गतिशील है अर्थात् चलायमान है । यदि कोई तत्व सत्य है तो वह अफुर ब्रह्म है उसके बिना [illegible] जो प्रसार है सब असत्य है। यह झूठ नहीं है, धोखा न [illegible] चलायमान अवश्य है। इस चलायमानता के नियः [illegible] है। सम्पूर्ण ससार चलायमान है इसलिए सब कुछ [illegible] दृष्टिगत ससार का आधार नाम है, वह सत्य है [illegible] यह प्रसार (फैलाव) है, जो अस्थायी है और [illegible]

वेदान्ती ससार को खरगोश के सीघो की भांति झुठा एव धोखा समझते हैं। खरगोश के सीघ होते नही परन्तु प्रतीत होते है। धोखा है। उसी प्रकार वेदाती कहते है ससार है। यह माया है। माया के दोनो अर्थों मे भेद है। सिक्ख धर्म के अनुसार माया चलायमान के नियम तथा उसके प्रयोग का नाम है। वेदान्तियो के अनुसार यह खरगोश के सीघो की भाँति धोखा एव झूठ के अर्थ रखती है।

गुरु आशय यह है कि मनुष्य के लिए सृष्टि का अस्तित्व आवश्यक है। जीव माया है और ससार माया है। दोनो मे सादृश्य एव सम्बन्ध अवश्य है। ससार से सम्बन्धित अर्थो मे सत्य समझ कर इसमे धार्मिक जीवन व्यतीत करना है। धार्मिक क्षेत्र मे कमाल (परिपूर्णता) प्राप्त करना मनुष्य का आदर्श है। धार्मिक क्षेत्र सामारिक क्षेत्र से भिन्न नही। इसी लिए ससार को झूठ एव असत्य समझ कर इससे भागना नही अपितु समार मे उत्पन्न हुए वातावरण मे जीव ने रहना है और इसी वातावरण के अन्तर्गत ही परिपूर्णता प्राप्त करनी है। जीव ने वातावरण को सवारना है और साथ ही सवरना है। इसी लिए सद्गुरुओ ने मुदावणी मे बताया है कि इस ससार रूपी थाल मे तीन वस्तुए है सत्य, सन्तोष तथा विचार। ये तीनो पदाथ मनुष्य ज्ञान के आवश्यक अग है। "जो ब्रह्मण्डे सोई पिण्डे'। हमारे इन्ही आन्तरिक तत्वो ने ब्रह्माण्ड के तत्वो से एक स्वर होना है। यह एकस्वरता ब्रह्मण्ड को झूठा समझ कर नही आ सकती। वातावरण से भाग कर नही आ सकती। घर मे—वातावरण मे—ही यह पूर्णता प्राप्त करनी है। यह सृष्टि असत्य है तो यह असत्यता ब्रह्म की सत्यता की तुलना मे है, अपने स्थान पर सृष्टि के अस्तित्व से इन्कार नही किया जा सकता। स्थूल ससार चलायमान है और सूक्ष्म नाम सत्य है, स्थिर है। स्थूल सूक्ष्म मे है और सूक्ष्म स्थूल मे। स्थूल माया है और सूक्ष्म सत्य स्वरूप ब्रह्म है।

इसलिए समार एक ठोस घटना है, एक स्थूल पदार्थिक सच्चाई है। इसके बीच मे जीव ने जीवन व्यतीत करना है। यह अखाडा है और इस अखाडे मे जीव ने जीवन रूपी युद्ध लडना है। गोसाई का पहलवान होकर। पांच दूतो, बन्धनो के कारणो को जीतना है।

यदि यह समस्त ससार झूठ एव स्वप्न हो तो कौन सा युद्ध, कौन सा घोल और कौन से दूतो के साथ, किसको पराजित करना और किसने करना ! ये सब बाते व्यर्थ बन जाती हैं। यह खेल है परन्तु यह खेल, दिखावा एव धोखा नही हो सकता। यह खेल यथार्थ है, घोल है और युद्ध है। क्या हम स्वप्न मे झूठे ढग से खरगोश के सीघो से युद्ध कर सकते हैं ! उनसे घोल कैसा और उनका जीतना कैसा ?

गुरु साहिब ने प्राचीन वेदाती शब्द माया प्रयुक्त अवश्य किया है और प्राय उसका प्रयोग किया है। परन्तु अपने अर्थों मे प्रयुक्त किया है, नवीन अथवा प्राचीन मे नही। जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह परिवर्तित होता है। यह माया है। परिवर्तित होता है इसलिए असत्य है। इस परिवर्तित होते हुए स्थूल की तह मे न बदलने वाला तथा स्थिर तत्व है, वह सत्य है। वह नाम है और वह सर्वव्यापक है तथा सब का आधार है। वह अकाल पुरुष ब्रह्म है। कार्य कारण है प्रत्येक अनस्तित्व से अस्तित्व का और अस्तित्व मे अनस्तित्व का। वह स्वय ही एक है, अनन्त है, अनेक है। पुण्य पाप उसी ने बनाए। परन्तु यह प्रत्यक्ष ससार, अनेक रूप रग, पुण्य पाप माया हैं। विशेष अवस्था तथा स्तर तक है। उसमे आगे नही है। आगे जाकर जब नाम की प्राप्ति होती है, जब आन्तरिक सत्य सन्तोष तथा विचार बाह्य सत्य सन्तोष तथा विचार से एकस्वर होता है तो फिर न पुण्य न पाप, ना रूप ना रग, ना जाति न पाति कुछ नही होता। सब एक ही एक है। इस अवस्था मे कैसे पहुचा जाता है ? इसका सकेत मात्र सक्षिप्त उत्तर इस पुस्तक के चौथे भाग मे विस्माद द्वारा बताया है।

उपर्युक्त सृष्टि रचना के सम्बन्ध मे परम-सत्य-वादक विचार के मार्ग मे सबसे बडी कठिनाई इस बात की है कि अकाल पुरुष-अफुर ब्रह्म-सफुर रूप क्यो धारण करता है। हुक्म की अवस्था मे --
सृष्टि रचना आरम्भ होती है, वह हुक्म को [illegible]
अफुर मे ही क्यो नही रहता। अफुर मे सफुर
बीच मे ही है अथवा बाहर। अद्वैतवादी वे
सकता। अन्दर है तो फिर यह कारण [illegible]
नही रखता। यदि सफुर चेतना वास्तविक गुण

है, मशरूत है और किसी कारण के अधीन है। यह कारण, यह शर्त क्या है। यह अस्थायित्व, असत्यता सत्य मे कहा से आ गई? गुरु साहिब इसका कोई उत्तर नही देते। किसी अद्वैतवादी के पास इसका कोई उत्तर है ही नही। गुरु जी तो कर्ता की क्रीडा कह कर सन्तुष्ट होते है। इस खेल से विस्माद मे आओ। वाहु वाहु कहो। खेल के भेदो मे न फसो। आम खायें, पौधे न गिनें। आनन्द प्राप्त करे, उलझनो मे ग्रस्त न हो। इन रहस्यपूर्ण भेदो का, मूल क वास्तविक कारण को जानने का व्यर्थ प्रयास न करे। 'जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई।" है भी ठीक। मनुष्य अल्पज्ञ है। इस अल्पज्ञता को वह छोड नही सकता और इसका विचार किसी स्थान पर पहुच नही सकता। मनुष्य तो स्वय महान (अद्वितीय) रचना मे एक धूलिकण से भी कम महत्ता रखता है और उस असीम, अनन्त का अन्त (भेद) तो यह बेचारा कीट किस प्रकार जान सकता है! 'करते की मीत किआ जाणै कीआ'।।

यदि यह समस्त ससार झूठ एव स्वप्न हो तो कौन सा युद्ध, कौन सा घोल और कौन से दूतो के साथ, किसको पराजित करना और किसने करना। ये सब बाते व्यर्थ बन जाती हैं। यह खेल है परन्तु यह खेल, दिखावा एव धोखा नही हो सकता। यह खेल यथार्थ है, घोल है और युद्ध है। क्या हम स्वप्न मे झूठे ढग से खरगोश के सींघो से युद्ध कर सकते हैं। उनसे घोल कैसा और उनका जीतना कैसा ?

गुरु साहिब ने प्राचीन वेदाती शब्द माया प्रयुक्त अवश्य किया है और प्राय उसका प्रयोग किया है। परन्तु अपने अर्थों मे प्रयुक्त किया है, नवीन अथवा प्राचीन मे नही। जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह परिवर्तित होना है। यह माया है। परिवर्तित होना है इसलिए असत्य है। इस परिवर्तित होते हुए स्थूल की तह मे न बदलने वाला तथा स्थिर तत्व है, वह सत्य है। वह नाम है और वह सर्वव्यापक है तथा सब का आधार है। वह अकाल पुरुष ब्रह्म है। कार्य कारण है प्रत्येक अनस्तित्व से अस्तित्व का और अस्तित्व मे अनस्तित्व का। वह स्वय ही एक है, अनन्त है, अनेक है। पुण्य पाप उसी ने बनाए। परन्तु यह प्रत्यक्ष ससार, अनेक रूप रग, पुण्य पाप माया हैं। विशेष अवस्था तथा स्तर तक है। उसमे आगे नही हैं। आगे जाकर जब नाम की प्राप्ति होती है, जब आन्तरिक सत्य सन्तोष तथा विचार बाह्य सत्य सन्तोष तथा विचार से एकस्वर होता है तो फिर न पुण्य न पाप, ना रूप ना रग, ना जाति न पाति कुछ नही होता। सब एक ही एक है। इस अवस्था मे कैसे पहुचा जाना है ? इसका सकेत मात्र सक्षिप्त उत्तर इस पुस्तक के चौथे भाग मे विस्माद द्वारा बताया है।

उपर्युक्त सृष्टि रचना के सम्बन्ध मे परम-सत्य-वादक विचार के मार्ग मे सबसे बडी कठिनाई इस बात की है कि अकाल पुरुष-अफुर ब्रह्म-सफुर रूप क्यो धारण करना है। हुक्म की अवस्था मे जब सृष्टि रचना आरम्भ होती है, वह हुक्म की स्थिति मे क्यो आता है। अफुर मे ही क्यो नही रहता। अफुर मे सफुर होने का कारण उसके बीच मे ही है अथवा बाहर। अद्वैतवादी के लिए वह तो हो नही सकता। अन्दर है तो फिर यह कारण सदैव अपना प्रभाव क्यो नही रखता। यदि सफुर चेतना वास्तविक गुण है तो स्फूर्ति अस्थायी

है, मशरूत है और किसी कारण के अधीन है। यह कारण, यह शर्त क्या है। यह अस्थायित्व, असत्यता सत्य मे कहा से आ गई? गुरु साहिब इसका कोई उत्तर नही देते। किसी अद्वैतवादी के पास इसका कोई उत्तर है ही नही। गुरु जी तो कर्ता की क्रीडा कह कर सन्तुष्ट होते हैं। इस खेल से विस्माद मे आओ। वाहु वाहु कहो। खेल के भेदो मे न फसो। आम खायें, पौधे न गिनें। आनन्द प्राप्त करें, उलझनो मे ग्रस्त न हो। इन रहस्यपूर्ण भेदो का, मूल क वास्तविक कारण को जानने का व्यर्थ प्रयास न करे। 'जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई।" है भी ठीक। मनुष्य अलपज्ञ है। इस अल्पज्ञता को वह छोड नही सकता और इसका विचार किसी स्थान पर पहुच नही सकता। मनुष्य तो स्वय महान (अद्वितीय) रचना मे एक धूलिकण से भी कम महत्ता रखता है और उस असीम, अनन्त का अन्त (भेद) तो यह बेचारा कीट किस प्रकार जान सकता है! 'करते की मीत किआ जाणै कीआ'॥

चौदहवां अध्याय

१.

मनुष्य तथा उसका आदि अन्त

सृष्टि मे मनुष्य शिरोमणि जीव है। यह ससार मे सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। समस्त ब्रह्माण्ड मे मनुष्य केन्द्रीय पदवी पर खडा है। विकासवाद को मानने वाले भी मनुष्य-जाति को उन्नति का सर्वोच्च आधार अथवा माध्यम कहते है। कोई मत मतान्तर, कोई दर्शन या विज्ञान मनुष्य के बिना अस्तित्व मे नही आ सकता। न ही कोई धर्म या दर्शन पूर्ण समझा जा सकता यदि वह मानव जीवन तथा इसके आदर्श के सम्बन्ध मे सन्तोषजनक प्रकाश नही डालता। सिक्ख धर्म के अनुसार किसी जीव का जन्म अथवा मृत्यु अकाल पुरुष के आदेशानुसार होती है। वह जीव को भेजता है तब वह जन्म लेता है और जब वह बुलाता है तो मृत्यु होती है। उसके भेजने पर हम आते है बुलाने पर चले जाते हैं। गुरमत के अनुसार जन्म और मृत्यु के कोई विभाग नही है कि प्रत्येक का अध्यक्ष कोई विशेष देवता हो। सब कुछ अकाल पुरुष के आज्ञा रूपी नियम के अनुसार हो रहा है। 'हुकमी होवन जीअ' गुरु वाक् है। यह हुक्म ईश्वरीय नियमो के अनुसार ही चलता है। बल्कि प्राकृतिक नियमो का नाम ही हुक्म है। अथवा समस्त नियमो का प्रधान नियम हुक्म है। वह नियम जिसके अनुसार जीव जन्म लेते है 'कर्मों' का नियम है। "करमी आवै कपडा" गुरु जी का आदेश है। यह कर्मो का धर्म जीव को ऊपर भी उठाता है और नीचे भी गिराता है। यह बात कर्मों तथा गुणो के अधीन है। उन्नति की ओर तो अच्छे कर्मो का अन्तिम फल मनुष्य जन्म की प्राप्ति है।

गउडी महला ५ पृ० १७६
कई जनम भए कीट पतगा ॥
कई जन्म गज मीन कुरगा ॥
.. .
चिरकाल इह देह सजरीआ ॥१॥रहाउ॥

साध सगि भइउ जनमु पर।पति ॥

मनुष्य जन्म उन्नति रूपो (विकास रूपी) सीढी का अन्तिम सोपान है। यदि मनुष्य जन्म धारण करके जीव अपनी उन्नति अथवा विकास के क्रम को बनाये रखेगा तो और भी महान मनुष्य बनेगा तथा अन्त मे सच्चखण्ड को प्राप्त करेगा असत्य मण्डल को छोड कर सत्य मण्डल मे जाकर सत्य स्वरूा ही हो जायगा। और कुकर्मों मे पड जाए तो फिर पतन की ओर जायगा। शायद पाताल (नरक लोक) मे भी जा गिरे।

मारू सोलहे महला ५ पृ० १०७५

लख चउरासीह जोनि सबाई ॥
माणस कउ प्रभि दीई वडिआई ॥
इसु पउडी ते जो नरु चूकै
सो आइ जाइ दुखु पाइदा ॥२॥

यद्यपि यह बिल्कुल स्पष्ट करके लिखा है कि चौरासी के चक्र से बचने का अवसर मनुष्य जन्म मे ही मिलता है और इमसे निम्न योनियो को यह स्तर प्राप्त नही हो सकता, वे तो अभी उन्नति के मार्ग के बीच मे ही हैं और मनुष्य अन्तिम पडाव पर है, परन्तु गुरु साहिब ने इस बात पर, कई अन्य मतो की भाति बल नही दिया कि केवल पुरुष जामे मे ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। प्राचीन निश्चय था कि स्त्री को मुक्ति प्राप्ति के लिए पुरुष जन्म लेना आवश्यक था। गुरु साहिब आत्मिक मण्डल मे पुरुष तथा स्त्री मे कोई भेद नही बताते। मुक्ति के लिए एकस्वरता एकाग्र अवस्था तथा एकरस की अवस्था आवश्यक है। वह चाहे पुरुष प्राप्त कर ले

या स्त्री। बल्कि यहाँ तक भी कहा है कि यदि किसो महापुरुष की सगति से कोई पशु भी एकरस पदवी प्राप्त कर ले तो वह भी मुक्त हो जाता है। (देखे मैकालिफ का सिक्ख इतिहास-अंग्रेज़ी—चौथी पुस्तक—पृ० १८७—८८) यह तो ठीक है कि पशु जोवनियो मे यह मानसिक उन्नति बहुत कठिन है और मनुष्य जीवन मे महापुरुषो की सगति से बहुत सरल। इसलिए मनुष्य जन्म को महत्ता तथा मानव जीवन की सराहना तथा प्रशसा की गई है।

सृष्टि रचना के अध्याय तथा तत्वो वाले मानचित्र अथवा तालिका में हमने देखा है कि हुक्म-ग्रह के प्रभाव स्वरूप-परम तत्व दो रूप धारण करता है। एक आत्मा का तथा दूसरा प्रकृति का। आत्मा तो दैवी गुण बनाये रखतो है और अपने वास्तविक अर्थात् मूल स्वरूप मे अन्तर नही आने देती। शुद्ध तथा अकथनीय रहती है। इसी लिए ब्रह्म के समीप होती है। प्रकृति रजो, तमो, सतो गुणो के प्रभाव स्वरूप स्थूल एव सूक्ष्म तत्वो के रूप धारण करती है। आत्मा का तथा प्राकृतिक तत्वो के सयोग का नाम मनुष्य-जीव है। आत्मा मनुष्य मे जीवात्मा कहलाती है। यह ईश्वर को ज्योति है। अकाल पुरुष के प्रकाश (नूर) की चिंगारी है। गुरु अमरदास जी रामकली राग-आनन्द—मे बताते है -

ए सरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी ता तू जग महि आइया ॥
हरि जोति रखी तुधु विचि ता तू जग महि आइआ ॥
हरि आपे माता आपे पिता जिनि जीउ उपाइ जगतु दिखाइआ ॥
गुर परसादी बुझिआ ता चलतु होआ चलतु नदरी आइआ ॥
कहै नानक स्रिसट का मूलु रचिआ जोति राखी ता तू जग महि-
आइआ ॥३३॥

इस प्रकार से मनुष्य के दो बडे पहलू हैं एक शरीर तथा दूसरी आत्मा हरि जोति। दोनो का मूल एक है। अवस्था भेद के कारण एक स्थल है और दूसरा सूक्ष्म। स्थूल भाग रक्त विन्दु के मेल के बनना आरम्भ होता है। शैव मत वाले तथा वेदात वाले भी मनुष्य शरीर की बनावट इसी प्रकार ही मानते है। रक्त स्त्री के शरीर मे से तथा विन्दु पुरुष के शरीर का भाग होता है। ये दोनो तत्व मिल कर प्रफुल्लित होते है और जीवात्मा के लिए जामा-वेश-

शरीर–तैयार करते है। यह शरीर अन्न के सहारे स्थित है –"साडे त्रै मण देहुरी चलै पाणी अन्न"।। इसलिए यह अनमय कोप कहलाता है। यह सब से बाहर का पर्दा है। इस कोष मे पटठे, हड्डिया, सनायु मनुष्य बिन्दु मे जड रखती है और त्वचा (मास) बाल आदि स्त्री रक्त से सम्बन्धित बताये जाते है। यह समस्त शरीर रूपी मन्दिर को थामने वाला—प्राण–श्वस है। हमारे शरीर का यह एक अन्य तत्व है। इसे 'प्राणमय-कोष' हवाई पर्दा कहते हैं। इससे आगे मानसिक मण्डल है। मन भी शरीर से सम्बन्धित है। आत्मा के सम्बन्ध से शरीर मे जो परिवर्तन होते है वह मन है। इसका मूल पच भौतिक शरीर ही है। इसीलिए कहा है 'एह मन पच तत्त ते जनमा।' यह मनोमय कोष है। इससे अगले दो पर्दे बहुत सूक्ष्म हैं। ये ज्ञानमय कोष तथा आनन्दमय कोष हैं। ज्ञान बुद्धि का विषय है और आनन्द आत्मा का। आत्मा प्रवाह तो सब कोषो मे ही चलता है परन्तु उसका विशुद्ध आवास आनन्द स्वरूप मे है। शरीर, मिट्टा, पानी, अग्नि, वायु का सम्मिश्रण है और इस मे बुद्धि का प्रकाश है। यह एक ऐसी मशीन है जो प्राणो के सहारे (आश्रय से) चलती है और अकाल पुरुष की ज्योति का स्वरूप है

गउडी महला १ पृष्ठ १५२
पउणै पाणी अगनी का मेलु ॥
चचल चपल बुद्धि का खेलु ॥
नउ दरवाजे दसवा दुवारु ॥
बुझु रे गिआनी एहु बीचारु ।१॥
कथता बकता सुनता सोई ॥
आपु बीचारे सु गिआनी होई ॥१॥ रहाउ॥
देही माटी बोलै पउणु ॥
बुझु रे ज्ञानी मूआ है कउणु ॥
मूई सुरति बादु अहकारु ॥
उहु न मूआ जो देखणहारु ॥२॥

कहु नानक गुरि ब्रह्मु दिखाइआ ॥
मरता जाता नदरि न आइआ ॥४।४।

इसलिए यह शरीर तो पवन पानी एव अग्नि का मेल है और सुरत बादु अहकार (मानसिक पक्ष) शरीर एव आत्मा के परस्पर सम्बन्ध से उत्पन्न होता है तथा शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता है। आत्मा, ब्रह्म ज्योति उत्पन्न एव विनष्ट नही होती और यही मनुष्य मे वास्तविक तत्व है। हमे अपने जीवन मे इस तत्व को हीन अवस्था तक नही ले जाना चाहिए अथवा अस्त व्यस्त नही करना चाहिए और दृष्टिगत पदार्थों मे फस कर अपने यथार्थ (मूल को भुलाना नही चाहिए। आत्मा ही जीवन का आधार है, बल्कि आत्मा ही जीवन है।

इहु सरीरु सभु धरमु है
जिसु अन्दरि सचे की विचि जोति ।।

(गउडी म ४ पृष्ठ ३०६)

यह आत्मा चेतनता है। शरीर इसका मन्दिर है। यह इस मन्दिर मे निवास करता है

मनु मदरु तनु साजो बारि। इस ही मधे बसतु अपार ।।
इम ही भीतरि सुनीअत साहु ।।४—१६—८५—

(गउडी म ५ पृष्ठ १८०)

काइआ हरि मदरु हरि आपि सवारे ।।

(मारू म ३ पृष्ठ १०५६)

पच तत मिलि इहु तनु कीआ ।।
आतमराम पाए सुखु थीआ ।।

(मारू म १ पृष्ठ १०३६)

काइआ नगरु नगर गड अन्दरि ।।
साचा वासा पुरि गगनन्दरि ।।
असथिरु थानु सदा निरमाइलु ।।
आपे आपु उपाइदा ।। १ ।।

(मारू म १ पृष्ठ १ ३३)

चूकि यह शरीर आत्मा, ब्रह्म ज्योति का मन्दिर है इसलिए इसे आरोग्य तथा शुद्ध एव स्वच्छ रखना आवश्यक है। "काइआ पवित है शरीर'। शरीर को मन, वचन कर्म के कारण मलीन नही होने देना चाहिए। शरीर की पवित्रता का विचार और भी कई धर्मों

मे देखा जाता है। इसके पवित्र होने का तथा इसे पवित्र रखने के विचार ने हमारी धार्मिक तथा नैतिक उच्चता एव शुद्धता को विशेष रूप मे स्वच्छ रखा है। सेंटपाल, ईसाई महा पुरुष ने भी लिखा है कि चूंकि शरीर ईश्वर का मन्दिर है इसलिए इसे पवित्र रखना और इसकी पवित्रता को बनाए रखना मनुष्य का परम धर्म है। मलीन विचारो, बुरे शब्दो तथा कुकर्मों से इसे गन्दा नही करना चाहिए।

ऐपिकटीटस ने कहा है–ऐ मनुष्य ! तेरे अन्तर मे ईश्वर है और तुझे पता नही कि तुम अपने बुरे वचनो तथा मलीन कर्मो स ईश्वर का निरादर एव अपमान कर रहे हो। मानव शरीर का श्रेष्ठता को यह कह कर भी बताया है कि इस देह को तो देवते भी मागते है "इस देही कउ सिमरहि देव' (पृ० ११५९ गुरु वाक् है। इसलिए इस देह को आत्मघात करने स, या कठोर तपस्याओ से अथवा अन्य प्रकार के कष्ट देकर नष्ट करना या इसे खराब करना गुरमत के अनुकूल नही है। इसलिए शरीर को स्थित रखने वाली आवश्यकताओ को पूरा करना भी मानवीय कर्तव्यो मे एक अनिवार्य कर्तव्य है। भक्त कबीर तथा धन्ना जी ने तो स्पष्ट रूप मे इन आवश्यकताओ की पूर्ति मागी है। देखें सोरठ कबीर पृष्ठ ६५६।

भूखे भगति न कीजै ॥ यह माला अपनी लीज ॥
...
दुइ सेर मागउ चूना। पाउ घीउ सगि लूना ॥
अध सेरु मागउ दाले। मो कउ दोनउ वखत जिवाले ॥२॥
खाट मागउ चउपाई। सिरहाना अवर तुलाई ॥

. .

यह केवल अनिवार्य आवश्यकतायें हैं। वास्तविक कृपा तो नाम की है, परन्तु इस शरीर को भी तो बनाये रखना है। इसलिए अगली पक्ति मे कहा है

मै नाही कीता लबो ॥ इकु नाउ तेरा मै फबो ॥

भक्त धन्ना जी भी इसी प्रकार अपनी अनिवार्य आवश्यकतायें मागते हैं। वे तो खाने पीने के साथ सवारी के लिए घोडी तथा एक अच्छी पत्नी भी मागते हैं। है भी ठीक—

'घरि सुखि वसिग्रा ग्राहरि सुखु पाइग्रा'।।

परन्तु हमे इस बात मे अवश्य चोकन्ना रहना चाहिए कि इन आवश्यकताओ के माँगने मे 'लब' 'लोभ' न आ जाये। हम शारीरिक सुखो मे ही न फँस जायें। "ग्राह जग मिट्ठा अगला किन डिट्ठा" कह कर पशु वृतियो के दास न बन जाये। शरीर को बनाए रखना एक साधन है। वास्तविक जीवन तो आत्मिक जीवन है। शरीर के दास हो गए तो पशु हो गए "करतून पसू की मानस जाति" के फिर ता दोषी होगे। यह अज्ञान तथा पशुपन होगा। मनुष्य पशु की भाँति जीवित रहा तो नीचे गिर गया। मनुष्य की जाति तो उच्च तथा सच्ची है। सबमे ऊचा है

अवर जोनि तेरो पनिहारो ॥
इसु धरती महि तेरी सिकदारी ॥

(आसा म ५ पृ० ३७४)

इस शरीर से हमारा लगाव बस इतना ही चाहिए कि हमने इसे आरोग्य (स्वस्थ) रखना तथा अकाल पुरुष के आदेशानुसार दी गई अवधि तक बनाये रखता है। यह शरीर तो हमारा एक प्रकार से अतिथि है। इसे आवश्यक खुराक देकर अपने सग रखना है। दी गई अवधि तक नही यह बेचारा तो क्षणभगुर है इसने चले तो जाना है। जो घडा गया है उसने टूटना तो अवश्य है

इहु सरीरु जजरी है इस नो जरु पहुचै आए ॥

(वडहस म ३ पृ० ५८४)

शरीर की अन्तिम सीमा, सूक्ष्म रूप मे, मन है। शरीर तथा मन एक हो कडो (माला) के दो भाग हैं। मन भी पाँच तत्वो से ही उपजा है, और वास्तव मे तो मन भी ज्योति रूप हो है। गुरु वाक् है "मन तू जोति सरूप है, आपणा मूल पछाण"। अर्थात मन का अन्तिम भाग आत्मा से जा मिलता है। या कहे जहाँ शरीर समाप्त होना है वहाँ मन ग्रारम्भ होना है और जहाँ मन समाप्त होता है वहा आत्मा आरम्भ होती है। इनके बीच सोमायें अथवा अन्तर नहीं है, जिस से ये भिन्न भिन्न नही होते हैं। ये भिन्न भिन प्रतीत होते हैं परन्तु है एक पक्ति मे। इन मे अन्तर प्रकार का नही स्तर का है। जाति भेद नही सफाती भेद है। जैसे काले सफेद या

अन्धकार प्रकाश का दृष्टांत ले तो काला सफेद या अन्धकार प्रकाश दो किनारो के नाम हैं। बीच वाली अवस्था न काली है न सफेद। चुप चाप और सहज रूप हो उस रक्ति मे काला सफेद हो रहा है या सफेद काला हो रहा है। यहाँ तक कि दूसरे का अभाव ही हो जाता है। यहा भेद है भी और नही भी। ये दो भी हैं और एक भी है। इस भेद मे अभेद भी है और इस अभेद मे भेद भी। इस एकता मे द्वैत भी है और द्वैत मे एकता भी। हम नही कह सकते कि सफेद कहा से आरम्भ होता है और कहां समाप्त। परन्तु फिर भी सफेद सफेद है और काला काला। साथ ही काले सफेद की एकता तथा अभेदता भी है। बिल्कुल इसी प्रकार ही शरीर-मन-आत्मा की दशा है। दोनो भाग शरीर एवं आत्मा के हैं और बीच का स्थान मन का है। यही दृष्टात शीतल गर्म से भी लिया जा सकता है। शून्य तापमान वाली दशा मे भी गतिशीलता अथवा तपन होती है और १०० डिग्री के तापमान मे भी शीतलता होती है। ये सब अवस्था भेद है। या कह लें कि ये समस्त अवस्थायें मानव नाप तोल ने बनाई हैं। हमारे साधन तथा हमारी शक्तियां हमे एक अवस्था मे गर्म और दूसरी अवस्था में शीतल प्रतीत होती है। इसी प्रकार एक अन्धकारपूर्ण और दूसरी प्रकाशमान। यदि ये साधन तथा शक्तियां और स्वच्छ तथा उन्नत हो जाये तो हमारे शीतल, गर्म की सीमा भी कम और अधिक हो जाएगी। जो हमारी आँखो के लिए अन्धकार है वह बिल्ली या उल्लू के लिये नही है। यही बात आत्मा, अनात्मा की है। पत्थर, वृक्ष, पशु मनुष्य ये चार स्तर हैं। सब मे आत्मा है। किसी मे गुप्त और किसी मे कम प्रकट और किसी मे अधिक प्रकट। परन्तु फिर भी हम पत्थर का जड और मनुष्य को चेतन कहते हैं। यह अन्तर भी जाति का नही स्तर का है। इसलिए सिक्ख धर्म के अनुसार मनुष्य शेष ब्रह्माण्ड से भिन्न प्रतीत तो होता है, परन्तु यह बिल्कुल भिन्न नही है। समस्त ब्रह्माण्ड मे एकता है। अनेकता भी है, परन्तु वास्तविक रूप मे एकता है। इसी प्रकार आत्म तत्व है और उसका सम्बध मन तथा शरीर से है। देखने मे भिन्न भिन्न परन्तु वास्तव मे एक।

२ जीवात्मा

उपर्युक्त विचार से यह परिणाम निकालना तो कठिन नही है कि परमात्मा तथा जीवात्मा का वास्तविक स्वरूप एक है। भाव यह कि जीवात्मा परमात्मा का अश है। जीवात्मा अपनी वर्तमान अवस्था मे परमात्मा नही है। यद्यपि यह ठीक है कि गुरबाणी मे बहुत से पदो का भाव यही है कि जीवात्मा परमात्मा मे कोई भेद नही है। परमात्मा जीवात्मा मे है और जीवात्मा परमात्मा मे। हा यह विचार कि ईश्वर तथा जीव मे कोई भेद नही है, या ब्रह्म तथा ब्रह्मज्ञानी मे कोई अन्तर नही है। जैसा कि—ब्रह्म महि जन—जन महि पारब्रह्म (सुखमनी पृ० २८७), आतम महि राम—राम महि आतम (भैरो अष्टपदी महला १ पृ० ११४१), हरि हरि जन दुइ एक है, बिबबिचार कछु नाहि (पा० १०)। जापु साहिब मे श्री दशमेश जी बताते है "परमात्मा हैं। सरब आतम हैं। आतमा बस हैं।" परन्तु इसके बावजूद प्रयुक्त किए गए अलकारो तथा दृष्टान्तो से अभेदता एव अन्तर स्पष्ट है। जल तथा जल तरग मे अन्तर है भी और नही भी। सागर तथा लहर मे जो अन्तर है वही अन्तर परमात्मा एव आत्मा मे समझना चाहिए। जिस प्रकार नदी एव चश्मा जहा से नदी निकलती है एक भी हैं और अलग अलग भी। उसी प्रकार जीवात्मा तथा अकाल पुरुष कहे जा सकते हैं। यह नही समझना चाहिए कि जिस प्रकार कारीगर ने कुर्सी बनाई इसी प्रकार परमात्मा ने आत्मा बनाई। कारीगर तथा कुर्सी बिल्कुल दो वस्तुए हैं। कुर्सी कारीगर नही बन सकती। परन्तु गुरु साहिब बताते हैं सो प्रभ दूर नही प्रभ तू हैं। (आसा महला १ प० ३५४)। पारब्रह्म एव जीव उसी प्रकार सम्बन्धित हैं जिस प्रकार सूर्य और उसकी किरण, जिस प्रकार अग्नि तथा चिंगारी, और धूल एव धूल का कण, जिस प्रकार सागर तथा बूद। दशम पातशाह बताते हैं

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे,
निआरे निआरे हुई कै फेरि आग मे मिलाहिगे।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है,
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिगे।

जैसे एक नद ते तरग कोट उपजत है,
पान के तरग सबै पान ही कहाहिगे।
तैसे बिस्व रूप ते अभूत भून प्रगट होइ,
ताही ते उपज सबै ताही मै समाहिगे।
(अकाल उसतत १७-२)

इन दृष्टातो से यही सिद्ध होता है कि जोवात्मा तथा परमात्मा वास्तव मे एक हैं, मूल स्वरूप तथा अश वश एक ही है, परन्तु यह नही कि जोवात्मा अब जैसे है उसी प्रकार हो वह ईश्वर है। भले ही सागर नदी तथा बूद अथवा लहर सब पानी हैं परन्तु दोनो मे पृथ्वी आकाश का अन्तर भी है। जिस प्रकार भाई नन्द लाल जी का कथन है कि हे अकाल तुम अथाह समुद्र हो और मैं केवल एक लहर हू। तुम मुझ से इस प्रकार भिन्न हो जिस प्रकार आकाश पृथ्वो से। (दीवान गोया के पद का अनुवाद।)

परन्तु यह अन्तर क्यो और कहाँ से आता है? इस प्रश्न का उत्तर सृष्टि रचना वाले अध्याय मे ही मिलता है। अह एक से अनेक करने वाला तथा भिन्नता एव भेद डालने वाला नियम है, इस अह के कारण माया—अविद्या के प्रभाव स्वरूप जीवात्मा परमात्मा से भिन्न रहती है और भिन्न अनुभव भी करती है। माया एक पदार्थिक उपाय है और अविद्या मानसिक उपाय। अविद्या से रहित होने पर जीवात्मा अपने आप को परमात्मा एव ब्रह्म रूप अनुभव तो कर लेती है, ज्ञान हो जाता है, परन्तु वास्तविक अभेदता माया से सम्बन्धित उपाय के नष्ट होने से ही होती है। हमारे सासारिक अपनत्व के कई पहलू हैं। एक तो शारीरिक अपनत्व है, दूसरा सामाजिक अपनत्व है। इन तीनो ही अपनत्व की बुनियाद अह मे है। इन समस्त अपनत्व का आधार, केन्द्र अथवा मरकज अह है। अह के सहारे ही समस्त जीवन—सामाजिक, शारीरिक तथा मानसिक पर समस्त ससार अवस्थित है। अह के प्रभाव स्वरूप ही जोव कर्ता और कारण है। अह के सुधार से यदि नाम की प्राप्ति हो तो समस्त अपनत्व नाम मे समाविष्ट हो जाते हैं। सब का कारण कार्य परमात्मा बन जाता है। जन्म-मृत्यु, देन-लेन, लाभ-हानि, सत्य-असत्य पाप पुण्य, दुख-सुख का भागी होना मलीन एव उज्जवल, जाति पाति, ज्ञान अज्ञान, मुक्ति

तथा बन्धन यह सब कुछ अह के कारण है और अहं मे ही घटित होता है। आसा जी की वार मे है

सलोक महला १

हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ॥
हउ विचि जमिआ हउ विचि मुआ ॥
हउ विचि दिता हउ विचि लइआ ॥
हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ ॥
हउ विचि सचिआरु कूडिआरु ॥
हउ विचि पाप पुन्न वीचारु ॥
हउ विचि नरक सुरगि अवतारु ॥
हउ विचि हसै हउ विचि रोवै ॥
हउ विचि भरीऐ हउ विचि धोवै ॥
हउ विचि जाती जिनसी खोवै ॥
हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा ॥
मोख मकति की सार न जाणा ॥
हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ ॥
हउमै करि करि जंत उपाइआ ॥
हउमै बूझै ता दरु सूझै ॥
गिआन विहूणा कथि कथि लूझै ॥
नानक हुकमी लिखीऐ लेखु ॥
जेहा वेखहि तेहा वेखु ॥ १ ॥

महला २

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ॥
हउमै एई बधना फिरि फिरि जोनी पाहि ॥
हउमै किथहु ऊपजै कितु सजमि इह जाइ ॥
हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि ॥
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि ॥
किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि ॥
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु सजमि दुख जाहि ॥२॥

इस प्रकार से अहं जीवात्मा की सासारिक यात्रा का विशुद्ध कारण है। रजो, तमो, सतो तथा अनेक प्रकार के मेल से अनेक प्रकार की रचना बनती रहती है। अनेक प्रकार के जाव अ स्तत्व मे आते हैं। वे अह के प्रभाव स्वरूप अनेक प्रकार के कर्म करते है। इन कर्मो के प्रभाव एव सस्कार जीवात्मा को सूक्ष्म शरीर के रुप मे सदा ही चिपटे रहते है। इस प्रकार से भिन्न भिन्न योनियो मे एक ही जीवात्मा जन्म लेती रहती है। वही अपनत्व सदा चलता रहता है। नही तो मृत्यु के पश्चात बूद सागर मे मिल जाए तो फिर वह बूद फिर कहा से मिले ?

मनुष्य को ससार के सम्बन्ध मे समझने का यत्न करे तो यह मनुष्य अपने आप मे ही एक छोटा सा ससार है। गुरबाणी मे ससार को ब्रह्माण्ड कह कर तथा मनुष्य को पिण्ड कह कर दोनो की साम्यता "जो ब्रह्मण्डे सोई पिण्डे ॥ जो खोजे सो पावै" गुरु वाक् मे बताई है। जिस प्रकार ब्रह्मण्ड पाच तत्वो—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बना है उसी प्रकार मनुष्य का शरीर। दोनो की आन्तरिक ज्योति भी एक है। वह ज्योति सर्वव्यापक है। ब्रह्माण्ड मे भी है और पिण्ड मे भी है। मनुष्य को तथा ब्रह्माण्ड को भो सागर एव बूद की भाति बताया है। बूद भी एक छोटा सा सागर है। बूद मे सागर के समस्त तत्व तथा गुण होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी एक छोटा सा ब्रह्माण्ड है और "जो ब्रह्मण्डे सोई पिण्डे है। "काइआ अन्दरु सभु किछु वसै खण्ड मण्डल पाताला ॥ काइआ अन्दर जग जीवन दाता वसै सभना करे प्रतपाला।" (सूही महला ३ पृ० ७५४) बात क्या प्राकृतिक रुप (आधार पर) मे भी तथा आध्यात्मिक रुप मे भी मनुष्य अपने आप मे एक छोटा सा ब्रह्माण्ड ही है।

इस विचार की पश्चिमी दर्शन के कुछ एक विचारो से बडी अच्छी तुलना की जा सकती है। यूरोप के मध्यकाल के अन्तिम दिनो मे जब जागृति का समय आया तो उस समय कुछ एक दार्शनिको Macrocosom तथा Microcosom का विचार प्रचलित किया। मानव अस्तित्व को समस्त शक्तियो का तत्व समझा गया। मनुष्य को ब्रह्माण्ड के समस्त भेद खुले है। क्यो ? इसलिए कि ब्रह्माण्ड के

समस्त भेद उलके अन्दर है। जर्मन सन्त महापुरुष एखारट का यह प्रधान मत था। मानव अस्तित्व के तोन पहलू हैं शरीर मन तथा आत्मा। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड के भी तीन पहलू है प्राकृतिक, भौतिक या शारीरिक मानसिक—ज्ञानमय तथा आत्मिक। ब्रह्माण्ड का प्रत्येक पहलू मनुष्य के प्रत्येक पहलु से सादृश्य रखता है। इस सादृश्य के कारण ही वह ब्रह्माण्ड भौतिक, आध्यात्मिक तथा चेतन भेदो को समझ लेता है। इस सादृश्य के बिना यह सूझ तथा ज्ञान असम्भव था। इसी आधार पर गुरबाणी मे भी कई वाक् आए है जो ये आदेश देते है कि अपने आप को खोजो। अपनत्व का ज्ञान सारी सूझ देगा। जिसने अपने आपको जान लिया उसने सब कुछ जान लिया। अपनत्व को जान लेने से एक ब्रह्माण्ड क्या समस्त खण्डो तथा ब्रह्मण्डो (वरभण्डो) का ज्ञान (प्रकाश) होता है। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है और इस ज्ञान मे सारे ज्ञान सम्मिलित है। यद्यपि यह विचार है तो छायावादी और पूर्वी पश्चिमी छायावाद मे समान रूप हैं, परन्तु इस की सच्चाई ठोस है। किन्तु है कठिन, "कहु नानक एह खेल कठिण है "।

३ मृत्यु के पश्चात्*

मृत्यु के पश्चात जीवन स्थित रहता है और मृत्यु मनुष्य का अन्त नही। इस निश्चय ने ससार के इतिहास मे मनुष्य का बहुत शक्तिशाली रखा है। जीवन के दुख एव कष्ट बडो सहनशीलता से सहन करने मे यह निश्चय बडा सहायक रहा है। लण्डन के किले (दुर्ग) की दीवारो पर लिखे लेख इस बात के साक्षी हैं। किस प्रकार उन बन्दियो ने आगे की दुनिया के न्याय, सम्मान, श्रेष्ठता, उपहार एव आदर के हेतु काल कोठडियो मे अकथनीय तथा असह्य कष्ट सहन किए। प्रत्येक जाति तथा देश के इतिहास मे शूरवीर शहीदो (बलिदान देने वाले) के जीवन इसी निश्चय पर ही टिके थे। इस

*इस विषय पर इसी नाम की इसी लेखनी द्वारा लिखित एक पुस्तक सम्भवत पाठको के लिए विशेप लाभदायक हो सके।

समय यह अनुमान लगाना सरल नही कि जातियो एव ससार का इतिहास कैसा होता यदि ससार मे ईश्वर एव मृत्यु के पश्चात के जीवन मे लोगो को विश्वास न होता। इस निश्चय ने इतिहास का रग बहुत बदल दिया है। ईसाई धर्म के इतिहास को भाति सिक्ख धर्म का इतिहास भी बहुत बलिदान वाला तथा शहीदो के जीवन से परिपूर्ण है। सिक्ख इतिहास का अक्षर अक्षर शहीदो के खून से लिखा लगता है। इस समस्त शूरवीरता की तह मे एक ईश्वर मे तथा अपनत्व मे निश्चय था।

राथ ने लिखा है कि जो कोई भी ईश्वर को हस्ती मे विश्वास रखता है, वह अवश्य ही मृत्यु के पश्चात मनुष्य के किसी न किसी रूप मे स्थित तथा निरन्तर रहने को मानता है। इस प्रकार के विश्वास के बिना यह सोचना असम्भव है कि ईश्वर ने सृष्टि बनाई और इसके बनाने मे उसकी कोई रुचि, उद्देश्य तथा हिकमत भी थी। काट के आचरण शास्त्र के अनुसार सदाचारी जीवन के लिए दो बातो का विचार (कल्पना) बहुत आवश्यक है एक तो ईश्वर का अस्तित्व और दूसरा मृत्यु के पश्चात् का जीवन। इस बात का उत्तर देता हुआ गैलोवे लिखता है कि हमे इस सीमा तक नही जाना चाहिए कि हम यह समझें कि यदि मानव आत्मा अमर नही है तो सदाचार के कोई अर्थ हैं। अथवा सदाचार का महत्व तभी है यदि हम यह माने कि मृत्यु से मनुष्य का अन्त नही है। हा यह बात अवश्य है कि इस निश्चय तथा मन्तव्य से धार्मिक जीवन एव सदाचारी व्यवहार को बहुत शक्ति तथा आश्रय मिल जाता है और इन बातो के अर्थ बहुत गहराई तक जाते हैं। सदाचारी लक्ष्य तथा मनुष्य को ऊपर की उन्नति का प्रयत्न उसके धार्मिक एव आत्मिक जीवन से विशेष सम्बन्धित है। यह बात भली प्रकार से समझ मे आ जाती है यदि हम यह जानते रहे कि शरीर के अन्त से मनुष्य का अन्त नही है। आत्मा को अमर समझने से तीन लाभदायक अवस्थायें प्राप्त होती हैं।

प्रथम बात तो यह है कि मनुष्य के सदाचारी जीवन मे एकस्वरता एव समानता आ जाती है। विचार तथा कर्म मे विरोध नही रहता। मानव गुण का लक्ष्य तो सर्वगुण सम्पन्न अकाल पुरुष

है। वह इस नवश्‍र तथा सीमित जीवन में किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। यह जीवन तो प्रयत्नो का नाम है। वास्तविक पूर्ण परमानन्द की प्राप्ति तो इस सासारिक जीवन के पश्चात ही होनी है। यदि मृत्यु के पश्चात हमे उस परमानन्द प्राप्ति का अवसर ही नही मिलता तो वह प्राप्ति कहा से होनी है। इसलिए आत्मा का अमर होना आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि सामाजिक उन्नति का सही अनुमान तभी लग सकता है यदि इनफरादी उन्नति मृत्यु के पश्चात भी जारी रहती हो। तीसरा यह कि आत्मा के अमर होने से ही यह बात कुछ अर्थ रखती है कि हमारे आत्मिक गुण तथा आत्मिक उन्नति चिर स्थायी है तथा स्थित रहने वाली है और शरीर के विनाश से इनका अभाव नही है।

गुरु साहिब मृत्यु के पश्चात् के जीवन सम्बधी उपरिलिखित तर्कों के आधार पर या किसी अन्य प्रकार से वादविवाद नही करते। वे तो जैसे अकाल पुरुष मे स्वाभाविक ही निश्चय रखते है, उसी प्रकार आत्मा के अमरत्व मे भी विश्वास रखते है. उन्हे इन दोनो बातो के अनस्तित्व की कभी शका ही अनुभव नही हुई। सांसारिक एव नैतिक उन्नति का होना तथा बने रहना तो इसी ससार की बात हैं। ये समस्त उन्नतिया स्थिर रहती है किसी अन्य ससार म नही अपितु एक जीव की मृत्यु के पश्चात् इसी ससार मे ही स्थित रहती है। बार बार जब यहा ही जन्म लेना है तो फिर अच्छे बुरे कर्मो का फल इसी ससार मे ही प्राप्त करने हैं। इस जन्म मे नही तो आगे के जन्म मे या उससे आगे के जन्म मे। जब तक पूर्ण कमालियत प्राप्त नही होती या जब तक आत्मा से जीवित भाव के कर्मो के सस्कार नाम रूपी साबुन से उतर नही जाते तब तक बार बार यहा ही आना है। परमानन्द की प्राप्ति भी यही से होनी है। यह ससार तो अखाडा है। इस अखाडे मे हमने दूतो एव शत्रुओ को पछाडना है और इस वाह वाह का यश प्राप्त करना है। इस ससार मे प्रत्येक प्रकार की पूर्णता प्राप्त करने की सम्भावना है। ऐसी कोई बात नही है कि यह ससार तय्यारी का स्थान है और वास्तविक आनन्द किसी अन्य ससार मे प्राप्त होगा। जिस वातावरण मे मनुष्य का तन मन बनता है उसी वातावरण मे ही उसने इन्हे पूर्णता

तक पहुचाना है। उस वातावरण पर काबू पाकर फिर स्वतन्त्रता मिलनी है और वह स्वतन्त्रता मुक्ति है, फिर ब्रह्म मे अभेदता है। इसी ससार मे जीवात्मा को भिन्न भिन्न जन्मो के रूप मे बार बार अवसर मिलने है। ये अवसर तब समाप्त होगे, अथवा यह जन्म और मृत्यु का चक्र तब हटेगा जब आत्मा अपने साथ चिपटे जीवित भाव कर्मो के प्रभाव एव सस्कार उतार देगी। यह भार विशुद्ध आत्मिक जीवन व्यतीत करके ईश्वर-रूप होने से उतरता है। नाम से। आवागमन का चक्र चलता रहेगा।

'आवागमन' की समस्या यद्यपि हिन्दु मत मे प्रधान है, परन्तु बुद्ध एव जैन आदि भारतीय धर्म भी इसे मानते हैं। एक प्रकार से यह हिन्दु समस्या नही भारतीय समस्या है। भारतीय ही नही अपितु एशिया की या पूर्वी है। वैसे तो कई पश्चिमी मतो के विद्वानो ने भी आवागमन को अपनाया है और इसकी पुष्टि मे बडे जोर से लिखा है। यूनानी दार्शनिक पाईथागुरस या फीसा गोरस का आवागमन मे बहुत दृढ तथा अडिग निश्चय था। पाईथागुरस एक प्रभावशाली मत का प्रवर्तक था और इन मतावलम्बियो को पाईथा गुरियनज कहते है। इन सब ने आवागमन का बडे जोर से प्रचार किया और साथ ही अहिंसा का भी प्रचार किया। लगता है कि आवागमन तथा अहिंसा इकट्ठे सम्बन्धित अथवा एक दूसरे से सम्बन्धित निश्चय है। अफलातून—प्लैटो ने रिपब्लिक मे आवागमन मे अपना विश्वास प्रकट किया है और अफलातूनी वार्तालाप की पुस्तक फेडो मे लिखा है कि सुकरात भी आवागमन से सहमत था और इस समस्या को सन्तोष जनक समझता था। महान अग्रेज कवि वर्डस्वर्थ तथा बराऊनिग की कविता मे भी उनके आवागमन मे विश्वास का पता चलता है। महान प्रसिद्ध ईरानी कवि रूमी अपनी मसनवी मे आवागमन तथा चौरासी लाख योनियो के निश्चय को अपनाता है। मौलाना रूमी के कुछेक पद्याशो (शेअरो) का भाव यह है

> मैं पहले पत्थरो तथा ईटो रोडो के मण्डल मे था।
> फिर मैं कई रगो रूपो वाले फलो के रूप मे मुसकराया
> फिर जल थलों मे पहाडो कन्दराओ मे।
> दरियाओ समद्रो मे, हवाओ तथा आकाशो मे।

कभी उडता कभी डुबकियां लगाता।
कभी दौडता और कभी रीगता और कभी घिसडता।
इस प्रकार अनेक रूपो मे मैं जीवित रहा।
समस्त अस्तित्व तथा तत्व ग्रहण करते—करते।
अन्त मे मनुष्य का यह उत्तम रूप धारण किया।

एक अन्य स्थान पर मौलाना साहिब ने मानव आत्मा की उन्नति जमादात-जड पदार्थों से नबातात मे अर्थात बनस्पति के रूप मे। फिर बनस्पति से पशुओ मे तथा पशुओ से मनुष्य जामे मे बताई है। इस प्रकार स्तर के अनुरूप मनुष्य की आत्मा उन्नति (विकास) करती आई है और इससे फिर इसका ऊपर या नीचे को परिवतन का चक्र आरम्भ होगा।

गुरु ग्रथ साहिब मे भी कई शबदो मे इस प्रकार के विचार आए है। इन शबदो का पहले भी वर्णन हो चुका है। मौलाना रूमी ने भी उस प्रकार का विचार बताया है। गुरु साहिब ने भी इसी प्रकार ही कहा है कि जीवात्मा ने निचले स्तरो, योनियो तथा जातियो के जीवन व्यतीत करके बहुत देर बाद इस मानव शरीर (देह) का जामा लिया है अर्थात् रूप धारण किया है। यह मनुष्य जन्म इस आवागमन के चक्र को काटने और समाप्त करने का सबसे उत्तम अवसर है। यदि यह अवसर चूक गया तो पता नही फिर उसी चक्र मे कितनी देर फिरना पडे

मिलु जगदीश मिलण की बरीआ,
चिरकाल इह देह सजरीआ॥

(गउडी महला ५)

भई प्रापति मानुख देहुरीआ,
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥

(आसा महला ५)

यह देह (शरीर) चौरासी का चक्र, पूरा करके मिली है। "कई जनम भए कीट पतगा" वाले शबद मे गुरु साहिब ने बहुत सी योनियो का वर्णन किया है जिनमे मे आत्म गुजर कर आई है। जैसे कि कीडे, पतगे, हाथी, मछली, कुरग, पक्षी, सर्प, घोडे, वृक्ष, पर्वत, दरिया, वनस्पति, फल फूल वाले पौधे आदि चौरासी लाख प्रकार

को योनियो मे यह जीव फिरता रहा है। इसलिए यह आवागमन का निश्चय बहुत प्राचीन तथा प्रामाणिक है और सिक्ख धर्म भी इसी मे ही विश्वास (निश्चय) रखता है।

यद्यपि चौरासी लाख योनियो मे से जीव के गुज़रने और शनै शनै उन्नति करने की विधि का गुरु साहिब ने विस्तार से कही विवेचन नही किया परन्तु जो कुछ भी सकेत हैं उन से मन-आत्मा की विधिवत् वैज्ञानिक रुचि से समझी जाने वाली क्रमिक उन्नति की झलक पडती है। एक योनि से दूसरी योनि मे आते समय मन निचली अवस्था से ऊपर की अवस्था मे आता है। परन्तु निचली योनी के सस्कार छोड नही आता। सूक्ष्म शरीर मे उन प्रभावो तथा सस्कारो का परिणाम स्थित रहता है। जैसे गुरबाणी मे आया है कि मनुष्य के मन में पाच मुख्य पशुवृतिया हैं काम—Sex instinct, क्रोध— Aggressive instinct, लोभ— Acquisitive instinct, मोह—Love, अहकार— Self-sense or self assertion, इसी प्रकार से मानव मन पाँच विषयो का जो आखो, कानो, नाक, मुह तथा लिंग (त्वचा) द्वारा सन्तुष्ट होते हैं दास है। ये विषय हैं रूप, शब्द, सुगन्ध, रस, स्पर्श (काम)। ये सब पशु स्वभाव से सम्बन्धित हैं और जो व्यक्ति इन मे आकर्षित होकर अपने आदर्श को भूल जाए उसे लोग पशुओ से भी बुरा समझते हैं। ये पशु विषय इसलिए हैं कि ये पशुओ मे भी हैं। बल्कि कई पशु जातियाँ तो इनमे से एक एक विषय की सिर से पाव तक गुलाम हैं और इनके वश होकर अपना जीवन समाप्त कर लेती हैं। जैसे कि हिरण मे शब्द विषय प्रधान होता है पतगे मे रूप विषय, भवरे मे गध विषय और हाथी मे काम (स्पर्श) विषय तथा मछली मे जिह्वा रस विषय। मनुष्य मे ये सारे ही विषय हैं। क्यो ? इसलिए कि इन योनियो मे से होकर आया है और वे प्रभाव सूक्ष्म शरीर मे स्थित रहते है। इस प्रकार से एक योनि का स्वभाव दूसरी योनी मे भी बना रहता है। समूचे परिणाम के रूप मे ये प्रभाव एक योनी से दूसरी योनी मे जाते हैं, परन्तु जीव को इसका कोई ज्ञान नही होता। न ही पूर्व की अवस्थाओ की कोई स्मृति रहती है। कारण यह कि इनका सम्बन्ध शारीरिक नाड़ी बन्धन से है जो कि शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता है। हा

समस्त जोवन का सूचा प्रभाव—कर्मो का फल—सूक्ष्म शरीर—Embryo या Cell या किसी अन्य रुप मे एक योनि से दूसरो योनी मे ले जाता है ।

सिक्ख धर्म के अनुमार मृत्यु के पश्चात् की अवस्था दो प्रकार की है। कर्मो के अच्छे बुरे फन भोगने वालो के लिए तो आवागमन है और मुक्त आत्मा के लिए सचखण्ड (स्वर्ग) मे निवास है। ब्रह्म से अभेदता है। अकाल पुरुषो के चरणो का निवास है। यह तो बताया जा चुका है कि हमारे जीवन भाव का कारण अह है। जब तक जीव अपने कर्म मे, मेरे अह आदि के भाव से करता रहेगा तब तक यह अह बना रहता है। यदि समम्त कर्म परमात्मा को सौंप दिए जायें, भाव यह कि अकाल पुरुष की इच्छा के अन्तर्गत किए जायँ उसकी रज़ा (इच्छा-आदेश) मे जीवन व्यतीत किया जाए तो अह (हौमैं) समाप्त हो जाता है तथा कर्मो के आश्रय मे बधा चौरासो का चक्र समाप्त हो जाता है। नही तो यह चौरासी का चक्र चलता रहता है तथा अह के चक्र मे फसा जीव फिरता रहता है।

बहिश्त—दोजख, नर्क—स्वर्ग जहा जाकर जीव अपने कर्मो का फल भोगेंगे, स्वर्गों मे आनद लेगे और नरको मे कोहलु जोते जायेंगे। गुरमत के अनुसार ऐसे आनद या दुखो कष्टो वाले स्थान कोई नही हैं, गुरबाणी मे जहा कहीं भी आवागमन का प्रसग आया है वहाँ नरक स्वर्ग का प्रसग कभी नही आया। गुरबाणी मे नरक स्वर्ग के विचार कई स्थानो पर आए हैं परन्तु वे या तो दूसरे धर्मो के निश्चयो की ओर सकेत हैं या जव गुरु साहिब दूसरे धर्मों वालो को सम्मुख रख कर अपने उपदेश देते है तो उन्हे उनके निश्चय के अनुसार ही शिक्षा देते हैं। इस बात को सिक्ख धर्म के लेखको ने अभी भली प्रकार स्पष्ट नही किया। किसी किसी स्थान पर गुरु साहिब ने अलकार के रूप मे भी नरक स्वर्ग दो शब्द प्रयुक्त किए है। भाव यह कि इस ससार मे इस जीवन की अच्छी वुरी अवस्थाओ की पुष्टि के लिए इन का प्रयोग किभा गया है। जैसे महावाक् है

वैकुठ नगरु जहा सत वासा। प्रभ चरण कमल रिद माहि निवासा ॥
(सूही महला ५, पृष्ठ ७४२)

तहा वैकुंठु जह कीरतनु तेरा तू आपे सरधा लाइहि ।।

(सूही महुला ५, पृष्ठ ७४९)

तह बैकुंठु जह नामु उचरहि ।।

(राम कली महला ५, पृष्ठ ८९०)

इसी प्रकार धर्मराज, यमदूत, अजराईल आदि या तो दूसरे धर्मों के निश्चय प्रकट करने के लिये प्रयुक्त किए गए है, या दूसरे धर्मों वालो को उपदेश के समय और या अलकारक रूप मे सृष्टि रचना और विनाश निर्माण करने वाली प्राकृतिक सस्थाओ के चिन्ह बताये हैं। पुराने विचार के अनुसार चित्त-गुप्त दो देवते जीव के साथ साथ सदा रहते हैं और उसके अच्छे बुरे कर्मो को लिखते रहते हैं, भले ही वे कर्म प्रकट हो या गुप्त। गुरु साहिब इस विचार को वैज्ञानिक रूप मे प्रस्तुत करते है

चित गुपत करमहि जान ।।

(बिलावल म ५ पृ० ३८८)

भाव हमारे चेतन, अचेतन कर्म ही चित गुप्त है। प्रत्येक कल्पना, प्रत्येक कर्म, अच्छा या बुरा, गुप्त या प्रकट अपनी मोहर अथवा प्रभाव सूक्ष्म शरीर मे छोड जाता है और वह जीवात्मा के साथ चिपटा रहता है। यही उन सस्कारो के अधीन उन्नत या अवनत योनियो मे जीव को घसीटे फिरता है। हमारे शब्द, हमारे कर्म, हमारी कमाई—धर्म या पाप की, हमारी खाने वाली खुराक—दसो नाखुनो की कमाई का फल अथवा बेईमानी का फल यह सब लेखे मे आ जाते हैं। हमारा देखना, सुनना चखना, (खाना) सब लेखे मे आ जाते हैं। भाव यह है कि प्रत्येक कल्पना (अनुभूति) तथा कर्म का प्रभाव मन पर रहता है और मन के द्वारा सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करता है

सिरी राग म १—पृ० १५

लेखै बोलणु बोलणा लेखै खाणा खाउ ।।
लेखै वाट चलाईआ लेखै सुणि वेखाउ ।।
लेखै साह लवाईअहि पडे कि पुछण जाउ ।।

यह सारा लेखा आध्यात्मिक शरीर के सिर मढा रहता है जो जीवात्मा के साथ चिपटा रहता है। इसलिए जीवात्मा—आध्यात्मिक शरीर को लेने के लिए कोई यम या फरिश्ता नही आता। सब कुछ दैवी (प्राकृतिक) नियमो के अनुसार होता है। जब पाचो तत्वो को एकस्वरता (एक रसता) सन्तोष—में विघ्न प्रड जाता है तो यह सगठन काम नही करता। इसका नाम मृत्यु है। भक्तो, सज्जन पुरुषो तथा महात्माओ की आत्माये सोधी अकाल पुरुष के चरणो मे अभेद हो जाती हैं—सचखण्ड मे निवास करती हैं और कर्म-बद्ध जीव अन्य योनियो मे या फिर मनुष्य योनी मे ही पुन जन्म धारण करते हैं।

आवागमन का मत यद्यपि गुरु साहिब ने हिन्दु मतो वाला ही अपनाया हो, परन्तु फिर भी विस्तार मे कई भेद हैं। जैसे कि मृत्यु के पश्चात् की अवस्था को गीता या वेदात के अनुसार हम चार प्रकार से देखते हैं १—मुक्ति –ब्रह्म से अभेदता, २—ज्ञानवान पुरुष के लिए सूर्य मण्डल का स्वर्ग, ३—अच्छे कर्मो वाले अज्ञानो के लिए चन्द्र मण्डल का स्वर्ग, ४—नरक—बुरे कर्मो वाले अज्ञानो के लिए। हिन्दु विचार के अनुमार प्रत्येक कर्म अपना फल रखता है और प्रत्येक अच्छे बुरे कर्म का अच्छा बुरा फल भोगना आवश्यक है। यदि किसी ने इस ससार मे अच्छे गुणो के प्रभाव स्वरूप अच्छे कर्म किए हो तो मृत्यु के पश्चात् उसे स्वर्ग मे भेजा जाता है ताकि वहा वह अपने अच्छे कर्मो का फल प्राप्त कर ले। जब वह अच्छे कर्मो का फल प्राप्त कर लेता है तो उसे मनुष्य योनी मे किसी उत्तम जाति तथा उत्तम परिवार मे जन्म दिया जाता है। फिर वह अपना चौरासी का चक्र आरम्भ करता है और अपने नए किए गए अच्छे बुरे कर्मो का फल भोगेगा। यदि किसो ने विषय वासना के वशीभूत होकर कर्म किए हो तो उसे किसो ऐसे घर मे जन्म मिलता है जहा पदार्थो की बहुलता हो और सामारिक रग प्रधान हो। यदि कोई अज्ञानता के अन्धकार मे बुरे कर्म करता रहा है तो उसे यमराज कई प्रकार से दण्ड देता है और वह नरक मे भी भेजा जाता है तथा पशु योनी मे धकेला जाता है। अपने बुरे कर्मो का फल नरक मे भोग कर, पशु योनियो मे ही वह फिर चक्र लगा कर किसी

निम्न जाति वाले मनुष्य के घर जन्म लेता है। यह मसरात साधारणतया हिन्दु निश्चय है। डाक्टर टरम्प ने कहा है कि यही निश्चय गुरु साहिब का था। परन्तु अपने विचार की पुष्टि के लिए उसने गुरुबाणी मे से कोई प्रमाण नही दिया। हाँ कुछेक वैष्णव भक्तो के वचन अवश्य दिए है। वास्तविक बात यह है कि सिक्ख धर्म के अनसार कोई नरक स्वर्ग नही है। नरक स्वर्ग हमारे इस सासारिक जीवन की अवस्थाओ के नाम हैं। इनके सम्बन्ध मे गुरु वाक्यो के प्रमाण पहले दिए जा चुके है। ऊपर के चार बिभाजनो मे से गुरु साहिब केवल दो ही अपनाते हैं

ब्रह्म मे अभेदता या चौरासी मे आवागमन।

बात भी ठीक है। नरक-स्वर्ग का निश्चय तथा आवागमन का मत साम्यता नही रखते। ये दोनो इकट्ठे नही जा सकते। हिन्दु मत के अनुसार यदि जीव ने अपने अच्छे बुरे कर्मों के फल स्वर्ग नरक मे जाकर भोग लिए तो फिर वह कौन सी बात रह जाती है, जो कि फिर उस जीव को चौरासी के चक्र मे डालती है। यदि उत्तर यह है कि वह इन योनियो का जीवन उसी प्रकार आरम्भ करता है, जिस प्रकार कि सबसे पहले आरभ किया था, तो फिर हमारे जीवन मे ऊच नीच और अच्छी बुरी परिस्थितिया (अवस्थायें) क्यो है ? कर्मो का फल तो नरक स्वर्ग मे भोग लिया। फिर दुबारा जीवन आरम्भ करने मे तो एकता तथा समानता आवश्यक है। परन्तु यह नही है—न सदाचारक, न आर्थिक और न धार्मिक तथा मानसिक। फिर इन धार्मिक एव सदाचारक भिन्नतायें और जीवो के भिन्न भिन्न होने का क्या कारण हुआ ? इसका उत्तर कोई नही। यदि है तो सन्तोष जनक नही। गुरु साहिब के मत मे यह विरोधता नही है। उन्होने नरक स्वर्ग का जीवन ही उडा दिया है। या चौरासी का जीवन है और या मुक्ति है—चरण कमल का आनन्द है।

एक अन्य मुख्य अन्तर है उस समय का जो मृत्यु के पश्चात जीव जन्म लेने तक लगाता है। इस मृत्यु तथा अगले जन्म के बीच हिन्दु धर्म के अनुसार कुछ समय है। इसकी अवधि कई प्रकार से लिखी है। एक बार किसी पण्डित ने छटे गुरु हरगोविन्द जी की

हजूरी तथा कुछ सिक्खो की हाजरी मे गरुड पुराण पढा। इस पुराण के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जीव अपने आगामी घर मे एक वर्ष मे पहुचता है। एक सुन्दर नामक सिक्ख ने सुन कर कहा कि गुरु की कृपा से मेरी जीवात्मा इस पथ को १२ महीने के स्थान पर १२ घण्टो मे पूरा कर सकती है। भाई लालो ने कहा कि मैं इस कार्य के लिए तीन ही घण्टे चाहता हू। भाई निहाले ने कहा कि गुरु के सिक्ख को ऐसे स्थान पर जाने की आवश्यकता ही क्या है ? ब्राह्मण ने कहा, "गुरु जी ! देखो आपके सिक्ख क्या कुछ कह रहे है ?" तब गुरु साहिब ने सारी बात इस प्रकार स्पष्ट की कि जो कुछ आपने कहा है वह पौराणिक कथाओ के अनुसार है। सिक्खो के लिए यह भ्राति तथा अन्धविश्वास या इस प्रकार को कठिनाइया कोई नही है।

श्री बाल गगाधर जी तिलक ने भी अपनी गीता रहस्य नामक पुस्तक मे इस मृत्यु के पश्चात समय के सम्बन्ध मे लिखा है। जिस व्यक्ति ने शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया हो और यह ज्ञान भले ही मृत्यु के समय ही क्यो न प्राप्त हुआ हो वह सीधा ब्रह्म तक पहुचता है। जब शरीर त्याग हो जाता है और दाह सस्कार भी हो जाता है तो लपटो और धूयें के माध्यम से वह ऊपर उठता है, सूर्य के प्रकाश मे, चन्द्रायण पक्ष मे तथा उत्तरायण के छ मास मे ब्रह्म की हजूरी मे पहुच कर उसमे अभिन्न हो जाता है। वह पुन जन्म नही लेता। वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है, और वह व्यक्ति जो व्यर्थ ही सस्कारो तथा रीतियो एव कर्म काण्डो को कराता रहा हो तथा जिसने ज्ञान प्राप्त न किया हो, वह भी उस प्रकार लपटो एव धुयें के माध्यम से ऊपर उठता है, अन्धकार मे, अन्धकारमय पक्ष मे, और दक्षिणायण के छ मास मे ऊपर पहुचता है। पहले अपने किए कर्मो के फल भोगता है, तथा फिर उसे नीचे सृष्टि मे चौरासी लाख योनी के चक्र मे या मनुष्य योनी मे भेज दिया जाता है।

गुरु साहिब ब्रह्माण्ड के समस्त दैवी कर्मों मे कुछ प्रबन्ध तथा कुछ नियमिक क्रम देखते है। इसे श्री गुरु जी ने 'सूत' Harmony या एक स्वरता का नाम दिया है। यह सूत्र समस्त पदार्थो के Balance सन्तोष को बनाये रखता है। यह सब कुछ दयामय परमात्मा की कृपा

द्वारा धर्म–नियम–बने हैं।

धौल धरम दइआ का पूत ।।
सन्तोख थाप रखिआ जिन सूत ।।

(जपुजी)

इन नियमो के अनुसार ही जीवो का आवागमन होता रहता है। गुरु साहिब इस आवागमन के नियम के प्रयोग की व्याख्या नही करते और न ही मेरे विचार मे इस नियम की व्याख्या हो सकती है। कल्पायें तो की जा सकती है। वास्तविकता तो वह बता सकता है जो मर कर समस्त योनियो मे फिरे। समस्त स्मृतियो एव सस्कारो तथा समस्त योनियो के कार्य व्यवहार को बिल्कुल उसी प्रकार स्मरण रखे और फिर आकर हमे बताए तथा वैज्ञानिक ढग से उस प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर किसी पुस्तक की रचना करे। सम्भवत किसी आने वाले युग मे यह भी सम्भव हो सके। इस विचार को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक अधूरा और मोटा सा दृष्टात प्रयोग मे लाते हैं। कल्पना करो कि ब्रह्माण्ड की योनियो का एक छानना है और उस मे भाति भाति के चौरासी लाख छिद्र हैं। कोई किसी आकार तथा रूप का और कोई किसी आकार का। कोई तिकोना, कोई वर्गाकार, कोई पाँच कोनो वाला और कोई सौ कोनो वाला। इस छानने मे चौरासी लाख ही दाने या मनके हैं। वे दाने या मनके भी उसी प्रकार गोल अथवा तिकोने, वर्गाकार आदि आकार या दैवी गुणो मे एक जैसे हैं परन्तु रूप मे भिन्न भिन्न हैं। छानना क्रिया (हरकत) मे आता है। तो उस क्रिया (हरकत) के कारण प्रत्येक मनका अपने अपने उचित (योग्य) छिद्र मे से गुज़रेगा। गोल तिकोने मे से नही जा सकेगा और तिकोना वर्गाकार मे से नही। यदि ससार किसी ईश्वरीय आदेशानुसार अस्तित्व मे आता है और इसका समस्त कार्य व्यवहार नियमानुसार चल रहा है तथा इस मे जीव निर्जीव एव अचेतन ठीकरिया अथवा मनके नही हैं और ये सब जीव किसी प्रयोजन या उद्देश्य के अनुसार अस्तित्व मे आते और परिवर्तित होते हैं तो फिर जीवो का अपनी अपनी योग्य योनी मे चले जाना तथा अपने भावी जन्म के लिए अनुकूल वातावरण ढूढना किसी ईश्वरीय आदेश मे, कोई न समझ आने वाली बात नही है बल्कि आवागमन

हजूरी तथा कुछ सिक्खो की हाजरी मे गरुड पुराण पढा। इस पुराण के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जीव अपने आगामी घर मे एक वर्ष मे पहुचता है। एक सुन्दर नामक सिक्ख ने सुन कर कहा कि गुरु की कृपा से मेरी जीवात्मा इस पथ को १२ महीने के स्थान पर १२ घण्टो मे पूरा कर सकती है। भाई लालो ने कहा कि मैं इस कार्य के लिए तीन ही घण्टे चाहता हू। भाई निहाले ने कहा कि गुरु के सिक्ख को ऐसे स्थान पर जाने की आवश्यकता ही क्या है? ब्राह्मण ने कहा, "गुरु जी! देखो आपके सिक्ख क्या कुछ कह रहे हैं?" तब गुरु साहिब ने सारी बात इस प्रकार स्पष्ट की कि जो कुछ आपने कहा है वह पौराणिक कथाओ के अनुसार है। सिक्खो के लिए यह भ्राति तथा अन्धविश्वास या इस प्रकार को कठिनाइया कोई नही है।

श्री बाल गगाधर जी तिलक ने भी अपनी गीता रहस्य नामक पुस्तक मे इस मृत्यु के पश्चात समय के सम्बन्ध मे लिखा है। जिस व्यक्ति ने शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया हो और यह ज्ञान भले ही मृत्यु के समय ही क्यो न प्राप्त हुआ हो वह सीधा ब्रह्म तक पहुचता है। जब शरीर त्याग हो जाता है और दाह सस्कार भी हो जाता है तो लपटो और धूयें के माध्यम से वह ऊपर उठता है, सूर्य के प्रकाश मे, चन्द्रायण पक्ष मे तथा उत्तरायण के छ मास मे ब्रह्म की हजूरी मे पहुच कर उसमे अभिन्न हो जाता है। वह पुन जन्म नही लेता। वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है, और वह व्यक्ति जो व्यर्थ ही सस्कारो तथा रीतियो एव कर्म काण्डो को कराता रहा हो तथा जिसने ज्ञान प्राप्त न किया हो, वह भी उस प्रकार लपटो एव धुयें के माध्यम से ऊपर उठता है, अन्धकार मे, अन्धकारमय पक्ष मे, और दक्षिणायण के छ मास मे ऊपर पहुचता है। पहले अपने किए कर्मो के फल भोगता है, तथा फिर उसे नीचे सृष्टि मे चौरासी लाख योनी के चक्र मे या मनुष्य योनी मे भेज दिया जाता है।

गुरु साहिब ब्रह्माण्ड के समस्त दैवी कर्मों मे कुछ प्रबन्ध तथा कुछ नियमिक क्रम देखते हैं। इसे श्री गुरु जी ने 'सूत' Harmony या एक स्वरता का नाम दिया है। यह सूत्र समस्त पदार्थों के Balance सन्तोष को बनाये रखता है। यह सब कुछ दयामय परमात्मा की कृपा

द्वारा धर्म—नियम—बने हैं ।

घौल घरम दइम्रा का पूत ।।
सन्तोख थाप रखिम्रा जिन सूत ।।

(जपुजी)

इन नियमो के अनुसार ही जीवो का आवागमन होता रहता है । गुरु साहिब इस आवागमन के नियम के प्रयोग की व्याख्या नही करते और न ही मेरे विचार मे इस नियम की व्याख्या हो सकती है । कल्पाये तो की जा सकती हैं । वास्तविकता तो वह बता सकता है जो मर कर समस्त योनियो मे फिरे । समस्त स्मृतियो एव सस्कारो तथा समस्त योनियो के कार्य व्यवहार को बिल्कुल उसी प्रकार स्मरण रखे और फिर आकर हमे बताए तथा वैज्ञानिक ढग से उस प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर किसी पुस्तक की रचना करे । सम्भवत किसी आने वाले युग मे यह भी सम्भव हो सके । इस विचार को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक अधूरा और मोटा सा दृष्टात प्रयोग मे लाते हैं । कल्पना करो कि ब्रह्माण्ड की योनियो का एक छानना है और उस मे भाति भाति के चौरासी लाख छिद्र हैं । कोई किसी आकार तथा रूप का और कोई किसी आकार का । कोई तिकोना, कोई वर्गाकार, कोई पाँच कोनो वाला और कोई सौ कोनो वाला । इस छानने मे चौरासी लाख ही दाने या मनके हैं । वे दाने या मनके भी उसी प्रकार गोल अथवा तिकोने, वर्गाकार आदि आकार या दैवी गुणो मे एक जैसे हैं परन्तु रूप मे भिन्न भिन्न हैं । छानना क्रिया (हरकत) मे आता है । तो उस क्रिया (हरकत) के कारण प्रत्येक मनका अपने अपने उचित (योग्य) छिद्र मे से गुज़रेगा । गोल तिकोने मे से नही जा सकेगा और तिकोना वर्गाकार मे से नही । यदि ससार किसी ईश्वरीय आदेशानुसार अस्तित्व मे आता है और इसका समस्त कार्य व्यवहार नियमानुसार चल रहा है तथा इस मे जीव निर्जीव एव अचेतन ठीकरिया अथवा मनके नही हैं और ये सब जीव किसी प्रयोजन या उद्देश्य के अनुसार अस्तित्व मे आते और परिवर्तित होते हैं तो फिर जीवो का अपनी अपनी योग्य योनी मे चले जाना तथा अपने भावी जन्म के लिए अनुकूल वातावरण ढूढना किसी ईश्वरीय आदेश मे, कोई न समझ आने वाली बात नही है बल्कि आवागमन

हजूरी तथा कुछ सिक्खो की हाजरी मे गरुड पुराण पढा । इस पुराण के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जीव अपने आगामी घर मे एक वर्ष मे पहुचता है। एक सुन्दर नामक सिक्ख ने सुन कर कहा कि गुरु की कृपा से मेरी जीवात्मा इस पथ को १२ महीने के स्थान पर १२ घण्टो मे पूरा कर सकती है। भाई लालो ने कहा कि मैं इस कार्य के लिए तीन ही घण्टे चाहता हू। भाई निहाले ने कहा कि गुरु के सिक्ख को ऐसे स्थान पर जाने की आवश्यकता ही क्या है ? ब्राह्मण ने कहा, "गुरु जी ! देखो आपके सिक्ख क्या कुछ कह रहे है ?" तब गुरु साहिब ने सारी बात इस प्रकार स्पष्ट की कि जो कुछ आपने कहा है वह पौराणिक कथाओ के अनुसार है। सिक्खो के लिए यह भ्रांति तथा अन्धविश्वास यो इस प्रकार को कठिनाइया कोई नही है।

श्री बाल गगाधर जो तिलक ने भी अपनी गीता रहस्य नामक पुस्तक मे इस मृत्यु के पश्चात समय के सम्बन्ध मे लिखा है। जिस व्यक्ति ने शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया हो और यह ज्ञान भले ही मृत्यु के समय ही क्यो न प्राप्त हुआ हो वह सीधा ब्रह्म तक पहुचता है। जब शरीर त्याग हो जाता है और दाह सस्कार भी हो जाता है तो लपटो और धूये के माध्यम से वह ऊपर उठता है, सूर्य के प्रकाश मे, चन्द्रायण पक्ष मे तथा उत्तरायण के छ मास मे ब्रह्म की हजूरी मे पहुच कर उसमे अभिन्न हो जाता है। वह पुन जन्म नही लेता। वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है, और वह व्यक्ति जो व्यर्थ ही सस्कारो तथा रीतियो एव कर्म काण्डो को कराता रहा हो तथा जिसने ज्ञान प्राप्त न किया हो, वह भी उस प्रकार लपटो एव धुयें के माध्यम से ऊपर उठता है, अन्धकार मे, अन्धकारमय पक्ष मे, और दक्षिणायण के छ मास मे ऊपर पहुचता है। पहले अपने किए कर्मों के फल भोगता है, तथा फिर उसे नीचे सृष्टि मे चौरासी लाख योनी के चक्र मे या मनुष्य योनी मे भेज दिया जाता है।

गुरु साहिब ब्रह्माण्ड के समस्त दैवी कर्मो मे कुछ प्रबन्ध तथा कुछ नियमिक क्रम देखते है। इसे श्री गुरु जी ने 'सूत' Harmony या एक स्वरता का नाम दिया है। यह सूत्र समस्त पदार्थों के Balance सन्तोष को बनाये रखता है। यह सब कुछ दयामय परमात्मा की कृपा

आवागमन की व्याख्या मे मनोवैज्ञानिक या विज्ञान से मेल खाने वाली खोजें नही हैं। ये सब परम सत्यवादक अथवा काल्पनिक विचार हैं। इन समस्त विचार धाराओ की नीव वही तीन गुण— रजो, तमो, सतो हैं। अनेक प्रकार की मिलावटो से अनेक प्रकार की जीव योनियाँ अस्तित्व मे आ जाती हैं। इन तीनो गुणो के प्रभाव स्वरूप जीव भिन्न भिन्न जन्म धारण करता रहता है। यदि अन्तकाल के समय किसी मनुष्य मे तामस गुण प्रधान था, प्रायः अन्तिम समय वही गुण प्रधान होगा जो पहले समस्त आयु के कार्य व्यवहारो मे रहा है, तो फिर मृत्यु के पश्चात उस जीव को ऐसा वातावरण मिलेगा जिस मे तामस गुण प्रधान हो, और हो भी उसी स्तर तथा प्रकार का। वर्तमान जीव-विज्ञान बाइयोलोजो के अनुसार हम कह सकते हैं कि यह आवागमन की सम्भावना Embryo सूक्ष्म शरीर या प्रमाणु तत्वो द्वारा क्रियात्मक रूप मे अस्तित्व मे आती है। आवागमन के सम्बन्ध मे हमे यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि आत्मा से सूक्ष्म शरीर कभी भी, मृत्यु के समय भी, अलग नही होता और इसी सूक्ष्म शरीर से ही आवागमन होता है। यह शरीर आत्मा का साथ तभी छोडता है जब मनुष्य नाम के सहारे कर्मो का मल धो देता है और विशुद्ध आत्म-परमात्मा अपनत्व मे पहुच जाता है। यह लिंग शरीर यद्यपि भौतिक शरीर की भाँति स्थूल तो नही होता परन्तु फिर भी वह शारीरिक सगठन की समस्त शक्तियाँ रखता है। उन शक्तियो के विकास से पूरा शरीर बन जाने की सम्भावना होती है और यह विशेष प्रकार के वातावरण एव योनी आदि मे ही दृष्टिमान का रूप धारण करती है। स्थूल शरीर के प्रमुख अगो की जड इस मे होती है और साथ ही पिछले जीवन के कर्मो का फल विशेष सस्कारो के रूप मे नही अपितु एक साधारण General रूप मे विद्यमान होता है। ये समस्त नई योनी मे पनपते एव विकसित होते हैं। प्रोफेसर वार्ड ने इस जीवात्मा के योनियो मे फिरने या घूमने की अन्य भी कुछेक विधियाँ वताई है। परन्तु वे सब कल्पनायें हैं और कल्पनायें ही रहेगी जब तक कि मृत्यु को तथा मृत्यु के पश्चात् की अवस्था को प्रत्यक्ष रूप मे प्रयोगो मे लाकर विचार नही कर सकते। उतनी देर भले ही किसी लिंग या सूक्ष्म शरीर का अथवा आध्यात्मिक

का मत अन्य इस विषय पर कई ऐसे धर्मो से अधिकतर वैज्ञानिक और सूझ बूझ के अनुसार है। कई अन्य प्रकार की कल्पनायें कि कोई नरक है या स्वर्ग या कही जाकर जीवो का आकाशो मे डेरा लग जाता है यदि आवागमन की तुलना मे व्यर्थ ढकौंसले ही लगते हैं अर्थात् दिखावा मात्र लगते है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य उलझन (समस्या) गुरु साहिब के बताए गए आवागमन के विचार मे यह है कि पापी पुरुष मनुष्य योनी से गिर कर निम्न योनियो मे किस प्रकार जाता है। इस विचार मे कठिनाई या दुविधा इसलिए उत्पन्न होती है कि मानव व्यक्तित्व बडे दीर्घ समय तथा दीर्घ क्रिया द्वारा बडा पेचीदा तथा प्रफुल्लित हो जाता है। यह उन्नत जीवात्मा निम्न पशु जन्म मे किस प्रकार जा सकती है जब कि उस पशु जाति मे जो जीव होगा वह बहुत घटिया स्तर का तथा कम उन्नत होगा। काष्ठ (कठोर) बेर प्योद के कारण जब नरम बेर बन गया तो फिर नरम बेर से, भले ही वह खराब हो, कठोर बेर किस प्रकार बने। परन्तु सिक्ख धर्म के अनुसार इस उलझन या समस्या का समाधान दूसरे ढग से है और है भी मनोवैज्ञानिक नियमो से साम्य। जब मनुष्य जीवात्मा किसी पशु योनी मे जाती है तो वह तभी जाती है जब कि वह मानवीय श्रेष्ठ गुणो से रिक्त हो गई होती है। किसी पशु, विषय (वृति) की प्रधानता के कारण वह जीवात्मा बिल्कुल साधारण तथा निचले स्तर की हो जाती है। यह अवनति अथवा पतन सम्भव है। जब इस पतन के कारण पशु स्वभाव प्रबल हो गया तो फिर उस मे से मानवता के श्रेष्ठ गुण तो लुप्त हो गए। काष्ठ बेर तथा नरम बेर मे जाति भेद है। परन्तु जीवात्मा के ऊचा या नीचा होने से कोई जाति भेद नही होता। योनियो मे भी वही आत्मा होती है। भेद केवल स्तर की उच्चता और नीचता का है। दैवी नियमो के अनुसार प्रत्येक जीवात्म के स्तर के अनुसार उसके लिए योनि तथा जन्म एव आवश्यक वातावरण स्वाभाविकत. ही मिल जाता है। जिस प्रकार स्वाभाविक सूर्य उदय और अस्त होता है। बादल, वर्षा, आधी स्वाभाविक नियमो के अनुसार आ रहे हैं, उसी प्रकार इन योनियो का परिवर्तन है।

आवागमन की व्याख्या मे मनोवैज्ञानिक या विज्ञान से मेल खाने वाली खोजें नही हैं। ये सब परम सत्यवादक अथवा काल्पनिक विचार हैं। इन समस्त विचार धाराओ की नीव वही तीन गुण—रजो, तमो, सतो हैं। अनेक प्रकार की मिलावटो से अनेक प्रकार की जीव योनियाँ अस्तित्व मे आ जाती हैं। इन तीनो गुणो के प्रभाव स्वरूप जीव भिन्न भिन्न जन्म धारण करता रहता है। यदि अन्तकाल के समय किसी मनुष्य मे तामस गुण प्रधान था, प्राय: अन्तिम समय वही गुण प्रधान होगा जो पहले समस्त आयु के कार्य व्यवहारो मे रहा है, तो फिर मृत्यु के पश्चात उस जीव को ऐसा वातावरण मिलेगा जिस मे तामस गुण प्रधान हो, और हो भी उसी स्तर तथा प्रकार का। वर्तमान जीव-विज्ञान बाइयोलोजो के अनुसार हम कह सकते हैं कि यह आवागमन की सम्भावना Embryo सूक्ष्म शरीर या प्रमाणु तत्वो द्वारा क्रियात्मक रूप मे अस्तित्व मे आती है। आवागमन के सम्बन्ध मे हमे यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि आत्मा से सूक्ष्म शरीर कभी भी, मृत्यु के समय भी, अलग नही होता और इसी सूक्ष्म शरीर से ही आवागमन होता है। यह शरीर आत्मा का साथ तभी छोडता है जब मनुष्य नाम के सहारे कर्मो का मल धो देता है और विशुद्ध आत्म-परमात्मा अपनत्व मे पहुच जाता है। यह लिंग शरीर यद्यपि भौतिक शरीर की भाँति स्थूल तो नही होता परन्तु फिर भी वह शारीरिक सगठन की समस्त शक्तियाँ रखता है। उन शक्तियो के विकास से पूरा शरीर बन जाने की सम्भावना होती है और यह विशेष प्रकार के वातावरण एव योनो आदि मे ही दृष्टिमान का रूप धारण करती है। स्थूल शरीर के प्रमुख अगो की जड इस मे होती है और साथ ही पिछले जीवन के कर्मो का फल विशेष सस्कारो के रूप मे नही अपितु एक साधारण General रूप मे विद्यमान होता है। ये समस्त नई योनो मे पनपते एव विकसित होते हैं। प्रोफेसर वार्ड ने इस जीवात्मा के योनियो मे फिरने या घूमने की अन्य भी कुछेक विधियाँ बताई हैं। परन्तु वे सब कल्पनायें हैं और कल्पनायें ही रहेगी जब तक कि मृत्यु को तथा मृत्यु के पश्चात की अवस्था को प्रत्यक्ष रूप मे प्रयोगो मे लाकर विचार नही कर सकते। उतनी देर भले ही किसी लिंग या सूक्ष्म शरीर का अथवा आध्यात्मिक

शरीर या बीज-मात्र शरीर की कल्पना करे अथवा ऐटम मालोकियूल की, रहेगे ये सब काल्पनिक ही।

भावी जन्म मे निश्चय को बुनियाद हमारे जीवन लक्ष्य का निर्माण (पूर्णता) है। प्रत्येक जीव ने इस पूर्णता के लक्ष्य का प्राप्त करना है। यदि कोई एक जन्म मे इस पूर्णता को प्राप्त न कर सके तो यह आवश्यक है कि उसे आदर्श प्राप्ति के लिए और अवसर मिले अथवा मृत्यु के पश्चात् वह जोव स्थित रहे ताकि आदर्श प्राप्ति मे रह गई कमी पूरी कर सके। इस उद्देश्य के लिए इस्लाम मे तो आलमे बरजख तथा इराफ का विचार बना हुआ है। यह स्थान पृथ्वी और आकाश के बीच मे है। किसो ने इस रहती कमी को पूरा करने की सम्भावना इसी ससार मे पुन जन्म लेने के रूप मे प्रस्तुत की। बुरे कर्मो के दण्ड स्वरूप बुरी परिस्थितियो मे तो निम्न श्रेणी तथा पशु आदि के रूप में जन्म मिलना बताया गया और उत्तम कर्मों का फल श्रेष्ठ कुल तथा उत्तम जाति मे जन्म समझा गया। सिक्ख धर्म मे भी इसी विचार को अपनाया गया है। भले ही इस विचार के विस्तार मे हिन्दु निश्चय के साथ कई भिन्नताये हो हैं। हम पहले ऊपर वर्णन कर ही आए हैं कि गुरु साहिब नरक स्वर्ग या यमराज अथवा इजराईल जबराईल तथा यमदूतो आदि को नही मानते।

आवागमन अथवा पुन जन्म लेना जीवात्मा के लिए कोई मुख्य कारण नही है। बल्कि यह बन्धनो के क्रम का जारी रहना है। इसलिए गुरसिक्ख के लिए यही आदेश है कि वह इस आवागमन के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करे। भविष्य का जन्म यद्यपि कितना ही उत्तम एव पदार्थ रूप मे सुखदायक क्यो न हो परन्तु फिर भी जीव के लिए वह एक कैद की कडी है, एक जाल का फदा है। वास्तविक लक्ष्य तो है अकाल पुरुष पिता के साथ जीवात्मा का मेल। यह जन्म उस मेल के मार्ग मे रुकावट होती है। उस परमात्मा से बिछडे रहने का कारण होता है। बिछडना तथा वियोग दुख रूप है और परमात्मा से मेल एव सयोग परम सुख है। गुरु साहिब जीवात्मा के परमात्मा के साथ प्रेम सम्बन्ध को अलकारक रूप मे पत्नी पति का प्रेम बताते हैं। जीवात्मा स्त्री है और परमात्मा स्वामी-भर्ता है। वैसे तो सभी सम्बन्धो को बताया है। इन गुणो का वर्णन पहले ही चुका है परन्तु यह

स्त्री-भर्ता का सम्बन्ध प्रिया तथा प्रीतम का सम्बन्ध गम्भीर मनोवेगो के प्यार का सम्बन्ध है। पति के वियोग मे पत्नी को विरह का कितना दुख होता है और मेल मे कितना सुख है। बस इसी प्रकार ही जीव-ब्रह्म का विरह (वियोग) जीव के लिए दुख और इनका मेल (सयोग) जीव के आनन्द का कारण है। इन्हे अलग करने वाला कौन है? वही अह। अह रोग है, नाम दवाई (उपचार) है। अह अलग करता है और नाम मिलाता है। ब्रह्म स्वरूप होना मनुष्य का लक्ष्य है। जीवन को नाम के आदर्श पर चलाना ताकि मृत्यु के पश्चात आत्मा सीधी अकाल पुरुष के चरणो मे जाये और उससे अभिन्न हो। यह परम धाम है। सचखण्ड है। इस परम-आनन्द की प्राप्ति के लिए मनुष्य के लिए उचित है कि अपने समस्त कार्य व्यवहार ईश्वर के आदेश मे रखे और सब कुछ परमात्मा को अर्पण करे तथा अन्तरमन से अह के भाव को छोड दे।

गउडी महला ५ पृष्ठ १७५

किनि बिधि कुसलु होत मेरे भाई॥
किउ पाईऐ हरि राम सहाई॥१॥रहाउ॥

..

एकु कुसलु मो कउ सतिगुरु बताइआ॥
हरि जो किछु करे सु हरि किआ भगता भाइआ॥
जन नानक हउमै मार समाइआ॥४॥
इनि विधि कुसलु होत मे भाई॥
इओ पाईऐ हरि राम सहाई॥१॥ रहउ दूजा॥

अकाल पुरुष के चरणो की प्रीति के बिना अन्य कोई मुक्ति आदि का आदर्श नही

अम्रिता प्रिय बचन तुहारे॥
राज न चाहउ मुकति न चाहउ
जु मनि प्रीति चरन कमलारे॥

(देव गधारी म० ५ पृष्ठ ५३४)

इस प्रीतम-प्रेम तथा ब्रह्म मे अभेदता की तुलना मे कोई अन्य मुक्ति कोई अर्थ नही रखती.

कोई बैकुठ नाही लवै लागे ॥
मुक्ति बपुडी भी गिआनी तिआगे ॥
एककारु सतिगुरु ते पाईऐ ॥
हउ बलि बलि गुर दरसाइणा ॥

(मारु म० ५ पृष्ठ १०७८)

यह सचखण्ड प्राप्ति, ब्रह्म मे अभेदता वह आदि अनादि वाली अस्फूर्त अवस्था है। इस अवस्था मे साधारण ज्ञान वाली कल्पनायें नही होती। कोई हर्ष विषाद नही, दुख सुख नही, आशा निराशा नही, अपना बेगाना नही, खुदी बखीली तकब्बरी नही, कोई स्मृति नही, याद नही, गीत नही, नाद नही। यह परम-ध्यान वाली अवस्था है। यह अपनत्व को खोकर प्राप्त होती है। अहं के अभाव के कारण परमब्रह्म मे लीन होने का नाम है। यह शून्य या अनस्तित्व नही है। यह 'सति' है ईश्वर मे जीवन और ईश्वर के साथ जीवन तथा ईश्वर सा बनने मे।

कुरान शरीफ मे भी लिखा है कि ईश्वर ने मनुष्य उत्पन्न किया और फिर वह ईश्वर के पास ही जाएगा। यह अभेदता का लक्ष्य है। जीव-ब्रह्म का एक हो जाना है, जिस प्रकार बूंद तथा सागर एक हो जाते हैं। जीव ब्रह्म की एकता तथा अभेदता समस्त छायावादी मानते हैं। चाहे पूर्व के हैं या पश्चिम के। आदर्श रूप तथा अद्वैतवादी होने के कारण सिक्ख भी अभेदता का निशाना ही सम्मुख रखते हैं, परन्तु जीवन कर्तव्य मे इस अभेदता को विनम्रता तथा निर्धनता के साथ दिखाया जाता है। जब किसी शरीर का अन्त होता है और दाह सस्कार हो जाता है तो अन्तिम प्रार्थना यही होती है और यह प्रार्थना सम्पूर्ण जनसमुदाय (सगत) करता है कि 'हे अकाल पुरुष! तेरी इच्छानुसार, तेरे आदेश के अनुसार सिंह शरीर त्याग कर गया है। उसकी आत्मा को अपने चरणो मे आश्रय देना अर्थात स्थान देना तथा सम्बन्धियो को इस आदेश को मानने का बल देना।" यह प्रार्थना जब भी कोई बिछुडो रूह (आत्मा) को स्मरण करता है की जाती है। इस प्रकार क्रियात्मक रूप (प्रयोग) मे अभेदता के लक्ष्य को विनम्रता से प्रस्तुत किया जाता है। वेदान्तियो के अहकार से नही, भक्ति भावना से। यही मुक्ति है। इसके अतिरिक्त,

परमात्मा के चरणो के निवास के बिना अन्य किसी मुक्ति या आदर्श को सिक्ख नही मानते। गुरु रामदास जी ने तप्पे से कहा, "मेरे सिक्खो की अनन्य भक्ति का फल मुक्ति नही है। वे ऐसी इष्ट-उपासना या पूजा से दूर भागते हैं जो लोक यश के लिए की जाती है। वे तो अकाल पुरुष के प्रेम-प्यार के भूखे हैं। यही उनके लिए मुक्ति और यही स्वर्ग है।

खालसा ट्रैक्ट सोसायटी की ओर से प्रकाशित गुरु ग्रंथ कोश मे "मुक्ति" सम्बन्धी इस प्रकार लिखा है (पृष्ठ ११३२)

शास्त्रकारो ने इस शरीर को दुख रूप माना है, इसलिए इससे छुटकारे का नाम मुक्ति रखा है, परन्तु प्रत्येक के आदर्श मे थोडा थोडा अन्तर है। १—मीमासिक स्वर्गों मे पहुच जाने को मुक्ति मानते हैं। २—३ न्याय एव वैशेषिक मत को मानने वाले अपने गिने दुखो से निवृत्त हो जाने को मुक्ति बताते हैं। ४—साख्य दर्शन को मानने वाले प्रकृति से पुरुष का अपने आप को अलग समझना मुक्ति बताते हैं। ५—योग मत मे सजीव निर्जीव समाधि द्वारा पुरुष का अपने आपको दृष्टिगत से भिन्न कर लेना मुक्ति है। ६—वेदान्त का अपने आप को ब्रह्म से अभिन्न जान लेना (ज्ञान-द्वारा) मुक्ति है। ७—चार्वाक दर्शन के अनुयायी जो आत्मा को मानते ही नही, शरीर के अन्त को ही मुक्ति मानते हैं। ८—बौद्ध अपनी मुक्ति को निर्वाण बताते हैं, जो समस्त इच्छाओ के त्याग से आठ गुणो के धारण करने से प्राप्त होती है, एक पक्ष मे निर्वाण समाप्ति का नाम है, एक मे साख्य के समीप हो जाता है। जैन मत मे लोको मे गमन करना मुक्ति है।

इन तथा इस प्रकार की मुक्तियो मे यह सम्भावना रखी गई है कि यह शरीर दुख रूप है, इसके दुखो को देख कर दुखो से निवृति प्राप्त करने का यत्न हुआ है। अपने अपने दृष्टिकोण से सब ने इन दुखो से निवृत्ति को मुक्ति माना है। साख्य ने तो यहाँ तक कहा है कि मुक्ति को सुख रूप कहना अपने आपको प्रश्न करना है। दुख की निवृत्ति ही मुक्ति है, मानो किसी विवशता के कारण या आकस्मात यह रचना हो गई है, इसलिए इससे छुटकारा प्राप्त करो और छुटकारे के लिए यही मार्ग मिला कि इस शरीर तथा इन्द्रीयजन्य ज्ञान को

अलग किया जाये तथा जीवन के निर्बल पुरुष को अलग।

यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि पश्चिमी लोगों की मुक्ति-स्वर्ग की प्राप्ति है। एक दिन जिसे वे क्यामत (प्रलय) कहते हैं आयेगा, उस दिन मुर्दे (मृतक शरीर) कबरों में से फिर जीवित हो जायेंगे और फिर सदैव जीवित रहेंगे, बुरे नरकों में और अच्छे स्वर्गों में। मुसलमानों ने कर्म प्रधान के साथ हजरत मुहम्मद की सिफारश को इसका आधार अथवा कारण माना है। ईसाइयों ने हजरत ईसा पर उसके फिर जीवित होने पर ईमान लाने को आधार माना है। परन्तु मुसलमान सूफियों तथा ईसाई मिस्टकों (फकीरों) की मुक्ति कुछ कुछ वैष्णवों और कुछ कुछ वेदांत के साथ मेल खाती है। पश्चिम दर्शन विद्या को मानने वाले, पलातूस, कैंट, शापनहयूर आदि वेदांत वाले स्वरूप के ही समीप आते हैं। परन्तु त्याग और उदासीनता का ही रूप बनता है। इस प्रकार की मुक्तियों के विचार पर प्रतीत होता है कि सद्गुरुओं ने लिखा है "मुकति बपुडी भी गिआनी तिआगै"। इस प्रकार की मुक्ति पर एक अन्य गुरुवाक है

राजु न चाहउ मुकति न चाहउ मनि प्रीति चरन कमलारे॥

इस पंक्ति में से गुरु जी का मुक्ति का आदर्श मिलता है, वह यह है कि वाहिगुरु से प्रेम हो जाने को वे मुक्ति बताते हैं। यथा सो जनु मुकतु जिसु एकु लिव लागी सदा रहै हरि नाले॥ जिस की प्रीति एक वाहिगुरु से लग गई, जो सदैव उसके साथ रहता है, अन्तर आत्मा वही मुक्त है।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब ने वाहिगुरु को कर्ता तथा कादर बताया है। सृष्टि को उसकी क्रिया बताया है। जीव उसी के और उसी से रचित बताए हैं, मनुष्य उससे होने के कारण उसका है, अर्थात उसी का स्वरूप है, कहु कबीर इहु राम की अंस'। उसका अंश उसके साथ रहने के कारण शुद्ध रहता है, उससे विछड़ कर दृष्टिगत में आकर्षण होता है, फिर दुख की प्राप्ति होती है, इसलिए जिसका यह अंश है उससे विछड़ना दुखों का कारण है, इसलिए विछड़ेपन (वियोग) को दूर करना सद्गति एवं कल्याण है इसको दूरी का रूप है अन्तरात्मा का सदैव स्वामी के साथ रहना। (दृष्टांत-जिस प्रकार मां से विछड़ कर मेले में गुम हो जाने पर बालक मेले के रंग तमाशों (मनोरंजक

पदार्थों) से भी दुखी है, परन्तु मा की अगुली पकडे चलता हुआ मेले की धूलि और मिट्टी, भीड से भी दुखित नही होता।) इस मुक्ति का साधन है प्रेम। प्रेम का साधन है वाहिगुरु के गुणो का स्मरण, वाहिगुरु के स्वरूप का चिन्तन, इससे प्रीति और फिर एक रस निरन्तर सदा मेल। इस शरीर मे जो इस अवस्था मे है वह भी मुक्त है, उसे जीवन मुक्त भी कहा है। कई एक लक्षण दिए हैं, जो ऊपर बताये गए हैं, कुछेक अन्य ये हैं -

"प्रभ की आगिआ आतम हितावै ॥
जीवन मुकति सोउ कहावै ॥
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु ॥
सदा अनन्दु तह नहीं बिओगु ॥
तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी ॥
तैसा अम्रितु तैसो बिखु खाटी ॥
तैसा मानु तैसा अभिमानु ॥
तैसा रकु तैसा राजनु ॥
जो बरताए साई जुगति ॥
नानक उहु पुरखु कहीऐ जीवन मुक्त" ॥

जीवन मुक्ति वाले जीव की आन्तरिक निराशा ध्वंसात्मक कलाओ मे नही होती। जीवन मुक्त रचनाओ की सुन्दरता के विस्मादी चाव से उठना है और एक उच्च, शीतल, स्थिर, आनन्दमय अवस्था में जीवन व्यतीत करता है।

जो शरीर त्याग कर वाहिगुरु मे सच्चा मेल होता है वह अकथनीय है, परन्तु इसके कई एक रूपक भी गुरुबाणी मे सुगमता के लिए दिए हैं।

ऊपर की गई व्याख्या से भी और साधारण मानव विचारो से भी यह निर्णय निकलता है कि जिस प्रकार मनुष्यो की मानसिक अवस्था के साथ साथ उनका परमात्मा और उसके स्वरूप सम्बन्धी निश्चय वदलता अथवा उन्नति करता रहता है, उसी प्रकार इन मानसिक अवस्थाओ के साथ साथ और परमात्मा से सम्बन्धित

निश्चय के अनुसार ही मनुष्यो का मुक्ति सम्बन्धी विचार तथा स्वरूप बदलता या उन्नति करता रहता है। शराबी कहता है कि स्वर्ग मे यदि शराब नही मिलेगी तो मैं ऐसे स्वर्ग मे जाना नही चाहता। एक प्रेमी प्रियतम के भाव मे कहता है कि मै मर कर भी तुम्हारे साथ जुडा रहना चाहता हू। मुझे ईश्वर के मेल की कोई आवश्यकता नही तुम्हारे मेल की आवश्यकता है। रानी सुन्दरा गोरखनाथ से वर मागती है। गोरख बेचारा सहम कर उसे योग या ईश्वर के मेल का आर्शीर्वाद देना चहता है। परन्तु सुन्दरा पूरण पर विभोर हुई होती है

'नाथ जी! योग की मैं भूखी नही, भोग की भी मुझे आवश्यकता नही, दुनिया खूब देखी,

मैं तो केवल अपने धैर्य का आश्रय ढूढती हू, मैं तो एक बासुरी की ध्वनि की इच्छुक हू, जिससे मेरा स्वर मिले और मैं रूह का गीत गाऊ!।

मैं आपका, योग वाला, धर्म तथा कर्म एव ईश्वर नही चाहती हू, वह ईश्वर पुरुषो का है, हम स्त्रियो को उसकी आवश्यकता नही,

मैं तो इस अनन्त भयानक एकात (अकेलेपन) मे, अपने जैसा एक साथी चाहती हू,

जो मेरे साथ साथ बातें करें, जो मेरे साथ हसे, जिसके साथ मैं हसू खेल खिलाए, मैं तो अपने दिल (हृदय) रूपी सिंहासन का सम्राट (बादशह) ढूण्डती हू।

मैं तो वह ईश्वर ढूण्डती हू जिसे देखू, सूघू, हाथ लगाऊ, पियू, खाऊ, जीवित रहू,

•

"मृत्यु के समय, मृत्यु आ जाए, जिसकी भुजाओ की पहुच मुझे सम्भालती रहे।"

इसलिए ईश्वर तथा मुक्ति मानसिक अवस्था से सम्बन्धित है। अत अद्वैतमत की अभेदता, जो कि मुक्ति का सबसे ऊचा स्वरूप है, के विरुद्ध कई लेखक आपत्ति करते हैं। वे कहते हैं कि वह मुक्ति जिसने हमारे वैयक्तिक जीवन की बूद को सागर मे डुबो

कर मिटा देना है, उस मुक्ति का क्या लाभ। ऐसा आदर्श धार्मिक जीवन के लिए प्रेरणा नही देता और वैयक्तिक जीवन को पूर्णता तक नही पहुचाता। परन्तु यह अभेद मुक्ति तथा आवागमन का मत दोनो प्रकार के लोगो का घर पूरा करता है। जो व्यक्तिगत जीवन की लालसा मे फसे हुए है और फसे रहना चाहते हैं, उनके लिए गुरु साहिब ने शुभ कर्मो के साथ बार बार जन्म बताया है। अभेदता तो उनके लिए है जो व्यक्ति, अह के सहारे स्थित, जीवन रूपी कैद से इस ससार मे भी स्वतन्त्र हैं—जीवन मुक्त हैं और आगे जाकर भी वे ब्रह्म से अभिन्न होगे। उन्होने अपने व्यक्तित्व को अपने आप तक सीमित नही रखा, बल्कि उन्होने अपने व्यक्तित्व मे समस्त ब्रह्माण्ड सम्मिलित (समाविष्ट) कर लिया होता है। दृष्ट अदृष्ट—प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष को वे अपना आप ही समझते हैं। है तो अभेदता भी व्यक्तिगत जीवन का जारी रहना परन्तु यह सत–चित् आनन्द स्वरूप मे है। आवागमन भी व्यक्तिगत जीवन का बना रहना है, परन्तु यह सीमित अह के आश्रय-जीवन का जारी रहना है।

उदाहरणार्थ एक उस गुमनाम (गुप्त सिपाही का बलिदान लें जिसने देश और जाति के हेतु अपने आपको बलिदान कर दिया। जहा तक उसकी जात (जाति) का सम्बन्ध है, वह उसके जीवन के साथ समाप्त हो गई और उसकी शहीदी (बलिदान) ने उसे कोई लाभ नही पहुचाया। परन्तु वह मरा क्यो ? उसने अपने व्यक्तिगत जीवन को सम्पूर्ण जाति के साथ, सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ Identify आत्मसात कर लिया था। उसका देश और उसकी जाति ही उसका व्यक्तित्व बन गया था। उसके बलिदान ने इस महान व्यक्तित्व को उन्नति के शिखर पर रखा, आज़ादी के झण्डे (स्वतन्त्रता की पताका) को झूलाता हुआ रखा। इस राष्ट्रीय जीवन मे गुमनाम बलिदानी का जीवन भी विद्यमान है और वह मरा नही जीवित है। कुछ इसी प्रकार ही ब्रह्म-जीव अभेदता है। क्या इस प्रकार की मुक्ति का विचार मनुष्य को धार्मिक जीवन के लिए उत्साह नही दे सकता ? उसमे सकुचित निजत्व को त्याग कर समस्त ससार को अपना आप समझने का भाव उत्पन्न नही होता और यह भाव हमारे जीवन मे महान आदर्श, महान लक्ष्य, उच्च आधार तथा उच्च विचार एव

पवित्र भावनाये बनाने का कारण नही बनता ? इतिहास साक्षी है कि ऐसा होता रहा है और बडी सफलता से होता रहा है। इसलिए जीव-ब्रह्म अभेदता अथवा अकाल पुरुष के प्रेम प्यार मे उसके चरणो का निवास एक ऐसा आदर्श है जो मनुष्य को दीन दुनिया मे महान एव पवित्र जोवन के लिए प्रेरणा भी देता है और अपने मार्ग पर चलते रहने के लिए दृढता भी देता है।

चौथा भाग

गुरमति दर्शन

गुरमा ार्ग

—अथवा—

साधन ाश

पन्द्रहवां अध्याय

प्राची मुक्ति-प्राप्ति के मार्गों सम्बन्धी गुरु साहिब की राय !

१

सिद्धान्त एव मार्ग

यदि कोई गोता लगाने वाला चाहे कि गुरु ग्रथ मे से दार्शनिक मुगिया (मोतियो) के टोकरे नीचे से भर कर लाये तो उसे निराशा ही होगी। यद्यपि परम सत्यवादक विचारो के भिखारी के पात्र मे गुरबाणी मे से भीख तो अवश्य पडती है परन्तु इस पात्र को जिस प्रकार काट एव कपिल मुनि भरते हैं उस प्रकार का शुष्क दर्शन गुरबाणी मे से कम ही मिलता है। गुरबाणी के देश मे मनोभाव, प्रेम भावना तथा सवेदनशील रस से रिक्त निस्सार दार्शनिक उक्तियो युक्तियो को ढूण्ढने वाला अपने आपको बहुत परदेशी समझेगा। इन 'क्या' और 'कैसे' की समस्याओ के सम्बन्ध मे तो गुरु जी ने इस प्रकार कह कर बात समाप्त कर दी है —

जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ॥

(जपुजी)

बात भी ठीक है। जो धर्म सृष्टि रचना तथा परम सत्यवादी अन्धविश्वासो को अपना लक्ष्य बनाता है, वह मार्ग से कुमार्ग होकर अन्य घरो मे अनुचित हस्तक्षेप करता है। धर्म का मुख्य मन्तव्य जीवन जाच तथा परम सुख प्राप्ति है और शेष विचार इस से सम्बन्धित होकर ही आते हैं। धार्मिक क्षेत्र मे उन्नति कुछ अपनी सीमाओ को जानने और बनाये रखने मे होती है और कुछ

बुद्धिमतापूर्ण सकोच के कारण भी। वह धर्म स्वय भी खतरे मे पड जाता है तथा दूसरो के लिए भी खतरनाक सिद्ध होता है जो कि बौद्धिक क्षेत्र के वैज्ञानिक विषयो मे उलझता है या उनको उपलब्धियो से उलटे चल कर उन्हे चेतावनी देता है। धर्म वैज्ञानिक उपलब्धियो से लाभ उठाता हुआ इनमे ऊचा उठता है और ऊचा दृष्टिकोण रखता है। बुद्धि तो 'दृष्टिगत' की खोज मे हो पख साड लेती है और वास्तविक जीवन जाच तथा बुनियादी मानसिक एव आत्मिक गुणो को हमारे सम्मुख रखना धर्म का काम भी है और धर्म में ऐसा करने की शक्ति भी है। इन उच्च बुनियादी गुणो को जो कि समूचे अस्तित्व से सम्बन्धित हो पदार्थिक छान बीन करने तथा तोडने अलग करने वाली बुद्धि न हो मिल सकती है और न ही ढण्ढने की शक्ति रखती है। बुद्धि हमे विज्ञान की प्राप्ति कराती है और अनुभव धर्म। जीवन के लिए दोनो ही आवश्यक है परन्तु आगे पीछे आते है और उन्नत जीवन मे इकट्ठे चलते हैं। धार्मिक आदर्श के बिना जीवन अधूरा रहता है, अरुचिकर तथा नीरस रहता है, जड खोखली रहती है और आधार (स्थिरता) रस एव अडिगता जो आदर्श जीवन के स्तम्भ हैं नही आते। वैज्ञानिक अनुसन्धानो से अनभिज्ञ व्यक्ति भी कई ओर से हानि मे ही रहता है, और उतनी शीघ्रता से उन्नति नही कर सकता जितनी कि बुद्धि और अनुभव के परिणामो के सहयोग से हो सकती है।

सिक्ख धर्म के अनुसार धर्म का प्रारम्भिक कर्तव्य परमानन्द एव उन्नति के स्वभाव की परिपक्वता करना है और सत्य की खोज का भाव भी यही है। गुरबाणी मे प्रचारित जीवन जाच विस्मादी मनोभाव के आश्रय स्थित है। कर्ता ईश्वर की कुदरत (रचना) मे से सुन्दरता, कोमलता, सहृदयता से खोजी गई सुघडता प्राप्त करनी है। यह प्राप्त होती है सुमधुर ध्वनि द्वारा कीर्तन द्वारा, वाहु वाहु के मण्डल (अवस्था-क्षेत्र) मे आकर अपने अह से निर्मित अस्तित्व को महान अस्तित्व मे समाविष्ट करने से।

गुरमत कोमल मनोभाव के शेष जीवन के पहलुओ से सम्मिलित करके समस्त गुणो को एक समूचे सगठन में पिरोने का नाम है। इसी लिए न तो कोरा प्रेम, न खाली सेवा, न अहकारपूर्ण

दान, न तोते की भाति नाम का रटना, इस जीवन को सम्पूर्ण कथ सकता है। इसकी पूर्णता है समस्त "गुणो की साम्यता" मे। इसीलिए कीर्तन, कविता, कोमलता, कुरबानी (बलिदान) तथा कृपालता के पाच आन्तरिक ककार बाह्य पाच ककार के पालन से मिल कर ही सिक्ख का धार्मिक जीवन बनाते हैं। सिक्ख सुन्दरता एव सत्यता आदि को प्राचीन वैदिक रहन सहन की भाति मनुष्य (मानव) रूप देकर इन्हे देवता नही बनाता और इनकी पूजा आरम्भ नही करता। इन आन्तरिक गुणो का सम्मान केवल परस्पर सम्बन्धित होने के कारण और फिर सब के किसी बडे (महान) आदर्श–ब्रह्म–अकाल पुरुष से जुडे होने के कारण से ही है। उस आदर्श से टूट कर अथवा भिन्न होकर जीवन संगठन से अलग होकर धार्मिक दृष्टिकोणो से इन गुणो का आदर-सम्मान नही रहता।

सत्-चित्-आनन्द, सुन्दरता, नेकी (सज्जनता) तथा सच्चाई ये सब मिल कर ही शोभा प्राप्त करते हैं। ये मानव गुण हैं और इन गुणो की महानता धर्म के महान लक्ष्य—अकाल पुरुष से सम्बन्धित होने मे है। इसीलिए गुरबाणी मे परमात्मा को ही सर्व गुण तास (सर्व गुण सम्पन्न) लिखा है। निचली अवस्था से उन्नति करके कोई गुण धारण करने के अर्थ उस गुण तास के समीप होने के है। यह उन्नति जीव के क्रियात्मक रूप मे धार्मिक आदर्श पर जीवन व्यतीत करने से होती है, काल्पनिक रूप मे बुद्धि के आश्रय इन बातो के समझने अथवा जान लेने से नही होती। यह वह सौन्दर्य है जो देख कर भीतर से विस्माद (आनन्द-विभोर) मे आने से प्रतीत होता है। यह रस लेने मे, रस सम्बन्धी काल्पनिक ज्ञान प्राप्त करने मे नही। यह रोमाचित होने तथा तरगित (कम्पन की अवस्था) होने मे है ताकि हमारा समस्त स्वरूप अनुभव करे, केवल बुद्धि ही अपना घर पूरा न करे। जिस धर्म की नीव विस्माद तथा रस है वह एक जीवन, अनुभवो तथा क्रियात्मक मुशाअदे का नाम है। ऐसे धर्म की सच्चाइया अनुभव हो सकती हैं, कल्पना अथवा विचार के आधार पर नही जानी जा सकती। इसलिए सिक्ख धर्म मे उन साधनो पर जोर है जो इस अनुभूति को, मनोभाव को, कम्पन एव रोमाच को अन्तर्हित रस को उत्पन्न करें। इसलिए ऐसे धर्म का प्रधान पक्ष

क्रियात्मक जीवन की ओर है, दार्शनिक अनुसन्धानो की ओर नही। कारपेंटर ने कहा है कि गुरु नानक तथा उनके उत्तराधिकारियो का वास्तविक कार्य एव सफलता क्रियात्मक जीवन मे थी। ब्लूम फील्ड ने भी ऐसा ही कहा था कि सिक्ख धर्म का क्रातिकारी पक्ष उसका क्रियात्मक पक्ष है, जीवन जांच के नए आदर्श हैं। यह एक नया धर्म है और इसलिए सांसारिक लोगो को एक नए ढग से सुख एव शाति का विश्वास दिलाता है। इसलिए हमने एक या दो अध्यायो मे सिक्ख धम के माग पक्ष पर, साधनो पर अथवा क्रियात्मक आदर्शो पर विचार करना है।

किसी मत के काल्पनिक एव क्रियात्मक पहलुओ मे भेद बहुत पुराना है। एक पहलु तो सिद्धान्त— उस मत के परम सत्यवादी दार्शनिक अनुसन्धान है और दूसरा मार्ग अर्थात उन अनुसन्धानो या सैद्धातिक निश्चयो के अनुसार जीवन को ढालने का ज्ञान अथवा विधि बताना है। पहले पक्ष मे मुक्ति का स्वरूप वैज्ञानिक और नियमिक नियमो के अनुसार बताया जाता है। इसका सम्बन्ध अन्य कई मूल भूत सिद्धान्तो से बता कर परमेश्वर सम्बन्धी, जीव के शरीर एव आत्मा सम्बन्धी, ब्रह्माण्ड मे परमेश्वर के स्थान से सम्बन्धित इन सब बातो का विचार होता है। दूसरा पक्ष होता है मार्ग, पथ, पगडडी। ताकि उस पगडडी पर, मार्ग अथवा पथ पर चल कर प्रत्येक व्यक्ति निर्भीक एव निश्चिन्त होकर सिद्धान्त पक्ष मे बताई गई मुक्ति को प्राप्त कर सके। ये दो पक्ष प्रत्येक मत मे हैं। इस पुस्तक के तीसरे भाग मे सिद्धान्त पर विचार किया गया था और अब हमारे विचार का विषय मार्ग है। सिक्ख धम के दृष्टिकोण से यह माग पक्ष बहुत आवश्यक है, इसलिए बहुत विस्तार की अपेक्षा रखता है। परन्तु यहा हम सक्षिप्त विचार ही कर सकेंगे, क्योकि विस्तार पूवक विवेचन एक वडी पुस्तक का रूप धारण कर लेगा।

(२) प्राचीन मार्ग

आदर्श प्राप्ति के लिए तीन प्राचीन मार्ग प्रसिद्ध हैं कर्म मार्ग, भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग। मेरा विचार यह है कि गुरमत मार्ग यद्यपि इन तीनो मार्गो के कुछ कुछ अश रखता है, परन्तु फिर भी इन तीनो मे से किसी से भी मिलाया नही जा सकता। वह एक नया मार्ग है। इस नवीनता मे यद्यपि प्राचीनता है, और उक्त कर्म, भक्ति तथा ज्ञान के अश (तत्व) गुरमति मार्ग मे हैं परन्तु फिर भी इन तत्वो के मेल से और कुछ अपना बुनियादी भेद रख कर एक नया मार्ग बनाया है। इस मार्ग के सिद्धान्त पक्ष को यदि नाम कहे तो इसके मार्ग पक्ष को विस्माद कहेगे। नाम सिद्धान्त और विस्माद मार्ग ये दो नाम कोई काल्पनिक नाम नही हैं, ये गुरबाणी मे आए पदो पदार्थो के आधार पर हैं। नाम एव विस्माद एक ही सत्य के दो पहलु है। कोई भिन्न भिन्न सच्चाइया नही हैं। दोनो के सम्मिश्रण (सयोग) का नाम गुरमत है। गुरमत के बनाए मार्ग के बटोही (राही) का निश्चय नाम है और उसका स्वरूप विस्माद है। अब हमने सर्वप्रथम प्राचीन तीन मार्गो का विवेचन करना है और फिर देखना है कि चौथा मार्ग इनसे किस प्रकार भिन्न है ?

यह कहना तो उचित है कि कर्म भक्ति एव ज्ञान ये तीनो मार्ग भारत भूमि पर उत्पन्न हुए और प्रफुल्लित (विकसित) हुए, परन्तु सम्भवत यह कहना ठीक न हो कि ससार मे और कही भी कर्म भक्ति तथा ज्ञान के बीज नही हैं। इनका आरम्भ भारत की भौगोलिक स्थिति से सम्बन्धित है प्रत्युत मनुष्य मन की मनोवैज्ञानिक वास्तविकता से है। इन मार्गो का आरम्भ ढूण्डने मे मनोविज्ञान हमारी विशेष सहायता करेगा।

हम जानते हैं कि मनुष्य को जो पहला ज्ञान होता है, वह अपने स्थूल वातावरण का है। भले ही यह ज्ञान मनुष्य जीवन की बाल्यावस्था से देखें अथवा मनुष्य जाति के इतिहास मे पहले मनुष्यो के ज्ञान सम्बन्धी देखें। पहला ज्ञान अपने वातावरण का होता है। इस अवस्था मे अपने आप से सम्बन्धित भी जो ज्ञान होता है वह भी अपने स्थूल निजत्व का होता है। शरीर का, हाथ पाव का और शरीर के

अगो का। फिर शरीर की आवश्यकताओ का— भूख प्यास का। अपने से और दूसरे—वातावरण से, अर्थात् मनुष्य ससार के साथ जो सम्बन्ध स्थापित करता है वह भी कार्य व्यवहार—कार्य के रूप मे स्थापित करता है। ऐसी मानसिक अवस्था मे मनुष्य के लिए जीवन भी एक स्थूल जीवन है। खाना, पीना, सोना आदि कार्यो का नाम ही जीवन होता है। मनुष्य ईश्वर को ऐसी अवस्था मे एक महान शक्तिशाली हस्ती समझता है। उसका ईश्वर भी ईश्वर की भाँति होता है, यद्यपि होता बहुत महान एव शक्तिशाली है। मनुष्य की भाति ही वह खाता पीता है। ऐसे ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए भी कर्म करना चाहिए। कुछ खिलाना पिलाना, दान करना अथवा कुछ अन्य कर्म करना। मनुष्य के प्राचीन ईश्वर की पूजा, कर्म पूजा इस प्रकार थी। यह कर्म पूजा फिर शनै शनै उन्नति करती गई और कई अवस्थाओ से गुजरी। इसका विस्तारपूर्वक विवेचन फिर करेगे।

इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक विचार से हम देख सकते हैं कि इस कर्म पूजा से अगली प्रकार की पूजा भावपूर्ण थी, कोमल भावो द्वारा पूजा थी। इस अवस्था मे ईश्वर केवल हमारे कर्म ही नही जानता था, हमारी आन्तरिक अनुभूतियो भावनाओ को भी जानता है। स्थूल ईश्वर की स्थूल कर्मो द्वारा पूजा तो मोटी बुद्धि वाले लोगो की हुई न। अब इस अवस्था वालो का ईश्वर कोमल होता है और कोमल भाव को ही वह पूजा मागता है। इसलिए इस प्रकार का ईश्वर प्रेम प्यार का सम्बन्ध मागता है। ऐसा ईश्वर सहृदयता, कोमल भाव तथा विशुद्ध भावनाओ को अच्छा समझता है। इसलिए यह पूजा भक्ति भावना का आरम्भ था। परन्तु मनुष्यो के स्वभाव भिन्न भिन्न है। मानसिक विकास की तीसरी अवस्था भावो से ऊपर विचार है। विचार का सम्बन्ध बुद्धि के साथ है और यह शक्ति भी ईश्वर को समझने और जानने की लालसा करती है। इसलिए इस मण्डल (पक्ष) वाले कहते हैं कि ईश्वर को विचार द्वारा, ज्ञान द्वारा प्राप्त करना चाहिए। मनुष्य ज्ञानवान है, उसका ईश्वर स्थूल नही। वह विचार एव ज्ञान का विषय है। इस प्रकार बुद्धि देवी ने भी अपने अनुयायी (पक्षपाती) पा लिए और ईश्वर को प्राप्त करने का तीसरा

साधन आरम्भ हो गया। यह था ज्ञान मार्ग का आरम्भ।

यद्यपि मेरा विश्वास है कि कर्म भक्ति तथा ज्ञान के बीज मनुष्य मन मे स्वाभाविकत विद्यमान है और जहाँ वही भी कोई धर्म है वहा इनके प्रभाव विद्यमान हैं और आदर्श प्राप्ति के लिए इनका आश्रय लेते है। ईसाई मत और इस्लाम इन से खाली नही। परन्तु साथ ही यह भी बात है कि जिस प्रकार इन मानसिक शक्तियो के आश्रय भारतीय धर्मो विशेषतया हिन्तु धर्म मे तीन स्पष्ट एव प्रफुल्लित मार्ग बन गए हैं, उस प्रकार के मार्ग अन्य किसी धर्म या देश मे नही हैं। जहा हम यह कहते हैं कि मोक्ष प्राप्ति के ये तीन भिन्न-भिन्न साधन है वहा हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि इन तीनो मे कई सादृश्य बातें भी है और इन तीनो मे कोई एक शेष दो का विरोध अथवा बाइकाट नही करता, बल्कि उनके कई गुण बनाए रखता है। जिस प्रकार हमारी प्रत्येक मानसिक कल्पना-चेतना मे ज्ञान, भाव एव कर्म तीनो पक्ष ही होते हैं, परन्तु प्रधान एक पक्ष होता है और इस प्रधान अश से ही उस कल्पना या चेतना का नाम पडता है। किसी कल्पना को हम ज्ञान, किसी को कर्म और किसी को भाव कहते हैं, परन्तु साथ ही उसके दूसरे दो अश भी प्रस्तुत होते हैं। बिल्कुल इसी प्रकार ही इन तीनो मार्गो की बात है। ज्ञान मार्ग मे भक्ति एव कर्म के तत्व होगे परन्तु प्रधान होगा ज्ञान, भक्ति मार्ग मे कर्म तथा भी ज्ञान होगे परन्तु भाव एव भावपूर्ण पक्ष प्रधान होगा। इसी प्रकार कर्म मार्ग समझ ले। एक की प्रबलता शेष दो का अनस्तित्व नही है। परन्तु फिर भी उपासक के जीवन की पृष्ठभूमि तथा स्वभाव का बनना अधिक प्रधान अग से ही दृढ होता है। आओ अब इन तीनो मार्गो का एक एक करके क्रमश विस्तारपूर्वक विवेचन करें।

भारत मे कर्म मार्ग के दो स्वरूप देखने मे आते हैं। एक तो हमारी कर्म शक्ति, अथवा मानसिक कल्पनाओ का इच्छा-वासना पक्ष को विकसित करना और दूसरा है इसी का विपरीत अर्थात् इच्छा वासना को रोकना या अकर्मण्य रहना। एक का भाव तो यह है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए ऐसे कर्म करो जिन से परमात्मा प्रसन्न हो जाए और दूसरा है कि कोई कर्म ही न करो ताकि सुख दु ख या

प्रकार पुरुष के नाराज (रुष्ट) होने को सम्भावना ही न रहे। कर्म पक्ष अथवा प्रवृत्ति पक्ष के तीन स्थर है यज्ञ अथवा बलिदान (दान), धार्मिक सस्कार या कर्मकाण्ड सम्बन्धी रीति-रस्मे और तीसरी अवस्था है निश्चित कर्म की। चाहे धर्म का आरम्भ प्रकृति को पुरुष रूप समझने मे रखे या पूर्वजो की पूजा मे। इनका विवेचन पहले भागो म हो चुका है—मनुष्य ने पहले पहल ईश्वर को प्रसन्न करने के वही साधन सोचे जिनसे कि वह स्वय प्रसन्न होता था। परमात्मा को पदार्थ भेट करने, खुराक, वस्त्र, पीने के लिए उत्तम रस, सोम रस तथा मद्य (शराब) आदि भी इस काम के लिए प्रयुक्त करने आवश्यक समझे गए। जितनी अधिक कीमती (बहुमूल्य) एव प्रिय वस्तु बलिदान मे दी जायेगी उतना ही ईश्वर अधिक प्रसन्न होगा। इसी लिए पशुओ को बलि देने की प्रथा चल पडी और मनुष्यो की बलि भी देने लग गए। बलि देने का कारण ईश्वर के मन मे बदला लेने की प्रवृत्ति को देखना भी था या कहे ईश्वर क्रोध मे भी आता और प्रतिशोध लेता अथवा कठोर दण्ड देता अनुभव किया गया। यदि किसी का जीवन बचाना है तो उसके बदले किसी दूसरे का जीवन दे दो, बकरे का, मुर्गे का या घोडे या गऊ का। अधिक जानें बचाने के लिए किसी श्रेष्ठ मनुष्य की बलि दो। हुमायू की जान बचाने के लिए बाबर मरता बताया है और कश्मीरी पण्डितो ने अपने बचाव के लिए गुरु तेग बहादुर जी को धर्म हेतु बलिदान करने के लिए प्रार्थना की। यह उसी पुरातन बलि—यज्ञ—पूजा—विचार के खण्डहर थे और आज भी कई रूपो मे हैं।

पहले पहले तो जिस किसी का मन चाहे और जैसे किसी को उचित लगे अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के लिए बलि दे देता था। परन्तु समय पाकर रस्मे और रिवाज (सस्कार) एव विधिया प्रचलित हो गई। सस्कार विधि के साथ ही उन सस्कारो को करने वाले लोगो की आवश्यकता पड गई। विशेष प्रकार के सस्कार और उनके करने के लिए विशेष प्रकार के लोग। इस प्रकार से पुरोहितो एव पण्डितो की श्रेणी तथा जाति बन गई, जो फिर ब्राह्मण कहलाने लगे। इन समस्त विधियो तथा मन्त्र आदि ने लिखित रूप मे 'यजुर वेद' का रूप धारण किया। सब कुछ सस्कारमय हो गया। आन्तरिक भाव

तथा अर्थ लुप्त हो गए। अनेक पुरोहित इन रस्मो एव सस्कारो को करने के लिए एकत्रित हुआ करते और विशेष ढग से, विशेष विधि के अनुसार सब कुछ होना आवश्यक हो गया। यदि कही एक अक्षर भी अन्य प्रकार से कहा जाए, या एक अगुली भी अन्य ढग से हिल जाए, या बैठने उठने की विधि मे अन्तर आ जाए तो यज्ञ की सफलता मे विघ्न समझा जाता था। छोटी-छोटी बात के दिखावे पर बल दिया जाने लग पडा। वदिक धम का प्रभाव—इस प्रकार यज्ञ आदि के कर्मो मे हुआ। जैमनी अपने पूर्ण मीमासा मे लिखता है कि यह यज्ञ कर्म सबसे पुरातन धम है।

कम काण्ड का यह मत मीमासा के समय तो बहुत ही रस्मी हो गया और प्रधान निश्चय यही हो गया। मोक्ष प्राप्ति के लिए यह आवश्यक हो गया कि कुछेक कर्म किसी विशेष विधि से किए जाये भले ही वे कर्म मनुष्य दिखावे मात्र और बिना किसी सोच समझ के ही करे। कर्मो का भाव अथवा हृदय की शुद्धि इतनी आवश्यक नही थी जितनी कि कर्मो को किसी विशेष ढग से करना आदि। इस समय के कर्मो को कई भागो मे विभक्त किया गया था। श्रेष्ठ कर्म वे थे जो अपने इष्ट के लिए किए जाते थे और पुरुषार्थ कर्म वे थे जो जीव के अपने लाभ के लिए किए जाते थे। स्मृतियो मे बताये गए स्म्रत कम थे जैसा कि जाति और कार्य (कर्म) भेद के कर्म है जैसे चारा वरणो के कर्म आदि। पौराणिक कर्म भी थे जैसा कि व्रत रखना या तीर्थ यात्रा आदि करना। फिर ये समस्त कर्म नित्य और नमित्त भागो मे बाँटे जाते थे। नित्य कर्म थे जो प्रतिदिन किए जाते थे जैसे कि प्रात काल (प्रभात) के समय स्नान करना तथा प्रार्थना आदि करना और नमित्त कम वे थे जो समय समय पर विशेष उददेश्य के लिए किए जाते थे जैसे किसी ग्रह के कुप्रभाव को टालने के लिए और अच्छा भाग्य जगाने के लिए, पुत्र प्राप्ति के लिए या वर्षा लाने के लिए या कष्टो एव रोगो को दूर करने के लिए किए जाते थे। यदि कोई नित्य कर्म न करे तो पाप का भागी होता है। फिर कुछ कर्म सदैव किए जाने वाले हैं और कुछ निकृष्ट कर्म न किए जाने वाले है। निकृष्ट कम है जुआ खेलना, चोरी करना, या मद्य आदि का पान करना और नशे का प्रयोग करना। यह एक प्रकार से कम माग मे दूसरी

मजिल है। यह कहना तो सम्भवत उचित नही कि ये मजिलें ऐतिहासिक रूप मे आगे पीछे आई, परन्तु यह बात आवश्यक है कि कर्मो से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार भिन्न-भिन्न कालो एव रुचियो के अनुसार बनते रहे है। कर्मकाण्ड की उन्नति मे इससे आगामी मजिल वह अवस्था है जिसे हम इच्छा रहित कर्म कहते हैं। जब बलिदानो को दयाहीन समझा गया तो उनके विपरीत (विरुद्ध) एक मत खडा हुआ। यह मत था अहिंसा का अथवा कर्म करने से रुचियो को विमुख करने का या तपस्या आदि का। यह कर्मो से उलट अकर्मिक स्थिति थी। सासारिक जीवन के लिए इन दोनो के बीच की अवस्था ढूण्डी गई। एक तो प्रवृत्ति की सीमा थी और दूसरी निवृत्ति की। प्रयत्न किया गया कि दोनो के मेल से एक तीसरा मार्ग निकाला जाए। इसे प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्ग या इच्छा रहित कर्म मार्ग का नाम दिया गया। न प्रवृत्ति की भाति कर्मो मे आकर्षण हो, न निवृत्ति की भाति कर्मो का त्याग, बल्कि इच्छारहित (निष्काम) होकर कर्म करे। कर्म करो और फल की इच्छा न रखो। इस शताब्दी के आरम्भ में बाल गगाधर तिलक जी ने गीता की व्याख्या 'गीता रहस्य' के रूप मे इसी दृष्टिकोण से की है। गीता के श्लोको का अपने दृष्टिकोण से यह भाव निकाल लेने वाली बात है, नही तो गीता मे वैदिक यज्ञ या मीमांसिक कर्मकाण्ड, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है का प्रचार और उपदेश भी है। हाँ यह ठीक है गीता मे इच्छा से रहित कर्म पर बहुत बल दिया गया है और यह विचार उपनिषदो के समय भी था। और वही से गीता के रचयिता ने लिया प्रतीत होता है। यथार्थ निष्काम की स्थिति अथवा निवृतिक दशा यह है कि कर्म किया जाए परन्तु फल की इच्छा न की जाए। सदाचार का ठीक नियम यह नही कि कर्म किया ही न जाए बल्कि वास्तविक सदाचारी आदर्श यह है कि प्रत्येक कर्म की तह मे निष्काम भाव हो।

इस कर्म काण्डी मत एव प्रवृतिक जीवन उददेश्य का यह प्रभाव भी हुआ कि योगियो ने कर्मकाण्ड के त्याग का प्रचार करके ऊपर बताये गए निवृत्ति पक्ष पर जोर दिया। मनुष्य स्वरूप की इच्छा कामना तथा सकर्मिक रुचि को दबाने का परिणम त्यागी

एव तपस्वी जीवन का प्रचार अवश्य निकला। इस विचार के अनुसार कम जीव को बन्धनो मे डालता है और इच्छा वासना पाप का कारण बन जाती है। सर्कमिक रुचि मनुष्यो को पदार्थिक जालो मे फसाये रखती है। यदि ज्ञान एव कर्मेन्द्रियो को वश मे कर भीतर की ओर वापिस खीच लें तथा बाह्य पदार्थो मे फसने न दें तो अन्तरात्म होकर जीव बहुत उच्च अवस्था मे पहुचता है। हमारे भीतर शक्ति का समुद्र है। जब कर्म करते हैं और इच्छा करते है तो वह शक्ति खर्च होती है और आन्तरिक भण्डर घटता है। यदि जति होकर सयम द्वारा कर्म एव ज्ञानेन्द्रियो को अकर्मिक दशा मे रखा जाए तो योगी लोग अपने भीतर अनन्त शक्ति का भण्डार तथा बड़े आश्चर्य जनक कौतुक देखता है।

अपनत्व की तत्व वस्तु को मन को बाह्य पदार्थो मे लाकर प्राप्त नही कर सकता बल्कि मन की कल्पनाओ सकल्पो को रोक कर समाधि की अवस्था मे आकर और मानसिक धरातल (क्षेत्र) से नीचे गहराई मे जाकर प्राप्त कर सकता है, क्योकि उस तत्व वस्तु को हमारी रुचिया तथा कर्म छिपाये रखते हैं। वैसे योग कई प्रकार का होता है। साधारण सयम जिससे मन एव शरीर को किसी नियमिक आदर्श (आधार) पर चलाया जा सकता है योग के प्रकार बहुत कठिन स्थितियो तक पहुंच जाते हैं, जैसे कि मन तथा शरीर का हठ योग द्वारा शोध अथवा सुधार या शारीरिक एव मानसिक सारे ही कर्मों का त्याग करना आदि।

दूसरा मार्ग है हार्दिक प्रेम-प्यार वाला भक्ति मार्ग। कर्म-काण्डी सारहीन रस्मो तथा रीतियो से तग आकर एक ओर तो बुद्ध धर्म तथा जैनियो का कोमल सदाचारी धर्म प्रचलित हुआ और दूसरी ओर 'कर्म धर्म पाखण्ड' ने भक्ति भावना वाले मार्ग को जन्म दिया, जिसका प्रथम प्रकाश अथवा रूप गीता मे प्रकट हुआ। इन समस्त लहरो अथवा आन्दोलनो का परिणाम वैष्णव भक्ति निकला। सच राधा कृष्णन के कथनानुसार वैष्णव भक्ति के अस्तित्व मे आने से पूर्व मनुष्य जीवन रस्मो के जाल मे फस चुका था। मानव मन नियत (निश्चित) कर्मो धर्मों तथा जन्त्र मन्त्रो के फौलादी किले मे बन्दी हो चुका था। नीरस तथा दिखावे की रीति रस्मो ने सम्पूर्ण वायु मण्डल

मजिल है। यह कहना तो सम्भवत उचित नही कि ये मजिलें ऐतिहासिक रूप मे आगे पीछे आई, परन्तु यह बात आवश्यक है कि कर्मों मे सम्बन्धित भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार भिन्न-भिन्न कालो एव रुचियो के अनुसार बनते रहे हैं। कर्मकाण्ड की उन्नति मे इससे आगामी मजिल वह अवस्था है जिसे हम इच्छा रहित कर्म कहते हैं। जब बलिदानो को दयाहीन समझा गया तो उनके विपरीत (विरुद्ध) एक मत खडा हुआ। यह मत था अहिंसा का अथवा कर्म करने से रुचियो को विमुख करने का या तपस्या आदि का। यह कर्मों से उलट अकर्मिक स्थिति थी। सासारिक जीवन के लिए इन दोनो के बीच को अवस्था ढूण्डी गई। एक तो प्रवृत्ति की सीमा थी और दूसरी निवृत्ति की। प्रयत्न किया गया कि दोनो के मेल से एक तीसरा मार्ग निकाला जाए। इसे प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्ग या इच्छा रहित कर्म मार्ग का नाम दिया गया। न प्रवृत्ति की भाति कर्मों मे आकर्षण हो, न निवृत्ति की भाति कर्मों का त्याग, बल्कि इच्छारहित (निष्काम) होकर कर्म करे। कर्म करो और फल की इच्छा न रखो। इस शताब्दी के आरम्भ में बाल गगाधर तिलक जी ने गीता की व्याख्या 'गीता रहस्य' के रूप मे इसी दृष्टिकोण से की है। गीता के श्लोको का अपने दृष्टिकोण से यह भाव निकाल लेने वाली बात है, नही तो गीता मे वैदिक यज्ञ या मीमाँसिक कर्मकाण्ड, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है का प्रचार और उपदेश भी है। हाँ यह ठीक है गीता मे इच्छा से रहित कर्म पर बहुत बल दिया गया है और यह विचार उपनिषदो के समय भी था। और वही से गीता के रचयिता ने लिया प्रतीत होता है। यथार्थ निष्काम की स्थिति अथवा निवृतिक दशा यह है कि कर्म किया जाए परन्तु फल की इच्छा न की जाए। सदाचार का ठीक नियम यह नही कि कर्म किया ही न जाए बल्कि वास्तविक सदाचारी आदर्श यह है कि प्रत्येक कर्म की तह मे निष्काम भाव हो।

इस कर्म काण्डी मत एव प्रवृतिक जीवन उद्देश्य का यह प्रभाव भी हुआ कि योगियो ने कर्मकाण्ड के त्याग का प्रचार करके ऊपर बताये गए निवृत्ति पक्ष पर जोर दिया। मनुष्य स्वरूप की इच्छा वासना तथा सकर्मिक रुचि को दबाने का परिणम त्यागी

एव तपस्वी जीवन का प्रचार अवश्य निकला। इस विचार के अनुसार कम जीव को बन्धनो मे डालता है और इच्छा वासना पाप का कारण बन जाती है। सर्कामिक रुचि मनुष्यो को पदार्थिक जालो मे फसाये रखती है। यदि ज्ञान एव कर्मेन्द्रियो को वश मे कर भीतर को ओर वापिस खीच ले तथा बाह्य पदार्थो मे फसने न दें तो अन्तरात्म होकर जीव बहुत उच्च अवस्था मे पहुचता है। हमारे भीतर शक्ति का समुद्र है। जब कर्म करते है और इच्छा करते है तो वह शक्ति खर्च होती है और आन्तरिक भण्डर घटता है। यदि जति होकर सयम द्वारा कर्म एव ज्ञानेन्द्रियो को अर्कामिक दशा मे रखा जाए तो योगी लोग अपने भीतर अनन्त शक्ति का भण्डार तथा बड़े आश्चर्य जनक कौतुक देखता है।

अपनत्व की तत्व वस्तु को मन को बाह्य पदार्थों मे लाकर प्राप्त नही कर सकता बल्कि मन की कल्पनाओ सकल्पो को रोक कर समाधि की अवस्था मे आकर और मानसिक धरातल (क्षेत्र) से नीचे गहराई मे जाकर प्राप्त कर सकता है, क्योकि उस तत्व वस्तु को हमारी रुचिया तथा कर्म छिपाये रखते हैं। वैसे योग कई प्रकार का होता है। साधारण सयम जिससे मन एव शरीर को किसी नियमिक आदर्श (आधार) पर चलाया जा सकता है योग के प्रकार बहुत कठिन स्थितियो तक पहुच जाते हैं, जैसे कि मन तथा शरीर का हठ योग द्वारा शोध अथवा सुधार या शारीरिक एव मानसिक सारे ही कर्मो का त्याग करना आदि।

दूसरा मार्ग है हार्दिक प्रेम-प्यार वाला भक्ति मार्ग। कर्म-काण्डी सारहीन रस्मो तथा रीतियो से तग आकर एक ओर तो बुद्ध धर्म तथा जैनियो का कोमल सदाचारी धर्म प्रचलित हुआ और दूसरी ओर 'कर्म धर्म पाखण्ड' ने भक्ति भावना वाले मार्ग को जन्म दिया, जिसका प्रथम प्रकाश अथवा रूप गीता मे प्रकट हुआ। इन समस्त लहरो अथवा आन्दोलनो का परिणाम वैष्णव भक्ति निकला। सर राधा कृष्णन के कथनानुसार वैष्णव भक्ति के अस्तित्व मे आने से पूर्व मनुष्य जीवन रस्मो के जाल मे फस चुका था। मानव मन नियत (निश्चित) कर्मो धर्मो तथा जन्त्र मन्त्रो के फौलादो किले मे बन्दी हो चुका था। नीरस तथा दिखावे की रीति रस्मो ने सम्पूर्ण वायु मण्डल

को मृतप्राय तथा रिक्त (थोथा) कर दिया था। किसी मन्त्र के पढने के बिना या कोई संस्कार किए बिना न कोई कर्मकाण्डी पुरुष प्रात जाग कर उठ सकता था और न रात को सो सकता था, न नहा धो सकता था और न हाथ मुह धो सकता था, न कोई रोटी का टुकडा मुह मे डाल सकता था और न ही मन्त्र पाठ किए बिना वस्त्र आदि पहन सकता था। इन सासारिक बन्धनो से भक्ति भावना ने छुटकारा दिलाया और कर्म का स्थान भक्ति ने ले लिया। पीछे जाकर शकराचार्य के शुष्क ज्ञान का स्थान भी भक्ति ने ले लिया था। भक्ति आन्दोलन से सम्बन्धित यह आम विचार प्रचलित है कि यह शकराचार्य के बाद मे आरम्भ हुआ जिस आन्दोलन के बानी श्र रामानुज जी थे। परन्तु भक्ति के बीज तो आदि काल से ही मनुष्य स्वभाव मे विद्यमान थे और भक्ति मार्ग की लहर का आदि भी बहुत पुरातन समय मे पडता है। वैदिक मन्त्रो मे भी भक्ति भावना के भाव तथा प्रेम के भाव प्रस्तुत हैं। परन्तु 'भक्ति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग स्वतेश्वर उपनिषद मे मिलती है। उसके पश्चात् भागवद् गीता के प्रभाव स्वरूप इसने एक प्रसिद्ध मार्ग का रूप धारण कर लिया और भगवद् पुराण ने तो इसे बहुत प्रचलित किया। अद्वैत भक्ति एक प्रकार से आन्तरिक विरोध रखती है। यदि अद्वैत है तो भक्ति किसकी? इसलिए रामानुज ने द्वैतवाद मे भक्ति भावना का प्रचार किया। जीव-ईश्वर दो हो तो एक दूसरे की भक्ति कर सकता है। यदि पुजारी तथा इष्टदेव एक हैं, फिर भक्ति की क्या आवश्यकता? केवल इनके दो होने मे—एक निर्बल तथा निस्सहाय होने के कारण दूसरे सबल एव आश्रयो के आश्रय की भक्ति करता है। जीव दास है, सेवक है और उपासक है। विष्णु भगवान स्वामी है, इष्टदेव और पूज्य है, इसलिए उसकी भक्ति बनती है और हो सकती है। भक्ति भावना के भाव की अन्तिम सीमा दीवानगी जैसा प्रेम तथा मस्ती (मदहोशी) दक्षिणी साधुओ के सम्प्राय आलवर लोगो अथवा द्राविड सन्तो मे देखी जाती है।

आलवर भक्ति का आरम्भ सातवी शताब्दी (ईस्वी, मे हुआ बताया जाता है। आलवर भक्तो के अनुसार मस्त होकर पागल जैसा होना, मस्ताना हो जाना वास्तविक भक्ति है। इस विचार की

पुष्टि कई प्रसिद्ध लेखक करते हैं। सूफी तथा अन्य मुसलमान फकीरो मे इस मजजब अवस्था को बहुत महत्ता दी जाती है। सिक्खो मे भी नामधारियो मे कई मस्ताने सिक्ख देखने मे आते है। परन्तु यह मस्ताना पन सिक्खी के गृहस्थ जीवन के लक्ष्य से मेल नही खाता, इसलिए मस्ताना पन को गुरमत मे कोई महत्व नही दिया गया। एक मजज्ब सूफो, एक पागल आलवर साधु तथा मस्ताना नामधारो भला साँसारिको के लिए क्या आदश प्रस्तुत कर मकते हे। सिक्ख धम तो विवेक पर बल देता है। जीवन के प्रत्येक पहलु मे तथा समस्त ससार के कार्य व्यवहार मे विवेक से काम लिया जाना आवश्यक है। शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक जीवन सब विवेक के अधीन होने चाहिए।

भारत देश का दक्षिण प्रदेश भक्ति सम्प्रदायो को जन्म देने मे विशेष उपजाउ सिद्ध हुआ है। इनमे तिलक जी ज्ञानोबा या ज्ञानेश्वर जी का, श्री तुका राम जी और भक्त नामदेव के नामो का बडे आदर एव सत्कार से वर्णन करते हैं। इन दक्षिणो भक्तो के लगभग समकालीन हो भारत के कई भागो मे श्रेष्ठ माननीय भक्त थे। पूर्व मे बगाल की ओर भक्त चेतन जो, उत्तरी भाग मे रामानन्द जो कबीर तथा तुलसीदास जो बडे प्रसिद्ध भक्त हुए हैं। भारत के इतिहास के मध्यकाल मे भक्ति की लहर वडे जोरो पर थी। सर जार्ज ग्रियर्सन लिखते हैं कि भारत के सम्पूर्ण इतिहास मे भक्ति आन्दोलन धार्मिक क्षेत्र मे सबसे महान क्रांतिकारी आन्दोलन था। यह बुद्ध धर्म से भी बडी लहर थी। भक्ति लहर के प्रभाव अभी तक भारत के जीवन मे बहुत अच्छी तरह विद्यमान हैं। यह तो वष्णव भक्ति थी। परन्तु शैव मत वालो ने भी भक्ति की भावनाओ को अपना लिया नही तो इस प्रेम एव सेवा की लहर ने शैव मत का नाम मिटा देना था। शैव मत मे भक्ति मार्ग को लाने के लिए तेरहवी शताब्दी मे सिद्ध सिद्धान रचा गया। यह ठीक है कि इस शिव सिद्धात को रचना तो चिर काल पश्चात हुई परन्तु शैवो के जीवन मे भक्ति भावना बहुत आ चुकी होगी। इस सिद्धात की रचना से तीन सौ वर्ष पूर्व हुए तमिल कवि मनिक्का वाचकर की कविता मे भक्ति भावना विशेष रूप मे देखी जाती है। डाक्टर बारनेट लिखता है कि शिवजो

महाराज की भक्ति भावना मे जितना ऊचा एव पवित्र साहित्य रचा गया जिसमे कल्पना की चमक (उडान), भाव की तीव्रता तथा वर्णन का जोश इतना प्रबल था कि ससार के किसी अन्य मत मे देखने मे नही आया और इन बातो से परिपूर्ण साहित्य अन्य कही नही मिलता।

भक्ति भावना का आवश्यक निश्चय यह है कि भक्तो का ईश्वर, या उस ईश्वर का अवतार हर प्रकार से सम्पूर्ण हो। उस हस्ती की तुलना मे उपासक जीव की हस्ती बिल्कुल न होने जैसी और कीडी के बराबर भी नही होती। कुछ पहले स्तर की नम्रता जो कि अनस्तित्व तक पहुच जाती है, होती है। भगवान तभी प्रसन्न होता है जब उसका उपासक बिल्कुल निराश्रित, विनम्र और नाचीज़ होकर जिये। भगवान का प्रेम-प्यार प्रेमी के मन मे सेवा तथा बलिदान का चाव उत्पन्न करता है। प्यार सेवा तथा बलिदान की नीव होती है। श्रद्धा एव श्रद्धा भक्ति के पौधे की जड होती है। श्रद्धा के कारण भक्ति रूपी पौधा पनपता एव फलता फूलता है। वैसे मनुष्य जीवन मे भक्ति का प्रयोग कई प्रकार से देखा जाता है जैसे कि भगवान के सर्वशक्तिमान होने का ध्यान और उसकी सुघडता सुजनता तथा सर्वज्ञता मे विश्वास, पूरे प्रेम भाव से उसे याद करना—स्मरण करना उसके गुणगान करना तथा सगति मे उसके गुणो का विचार तथा उसकी प्रशसा और यश गान करना एव सब कार्य व्यवहार उसके हेतु करना। ये सब भक्ति के कई साधन तथा रूप है।

जब हम परम पद प्राप्ति के लिए ज्ञान रूपी साधन के विचार की ओर आते हैं तो हम एक ओर बुद्धि क्षेत्र मे और दूसरी ओर अनुभूति क्षेत्र मे भी प्रवेश करते है, यह ज्ञान मार्ग तीसरा प्राचीन मार्ग है। यद्यपि परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्ति के विचार वेदो एव उपनिषदो मे बहुत थे परन्तु इस मार्ग को सम्पूर्ण रूप मे एक धर्म के रूप मे प्रस्तुत करने वाले श्री शकराचार्य ही थे। "मेरा पुजारी वही है जिसे मेरा ज्ञान है" भाव का गीता का श्लोक इस मार्ग का रहस्य बताता है। इसी प्रकार उपनिषदो मे लिखा है 'मुक्ति की प्राप्ति परमात्मा के ज्ञान से होती है, उसका ध्यान किया जाए।

ब्रह्म क्षेत्र मे परानन्द की प्र प्ति होती है।" वेदात सूत्र के अनुसार ब्रह्म का तत्व स्वरूप ज्ञान ही है। शकराचार्य जी अपने मत को उक्तियो से ज्ञान पर जोर सिद्ध करते है। ससार मे यह जो पदार्थों की अनेकता हम अनुभव करते हैं, जैसे कि मैं, तू, वह और अन्य सब वस्तुए जो कि हमारी ज्ञानेन्द्रियो का विषय है, यह सच्ची एकता नही है। यह कृत्रिम है। वास्तव मे इन अनेक पदार्थों के भीतर एक विशुद्ध अमरत्व वस्तु का स्वरूप (प्रकाश) है जिसे परमब्रह्म कहते हैं। इस परमब्रह्म को माया के कारण मानव ज्ञानेन्द्रिया एक को अनेक करके देखती है। यह भ्राति है। दूसरी बात यह है कि आत्मा जो जीव के भीतर है—भी परम ब्रह्म का ही अश है। तीसरा आवश्यक सिद्धात यह है कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि जीव पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे— आत्मा तथा परमब्रह्म का ज्ञान—केवल मात्र पदार्थिक ज्ञान नही। एक को अनेक प्रतीत करवाने का कारण हमारी अविद्या है, हमारा अज्ञान है। यह हमारे मन का वह टेढापन है जिसके कारण हम वस्तुओ को उनके उचित सम्बन्ध मे नही देख सकते। मन की इस अज्ञानता एव अनभिज्ञता के कारण हम सासारिक पदार्थों को कार्य-कारण एव देशकाल के क्रम (प्रसग) मे ही देख सकते है, इनके बिना नही। इन वस्तुओ का ज्ञान— विज्ञान का दिया हुआ ज्ञान अपरिविद्या है, भाव यह कि निचले स्तर का माध्यम ज्ञान है उच्च ज्ञान नहीं। यह विशुद्ध भ्राति नही। विशुद्ध भ्राति तो किसी प्रतिभासक वस्तु की होती है, जिसे कि हम ठीक ढग से न जान सकें। यह अपराविद्या हमारा इन्द्रिय ज्ञान है, अनुभव है और बाह्य पदार्थों का ज्ञान है। यह व्यावहारिक ज्ञान है। परमार्थ ज्ञान सत्य वस्तु का ज्ञान होता है। ब्रह्म का ज्ञान होता है, वह पराविद्या है। अपराविद्या का हमने त्याग नही करना है। पहले अपराविद्या प्राप्त करती है फिर पराविद्या: पहले व्यावहारिक ज्ञान फिर पारमार्थिक ज्ञान। वास्तविक ज्ञान प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति वैरागी होकर सृष्टि से उदासीन हो जाए। इस उदासीनता द्वारा शनै शनै गृहस्थ जीवन का त्याग करना आवश्यक है। गृहस्थ त्याग के बिना शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती। जब वास्तविक ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो मनुष्य अपने आप ही

महाराज की भक्ति भावना मे जितना ऊंचा एव पवित्र साहित्य रचा गया जिसमे कल्पना की चमक (उडान), भाव की तीव्रता तथा वर्णन का जोश इतना प्रबल था कि ससार के किसी अन्य मत मे देखने मे नही आया और इन बातो से परिपूर्ण साहित्य अन्य कही नही मिलता ।

भक्ति भावना का आवश्यक निश्चय यह है कि भक्तो का ईश्वर, या उस ईश्वर का अवतार हर प्रकार से सम्पूर्ण हो। उस हस्ती की तुलना मे उपासक जीव की हस्ती बिल्कुल न होने जैसी और कीडी के बराबर भी नही होती। कुछ पहले स्तर की नम्रता जो कि अनस्तित्व तक पहुच जाती है, होती है। भगवान तभी प्रसन्न होता है जब उसका उपासक बिल्कुल निराश्रित, विनम्र और नाचीज होकर जिये। भगवान का प्रेम-प्यार प्रेमी के मन मे सेवा तथा बलिदान का चाव उत्पन्न करता है। प्यार सेवा तथा बलिदान की नीव होती है। श्रद्धा एव श्रद्धा भक्ति के पौधे की जड होती है। श्रद्धा के कारण भक्ति रूपी पौधा पनपता एव फलता फूलता है। वैसे मनुष्य जीवन मे भक्ति का प्रयोग कई प्रकार से देखा जाता है जैसे कि भगवान के सर्वशक्तिमान होने का ध्यान और उसकी सुघडता सुजनता तथा सर्वज्ञता मे विश्वास, पूरे प्रेम भाव से उसे याद करना—स्मरण करना उसके गुणगान करना तथा सगति मे उसके गुणो का विचार तथा उसकी प्रशसा और यश गान करना एव सब कार्य व्यवहार उसके हेतु करना। ये सब भक्ति के कई साधन तथा रूप हैं।

जब हम परम पद प्राप्ति के लिए ज्ञान रूपी साधन के विचार की ओर आते हैं तो हम एक ओर बुद्धि क्षेत्र मे और दूसरी ओर अनुभूति क्षेत्र मे भी प्रवेश करते हैं, यह ज्ञान मार्ग तीसरा प्राचीन मार्ग है। यद्यपि परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्ति के विचार वेदो एव उपनिषदो मे बहुत थे परन्तु इस मार्ग को सम्पूर्ण रूप मे एक धर्म के रूप मे प्रस्तुत करने वाले श्री शकराचार्य ही थे। "मेरा पुजारी वही है जिसे मेरा ज्ञान है" भाव का गीता का श्लोक इस मार्ग का रहस्य बताता है। इसी प्रकार उपनिषदो मे लिखा है 'मुक्ति की प्राप्ति परमात्मा के ज्ञान से होती है, उसका ध्यान किया जाए।

ब्रह्म-क्षेत्र मे परानन्द की प्र प्ति होती है।" वेदात सूत्र के अनुसार ब्रह्म का तत्व स्वरूप ज्ञान हो है। शकराचाय जी अपने मत को उक्तियो से ज्ञान पर जोर सिद्ध करते है। ससार मे यह जो पदार्थों की अनेकता हम अनुभव करते हैं, जैसे कि मैं, तू, वह और अन्य सब वस्तुए जो कि हमारी ज्ञानेन्द्रियो का विषय है, यह सच्ची एकता नही है। यह कृत्रिम है। वास्तव मे इन अनेक पदार्थो के भीतर एक विशुद्ध अमरत्व वस्तु का स्वरूप (प्रकाश) है जिसे परमब्रह्म कहते हैं। इस परमब्रह्म को माया के कारण मानव ज्ञानेन्द्रिया एक को अनेक करके देखती है। यह भ्राति है। दूसरी बात यह है कि आत्मा जो जीव के भीतर है—भी परम ब्रह्म का ही अश है। तीसरा आवश्यक सिद्धात यह है कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि जीव पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे— आत्मा तथा परमब्रह्म का ज्ञान—केवल मात्र पदार्थिक ज्ञान नही। एक को अनेक प्रतीत करवाने का कारण हमारी अविद्या है, हमारा अज्ञान है। यह हमारे मन का वह टेढापन है जिसके कारण हम वस्तुओ को उनके उचित सम्बन्ध मे नही देख सकते। मन की इस अज्ञानता एव अनभिज्ञता के कारण हम सासारिक पदार्थों को कार्य-कारण एव देशकाल के कम (प्रसग) मे ही देख सकते हैं, इनके बिना नही। इन वस्तुओ का ज्ञान— विज्ञान का दिया हुआ ज्ञान अपरिविद्या है, भाव यह कि निचले स्तर का माध्यम ज्ञान है उच्च ज्ञान नहीं। यह विशुद्ध भ्राति नही। विशुद्ध भ्राति तो किसी प्रतिभासक वस्तु को होती है, जिसे कि हम ठीक ढग से न जान सकें। यह अपराविद्या हमारा इन्द्रिय ज्ञान है, अनुभव है और बाह्य पदार्थों का ज्ञान है। यह व्यावहारिक ज्ञान है। परमार्थ ज्ञान सत्य वस्तु का ज्ञान होता है। ब्रह्म का ज्ञान होता है, वह पराविद्या है। अपराविद्या का हमने त्याग नही करना है। पहले अपराविद्या प्राप्त करती है फिर पराविद्या: पहले व्यावहारिक ज्ञान फिर पारमार्थिक ज्ञान। वास्तविक ज्ञान प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति वैरागी होकर सृष्टि से उदासीन हो जाए। इस उदासीनता द्वारा शनै शनै गृहस्थ जीवन का त्याग करना आवश्यक है। गृहस्थ त्याग के बिना शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती। जब वास्तविक ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो मनुष्य अपने आप ही

गृहस्थ त्याग जाता है और सन्यास धारण कर लेता है। कारण यह कि कर्मों तथा ज्ञान का विरोध है। व्यावहारिक जीवन मे कम करने आवश्यक है और कर्मों के जाल मे ज्ञान प्राप्ति नही हो सकती। जब ज्ञान प्राप्ति होती है तो ज्ञानी व्यावहारिक जीवन मे जकडा नही रह सकता, वह सन्यासी बन जाएगा।

इस सम्पूर्ण मार्ग का नाम ज्ञान मार्ग अथवा निवृत्ति मार्ग है। इसके प्रमुख प्रवर्तक श्री शकराचार्य जो अद्वतवेदात के बानी हुए है।

(३)

गुरमत मे उपरिलिखित तीन मार्गों का स्थान

तीन प्राचीन मार्गों के सक्षिप्त विवेचन के पश्चात् हमे सिक्ख धर्म मार्ग के सम्बन्ध मे कुछ कहना चाहिए। परन्तु इससे पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि यह देखा जाए कि ऊपर के तीनो मार्गों से सम्बन्धित गुरबाणी मे हमे कौन से विचार मिलते है। इस तलना के विचार मे एक प्रकार से सिक्ख धम मार्ग पर भी प्रकाश पडेगा।

गुरु साहिब कर्म भक्ति तथा ज्ञान मार्गों मे किसी का खुल कर विरोध नही करते। गुरु साहिब का अपना मार्ग इन तीनो मार्गों के कुछेक अश रखता है। कई पक्तिया तथा पद ऐसे भी देखने मे आते हैं जिनमे कई प्रकार के कर्मों, भक्ति या ज्ञान को प्रशसा भी की गई है। हमे यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि जब भी कोई मार्ग अस्तित्व मे आया तो ठीक समय तथा उस समय की आवश्यकतानुसार आया और समय की परिस्थितियो मे वह श्रेष्ठ मार्ग था। वास्तविक मार्ग मे कोई दोष नही होता। या परिस्थितिया बदल जाती है और उनके अनुसार मार्ग मे भी परिवर्तन अथवा Adjustment परिवर्तित परिस्थितियो के साथ एकस्वरता होनी चाहिए। नही तो परिस्थितियो के अनुसार मानव मस्तिष्क कोई नया मार्ग अपनाएगा और न बदलने

वाला मार्ग अपनी मौत स्वय ही मर जाएगा। दूसरी बात यह होती है कि प्रत्येक मार्ग मे कोई न कोई गुप्त कमजोरी होती है। वह उस समय प्रकट होती है जब मार्ग तथा उस पर चलने वाले वास्तविक लक्ष्य को भूल कर दिखावे मे फस जायें और साधना भाव को न समझें। ऐसा होने पर उस मार्ग के अनुयाइयो के जीवन मे भेस, दिखावा, धोखा फरेब तथा पाखण्ड आ जाता है जिसके कारण लोग मार्ग के अनुयाइयो की निन्दा करने के स्थान पर मार्ग की ही निन्दा करने लग पडते हैं। उस अवनति का कारण मार्ग की गुप्त दुर्बलता मे था। तीसरी बात यह है कि प्रत्येक मार्ग का प्रयोग साधारण अवस्था मे होता है। यदि उस मार्ग के भाव को खीच तान कर चरम सीमा Extreme की स्थिति मे ले जाये तो भी वह मार्ग मनुष्यो के लिए या साधारण मनुष्य के लिए मार्ग प्रदर्शन का काम नही दे सकता। ऐसी स्थिति मे भी वह मार्ग हास्यहास्पद बन जाता है। इन तीनो दुर्बलताओ (न्यूनताओ) के कारण परिवर्तित वायु-मण्डल मे adjust एकीकरण न कर सकना, किसी गुप्त (परोक्ष) दुर्बलता के दिखावे पर जोर पड जाना और वास्तविक लक्ष्य को भूल जाना तथा तीसरी बात यह कि मार्ग के नियमो अथवा आदर्शो (सिद्धान्तो) को खीच तान कर इतना extreme चरम सीमा तक ले जाना कि वह साधारण लोगो की पहुच से ही बाहर हो जाये, इन तीनो न्यूनताओ के कारण मार्ग ही दोषपूर्ण दिखने लग पडता है। जैसे क्लार्क लिखता है— सत्य एव दर्शन की खोज मे भारतीय प्रयत्न समय पा कर दो किनारो पर पहुचते रहे हैं। एक किनारा तो बुद्धिवाद और विशुद्ध बौद्धिक क्षेत्र की नीरस शेखिया और दूसरा किनारा प्रबल मनोभाव जिसका प्रभाव मस्तानापन तथा दीन दुनिया से गया-गुजरा-पन होता रहा है। इसलिए ऐसी स्थितियो मे उस जीवन को या मार्ग की प्रशसा करना अथवा अपनाया नही जा सकता। कुछ इसी प्रकार ही गुरु साहिब ने भक्ति, ज्ञान तथा कर्म के पाखण्ड पूर्ण प्रभावो की निंदा की है, और या उनकी परोक्ष दुर्बलताओ को प्रकट किया है। जैसे कि गुरु साहिब कार्मकाण्ड के मीमासिक भाव की पुष्टि नही करते कि मनुष्य कर्म-काण्ड करे भले ही दिल से न ही करे। गुरु साहिब आचरण की शुद्धता तथा मानसिक स्वच्छता पर बल देते है। दिखावे के लिए

किए गए यज्ञ, हवन तथा कर्मकाण्ड नैतिक उन्नति मे सहायक नही होते, मन का सुधार नही करते और जीवन को समग्र रूप मे ऐसे साचे मे नही ढालते जो कि परमपद की प्राप्ति के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। एक सम्राट महान ऐश्वर्य के बल से यज्ञ करवा सकता है, परन्तु इस प्रकार करवाने से उसका मलीन मन तथा पतित चरित्र नही सुधरता तो फिर इस मीमासिक रीति का क्या लाभ ? इस प्रकार एक अन्य व्यक्ति मीमासिक कर्म नित्य और किसी हेतु करता हुआ भी पाप कपट से नही बच पाता। 'दीपक तले अन्धेरा' की लोकोक्ति इसी प्रकार ही बनी है। ऐसे कर्मों को गुरु साहिब भेम, पाखण्ड एव धोखा कह कर स्मरण करते है। वास्तविक बात यह है कि मीमांसिक कर्मो का मनुष्य जीवन को सुधारने या ऊचा उठाने मे कोई आरम्भ से ही सम्बन्ध नही समझा गया था। इन कर्मो का सम्बन्ध किसी अपूर्व कर्मो के साथ था, जो अपने आप ही समय पाकर फल ले आते है और वह फल जीव को मिलता है। यह तो उपवन मे पौधे लगाने की भाति था। माली पौधे लगाता है, सेवा करता है, वे फल अवश्य देंगे, भले हो उस माली का जीवन कितना ही पापमय एव कुकर्मी क्यो न हो। जीवन का उपवन के पौधो के साथ कोई सम्बन्ध नही। कुछ इसी प्रकार ही मीमासिको ने नित्य तथा हेतुगत कर्मों का दर्शन प्रस्तुत किया था। ऐसे भाव वाले कर्म काण्डो की गुरु साहिब ने घोर निन्दा की है। अनेक शबदो मे से नमूने के लिए ये पक्तिया इस विचार को पुष्टि करती है

सूही महला ५ पृष्ठ ७४७

करम धरम पाखण्ड जो दीसहि तिन जमु जागाती लूटै ॥

.

कोटि तीरथ भजन इसनाना इमु कलि महि मैलु भरीजै ॥
बेद कतेब सिम्रिति सभि सासत इन पडिआ मुकति न होई ॥

४—३—५० ॥

राग गौडी महला ५ पृष्ठ २१४

हाम जग तीरथ कीए विचि हउमै वधे बिकार ॥ ४—१—१५८

होम जग जप तप सभि संजम तटि तीरथि नही पाइआ ।।

४—१—१४

भैरो म ५ (पृष्ठ ११३६)

एक अन्य दृष्टिकोण से भी गुरु साहिब कर्मकाण्ड वाले मार्ग को दोषपूर्ण समझते हैं। यह दोष बुनियादी एवं सैद्धांतिक है। कोई कर्म अहं के बिना नहीं हो सकता। यदि कर्म ही प्रधान हो जाए या कर्म ही हमारे धार्मिक जीवन का लक्ष्य बन जाए तो जीव अहं में ही बन्धा रहेगा और कर्मों के करने से अहंकार का उत्पन्न हो जाना तो स्वाभाविक है। इस अहंकार का तथा सर्वसम्मत ज्योति की अनुभूति का पारस्परिक विरोध है। "हउमै नावै नाल विरोध है' गुरु वाक् है। कर्म अहं की वृद्धि करते हैं और अहं से उत्पन्न होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि सिक्ख धर्म में कर्मों का कोई स्थान ही नहीं। गुरु सिक्ख तो जीने ही दसों नाखुनों की कमाई अथवा कर्म में हैं। 'धरम दी किरत विरत' इनका प्रमुख कर्त्तव्य है। गुरु साहिब का भाव यह है कि अहं की दिशा बदलो इसका मुख मोडो। इसीलिए अहं दीर्घ रोग होते हुए भी रोग की औषधि भी है। गुरसिक्ख कर्म करता है परन्तु अकाल पुरुष के आदेश (आज्ञा) में करता है और उसकी कृपा के सहारे करता है। अपने अहं को गुरु परमेश्वर को अर्पण किए रखना है। गुरबाणी में निष्काम सेवा तथा अहंकार रहित कर्मों की शिक्षा है। गुर सिक्ख कर्मों के फल की लालसा (इच्छा) नहीं रखना बल्कि अकाल पुरुष की भक्ति भी मुक्ति आदि के फल की इच्छा के बिना होनी चाहिए "काहू फल की इच्छा नही बाछै" गुरु आदेश है। परन्तु इच्छा रहित कर्म ही गुर-मार्ग का प्रधान अंग नहीं है। यह तो एक दृष्टिकोण है, मन की मौज तथा कर्मों से सम्बन्धित मानसिक रुचि का रूप है। सिक्ख के जीवन में अपने हाथ से काम करके कमाना आदि सब होता है परन्तु वह धर्म की कमाई होती है और गुरु के आश्रय तथा उसकी कृपा से होती है। इस प्रकार रुचि की से श्रद्धा एवं विश्वास बना रहता है और नैराश्य तथा दबाने वाली कला के भाव मन पर काबू नहीं पाते। योगियों के इस विचार का कि परमपद प्राप्ति के लिए कर्म करने त्याग दो गुरु साहिब ने कड़ा विरोध किया। योग

मार्ग वैसे ही साधारण मनुष्यो के लिए बहुत कठिन है। थोडे ही मनुष्य योग-साधनो को पूरी तरह निभा सकते हैं। हमारा धार्मिक मार्ग ऐसा होना चाहिए कि उसको परिधि बडो से बडी हो सके और प्रत्येक जाति के प्रत्येक मानसिक स्तर का मनुष्य उस मार्ग पर सफलता से चल सके। योग मार्ग की इस कठिनाई के अतिरिक्त योग साधनो के पाखण्ड रूप मे बदल जाने की सम्भावना के कारण भी गुरु साहिब इनके विरुद्ध गुरबाणी मे कई जगह लिखते है। योग साधना से योगी अपने बाह्य शरीर को कष्ट दे दे कर क्षीण कर लेता है, मृत प्राय कर देता है, परन्तु आन्तरिक मूजी शैतान, विशैला साप उसी प्रकार डक चलाता रहता है। वरमी को पीटते (मारते) रहना और साप को न मारना—यह कहाँ का योग हुआ

वरमी मारी साप न मूआ। प्रभाती म ५, (पृ० १३४७)

अपने आप को वश मे करने का भाव यह नही कि शरीर को कष्ट दिया जाए या कार्य व्यवहार को बन्द कर दिया जाए। निजि सुधार का भाव मन का, स्वभाव का शोध—परिष्कार—सुधार है। कर्मकाण्डी मार्ग के प्रौढ पक्ष के विरुद्ध गुरु साहिब ने बडे ज़ोर से कहा था। इस विचार को हमने ऊपर वर्णित किया है। यहाँ कर्म काण्डी मार्ग तथा त्याग भाव योग के विरुद्ध भी गुरु साहिब एक बुनियादी तथा विशेष आपत्ति करते हैं। योगी क्यो शरीर को कष्ट एव पीडा देता है, तपस्या करता है ? इसलिए कि वह शरीर को अशुद्ध एव पापो की नीव (कारण) समझता है इस शरीर को विशुद्ध करने के लिए तप साधना करनी अपेक्षित है। ज्येष्ठ आषाढ की धूप मे धूनी जला कर बैठना, पौष माघ की ठण्ड मे बर्फ जैसे शीतल पानी मे खडे होना, या भूखे प्यासे रहना आदि साधनो से अशुद्ध शरीर को शुद्ध करना चाहिए। गुरु साहिब बताते हैं कि शुद्धि-अशुद्धि या पवित्रता-अपवित्रता केवल सम्बन्ध भेद के कारण हैं। ये सब अवस्था भेद है। मन एव शरीर की अशुद्धता अथवा अपवित्रता स्वाभाविक नही है। यह कई स्थितियो एव अवस्था भेद के कारण है। यह कई बाह्य कारणो के कारण है। वे कारण तथा परिस्थितिया न हो तो शरीर एव मन अपने आप मे अशुद्ध नही है। शरीर एव मन तो ईश्वर तथा मनुष्यो के प्रेम तथा सेवा

मे पवित्र एव स्वच्छ हृदय से लगाओ तो सब कुछ शुद्ध है। उसे भूल जाओ तो निजि स्वार्थ की भूल भुलैय्यो मे पड कर व्यक्ति मार्ग से कुमार्ग पर चला जाता है और अह से बदी (बुराई) के क्षेत्र मे गोते खाता है।

वाईट हैड ने कहा है कि शाति एव स्थिरता अथवा आनन्द प्राप्ति किसी साधन अथवा प्रयत्नो से नही मिलती। यह तो उपहार है, सच्चे वाहिगुरु की कृपा से मिलती है। जो लोग यत्नो से, योग आदि द्वारा, कार्य एव कर्म का त्याग करके शान्ति प्राप्त करना चाहते है, वे एक खाली अथवा निस्सार कर्म रहित मानसिक अवस्था को ही आनन्द समझ लेते हैं, ऐसा आनन्द तो किसी नशीली वस्तु अथवा क्लोरोफार्म सुघा कर भी मिल जाना चाहिए, वे एक सुघड विस्मादी जीते जागते जीवन के स्थान पर शून्य अवस्था के मृतक तथा निष्प्राण जीवन को लक्ष्य बना लेते हैं। यह वास्तविक सुख तो जीवन से सूनापन, दरिद्रता (आलस्य) तथा मुर्दापन निकालने से आना चाहिए न कि ऐसी मानसिक दशा प्रयत्नो अथवा साधनो के लाने से। इसी लिए गुरु साहिब बताते हैं कि जब तक हम इस ससार मे जीवित रहते है हमारा कर्तव्य है कुछ सुनना कुछ कहना भाव कुछ कर्म करना। जगलो मे जाकर त्यागी जीवन अपनाने की आवश्यकता नही है। यहो पर ही हसते खेलते सोते जागते खाते पीते मुक्ति प्राप्त करो, किन्तु इस मार्ग को विधि (तरीका) सद्गुरु से ही प्राप्त होती है। खाना-पीना छोड कर पाखण्ड करने से लोग अपने आपको और लोगो को धोखा देते है। जितनी देर यह शरीर है इसने तो पानी एव अन्न से चलना है। इसलिए धर्म की कमाई मे से इसे शुद्ध एवं अनिवार्य खुराक सयमपूर्वक देनी चाहिए। व्रत रखने से ईश्वर नही मिलता। गुरु नानक देव जी ने एक बार अपने सिक्ख लालो एव भागो को इस प्रकार उपदेश दिया था —

अपने आप को अग्नि के सम्मुख तपाना, शीतल जलो मे अधिक समय तक खड़े रहना, भूखे रहना, व्रत (उपवास) रखने, सतत भुजा को ऊपर करके खडे रहना, अपने आप को उल्टा टाग कर तप करना, कितनी कितनी देर एक टाग पर खडे रहना, जगलो के कद मूल फल खाने, नदियो तथा तीर्थो के तटो पर रहना, भिक्षुओ की

भाँति ससार यात्रा करना, पूर्णमाशो के व्रत आदि रखना सब भूल एव अनजानापन है। (मकालिफ मे से)

श्री दशमेश जो ने सिक्खो के लिए जो योग बताया है वह यह है कि सत्य की सिंगी बनाओ, दिल (हृदय) की शुद्धता की माला बनाओ शरीर को भस्म लगाने के स्थान पर ध्यान द्वारा परमात्मा को याद करो, मन को वश मे रखने का तन्त्र बजाओ और नाम रूपी आधार की भिक्षा मागो

रामकली पातशाही १०

रे मन इह बिध जोग कमाओ॥
सिङी साच, अकपट कठला,
धिआन बिभूत चडाओ ॥१॥ रहाउ ॥
तातो राहु आतम वसि करकी,
इच्छा नाम आधार ॥
बाजे परम तार तन हरि को,
उपजै राग रसाह ॥१॥

सिक्ख धर्म मार्ग को साधारणतया लोग भक्ति मार्ग ही समझते है। यह किसी सीमा तक ठीक भी है, परन्तु यह कहते हुए हमे सिक्ख धर्म की विशेषता को आँखो से ओझल नही करना चाहिए। गुरमत एव भक्ति मत मे भी कई बाते समान हैं। पहली बात तो यह है कि भक्ति मार्ग और गुरमत मार्ग अथवा विस्माद मार्ग दोनो की पृष्ठभूमि उद्वेगपूर्ण तथा हार्दिक भावो को है और वाहिगुरु प्रियतम से प्यार का भाव प्रधान है। दोनो मार्गों की नीव मन के सम्वेदन पक्ष पर है। सिक्ख धर्म माग मे जिन स्तर एव मजिलो का मानसिक तथा आत्मिक उन्नति के सम्बध मे गुरवाणी मे वर्णन है, वे भक्ति मार्ग पर चलते हुए भी आते है। परन्तु फिर भी गुरु साहिब ने भक्ति मार्ग मे आवश्यक तथा महत्व पूर्ण परिवर्तन किया। इन साम्य एव भेद पूर्ण बातो का वर्णन पहले भागो मे गुरमत तथा वैष्णव मत की तुलना मे आ चुका है। उनके उदाहरण की यहाँ आवश्यकता नही, केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि गुरु साहिब भक्ति मार्ग के अद्वैतवाद, अवतारो के होने और उनकी मूर्तियो की पूजा के घोर विरुद्ध थे।

इसके बिना भक्ति का बहुत सा बल हमारे मन के भावपूर्ण पक्ष पर होता है। बुद्धि पर आधारित विचार को या तो दूर हो रखा जाता है और या उसे मनोवेग के अधीन रख कर निष्क्रिय करने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु मानव व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए विवेचन तथा कार्य कारण का अन्तर करने वाली बुद्धि को अलग रखना कोई अच्छी बात नही। व्यक्तित्व रूपी थाल तभी परिपूर्ण होगा यदि सत्य सन्तोष एव विचार सबको यथास्थान मिलेगे। यदि भाव तरग तथा उद्वेग प्रधान हो जाए तो मनुष्य के लिए इस भव सागर मे आन्धी और तूफान चल पडेगे तथा व्यक्तित्व के प्रकाशन के लिए बुद्धि रूपी प्रकाश स्तम्भ के न होने से मन कही चट्टान से टकरा कर रह जाएगा, या आवेश की स्थिति मे भूला भटका फिरेगा। इस प्रकार की निरकुश आवेशपूर्ण भक्ति से मानव वक्तित्व ऊपर उठने के स्थान पर नीचे गिरता है।

भक्ति मे एक आवश्यक स्थान स्मरण या किसी अवतार या परमात्मा के किसी अक्षर नाम का स्मरण-जाप करना है। यदि वाह वाह के क्षेत्र मे आकर इस जाप से भीतरी शुद्धि नही होती और हृदय कपट से भरा रहता है तो ऐसा तोते की भाति जाप करना पाखण्ड है। यह ईश्वर से धोखा है। यह भी भक्ति साधना का विवेक विचार के बिना दोष है। गुरु साहिब ने तो विवेक बुद्धि तथा भाव पक्ष का मेल करने का यत्न किया था। गुरु साहिब ने गुरमत मार्ग द्वारा मानव व्यक्तित्व को विस्माद का रूप देकर समस्त आवश्यक अगो की समूची उन्नति पर ज़ोर दिया था। ऐसे ढग से कि ज्ञान, भाव एव कर्म का सहयोग प्राप्त किया जा सके। प्रभु की लीला का स्वरूप नाम, रूप, शब्द आदि पदार्थिक गुणो मे अनुभव करके इस सर्वव्यापक ज्योति के समीप होने मे सवरना तथा स्वारना था ताकि दृढ प्रीति लग कर यह ज्योति विकास पक्का हो जाए।

वैष्णव भक्ति का हिन्दु मन पर एक अन्य बुरा प्रभाव पडा। भक्ति भावना प्रेम तथा सहृदयता को इतना खीचा गया कि अहिंसा परम धर्म बन गया। नम्रता एव दया भाव ने मानव स्वभाव मे से बहादुरी तथा पौरुष निकाल दिये। ऐसे मानव के लिए तलवार पाप का चिन्ह बन गई। उधर गुरु साहिब ने तलवार को स्वाभिमान

तथा ग्रान का चिन्ह वना कर ग्रपने सिक्खो का राज योगी एव शूरवीरता पुज सत सिपाही वनाया।

तीसरा मार्ग था ज्ञान का। योग की भाति यह भी प्राणी मात्र का मार्ग नही है। विशिष्ठ ज्ञानवान एव विचारवान पुरुपो का मार्ग है। प्रत्येक व्यक्ति शकराचार्य के पद्चिन्हो पर नही चल सकता। दूसरी ग्रोर जब यह पाखण्ड का रूप धारण करने लगे या कहो वास्तविक लक्ष्य को छोड कर ग्रद्वैतवादी नीरस (झूठी) दाहवे (ढौग) पर ग्रा जाए तो यह केवल मात्र एक बौद्धिक कल्पना मे समाप्त हो जाता है। इस का जीवन पर वहुत कम प्रभाव होता है। ऐसी दशा मे यह भी निश्चय वन जाता है कि वेदो, शास्त्रो एव स्मृतियो का पाठ तथा विचार ही ज्ञान प्राप्ति है। इस प्रकार से केवल पुस्तकीय पाठ ग्रौर फिर शनै शनै ग्रचेतन ग्रवस्था की तोते की भाति जाप करना ही ज्ञान का स्थान ले लेती है। इसी विचार ने यह विश्वास भी प्रचलित कर दिया कि वेदशास्त्रो का केवल मात्र पाठ करना कराना ही मुक्ति का साधन है। गुरु साहिव ऐसे नीरस ज्ञान ग्रौर मुखागर पाठ को ग्रधिक महत्व नही देते जिस ज्ञान एव पाठ मे ज्ञानी तथा पाठक का ध्यान न हो, मन प्रभु के चरणो मे न लगा हो। ब्रह्म प्राप्ति वाला ज्ञान पुस्तको के ग्रध्ययन से नही मिलता भले ही वे पुस्तकें वेद शास्त्र ग्रादि ही क्यो न हो। न इस प्रकार की पुस्तको को पढने से ग्रौर न ही इन पुस्तको मे दिए ज्ञान की बौद्धिक सूझ जीवन मे कोई परिवर्तन ला सकती है या ब्रह्म प्राप्ति की ग्रोर ले जा सकती है। गुरु वाक् है —

पडि पडि गडी लदीग्रहि पडि पडि भरीग्रहि साथ ॥
पडि पडि बेडी पाईग्रै पडि पडि गडीग्रहि खात ॥
पडीग्रहि जेते बरस बरस पडीग्रहि जेते मास ॥
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख ॥
(श्लोक ६ वार ग्रासा)

नीरस लिखना पढना तो मनुष्य को केवल जीर्ण शीर्ण ही करता है। सत्य वस्तु की प्राप्ति ससार के गोरख धन्धे को केवल बौद्धिक रूप मे समझने से नही होती। यह तो एक जीवन है, एक ग्रनुभव या मुशाहदा है जिसके

कारण आन्तरिक और बाह्य ज्योति को एकता अनुभव होती है। जीवात्मा और परमात्मा की एकस्वरता होती है इस एकस्वरता मनुष्य का समस्त व्यक्तित्व प्रभावित होता है। यह किसी विशेष मनोभाव के अधीन नहीं है। बुद्धि तो बल्कि हमे समझने और समझाने के लिए सर्वव्यापक एकता को तोल कर तथा अलग करके दिखाती है। भाव उसे जोडती है और जोड कर एकता का भाव उत्पन्न करती है। विस्माद इस अनुभूति का क्रियात्मक स्वाद है। हमारे जीवन मे इन सबको अपना अपना स्थान मिलना आवश्यक है, तभी हमारे अस्तित्व का प्रत्येक तत्व ब्रह्माण्ड के प्रत्येक तत्व (अंश) से एकस्वर होगा और अद्वैत भाव मे आकर विस्मादी जीवन उत्पन्न करेगा।

गुरु साहिब ने यह भी देखा कि शकराचार्य के अनुयायी ब्रह्म ज्ञान के केवल मात्र झूठ दाहवे ही करने लग पडते हैं। इसका परिणाम पाखण्ड धोखा तथा झूठ निकलता है। ऐसे व्यक्तियो को गुरु साहिब ने काय क्राय करने वाले मुखागर ज्ञानी कौए कहा है — जग्ग कौआ मुख चुंच गिआन (बिलावल म ३)। यह चुंच ज्ञानी अपने स्वार्थ के लिए तो सब को ब्रह्म रूप और समस्त ब्रह्म माया तथा अपने आपको ब्रह्म कह कर ऐश्वर्य करते हैं अर्थात् ऐश उडाते है और जब उनकी किसी वस्तु को ब्रह्म की माया कह कर हाथ डालो अथवा उनसे कोई बलिदान या सेवा मागे तो फिर ये सब लोहे के स्तन बन जाते हैं और अह की दीवारो का कोट बना लेते हैं। कई ऐसे दुष्ट पदो को बिगाड बिगाड़ कर लोगो को सुनाते हैं। दूसरो को तो कहते हैं "तेरा तुझ महि कुछ नही जो किछ है सो मेरा"— यह कह कर लूटते खाते हैं। यदि उन से बलिदान की आशा करो तो बदल कर कहते हैं "तेरा मुझ महि कुझ नही जो किछ है सो मेरा।" कबीर जी की वास्तविक वाणी अपनत्व निछावर करने के भाव से ओत प्रोत है

कबीर मेरा मुझ महि किछु नही जो किछु है सो तेरा ॥
तेरा तुझ कउ सउपते किआ लागै है मेरा ॥
(श्लोक २०३)

इस प्रकार अद्वैत ज्ञान जब पाखण्ड रूप धारण करता है तो

लोगो को विशेष आचरणहीन बना देता है।

इन बातो के अतिरिक्त गुरु साहिब शकराचार्य के बताये हुए मार्ग से इसलिए भी सहमत नही है कि इसका अन्तिम लक्ष्य सन्यास है, गृहस्थ त्याग है। हम कई बार यह बात दुहरा चुके है कि गुरु साहिब इस लक्ष्य के साथ सहमत नही थे और वे सन्यास एव त्याग के विरुद्ध थे। सारे ही सिक्ख गुरुओ ने विवाह किए, गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए दसो नाखूनो की कमाई करके अपना जीवन निर्वाह करते रहे। सगतो के चढावे तथा पूजा सगतो की भलाई के लिए ही मन्दिर एव सरोवर आदि बनाने मे लगाते रहे। जब भाई लहणा जी जो पीछे दूसरे गुरु, गुरु अगद जी हुए, पहली बार गुरु नानक देव जी के दर्शनो के लिए आए थे तो उस बुढापे मे भी वे खेतो मे कार्य करते और पशुओ आदि के लिए घास खोदते थे। इस प्रकार घास खोदते हुए ही भाई लहणा जी को दर्शन हुए और उन्हे कृतज्ञ किया। जब भगर नाथ योगी ने गुरु नानक से पूछा कि आपने दूध मे काजी क्यो डाली है? भाव यह कि साधु फकीर होकर गृहस्थ जीवन क्यो व्यतीत कर रहे हो? तो गुरु साहिब ने उत्तर दिया कि तुम्हारी माता ने तुम्हे अच्छी शिक्षा नही दी और तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है कि गृहस्थियो के घर उत्पन्न होकर फिर तुमने ऐसे घर का परित्याग किया और फिर भिक्षा माँगने के लिए उन्ही गृहस्थियो के घर जाता है। गुरबाणी मे जब भी कभी गृहस्थ त्याग पर कुछ कहने का अवसर मिला है तो गुरु साहिब ने इस विचार का बडे कठोर शब्दो से विरोध किया है।

सन्यास एव त्याग का मूल कारण तथा दार्शनिक नियम यह था कि इच्छा करने से या कर्म करने से जीव अपने आपको ससार से सम्बन्धित करता है। जीव जितना ससार से लिप्त होता है उतना ही वह बन्धनो मे फसता है। इसलिए ससार एक जाल है और इसमे रह कर इच्छा रख कर कर्म करने दुखो के जाल मे फसना है। इसलिए ससार को त्याग देना, इच्छा रहित होकर जगलो मे विचरण करना मुक्ति एव सुख प्राप्त करना है। गुरु साहिब की शिक्षा यह है कि ससार एव जीवन अपने आप मे बुरे नही हैं। इनका प्रयोग या काम इनसे सम्बन्धित होने के ढग मे अच्छाई या

बुराई है। हमे ससार रूपी क्रीडा क्षेत्र मे खेल खेलने के लिए मालिक ने अर्थात् परमात्मा ने भेजा है। यह जीवन क्रीडा (खेल) हमे अच्छे निस्वार्थ खिलाडी के उत्साह (Sportsman spirit) से खेलनी चाहिए। जब बाबा फरीद ने ससार को दुखो की अग्नि मे जलते देख कर कहा "मैं जानिआ दुख मुझ कू, दुख सबाइऐ जगि।। उच्चे चढकै देखिआ ता घर घर एहा अगग" तो इस शबद के उत्तर मे गुरु जी ने श्लोक रचा और कहा कि ए फरीद! यह ससार तो एक अनुपम उपवन है और इसमे मानव शरीर तथा जीवन एक सुन्दर पौधा है। ईश्वर का आश्रय लेकर मौज से अर्थात् आनन्द से हसता खेलता जीवन व्यतीत कर। सच्चे स्वामी के सेवकों को कष्ट नही होता।

म ५ ।। फरीदा भूमि रगावली मझि विसूला बाग ।।
जो जन पीरि निवाजिआ तिन्हा अच ना लाग ।।८२।।
फरीदा उमर सुहावडी सगि सुवन्नडी देह ।।
विरले केई पाईअनि जिन्ना पिआरे नेह ।।८३।।

ऊपर के दोनो श्लोको से ज्ञात होता है कि अपने आप मे न ससार— भूमि, न यह देह— शरीर, न यह हमारा जीवन— आयु— किसी प्रकार दुख रूप हैं। यदि मन का प्रवाह सीधा है, वाहिगुरु की कृपा से आन्तरिक प्रीति है और जीवन दृष्टिकोण ठीक है तो यह सब सुख का रूप हैं और सुहावने, सुन्दर लुब्धप्राय तथा रगीन हैं। इसी लिए तो अन्तिम मुदावली मे गुरु साहिब ने बताया है कि इस ससार मे सत्य सन्तोष एव विचार का भोजन परिपूर्ण है। जो व्यक्ति वाहिगुरु के आश्रित हो इन्हे खाते और पचाते हैं वे आनन्द प्राप्त करते है। विमुख लोगो के लिए, अह मे ग्रस्त जीवो के लिए यह सब रोग है, सब जीव इस रोग मे ग्रस्त रोगी है और जिधर पाँव रखते है, काँटे तथा शूल हैं और वे तडपते एव कराहते हैं। इसलिए इस जीवन तथा ससार का दुख अथवा सुख रूप होना हमारे अपने ऊपर निर्भर है। इन से दूर भागना या त्याग करना सुख के साधन नही हैं।

इस प्रकार से गुरु साहिब ने योगियो और सन्यासियो के जीवन से विवाहित गृहस्थ जीवन को श्रेष्ठ माना। स्त्रियो को

भिक्षुणिया तथा सन्तनियां बनने से वर्जित किया और आदेश दिया कि स्त्री अवश्य शादी करवाये। पति के विना स्त्री को शोभायुक्त नही समझा और न ही उसके जीवन को सुख रूप दिखाया है। जैसे ज़रतुश्त ने कहा था कि कुवारे तथा अकेले व्यक्ति से विवाहित व्यक्ति का जीवन कई गुणा श्रेष्ठ है, इसी प्रकार गुरु साहिब ने भी गृहस्थ जीवन की प्रशसा की। गृहस्थी तो कमाता है और दूसरो को खिलाता है तथा त्यागी भिक्षु दूसरो की झूठी आशा पर जीवित रहता है और समाज के लिए एक भार बन जाता है।

इसु भेखै थावहु गिरहो भला जिथहु को वरसाइ ॥
(वडहस की वार म ४ पृ० ५८७)

मारू राग मे गुरु जी बताते हैं कि यदि त्याग करना है तो घर का त्याग करने के स्थान पर काम क्रोध लोभ का त्याग करो और यदि मागने मे ही गति है तो हरियश की दात (दान) मागो —

तिआगना तिआगनु नीका कामु क्रोधु लोभु तिआगना ॥३॥
मागना मागनु नीका हरि जसु गुर ते मागना ॥४॥
(मारू म ५ पृ० १०१८)

'रामकली की वार' मे गुरु साहिब बताते हैं सन्यासी तथा अभ्यागत वे नहीं है जो घरबार छोड कर टुकडे माग माँग खाते हैं बल्कि वे है जो घर मे अन्तरात्मा होकर ऊचे मण्डलो मे विचरण करते हैं —

अभिआगत एहि न आखीअनि जि पर घरि भोजन करेनि ॥
उदरै कारणि आपणे बहले भेख करेनि ॥
अभिआगत सेई नानका जि आतम गउणु करेनि ॥
भालि लहनि सहु आपणा निज घरि रहणु करेनि ॥२॥
(म ३ पृ० ९४९)

श्री दशमेश पिता गुरु गोबिन्द सिंह जी ने सिक्खो के लिए निम्नलिखित सन्यास बताया है

रामकली पा० १०
रे मन ऐसो कर सनिआसा ॥

बनसे सदन सबै कर, समझहु मन ही माहि उदासा ॥१॥
रहाउ॥

जत की जटा जोग को भंजनु, नेम के नखन बढाउ ॥
गिआन गुरू आतम उपदेसहु, नाम बिभूत लगाउ ॥१॥
अलप अहार सुलपसी निंद्रा, दया छिमा तन प्रीति ॥
सील सन्तोख सदा निरबाहिबो, ह्वैबो त्रिगुण अतीत ॥२॥
काम क्रोध हकार लोभ हठ, मोह न मन सिउ लयावै ॥
तब ही आतम तत को दरसे, परम पुरख कह पावै ॥३॥१॥

भाव यह कि ऐसा सन्यास करो कि घर को जगल की भाति समझ कर अपने भीतर निवृतिक रुचि रखो। तन मन की स्वच्छता और अपने आपको किसी अनुशासन मे रखना चाहिए। यह योगियो का पहरावा, जटें तथा नाखुन आदि बढाने बन्द करो। तुम्हारा आध्यात्मिक गुरु आन्तरिक प्रकाश हो, 'नाम' को भस्म शरीर को लगाओ। थोडा खाना, थोडा सोना, दया, क्षमा, प्रेम–प्यार, शीतल स्वभाव, धैर्य रखना आदि गुण प्राप्त करके उच्च बनो अथवा ऊपर उठें, पाच दूतो को समीप न आने दो। ऐसा जीवन व्यतीत करते हुए परम पुरुष की प्राप्ति होती है।

यह था गुरु साहिब का प्राचीन तीनो मार्गो— कर्म, भक्ति, ज्ञान से सम्बन्धित विचार। उनके अपने मार्ग मे इन मार्गो के लेश एव अश (अग– तत्व) विद्यमान हैं। इसी लिए सिक्ख धर्म पर लिखने वाले लेखक अब तक यही कहते आए हैं कि गुरु साहिब का मार्ग भी इन्ही मे से एक मार्ग है। अपना अपनी प्रमुख रुचि के अनुसार किसी ने सिक्ख धर्म को कर्म मार्ग समझा, किसी ने भक्ति और किसी ने ज्ञान। इस प्रकार की उलझन कुछ आवश्यक एव स्वाभाविक थी। गुरु साहिब ने हमारे मन के सौन्दर्य (विस्माद) पक्ष पर बल दिया है। सौन्दर्यानुभूति हमारे मानसिक परिवेश मे ही है। यह कोई भिन्न शक्ति अन्य शक्तियो से अधिक दूरी पर नही है। यह सौन्दर्यानुभूति बाह्य प्रकृति का आनन्द (स्वाद) लेना है और अपने आन्तरिक अस्तित्व मे मस्त होना है। आन्तरिक एव बाह्य ज्योति के एकस्वर होने से यह सौन्दर्यानुभूति होती है। इस मे शेष मानसिक प्रवृतियाँ भी प्रस्तुत होती हैं। ज्ञान कर्म तथा

भाव विस्माद मे अपना भाग डालते हैं। इसी लिए सौन्दर्यानुभूति को ज्ञान, कर्म अथवा भाव समझ लेना एक सरल सी भूल करना है। इस भूल से बचना कठिन है। कैरिट लिखता है कि सौन्दर्य ज्ञान मानव अस्तित्व का एक चमत्मकार है। यह एक प्रकार का कर्म है इसलिए इसे सदाचार तथा प्रसन्नता के साथ मिलाने की भूल भी कई लोग कर लेते हैं। यह हमारी भावात्मक रुचि का प्रभाव है इसलिए इसे भाव भी समझ लेते हैं और विस्माद ज्ञानेन्द्रियो के माध्यम से अस्तित्व मे आता है तथा ध्यान इसकी आवश्यक शर्त है इसलिए लोगो ने इसे ज्ञान समझने की भूल भी की है। बाह्य ससार की आन्तरिक ज्योति से एकस्वरता होने के कारण कई लोग इसे आत्मिक अनुभव का पदार्थिक ज्ञान भी समझते हैं। यह सब भ्रातिया हैं अर्थात् विरोधाभास है।

(२)
रोग—अह (हौमै)

ऊपर हमने प्राचीन तीनो मार्गो का सक्षिप्त वर्णन करके गुरु साहिब के उनमे सम्बन्धित विचार लिखने का प्रयत्न किया है। अब हमने गुरु साहिब के अपने मार्ग का विवेचन करना है। किन्तु पहले यह जानना अपेक्षित है कि वह रोग कौन सा है जिसके लिए उपचार की आवश्यकता है। वह कौन सा रोग है, मानसिक अथवा कोई अन्य जिसे दूर करके परम पद की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार शारीरिक रोग किसी कारण से होता है। औषधि से वह कारण दूर कर दे तो शरीर अपनी पहली अवस्था मे आ जाएगा। शरीर को वास्तविक अवस्था मे रखना ही स्वास्थ्य एव आरोग्यता है। इसी प्रकार मानसिक एव आध्यात्मिक क्षेत्र मे किसी कारणवश कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि परम-सुख की प्राप्ति नही होती। आत्मा की वास्तविक अवस्था परमानन्द-सत्-चित-आनन्द

को है। परन्तु किसी कारण के होने से प्राणी यह अवस्था खो बैठता है। वह कारण दूर हो तो स्वास्थ्य को, पहले जैसी अवस्था हो और परमानन्द प्राप्ति का अनुभव हो। वह कारण कौन सा है? उस कारण को दूर करने का कौन सा साधन है? हमने सिक्ख धर्म के अनुसार पहली बात खोजनी है और फिर अगले अध्याय मे दूसरी बात।

हम यह देख आये हैं कि सृष्टि रचना हौमै (अहं) के आधार पर हो रही है। सैद्धांतिक भाग मे हम इसका अच्छी तरह विवेचन कर आये है। इस अहं के कारण ही विशेष पदार्थ—मैं तुम यह, वह—अस्तित्व मे आते हैं। यह वह चार दीवारी (परिवेश) है जो सर्वव्यापक आत्मा मे जीवात्मा बनता है और तीनो गुणो के कारण अनेक प्रकार के जीव-जन्तु अस्तित्व मे आते है। इस अपनत्व का दुर्ग है हौमै (अहं)। अहं के प्रभाव स्वरूप वह एक सर्व-व्यापक आत्मा अनेक होकर प्रतीत होती है। इसलिए वह वस्तु जिसे हम निजत्व कहते हैं वह सर्वव्यापक आत्मा मे से अहं का भिन्न किया हुआ एक अंश (तत्व) है। यह भिन्नता अस्थायी है तथा कृत्रिम है। अंश सम्पूर्ण से अहं के कारण भिन्न प्रतीत होता है। यह अंश सम्पूर्ण से भिन्न होकर सुख प्राप्त नही करता। सुख की प्राप्ति अंश के सम्पूर्ण से मिलने मे है। यदि किसी साधन के कारण जीव को अंश-सम्पूर्ण की एकता का अनुभव भी हो जाये तो भी जीवन सुख रूप हो जाता है। परन्तु एकता का अनुभव उतनी देर तक नही होता जितनी देर तक जीव अहं के प्रभाव मे विचरण करता है। जीव का अहं के साथ संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष का नाम जीवन है। हमारे अन्तर का नाम, आत्मतत्व, ब्रह्माण्ड मे रमे हुए राम नाम—सर्वात्म तत्व के साथ एक होना चाहता है। अहं दोनो के बीच एक दीवार है एक प्रकार की "कूडी पाल" (झूठी-अस्थायी दीवार) है।

जब गुरु साहिब ने कबीर का यह दोहा देखा जिसमे लिखा था कि मुक्ति का मार्ग अथवा दरवाजा बहुत तंग है, राई के कण से भी बहुत तंग है तो फिर मेरा इतना मोटा जीवात्मा वहां से किस प्रकार गुजर सकता है। गुरु साहिब ने इसका उत्तर दिया, कि हां मार्ग तो संकुचित ही है परन्तु जीव का मोटापन तो अहं के कारण है।

जब इस अहं का सुधार हो गया अर्थात दूर हो गया फिर जीवात्मा को स्वतन्त्रता है कि वह जहां मन चाहे चली जाए। कोई रोक टोक नहीं होगी।

> कबीर मुकति दुआरा सकुरा राई दसए भाइ ॥
> मनु तउ मगलू होई रहिउ निकसो किउ कै जाई ॥

..

महला ३

> नानक मुकति दुआरा अति नीका नाना होइ सु जाइ ॥
> हउमै मनु असथूलु है किउकरि विचुदे जाए ॥
> सतिगुर मिलिऐ हउमै गई जोति रही सभ आइ ॥
> इहु जीउ सदा मुकतु है सहजे रहिआ समाइ ॥२॥

ऐसा ही उत्तर गुरु नानक देव जी ने सिद्धो को भी दिया था। जब सिद्धो ने कहा हे स्वामी जी ! हमारी प्रार्थना सुन कर सत्य विचार द्वारा ठीक उत्तर देवें कि यह चचल एव भूल भुलैय्यो मे फसा मन किस प्रकार वश मे किया जाए ? गुरु साहिब ने उत्तर दिया कि भेस और पाखण्ड (सकीर्णता) छोड दो। निस्सार रीति-रस्मो मे समय नष्ट न करो। परतु अपने मन को डुलाओ नही। नाम के बिना मन स्थिर नही रह सकता। "अन्तर सबदु निरन्तरि मुदरा हौमै ममता दूर करी।" इसके साथ ही 'खडति निंदरा', 'अलप अहार', काम क्रोध अहकार का त्याग आदि भी आवश्यक है। ऐसे साचे मे जीवन को ढाल कर अह के बन्धनो से दूर रह कर विचरण करना चाहिए, ताकि अनेक दृष्टियो से एक दृष्टि हो जाए और नाम रूपी सुख (आनन्द) प्राप्त हो।

नैतिक क्षेत्र मे हौमै अहकार का नाम है। अपने अहकार को दूसरो के सम्मुख जताना और इसके प्रभाव स्वरूप सामाजिक स्थिरता (स्थायित्व) को नीचे ऊपर करना अथवा भग करना अहकार ही है। गुरु साहिब एक शबद मे प्राचीन ऋषियो एव मुनियो आदि के नाम लेकर बताते हैं कि किस प्रकार अहकार के कारण उन्हे शान्ति प्राप्त न हो सकी। नीरस ज्ञान सैनिको का बल, धन की बहुलता, विशाल साम्राज्य, ब्रह्मा, बलराज, हरिश्चन्द्र, हरिण्याकश्यप,

रावण, जरासन्धु, दुर्योधन, जनमयजय, तथा कंस आदि को सुख एव शान्ति न दे सके। इसलिए गुरु साहिब सिक्खो एव साधुओ को मान दम्भ के त्याग करने पर जोर देते हैं। अहकार एव मान हौम के ही रूप है। अहकार इतना सूक्ष्म होता है कि यदि किसी ने अहकार त्याग भी दिया हो और उसे इस अहकार-त्याग का अनुभव हो तो इस अनुभव मे भी अहकार विद्यमान रहता है। अहकार का मान मर्दन तथा मान त्याग के सन्बन्ध मे गुरबाणी मे बडा बल दिया है। उपरिलिखित विचार निम्नलिखित शबद मे अकित है :

गउडी महला

ब्रहमै गरबु कीआ नही जानिआ ॥
बेद की बिपति पडी पछुतानिआ ॥
जह प्रभ सिमरे तही मनु मानिआ ॥१॥
ऐसा गरबु बुरा ससारै ॥
जिसु गुरु मिलै तिसु गरबु निवारै ॥१॥ रहाउ।
बलि राजा माइआ अहकारी ॥
जगन करै बहु भार अफारी ॥

१२-६-(पृ० २२४)

राग गउडी महला ६

साधो मन का मानु तिआगो ॥
काम-क्रोधु सगति दुरजन की ताते अहिनिसि भागो ॥१॥ रहाउ ॥
सुखु दुखु दोनो सम करि जानै औरु मानु अपमाना ॥
हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना ॥१॥
उसतति निन्दा दोऊ तिआगै खोजै पदु निरबाना ।
जन नानक इहु खेलु कठिनु है किनहू गुरमुखि जाना ॥२॥१॥

बात क्या हौमै रोग है। सासारिक जीवन मे दुख का कारण हौमै ही है। हमारे पाप पुण्य, धर्म अधर्म का आधार भी हौमै है। इसी लिए हौमै पाप पुण्य से उच्च अवस्था नाम के साथ नही आ सकती। वाहिगुरु अकाल पुरुष की सुन्दर रचना के द्वारा सिक्ख ने उस सर्वव्यापक ज्योति को अनुभव करना है और इस अनुभूति के कारण

विस्माद मे आना होना है। अहं इस अनुभूति एव विस्माद को नही आने देता। वास्तविक मस्ती-उन्माद एव स्वाद, परमानद अहं के त्याग मे ही है। क्लाईव बैल लिखता है कि चाहे कोई चित्रकार हो या कोमल कलाओ का प्रेमी चाहे कोई सूफी सत हो अथवा गणित विद्या मे निपुण उसे अपने काम मे मस्ती एव आनद का अनुभव उस समय होगा जब वह अहं के सहारे बने अपनत्व के दुर्ग की दीवारें गिरा कर अपने काम मे अपने आप को भूल जायेगा। जब ज्ञाता और ज्ञेय का अभाव होगा। यह अहं की दीवार, अपनत्व का पर्दा अज्ञान का कारण है। सर्वेकता को एकता अर्थात् भिन्नता के रूप मे दिखाता है और अहंकार ग्रस्त जीव को ब्रह्म ज्योति से अलग किए रखता है। यही दुख है। एमरसन के कथनानुसार अहंकार से निकल कर जब मनुष्य अपने आध्यात्मिक अस्तित्व को अनुभव करता है तो वह साथ ही सम्पूर्ण ससार मे एक समानता भी अनुभव करता है। इस साम्यता के कारण वह सब मे और सब उस मे एक रूप हो जाते हैं। नही तो हौमै हम सब को अलग किए रखती है। भिन्न किए रखता है और हमारे वास्तविक स्वरूप उद्गम स्रोत मे अलग किए रखती है। यही वास्तविक रोग है। इस रोग का उपचार-निदान ढूढने की आवश्यकता है।

आश्चर्यजनक बात यह है कि होमै का निदान भी हौमै ही है। "हउमैं दीरघ रोग है, दारू भी इस माहिं"— श्री आसा जी की वार मे गुरु वाक है। जन्म लेना, मरना, कमाना, लेना देना, सच्चा और झूठा होना, पाप पुण्य के भेद, सब अहं मे ही हैं। यदि इस अहं द्वारा उत्पन्न अन्धकार मे व्यक्ति व्यर्थ चक्र काटता रहे तो दुखी और यदि इसे जान ले तो सच्चखण्ड की प्राप्ति है। परमानद है।

"हउमैं बूझै ताँ दर सूझै। गिआन-विहूणा कथ कथ लूझै।"
होमै का ज्ञान होमै का निदान है। अहं का अज्ञान दीर्घ रोग है। यह असत्य की दीवार खडी कर देता है। यदि अहं को अच्छी प्रकार समझ लिया जाए तो मनुष्य का दृष्टिकोण बदल जाता है। आदेश अथवा ईश्वरेच्छा मे आ जाता है। इस नए मन के प्रवाह मे ससार के समस्त कर्म करता हुआ भी मनुष्य सुखी रहता है। जिस प्रकार नदी अपने आप निरकुश बहती हुई दीवारें अथवा मकान गिराती है और नियत्रण मे

आकर नहरो और छोटे छोटे नदो द्वारा उपवन उद्यान हरे भरे रखती है। निरकुश अथवा नियत्रण के बिना ऊट मनुष्य को मारने तक जाता है और नियत्रण मे रहता हुआ मनुष्य की सेवा करता है और सुख देता है। उसी प्रकार मनुष्य के काबू से बाहर अह दुखो का घर है और गुरु आश्रित आदेश मे रह कर आनद प्राप्ति का कारण बनता है और सर्व व्यापक तत्व सत्य नाम का स्वाद (रस) दे कर विस्मादी बनाती है तथा वाहिगुरु स्मृति की प्रीति को परिपक्व करता है। अह के सुधार से अपनत्व विस्तृत होता है, दृष्टिकोण विशाल बनता है। इस अह का परिष्कार नैयायिक तर्को से या दार्शनिक अनुसधानो एव वैज्ञानिक प्रयत्नो से नही होता। यह भीतर अनुभूति जागृत करने से, गुरु परमेश्वर का आश्रय लेकर प्रार्थना से होता है। यह अनुकम्पा है, कृपा है। प्रार्थना (अरदास) का उद्यम जाव ने करना है और नाम का दान या अह का परिष्कार अकाल पुरुष ने करना है। नाम का मिलना ही अह का अभाव है और सर्व व्यापक अस्तित्व मे एक समान होना है। ऐसा व्यक्ति समस्त सासारिक जीवन व्यतीत करता हुआ भी निर्लिप्त 'मैं' 'तुम' के शब्द प्रयुक्त करता हुआ भी इनके बन्धनो से निर्लिप्त होता है।

आसा महला १

बाहरहु हउमै कहै कहाए ॥
अदरहु मुकतु लेपु कदे न लाए ॥
माइआ मोहु गुर सबदि जलाए ॥
निरमल नामु सद हिरदै धिआए ॥४॥(पृष्ठ ४१२)

अह का विचार वेदातियो मे भी है परन्तु सिक्ख धर्म एव वेदात के वताए अहु के स्वरूप मे थोडा भेद है। गुरु साहिब ने अद्वैत-वाद को परमात्म भक्ति तथा ईश्वर प्यार के सहारे रखा है। यद्यपि गुरु साहिब अद्वैतवादी हैं परन्तु वे यह नही कहेगे कि 'मै ईश्वर हू" अथवा "जो कुछ है वह सब कुछ मैं हू। या जिस प्रकार स्वामी विवेकानद जी ने कहा था मेरे आदेश के बिना सूर्य चाद हिल नही सकते या समस्त ससार मेरी इच्छा के अधीन मशीन की भाति चल रहा है।

भारत वासियो की मानसिक दासता एव नैतिक पतन ने कई क्रांतिकारी हस्तियाँ उत्पन्न की । इन्हो ने भारतीयो के स्वाभिमान तथा ज्ञान को जागृत करने के लिए 'ग्रह' को ऊंचा उठाने का प्रचार किया । कुछ तो वेदांत ने भूमि तय्यार की हुई थी और कुछ राजनैतिक स्थिति के कारण प्रतिक्रिया हुई । जर्मन दार्शनिक नीटशे के विचार थियोसाफी मत के नेता श्री कृष्ण मूर्ति ने तथा पजाब के प्रसिद्ध कवि डाक्टर मुहम्मद इकबाल की रचनाओ ने ग्रह को ग्रहकार के शिखर पर पहुचा दिया । "खुदी के ज़ोर से तू दुनिया पे छा जा"—इकबाल कलामे जबरील मे कहता है । इसलिए इकबाल ने सूफियो तथा वेदातियो की शिक्षा के नीचे दबे हुए लोगो के मन को ऊपर उठाने के लिए खुदी एव ग्रह का प्रचार किया ।

दो दृष्टिकोण हैं जिन से खुदी या ग्रह को देखा जा सकता है । इकबाल 'मैं' तुम और 'वह सब को सत्य कहता है । यह व्यक्तिगत एव द्रव्य अथवा पदार्थ सम्बन्धी अन्तर सदा बने हुए है । इस विचारानुसार ग्रह पर्दा या परोक्ष वस्तु नही अपितु एक ठोस यथार्थ है । विवेकानन्द जी कहते हैं कि 'तुम' और 'वह' सब भ्रांति हैं, सब कुछ मैं हो मैं हू । गुरु साहिब का मत है कि 'मैं' 'तुम' सब भ्राति है, सब कुछ वह ही वह है । "उही रे सभ उही रे ।" मैं तुम तो ग्रह के कारण उपाधि भेद के कारण हैं । यह बात नही कि'मैं' 'तुम' स्वप्न की भाति हैं । हैं तो अस्तित्व के रूप परन्तु यह अस्तित्व चरम सीमा तथा वास्तविक अस्तित्व मे जा मिलता है । क्रियात्मक प्रयोग मे मैं तुम स्थित है और वास्तव मे सब वह ही वह है । इसी प्रकार प्रत्यक्ष ससार का अस्तित्व भी स्वप्न नही बल्कि किसी सीमा तक कठोर सच्चाई है, परन्तु यह अन्तिम (परम) सच्चाई नही । या कहिये अन्तिम सच्चाई तो है, परन्तु इस रूप मे नही । इस प्रत्यक्ष ससार की वास्तविकता नाम है और नाम ही अन्तिम सच्चाई है । नाम—वह है । मैं तुम सब ने वह नाम, प्राप्त करना है । इन दृष्टिगत (प्रत्यक्ष) भिन्न भेदो मे तथा अन्तरो मे एकता ढूढनी है । एकता नाम रूप है । मैं, तुम की अनेकता ग्रह है । ग्रह के कारण है । हौमै का परिष्कार हौमै का निदान है । यह परिष्कार सिक्ख धर्म द्वारा होता है ।

गुर मति तथा दुर मति

पश्चिमी विचारको के अनुसार ज्ञान के दो स्रोत हैं। बुद्धि तथा अनुभूति। अनुभूति मे वे कल्पना अनुभव आदि भी सम्मिलित समझते हैं। बुद्धि मे सूझ एव तर्क भी। इन दो प्रमुख स्रोतो का आश्रय प्राप्त होने से ज्ञान भी भिन्न भिन्न हैं। इसी लिए यूरोप मे चिरकाल से दो विचार चले आ रहे हैं। ये दो मत किसी न किसी रूप मे आज भी हैं। गुरु साहिब को ज्ञान के इन दो स्रोतो (साधनो) का तथा इनके अन्तर का ज्ञान था। हमने सैद्धातिक पक्ष मे इसका निर्णय किया है। ज्ञान का प्रभाव हमारे क्रियात्मक प्रयोग पर बहुत होता है। हमारा क्रियात्मक जीवन ज्ञान के आश्रय ही ढलता है। अभीष्ट ज्ञान का फल श्रेष्ठ जीवन है और बुरे ज्ञान का फल बुरा जीवन। श्रेष्ठ ज्ञान तो एकता नाम की ओर ले जाता है। यह अनुभवजन्य है। इसे गुरु साहिब गुरमति कहते है। खोटा ज्ञान जीव को अनेकता मे भुलाए रखता है। यह दुरमति है। ये दोनो ज्ञान—शिक्षायें अह का ही अच्छा बुरा भाग हैं। शुद्ध होमें, गुरमति है और नाम सत्य वस्तु से जोडती है। रोग रूपी अह दुरमति है और जीव को अपने वास्तविक स्वरूप से अलग रखती है। दुरमति शब्द गुरबाणी मे कई अर्थों मे प्रयुक्त किया गया है। परन्तु यहा सकुचित अह का दिया हुआ टूटा फूटा ज्ञान है। या कहिये बुद्धि है और गुरमति अनुभूति है। गुरु साहिब बुद्धि को दुत्कारी जाने वाली वस्तु नही समझते। बल्कि वे बुद्धि तथा अनुभूति के सहयोग पर बल देते हैं। इन के सहयोग से ही मनुष्य उन्नति कर सकता है। बुद्धि का प्रयोग सासारिक जीवन मे अवश्य है। आकाश, काल एव पदार्थों का ज्ञान बुद्धि द्वारा ही होता है। दायें, बाये, नीचे ऊपर, आगे पीछे यह सब आकाश भेद है। दिन, पल तथा घडि, वार, ऋतु, मास वष यह सब काल समय का ज्ञान है। ईंट पत्थर जल दूध चारपाई, मेज़ यह सब भौतिक तथा पदार्थिक ज्ञान है। ये समस्त भिन्न भिन्न ज्ञान बुद्धि के द्वारा होते हैं। ये समस्त ज्ञान जीवन के लिए आवश्यक है। किन्तु भौतिक, काल एव आकाश से अस्तित्व समाप्त नही होता। जो बुद्धि

प्रत्यक्ष ससार मे ही भूल जाती है और अतिम सत्ता से हमे विमुख करती है, वह दुरमति है। जो इन से परोक्ष लुप्त निरन्तर अस्तित्व की झलक देती है, नाम रूपी रस देती है, वह अनुभूति है और गुरमति है। अनुभूति हमे आगे ले जाती है, दूर बहुत दूर, किन्तु कार्य का आरम्भ तो बुद्धि ने ही करना है। बुद्धि ने छान बीन करनी है और उस छान बीन के आश्रय से अनुभूति ने हरि मन्दिर (भव्य प्रासाद) निर्मित करना है। दोनो के सहयोग से ही कार्यक्रम पूरा होता है। अलग अलग दोनो ही अधूरे अपूर्ण रह जाते। बुद्धि के लिए अनुभूति प्रकाश है और अनुभूति के लिए बुद्धि ठिकाना-आधार है। अनुभूति के बिना बुद्धि अन्धी है और बुद्धि के बिना अनुभूति लगडी (पगु) है। इस लिये पूर्ण पद प्राप्ति के लिए दोनो का मिलकर चलना, एक स्वर होकर एक दिशा मे चलना आवश्यक है। अशुद्ध अह के प्रभाव स्वरूप बुद्धि कुमार्ग पर चली जाती है और दुरमति (कुबुद्धि) का रूप धारण करती है। इसी लिए तो दार्शनिक काट ने कहा था कि इस छानबीन करने वाली बुद्धि को दूर फेंको ताकि श्रद्धा के लिए स्थान बने। गुरु साहिब ने भी तो यही उत्तर दिया है न। पतिव्रता स्त्रियो से पूछो कि पति प्रेम किस प्रकार प्राप्त किया जाता है ?

जो किछु करे सो भला कर मानीऐ, हिकमति हुकमु चुकाईऐ ॥

जब बुद्धि श्रद्धा के क्षेत्र मे आ जाती है तो अह का परिष्कार होता है और इस का नाम विवेक बुद्धि या गुरमति होता है। अनुभूति अपना काम करती है तथा व्यक्तिगत जीवन की पूर्णता सम्भव होती है।

आवश्यक अभ्यास द्वारा बुद्धि अह के परिवेश से निकल कर सुमार्ग पर आ जाती है। गुरु साहिब 'जपुजी' मे बताते हैं —

भरीऐ मति पापा कै सगि ॥
ओहु धोपै नावै कै रगि ॥

अर्थात् नाम अभ्यास से बुद्धि की मैल उतर जाती है, उसी प्रकार जैसे अपवित्र कपडे को साबुन से धो दिया जाता हैं। इस प्रकार यदि बुद्धि निमल हो, भाव यह कि बुद्धि विवेक के सहारे काम करे तो अह एव माया के जाल मे नही फसती। स्वतत्र होकर गुरमति मे आकर परमपद प्राप्ति के लिए जीव की सहायता करती है। नाम

अभ्यास द्वारा परिष्कृत बुद्धि विवेक बुद्धि कहलाती है। इस विवेक बुद्धि के बिना कोई उन्नति नही हो सकती। इसके बिना मनुष्य अन्धकार ग्रस्त रहता है और कही सम्बल अथवा शांति प्राप्त नही होती। मनुष्य मे मनुष्यता, सुहृदयता एव धार्मिकता का कारण विवेक बुद्धि हा है। पशुओ मे धार्मिकता तथा सुजनता नही होता क्योकि उन मे विवेक-बुद्धि काम नही करती। मानवता की जड ही विवेक है और विवेक-हीन मनुष्य पशु है। प्रत्येक प्रकार का ज्ञान–चाहे वैज्ञानिक या अनुभव-जन्य सब विवेक द्वारा ही प्राप्त होता है। इस विवेक से जब हम भौतिक ससार से सम्बन्धित होते हैं तो परिणाम भौतिक ससार की सूझ है और यह सूझ विज्ञानो का रूप धारण करती है और जब यह विवेक सजीव प्राणियो तथा उनके कर्तव्यो से सम्बन्धित होता है तो परिणाम इन कर्त्तव्यो की सूझ अथवा कोमल कला होता है। जब विवेक द्वारा मानव मन अपने से ही सम्बन्धित होकर एक समान शांतमय जीवन प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तो परिणाम धर्म निकलता है। विज्ञान कला तथा धर्म भिन्न भिन्न प्रकार के सम्बन्धो से उत्पन्न विवेक द्वारा सूझ है। इन सम्बन्धो का मूल (आरम्भ) ही विवेक बुद्धि है या शुद्ध ज्ञान है। राग गउडी मे गुरु साहिब बताते हैं कि ऐसी सूझ के बिना मनुष्य अन्धकार मे रहते हैं और गुरमति हीन प्राणियो को सब कुछ ही उलटा दिखाई देता है। उनकी बुद्धि इस प्रकार अन्धकार मे विचरण करती है कि वे सासारिक वस्तुओ एव समस्त कार्य-व्यवहार को प्रतिकूल दृष्टिकोण से देखना आरम्भ कर देते हैं।

गउडी महला १

गुर परसादी बूझि ले तउ होइ निबेरा ॥
घरि घरि नामु निरजना सो ठाकुरु मेरा ॥१॥
बिनु गुर सबद न छूटीऐ देखहु वीचारा ॥
जे लख करम कमावही बिनु गुर अधियारा ॥१॥रहाउ॥
अधे अकली बाहरे किआ तिन सिउ कहीऐ ॥
बिनु गुर पथु न सूझई कितु बिधि निरबहीऐ ॥२॥
खोटे कउ खरा कहै खरे सार न जाणै ॥
अन्धे का नाउ पारखू कली काल विडाणै ॥३॥

सूते कउ जागतु कहै जागत कउ सूता ॥
जीवत कउ मूआ कहै मूए नही रोना ॥४॥
आवत कउ जाता कहै जाते कउ आइआ ।
पर की कउ अपुनी कहै अपुनो नही भाइआ ॥५॥

जब गुरमति के सहारे विवेक बुद्धि जागृत होती है तो प्रत्येक वस्तु अपने वास्तविक सम्बध मे प्रतीत होती है और जीव अह के बन्धन मे से निकल कर सर्वव्यापक अस्तित्व को अनुभव करता है। इस विवेक का वास्तविक स्रोत अकाल पुरुष स्वय है। वह स्वय विवेकी है, बल्कि वह स्वय विवेक है। उसी विवेक की चिंगारी ही मनुष्य मे प्रवेश करती है तथा प्रकाश करती है। परन्तु जीव अह की दीवार बनाकर इस प्रकाश को अन्धकार मे बदल लेता है। यदि नाम का अभ्यास करे तो आन्तरिक ज्योति (प्रकाश) बाह्य सर्व व्यापक ज्योति से एकस्वर हो जाती है। इसी लिए प्रत्येक सिक्ख दोनो समय प्रार्थना करता है मन नीवा, मति उच्ची मति का राखा वाहिगुरु।

सोलहवां अध्य य

नाम मार्ग

(१)

ना की प्रशंसा (महानता)

अब हम नाम मार्ग के विस्तार पूर्वक विवेचन की ओर आते हैं। श्री गुरु ग्रथ जी मे नाम की बहुत ही प्रशशा की गई है। समस्त दुखो क्लेशो का निदान नाम है। नाम प्राप्ति की आनद अवस्था का वर्णन करते हुए गुरु साहिब ने कई प्रकार के अलकार तथा उद्धरण प्रयुक्त किए हैं। सुखमनी साहिब की पहली दो अष्टपदिया स्मरण एव नाम की प्रशसा से परिपूर्ण हैं। अनेक पक्तिया एव शबद हैं, जिन मे नाम का यश बताया गया है

सिरी राग महला ५ पृष्ठ ७३

(क) सुणि गला गुर पहि आइआ ।।
नामु दानु इसनानु दिडाइआ ॥
सभु मुकतु होआ सैसारडा,
नानक सची बेड़ी चढि जीउ ।। ११-२१-२-२९

गउडी महला ५ पृष्ठ २४६

(ख) गुर सेवा ते नामे लागा ॥
तिसु कउ मिलिआ जिसु मसतकि भागा ।।

.

अखण्ड कीरतनु तिनि भोजन चूरा
कहु नानक जिसु सतिगुरु पूरा ।।८—२

(ग) गउडी महला ५ पृष्ठ २३६
बिन सिमरन जैसे सरप आरजारी ॥
तिउ जीवहि साकत नामु बिसारा ॥१-८-७

(घ) गउडी महला ५ पृष्ठ २४०
मिलु मेरे गोबिन्द अपना नामु देहु ॥
नाम बिना ध्रिगु ध्रिगु असनेहु ॥१-८-१०

(च) गउडी सुखमनी महला ५ पृष्ठ २९६

इह फल तिसु जन कै मुख भने ।
गुरु नानक नाम बचन मनि सुने ॥६-२४

(छ) आसा महला ५ पृष्ठ ३८२
अम्रितु नामु तुमारा ठाकुर एहु महारसु जनहि पीउ ॥

धनु सु कलिजुगु साधसगि कीरतनु गाईऐ
नानक नामु अधारु होउ ॥४॥८॥४७॥

(ज) रागु गूजरी महला १ पृष्ठ ४८९
तेरा नामु करी चनणाठीआ जे मनु उरसा होइ ।.
पूजा कीचै नामु धिआईऐ बिनु नावै पूज न होइ ॥४-१

(झ) रामकली—सिध गोषट—म १ पृ० ९४६
नामे नामि रहै बैरागो साचु रखिआ उरि धारे ॥
नानक बिनु नावै जोगु कदे न होवै देखहु रिदै बीचारे ॥६८

(ञ) भैरो महला ५ पृ० ११३७
नानक दास इहु कीआ बीचारु ॥
बिनु हरिनाम मिथिया सभ छारु ॥४॥

बात क्या गुरबाणी का प्रधान विषय नाम ही है। नाम मधुर से मधुर अमृत है। सब से मीठी वस्तु भी नाम से कम मीठी है। "नानक नाम मिलै ता जीवा" गुरु जी बताते हैं, "आखा जीवां विसरै मर जाउ" रहिरास मे प्रतिदिन पढते है। गुरु साहिब राग भैरो मे नाम की महत्ता तथा सुन्दरता को जताने के लिए पांच बार 'खूब' शब्द का प्रयोग करते हैं

खूबु खूबु खूबु खूबु खूबु तेरो नामु तेरो नामु ॥
झूठु झूठु झूठु झूठु दुनो गुमानु ॥

नाम के बिना मनुष्य जावन पशुओ के जीवन से भी बुरा है। नाम विहीन जीवन सापो, कौओ कुत्तो, सूरों, गधा तथा गन्दगी के कीडो जैसा जीवन बताया है।* यद्यपि ये सब अलकारक पद है, परन्तु फिर भी नाम हीन प्राणी की गिरी हुई मानसिक अवस्था के परिचायक अवश्य हैं। इन पशुओ तथा कीडो के जीवन से कई बुरी अवस्थाये सम्बधित हैं और नाम रहित मन उन मन्द अवस्थाओ मे लिपटा रहता है। जिस प्रकार शरीर प्राणो के सहारे स्थित है, इसी प्रकार नाम हमारे जीवन का आधार है।

नाम के बिना मनुष्य के समस्त क्रिया कलाप तथा कार्य व्यवहार निष्फल हैं और दुख क्लेश तथा बन्धनो का कारण हैं। ऊपर के ५ खूब वाले शबद मे "नाम बिना सभ दुनीआ छार' बताया है। गऊओ और भैंसो की ओर देखो। घास फूस, तूडो, खलि आदि खा कर मीठा अमृत दूध देती हैं, और मनुष्य छत्तीस प्रकार के भोजन खाकर ससार मे गन्दगी फैलाता है। इसलिए नामविहीन मनुष्य से तो पशु भी अच्छा है

राग गउडी महला १ पृष्ठ ४८९

पसू मिलहि चगिआईआ खड खावहि अम्रितु देहि ॥
नाम विहूणे आदमी ध्रिगु जीवण करम करेहि ॥

श्री राग के आरम्भ मे ही श्री गुरु नानक देव जी बताते है कि यदि मोतियो का मन्दिर निर्मित हो जाए और रत्न जवाहर उसमे जडे जाये। कसतूरी केसर, सदल की सुगन्धियो से उसे मन मोहक किया जाये। हे अकाल पुरुष! जीव को इन मे न भुलाना (लुभाना) और तुम विस्मृत न होना। इस प्रकार गुरु साहिब आर्थिक पदार्थो के समस्त सुख एव ऐश्वर्य के नाम ले ले कर ईश्वर के सम्मुख पुकार करते है कि नाम के बिना इन सुखों की कोई आवश्यकता नही है।

---

*राग गउडी महला ५ (पृष्ठ २३९)
बिनु सिमरनु जैसे सरप आरजारी।

नाम को सर्वोत्तम बताया है। यदि नाम नही है तो यह सब सुख आराम दुख रूप हैं। गुरु साहिब सासारिक सुख आराम को घृणत नही समझते परन्त नाम के बिना इन मे से वास्तविक शाँति नही मिलती। यदि हमारा आन्तरिक अपनत्व सर्वव्यापक अपनत्व मे एक रूप है अथवा नाम की प्रीति लगी हुई है तो समस्त सुख तथा पदार्थ शोभनीय हैं। सुखो का वास्तविक स्रोत नाम है। साँसारिक सुखो की निचली तह (स्तर) मे कुछ दुखो का लेश है, उस का कारण समय एव काल की कठिनाइया तथा मनुष्य की पहुच से बाहर बातें हैं। यदि नाम मे प्रीति लगी हो तो ये दुखो के परोक्ष कारण मनुष्य के मन को प्रभावित नही करते। नाम कोई पुस्तकीय ज्ञान नही है, कोई जानकारी का भण्डार नही है, कोई दार्शनिक खोज नही है। इसी लिए यह वेद शास्त्रो अथवा ग्रन्थो पुस्तको के अध्ययन से नही मिलता। यह कोई बाहर से भीतर आने वाली वस्तु नहीं है यह तो भीतरसे प्रफुल्लित (विकसित) होकर सम्पूर्ण वातावरण को सजीव करने बाली औषधि है

बहु सासत्र बहु सिम्रिती पेखे सरब ढडोलि ॥
पूजसि नाही हरि हरे नानक नाम अमोल ॥

(गउडी सुखमनी)

जो भूल गुरु साहिब ने लोगो के धार्मिक जीवन मे दखी वह यह थी कि कोई तो ईश्वर को बाहर देखता था कही आकाशो मे या जगलो पहाडो मे। ऐसे व्यक्ति बाहर से परमात्मा को अपने अन्दर लाना चाहते थे और कई व्यक्ति ऐसे थे जो अपने आप को ही ईश्वर समझ बैठे थे। ईश्वर मनुष्य के भीतर भी है और बाहर भी। भीतर की ज्योति को बाह्य ज्योति से एकस्वर करना नाम का जाप करना है। गुप्त नाम प्रकट होता है जब पिण्ड शरार के ब्रह्माण्ड ससार मे प्रसारित ज्योति एकस्वर हो जाए। इन दोनो तारो (तरगो) के झकरित होने से अथवा मिलने से ज्योति जगमग होती है और नाम अवस्था प्रकाशित होती है।

(२)

किसी मन्त्र या अक्षरो का तोते को भाँति रटना नाम नही है

जब हम गुरबाणी का इस भाव से विवेचन करते है कि सर्वव्यापक ज्योति अथवा नाम का कोई स्वरूप अथवा निश्चित लक्षण अक्षरो मे अकित कर सकें ताकि हमारी बुद्धि उसे वैज्ञानिक विधि से समझ सके, तो इसका उत्तर हमे बौद्धिक नियमानुसार नही मिलता। नाम एक रस है, अनुभव है और उसका नैयायिक अन्तर नही हो सकता। अब तक सिक्ख धर्म के लेखक यही समझते आए हैं कि किसी मन्त्र या कुछेकअक्षरो से बने पद (शब्द) का जाप किए जाना नाम है और बस इसके रटने से मुक्ति बहुत आसानी से प्राप्त हो सकती है। नाम के इस तोते की भाँति रटने के भाव को मैकालिफ ने भी अपनाया है और पुराने आदर्शो पर ही अर्थ किए हैं। मैकालिफ लिखता है इस सम्बन्ध मे हम कह सकते है कि सिक्ख धर्म मे ईश्वरी पूजा का सबसे प्रधान और प्रमुख रूप ईश्वर के नाम का रटना ही है। टरम्प ने तथा मैकालिफ के बताए हुए सकेतो पर ही बाद के सब लेखक चलते आए हैं। मिस फील्ड, फारनल, कार्पेन्टर, नारग तथा मैकनिकल आदि ने नाम का भाव मन्त्र-पाठ की भाति ही लिया है। सरदार खज़ान सिंह ने भी नाम जपने के भाव को उसी रूप मे ही बताया है कि नाम के जाप से हमारे भीतर एक बडे अद्भुत एव रसपूर्ण अमृत का भण्डार खुल जाता है और इस भण्डार से हमे परम सुख, परमानन्द तथा पूर्ण प्रसन्नता (आह्लाद) प्राप्त होती है।

यदि नाम के अर्थ किसी पद को बार-बार रटना या उसका जाप करना है तो फिर नाम तथा जादू और फूक मारने वाले मन्त्रो मे कोई अन्तर नही है। पुराने मन्त्र पाठ भी इसी प्रकार ही समझे जाते हैं। नाम के इन अर्थों मे जादूगरी का लेश है बल्कि इन अर्थो मे नाम है ही जादू। नाम मे यह भाव लेने का प्रारम्भ हिन्दु नैयायिक मत का वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार किसी वस्तु का ज्ञान उसका नाम लेने से होता है, भले ही वह वस्तु किसी अन्य

ज्ञानेन्द्री का विषय न भी हो सके किन्तु यदि उसका बार-बार नाम लिया जाए तो अवश्य उस वस्तु का ज्ञान होगा। कारण यह कि अक्षरो तथा शब्दो मे एक परोक्ष (गुप्त) जादु शक्ति है जो उनके उच्चारण करने से प्रकट होती है। इस सिद्धात के अनुसार अक्षर-शब्द सत्य हैं, अविनाशी हैं और वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्रदान करते है। इसी सिद्धान्त से यह विचार भी बन गया कि अक्षरो, शब्दो (पदो) तथा मन्त्रो की अलौकिक शक्ति का प्रभाव नही होता यदि इन शब्दो का शुद्ध उच्चारण न किया जाए, अथवा अक्षरो का क्रम आगे पीछे हो जाए, या मात्राओ मे अन्तर पड जाए। इसी लिए यह विचार भी घर कर गया कि मन्त्रो, नामो या पदो की यह गुप्त शक्ति उनके अनुवाद मे नही होती। केवल वास्तविक तथा मूल पद के उसी भाषा मे ठीक उच्चारण से पाठ किया जाए तभी उस मन्त्र या पद का जाप फलीभूत होगा। पदो तथा नामो की यह गुह्य (परोक्ष) शक्ति देवताओ तथा ईश्वर के नाम से विशेष रूप मे सम्बन्धित हो गई। इस सिद्धान्त का भाव और यही निश्चय भिन्न २ रूपो मे ससार के बहुत से मत मतान्तरो के पूजा पाठ का अग बना रहा है।

ईसाइयो मे ईश्वरीय नाम को ईश्वरीय शक्ति का स्वरूप मानना बहुत प्रसिद्ध है। बाईबल मे 'वर्ड' Word शब्द—कलाम तथा 'नेम' Name नाम विशेष महत्व रखते हैं। जिस प्रकार कलाम—शब्द—अकाल पुरुष की आज्ञा को क्रियात्मक रूप देने वाला प्रतिनिधि (एजट) माना है, उसी प्रकार नाम को भी बाईबल ने ईश्वरीय शक्ति से विशेष रूप मे सम्बन्धित किया है। ईश्वरीय नाम को इस आध्यात्मिक शक्ति मे निश्चय, फारनल के कथनानुसार, भारत के कई नए तथा प्राचीन धर्मों के सिद्धातो मे मिलता है। बुद्ध मत के अनुसार स्वर्ग लोक के राजा 'अमिताभ' का नाम इतना पवित्र समझा जाने लग पडा था कि यदि बज्र (घोर) पाप करने वाला महा पापी भूल से भी "अमिताभ" शब्द मुख से निकाल देवे या उसके मुख से अनजाने ही यह शब्द निकल जाए तो उसका स्वर्ग लोक मे निवास होना आवश्यक था। फारनल आगे लिखता है कि गुरु नानक देव जी की रचित वाणी मे भी नाम की गुह्य एव परोक्ष शक्ति पर बहुत बल दिया है। गुरु जी ने लिखा है कि केवल नाम सुनने से ही

पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है, काल को वश मे किया जा सकता है और मृत्यु का भय नही रहता। पाप एव चिन्ता नाम जपने वाले के समीप नही आते। नाम का जाप करने वाले के भीतर अकाल पुरुष की महान शक्ति प्रवृष्ट करती है। फार्नल लिखता है कि हमारी अपनी धार्मिक पुस्तको—'ओल्ड टैस्टेमेट' तथा न्यू टैस्टेमेट' (बाईबल) मे भी ईश्वर के नाम मे बडी गुप्त (गुह्य-परोक्ष) शक्ति बताई है। यह शक्ति चेतन सत्ता की पुरुषत्व सम्बन्धी शक्ति है और नाम के साथ स्वत सिद्ध सम्बन्धित है तथा नाम लेने वालो के भीतर यह शक्ति स्वाभाविक्त ही प्रवृष्ट होती बताई गई है। यह समस्त विचार यद्यपि नये तर्को, अनुसन्धानो तथा विचारो के अनुसार अपरिचित तथा असम्भव ही प्रतीत होता हो, परन्तु यह विचार धार्मिक पुस्तको मे है अवश्य। साधारण मनुष्यो का नाम की जादु शक्ति पर निश्चय बडा दृढ है। वास्तव मे यह पुरातन तान्त्रिक समय के विचारो का प्रभाव है और पुराने जादु-टूणो क मन्दिरो के खण्डहर है जो कि बडे बडे प्रसिद्ध धर्मो म भी विद्यमान है।

फार्नल के सम्पूर्ण कथन का भाव यह है कि ईश्वरीय नाम के साथ जादु भरी शक्ति का सम्बन्ध बडा पुरातन है और समस्त धर्मो मे विद्यमान है। फार्नल ने नाम के इस पुरातन भाव की झलक सिक्ख धर्म के नाम सिद्धान्त मे भी देखी है। मेरे विचार मे यह न्याय नही है। सिक्ख धर्म के अनुसार नाम-स्मरण से जादु एव मत्रो वाला भाव लेना अपने विचार तथा निश्चय को गुरु साहिब के सिर मढना है। अर्थात् उन पर थोपना है। इस बात मे सन्देह नही और इस बात से इन्कार भी नही किया जा सकता कि गुरबाणी की कई पक्तिया तथा शब्द ऐसे है जिनका अर्थ नाम की जादुभरी शक्ति को बताना है। नाम को मत्र भाव मे प्रकट करने वाले शब्द बहुत है। किन्तु साथ ही यह भी बात अवश्य है कि उतने अपितु अधिक शबद ऐसे भी हैं जिन मे साफ एव स्पष्ट रूप मे गुरु साहिब ने नाम स्मरण को जादु रूप समझने से रोका है और नाम के प्रभाव मे अन्त करण की शुद्धि तथा नैतिक उन्नति पर बल दिया है। ऐसे शबदो के दिखावे मात्र विरोधी भावो को कैसे मेला जाए ? इन दो विरोधी विचारो के होते हुए आवश्यक है कि हम गुरु साहिब के वास्तविक

भाव को ढूडे। नाम से जब कभी भी जादु मत्र का भाव लिया गया है तो वहा किसी शवद अथवा पद के बार बार जाप करने के अर्थ लिए गए हैं। इस प्रकार का अभ्यास कि उसका हमारी आत्मिक तथा मानसिक या नैतिक एव सदाचारक उन्नति मे कोई सम्बन्ध नही होता। कुरान शरीफ मे लिखा है कि अल्ला का नाम लेने से हम शैतान के फदे से बचे रहते हैं। यदि यह नाम लेना केवल जिह्वा हिलाना और बार बार जाप था तो गुरु साहिब इस विचार से सहमत नही थे। गुरु नानक देव जी नीरस तथा निस्सार मालाओ एव तसबियो के फेरने वालो के प्रति कहते हैं "जब तुम माला पकड कर मनको को गिन गिन कर अल्ला या राम कहते हो तो तुम्हारा ध्यान ईश्वर की ओर नही होता और आर्थिक पदार्थो के चिन्तन मे फसे हुए होते हो। तुम्हारी मालाये इसलिए केवल मात्र दिखावा हैं तथा तुम्हारा केवल मात्र नीरस जिह्वा पाठ केवल धोखा।" (पृष्ठ ५१, मैकालिफ—प्रथम भाग)। इसी प्रकार श्री दशमेश जी बताते हैं, "वे पाखण्डी लोग जो नाक कान बन्द करके दिखावे की समाधि लगाते हैं या मनके फेरते हैं वे सब मलीन पुरुष हैं" (मैकालिफ भाग पचम पृष्ठ १५६)। गुजरी राग मे गुरु अमरदास जी का आदेश है

राम राम सभु को कहै कहिऐ राम न होइ।।

सूही राग मे गुरु रामदास जी बताते हैं —

हरि हरि करहि नित कपटु कमावहि हिरदा सुधु न होई।।

बिहागडे की वार के शबद मे भी ऐसा ही विचार बताया है कि समस्त ससार ईश्वर ईश्वर पुकारता है, परन्तु ईश्वर इस प्रकार प्राप्त नहीं होता। राग मलार मे गुरु साहिब बताते हैं कि लोग राम का सार ही नही जानते। यह जिह्वा पाठ नही है, यह तो हृदय का मेल है, प्रीति लगानी है और एकस्वरता है। "बिनु जिहवा जो जपै हिआइ। कोई जाणै कैसा नाउ" (पृष्ठ १२५६), 'नाम निधानु वसिआ घर अन्तरि रसना हरि गुण गाई" (पृ० १२६५)। ईश्वर अक्षरो मे नही है। इसलिए पुस्तको ग्रथो से बाहर है। अक्षर तथा शब्द उसे प्रभावित नही करते। समस्त ससार अक्षरो द्वारा जाना जा सकता है, परन्तु परमात्मा इनकी लपेट मे

नही है

द्रिषटमान अक्खर है जेता ।।
नानक पारब्रह्म निरलेपा ।।

(बावन अखरी)

इसी प्रकार जपुजी साहिब मे बताते हैं

अखरी लिखणु बोलणु बाणि
जिनि इहि लिखे तिसु सिरि नाहि ।।

जगत अथवा ससार का सब कुछ अक्षरो द्वारा जाना जा सकता है, परन्तु इनका कर्ता इनके घेरे से बाहर है। अक्षरो से समस्त सासारिक सम्बन्ध उत्पन्न हो सकते है, परन्तु यह अक्षर, नीरस एव निस्सार, ईश्वर से सम्बन्धित करने का सामर्थ्य नही रखते। ईश्वर प्राप्ति के लिए अक्षरो का पढना आवश्यक नही है

जो प्राणी गोविन्दु धिआवै ।।
पडिआ अणपडिआ परम गति पावै ।।

(गउडी म० ५)

इसलिए पुस्तको एव शास्त्रो का ज्ञान परमानन्द प्राप्ति के लिए कोई विशेष रूप मे सहायक नही होता। इसलिए नाम अक्षरो या पदो का जाप नही है। न ही कोई नीरस तथा शुष्क विचार अथवा कोई काल्पनिक एकाग्रता है। यह तो हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व एव परिवर्तन का नाम है। यह एक मानसिक क्रान्ति है। नाम हमारे समस्त जीवन, सम्पूर्ण कार्य व्यवहार को शुद्ध करता है।

नामु हमारै सगल आचार ।।
नामु हमारै निरमल बिउहार ।।

(पृ० ११४५ भैरो म ५)

(३)

नाम का लक्षण

नाम वर्णनातीत एव अकथनीय है। इसलिए नाम का लक्षण नहीं किया जा सकता। नाम ज्ञानेन्द्रियो का विषय नही, नाम एक क्रियात्मक

अनुभव है, यह एक अनुभूति है, रस है इसलिए अक्षरो के स्वरूप मे बताया नही जा सकता। नाम अवस्था मे मन, आत्मा, शरीर की दशा कुछ थोडी कही सुनो जा सकती है। वास्तव मे कोई भी परम सत्य पदार्थ या अनुभूति को वाणी द्वारा प्रकट नही किया जा सकता। डाक्टर मूर ने 'पुण्य' या 'नेकी' के सम्बन्ध मे भी यही कहा है। नेकी नेकी है अथवा पुण्य पुण्य है, बस इससे बढ कर और कुछ नही कहा जा सकता। आनन्द या प्रसन्नता का कोई क्या लक्षण करेगा। हाँ आनन्द या प्रसन्नता मे शरीर की अवस्था का कोई वर्णन कर दे तो सम्भव है। नाम तो परम आनन्द प्राप्ति है फिर इसका लक्षण तो सर्वथा ही असम्भव है। हा नाम से उत्पन्न सौन्दर्यानुभूति का प्रकाश अथवा स्वरूप प्रतीत हो सकता है। जब नाम प्राप्ति मे मन एव आत्मा सर्वव्यापक ज्योति से एकस्वर होते है तो मनुष्य पर विस्मादी—हैरानी—की अवस्था तारी होता है।

लायड मार्गन लिखता है कि मानसिक एव शारीरिक घटनाओ का ज्ञान प्राप्त करने की दो विधिया हैं। एक विधि से तो हम उनके बाह्य स्वरूप को जानते हैं अथवा हमे शारीरिक पहलु का ज्ञान होता है और दूसरी विधि से उनके आन्तरिक, मानसिक अथवा प्रत्यक्ष पहलु का ज्ञान होता है। पहली विधि ज्ञानेन्द्रियो की है और दूसरी अनुभूति की। अनुभूत ज्ञान (स्पर्श) मे रस है, आनन्द है, एकता का भाव है। गुरु जी ने इस सब का नाम विस्माद (सौन्दर्यानुभूति) रखा है। गुरबाणी मे विस्माद एव वाहु वाहु पर बहुत बल दिया गया है।

(क) बिसमन बिसम भए बिसमाद ॥
जिनि बूझिआ तिसु आइआ स्वाद ॥ (पृ० १८५)

(ख) नउ निधि अम्रितु प्रभ का नामु ॥
देही महि इस का बिस्रामु ॥
सुन समाधि अनहत तह नाद ॥
कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥२३॥
(पृ० २९३)

विस्माद एव नाम दो वस्तुए नही हैं। नाम का आभास ही विस्माद है। जिस प्रकार ईश्वर की हस्ती सिद्ध करने के लिए

नैय्यायिक एव दार्शनिक तर्क देते हैं उसी प्रकार अकाल पुरुष की हस्ती का प्रमाण विस्माद द्वारा भी दिया जाता है। बल्कि परमात्मा स्वयं विस्मादी है और विस्माद मे रहता है। वह अनन्त विस्माद है। इस विस्माद की वास्तविकता तथा तोल एव परिमाण उसके अतिरिक्त कोई नही जानता। यह विस्मादी स्थिति मनुष्य पर भी तारी रहती है। इस विस्माद का कारण कोई विशेष प्रकार का अनुभव नही है। वह प्रत्येक अवस्था जो मनुष्य का उसके अह मे से निकाल कर, अपनत्व के परिवेश (चारदीवारी) से बाहर ले जाती है और मस्ती लाती है विस्माद का फल देती है। कभी किसी नैतिक उच्चता के चमत्कार का अनुभव आश्चर्यजनक (अद्‌भुत) भाव एव रस उत्पन्न करता है। किसी उच्च गुण की प्रशसा, किसी आनन्ददायक दृश्य का देखना, किसी उच्च पवित्र कला वाले राग, कविता, प्रकृति की सुन्दरता आदि का दृश्य भी अपनत्व एव अह को भुला कर असीम विस्मादी स्थिति उत्पन्न करता है। शूरवीरता वाले कारनामे रणभूमि की तोपो एव नगारो की चोटो मे भी कभी कभी कोई ऐसा अलौकिक स्पन्दन होता है कि मनुष्य अपने आपको भुला कर किसी परोक्ष अलौकिक (ईश्वरीय) असीम शक्ति का अस्तित्व अनुभव करता है। उस आभास (अनुभूति) मे एक रस है, वह विस्माद है। उस उच्च एव सर्वव्यापक अस्तित्व का आभास करना नाम जपना है। वह अस्तित्व नाम है, नाम का आभास विस्माद है और विस्माद का स्वरूप 'वाहिगुरु' शब्द है। ऐसी अवस्थाओ मे मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। यह अलौकिक दृश्य, तथा अद्‌भुत अनुभूति (स्पन्दन) सर्वव्यापक अस्तित्व के स्पर्श से प्रकट होकर अह के बन्धन तोड देते हैं और सकुचित अपनत्व की सीमायें टूट कर विस्माद की बाढ आ जाती है

हउ अकाल बिकल भई गुर देखे ॥
हउ लोट पोट होइ पईआ ॥

(बिलावल म ४, पृ० ८३६)

प्रभ पेखीऔ बिसमाद चाखि अनद पूरन साद ॥

(बिलावल म ५, पृ० ८३७)

यह विस्मादी दृश्य एव अनुभूति कोई मानसिक कल्पना, भ्रांति अथवा निराधार भ्राति नही है। यह तो एक प्रत्यक्ष ज्ञान है और यथार्थ एव ठोस अस्तित्व का ज्ञान है। वह ज्ञान जो ज्ञानेन्द्रियो द्वारा प्राप्त ह ता है, आखो से देखा और कानो से सुना जाता है। हाँ यह बात अवश्य है कि ज्ञानेन्द्रियो द्वारा प्रस्तुत होते होते भौतिक बुद्धि का विषय बन कर तोडा फोडा नही जाता और कम या अधिक के विचार से तोला एव मापा नही जाता। भिन्न करने वाली शक्ति इस पदार्थ को भिन्न भिन्न करके नही दिखाती। यह शक्ति एव बुद्धि तो ऊपर के तल पर ही रह जाती है। बुद्धि तो रग, रस, रूप आदि मे ही भूली रहती है। फूल को, फूल की पत्तियो को सबको अलग अलग करके देखती है और इस भिन्नता मे ही रह जाती है, समूचे का ज्ञान, पूर्णता का रस, अनुभूति द्वारा आता है। यह अनुभव, आभास अथवा आन्तरिक दृष्टि वस्तु के अस्तित्व और उसके वजूद के भीतर प्रवेश कर जाता है और उससे एक रूप होकर विस्माद उत्पन्न करता है। भेद, अथवा अन्तर या विमुखता बुद्धि का फल है। अनुभव एकता एव सर्वेकता का आभास देता है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—पुरुष, वस्तु और उसका जानना यह सब एक रूप हो जाते हैं। यह विस्मादी अनुभव है जो कि मनुष्य को परोक्ष की सर्वव्यापक ज्योति से जोडता है। व्यवहार मे भी परमार्थ के दृश्य दिखाता है। खालक तथा खलक को ओतप्रोत करके एक रूप बताता है। ईश्वरीय शक्ति का यह स्पर्श प्राकृतिक रग रूपो द्वारा इतना प्रबल एव ठोस है कि कई नास्तिक लोग ईश्वर की शक्ति (हस्ती) से भले ही इन्कार करें परन्तु इस परोक्ष सत्ता के अस्तित्व से इन्कार नही कर सकते। पशु—विज्ञान का निपुण प्रोफैसर जुलियन हक्सले ने अपना निश्चय बताते हुए लिखा है "मैं ईश्वर की हस्ती को नही मानता। परन्तु मनुष्य जीवन मे कुछ एक ऐसे अलौकिक अनुभव है जो साधारण अनुभवो से बहुत ऊचा उठते है। ऐसी घटनाये मनुष्य के अपनत्व को इतना बडा तथा विशाल करती है कि साधारण व्यावहारिक घटनाओ मे मनष्य को इनका आभास नही हो सकता। इन घटनाओ मे परम महानता एव पूर्णता का गुण होता है। प्रकृति के इस प्रेम का उचित प्रकटीकरण विस्माद एव आनन्द है। यह विस्माद एव आनन्द

चाहे प्राकृतिक दृश्यो के पीछे किसी काल्पनिक सर्वव्यापक ज्योति के कारण समझ लो चाहे आकाश तारो, समुद्र अथवा सागर और पशु पक्षियो के प्रेम से उत्पन्न समझ लो। आश्चर्य एव आह्लाद आनन्द को विस्माद कहा जाता है—यह विस्माद अकथनीय है और श्रद्धालु को यह परमात्मा से जोडता है

पारब्रह्म प्रभु द्रिसटी आइआ पूरन अगम विसमाद ॥
(गउडी म ५ पृ० ३२०)

विस्मादी ज्योति से एकस्वर हुआ मन ऐसा रस लेता है कि अन्य समस्त रस एव स्वाद उसकी तुलना मे तुच्छ है

हरि रस पीवत सद ही राता ॥
आन रसा खिन महि लहि जाता ॥
हरि रस के माते मनि सदा आनन्द ॥
आन रसा महि विआपै चिद ॥१॥

नानक चाखि भए बिसमादु ॥
नानक गुरु ते आइआ सादु ॥
(आसा म ५, पृ० ३७७)

नानक साच रते बिसमादी, बिसम भए गुण गाइदा ॥
(मारू म ५, पृ० १०३५)

ऐसी विस्मादी अवस्था मे गुणो और गुणो वाली हस्तो का भेद नही रहता अथवा अकाल पुरुष के अस्तित्व के आभास मे 'उसके अस्तित्व' तथा 'मैं' का ज्ञान, उसके गुणो—नामो और उसके अस्तित्व का भिन्न भेद मिट जाता है। ऐसी अवस्था मे ईश्वर भी विस्माद है। जीव-ब्रह्म-ब्रह्माण्ड सब विस्माद में एक हो जाते है। इस प्रकार से सिक्ख धर्म मे प्रकृति का सौन्दर्य ईश्वरीय है और ईश्वर के कारण है। ससार उद्यान है और उद्यान के सौन्दर्य का स्रोत अकाल पुरुष है। पुष्पो, पर्वतो नदियो की सुन्दरता एव प्रेम की ज्योति, आत्मा एव प्राण सब कुछ ईश्वर ही ईश्वर है।

एको एक वखाणीऐ विरला जाणै सवाद ॥
गुण गोविन्द ना जाणई नानक सभ विसमाद ॥

बसन्त महला ३ (पृ० ११७७)

बसन्तु चडिआ फूली बनराइ ॥
एहि जीअ जंत फूलहि हरि चितु लाइ ॥१॥
इन बिधि इहु मनु हरिआ होइ ॥
हरि हरि नामु जपै दिन राती गुरमुखि हउमै कढै धोइ-
॥ १ ॥ रहाउ ॥

सतिगुर बाणी सबदु सुणाए ॥
इहु जगु हरिआ सतिगुरु भाए ॥२॥
फल फूल लागे जा आपे लाए ॥
मूलि लगै ताँ सतिगुरु पाए ॥३॥
आपि बसन्तु जगतु सभु वाडी ॥
नानक पूरै भागि भगति निराली ॥

इस प्रकार की निराली भक्ति गुरु साहिब ने चलाई है। कर्ता की कुदरत (सृष्टि-अलौकिकता) के रस मे स्वय को भूल कर विस्माद रूप हो जाना।

अकाल पुरुष न केवल स्वय ही सुन्दर है, अपितु ब्रह्माण्ड की सुन्दरता का भोक्ता भी है और इस समस्त सुन्दरता का स्रोत भी स्वय ही है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड न केवल सुन्दर स्वरूप कर्ता पुरुष से सौन्दर्य हो लेता है बल्कि इस सुन्दरता के अनुभव मे से रस भी लेता है, भाव यह कि अकाल पुरुष प्रदत्त सौन्दर्य का उपभोग भी करता है। इस प्रकार कहे कि ससार एव माफीहा—ब्रह्माण्ड एव पिण्ड, जो कुछ ब्रह्माण्ड मे है सब विस्मादी हैं। इसलिए श्री आसा की वार मे गुरु नानक साहिब प्रत्येक वस्तु को विस्माद मे बताते है। कविता, वार्ता, राग नाद, रूप, रग, जीव जन्तु, पशु पक्षी, पवन पानी सब कुछ विस्माद मे है। इन पदार्थों का परिवर्तन आदि भी विस्माद मे ही है

आसा महला १ पृ० ४६३

विसमादु नाद विसमादु वेद ॥
विसमादु जीअ विसमादु भेद ॥
विसमादु रूप विसमादु रग ॥
विसमादु नागे फिरहि जत ॥

विसमादु पउणु विसमादु पाणी ॥
विसमादु अगनी खेडहि विडाणी ॥
विसमादु धरती विसमादु खाणी ॥
विसमादु सादि लगहि पराणी ॥
विसमादु सजोगु विसमादु विजोगु ॥
विसमादु भुख विसमादु भोगु ॥
विसमादु सिफति विसमादु सलाह ॥
विसमादु उझड विसमादु राह ॥
विसमादु नेडै विसमादु दूरि ॥
विसमादु देखै हाजरा हजूरि ॥
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु ॥
नानक बुझणु पूरै भागि ॥१। ३॥

उषा काल, उस समय पक्षियो की भाति भाति को बोलिया, रात्रि के समय आकाश व तारो की चमक और आकाश की सजावट सब विस्मादी अवस्था उत्पन्न करते हैं।

चिरी चुहकी पहु फुटी वगनि बहुतु तरग ॥
अचरज रूप सतन रचे नानक नामहि रग ॥
(गउडी म. ५, पृ० ३१९)

भिन्नी रैनडीऐ चामकनि तारे ॥
जागहि संत जना मेरे राम पिआरे ॥
(आसा म ५, पृ० ४५९)

गगन मण्डल मे चाँद सूर्य के प्रकाश पुज दीपक और पृथ्वी पर जीव जन्तुओ की चहल पहल तथा अद्भुत रचना सब विस्माद मे हैं और विस्माद उत्पन्न करते हैं। वर्षा ऋतु मे बादलो की घनघोर घटा और मोरो की रुन झुन :

मोरी रुणझुण लाइआ भैणे सावणु आइआ ॥
(वडहस म १ पृ० ५५७)

वृक्षो की घनी छाया तथा वनस्पति की सुन्दरता अथवा रौनक

छाव घणी फूली वरनाइ ॥
गुरमुखि विगसै सहिज सुभाइ ॥

समस्त पदार्थ तथा समस्त अवस्थाये विस्मादो मन को स्वत सिद्ध ही प्रसन्नता एव वाह वाह के क्षेत्र मे ले आती हैं। यह विस्मादी आनन्द मन के बाह्य जगत से समुचित सम्बन्ध से आता है। इसका उद्गम मन मे है, बाहय वस्तुओ मे नही है। हम यह नही कह सकते कि अमुक प्रकार को वस्तुए अमुक प्रकार को वस्तुओ से निजि भेद इस विचार से रखती हैं कि एक प्रकार की विस्माद उत्पन्न करती हैं और दूसरी प्रकार की नही। प्रत्येक वस्तु से विस्मादी भाव उत्पन्न हो सकता है। हा यह अवश्य है कि कही से अधिक और कही से थोडा। विस्माद के उत्पन्न करने के दृष्टिकोण से वस्तुओ मे जाति भेद नही है परन्तु स्तर भेद अवश्य है। अभ्यास से मन सदैव विस्माद मे रहने लग पडता है और बाहय उद्भासक (उपादान) या कारण की आवश्यकता नही रहती। हाँ जिज्ञासु के लिए बाहय पदार्थों से विस्माद उत्पन्न करने वाले उद्भासक की आवश्यकता अवश्य है। किन्तु विस्मादी अवस्था अधिकतर अन्त करण की शुद्धि, जीव की ग्राहय शक्ति और प्रभावित होने वाले मनोभाव पर निर्भर है, जिसके भीतर सुलगने वाली चिंगारी है, जिसके भीतर जागृत ज्योति है। वह प्राकृतिक दृश्यो, रगो रूपो, प्राकृतिक नाद गीत एव सन्तोष सूत्र से प्रभावित होकर सदैव आनन्द मे रह सकती है। जिसने समुद्र या सागर देखा है, नीला आकाश देखा है। चन्द्रमा एव तारिकाओ को देखा है, जो पर्वतो पर चढा है, मरुस्थलो मे से गुजरा है, जिसने कभी मनोभाव से कुछ कहा है या सुना है, जिसने कभी टीले या पहाडी चट्टान या अपने छोटे बालक की जुराब ही प्रेम से देखी है, जिसने कभी माता पिता और बहन भाई के प्रेम को अनुभव किया है वह अवश्य नतमस्तक होगा। ईश्वर की कृतज्ञता मे उसके अस्तित्व को अनुभव करके वाह वाह के मण्डल मे आकर वाहिगुरु-वाहिगुरु अलापेगा। जब कभी कोई भी सचेतन मन वाला व्यक्ति सृष्टि की किसी वस्तु की ओर भी देखता है या उसके सम्बन्ध मे सोचता है, केवलमात्र विज्ञान की अलग अलग करने वाली दृष्टि से हिसाब किताब (लेखे) की माप तोल करने वाली दृष्टि से नही प्रत्युत एक भावमय रसपूर्ण एकता के विचार से और सम्पूर्ण सृष्टि मे स्रष्टा की व्यापकता के अनुभव से— तो वह अवश्य परमात्मा की लीला

से विस्माद प्राप्त करेगा और अनायास ही वाहिगुरु वाहिगुरु पुकारेगा। बात क्या विस्मादी की आँख प्रत्येक वस्तु एव पदार्थ मे से, भले ही वह साधारण व्यक्ति को आकर्षित करे या न, स्वाद एव रस लेती है

जिनि चाखिआ तिसु आइआ सादु ॥
जिउ गूगा मन महि बिसमादु ॥
आनन्द रूपु सभु नदरी आइआ ॥
जन नानक हरि गुण आखि समाइआ ॥

(बिलावल पृ० ८०१)

विस्मादी के लिए समस्त सृष्टि ही आनन्ददायक है, उत्तम है, पवित्र एव सुन्दर है। बोजनकुइद लिखता है कि विस्मादी क्षेत्र मे सत्य झूठ, सत्य असत्य, पुण्य पाप के भिन्न भेद मिट जाते हैं। सब कुछ आनन्द रूप तथा वाह वाह से परिपूर्ण होता है। महर्षि टैगोर अपने एक चीनी मित्र के सम्बन्ध मे अपनी पुस्तक 'रिलेजन आफ मेन' मे लिखते हैं पीकिंग की गलियो मे हम जा रहे थे तो अकस्मात मेरा चीनी मित्र बडे रस एव आनन्दपूर्ण आवेश मे आकर बडबडाया और पुकार कर कहने लगा, "वाह! यह देखो गधा!!' हाँ वह एक साधारण गधा था जिसके सम्बन्ध मे किसी आवेश मे आकर मुझे ज्ञात करवाने की आवश्यकता नही थी। परन्तु उसके शब्दो ने मुझे विचार का अवसर दिया। यह पशु ऐसा है कि जिसके प्रति लोगो के मन मे कोई उत्साहपूर्ण सस्कार नही हैं। साधारण गधा है, यदि मेरा चीनी मित्र इस अलौकिक ढग से उसका परिचय न कराता तो सम्भवत वह मुझे भी दिखाई न देता, परन्तु नही। मेरे मन और मेरे चीनी मित्र के मन मे अन्तर था। कोमल भावनाओ तथा विस्मादी उद्वेगो से मेरा मन खाली किन्तु उसका परिपूर्ण था। इसलिए उसने गधे को एक अर्थपूर्ण वस्तु अनुभव की और उसमे से कितना कुछ पाया। मेरे लिए वह साधारण गधा रहा और मेरे मन को वह आकर्षित न कर सका। किन्तु चीनी मित्र के लिए वह एक सत्य वस्तु थी, कोमल ससार का एक अद्भुत पदार्थ था, जिसने उसके मन को जागृत किया और एक महान चित्रकार की कला की प्रशसा के क्षेत्र मे ले आया। वह गधे को देख कर गधा—कर्ता—स्रष्टा तक पहुच गया और मैं उसके गधेपन मे भूल कर उसे अनदेखा

हो कर बैठा। यह था विस्मादी मन के ज्ञान और एक साधारण सासारिक मन वाले का अन्तर।

(४) इसलिए नाम एक विस्मादी अवस्था है। यह चित्रकार का ज्ञान नही।

विस्मादी (Aesthete) तथा चित्रकार (artist) दोनो के दृष्टिकोण मे अन्तर है। विस्माद (सौन्दर्यानुभूति) तो एक साधारण परन्तु सचेतन मन की अनुभूति है। यह तो विस्मादी अनुभूति द्वारा प्राप्त अपने आस पास का ज्ञान है। या कहे कि जब हम सृष्टि तथा उसके पदार्थों को वाह वाह के दृष्टिकोण से देखते हैं तो इन सब प्रत्यक्ष पदार्थों के पीछे परोक्ष दैवी शक्ति, ईश्वरीय ज्योति तक पहुचते हैं और उसके साथ स्विच-ग्रौन' एकस्वर हो जाते है। यह नाम है। एक चित्रकार भी पदार्थों का सौन्दर्यपूर्ण दृष्टिकोण से देखता है, परन्तु उसका लक्ष्य और होता है। इसलिए यद्यपि चित्रकार विस्मादी मण्डल से बाहर नही है परन्तु विस्माद मार्ग चित्रकार की कला नहीं है। यह तो साधारण व्यक्तियो का ज्ञान नही है, परन्तु है जीते जागते (सजीव) एव प्रभावशाली मन का। इसलिए पूर्ण रहस्यवादी के लिए चित्रकार होना आवश्यक नही। न ही प्रत्येक चित्रकार आवश्यक ही विस्मादी है और न ही प्रत्येक विस्मादी आवश्यक हो चित्रकार है। दोनो मे समीप का सम्बन्ध अवश्य है। एक वैज्ञानिक या नीतिवान की अपेक्षा चित्रकार सुगमता से विस्मादी बन सकता है अथवा विस्माद या नाम मण्डल मे आ सकता है। इसी प्रकार यदि विस्मादी चित्रकार बनना चाहे तो भी वह अन्य कई कलाकारो से सुगमता से और शीघ्र बन सकेगा। कारण यह है कि हमारे मन मे दोनो के लिए एक ही शक्ति कार्य करती है। कोमल कलामय भाव विस्मादी मण्डल का एक पहलु है। इस साम्यता के होने पर भी एक चित्रकार के लिए आध्यात्मिक होना आवश्यक नही, परन्तु

नास्तिक का विस्माद थोथा एव क्षणिक होगा। इसलिए सत्य तथा अक्षुण्ण विस्माद के लिए अकाल पुरुष मे निश्चय होना आवश्यक है।

एक चित्रकार—कलाकार—ससार को तथा सासारिक पदार्थों को द्वैतभाव से देखेगा और समस्त पदार्थों को दो विभागो मे बाटेगा सुन्दर एव कुरूप। विस्मादी के लिए यह भिन्न भेद दिखावे के हैं, सत्य अवस्था मे नही हैं। कलाकार जानता है कि यह वस्तु सुन्दर है और वह कुरूप और इस सुन्दरता एव कुरूपता का क्या कारण है। सुन्दरता का ज्ञान, सुन्दरता के अग और इसके कारण। इन सब बातो को कलाकार वैज्ञानिक ढग से जानता है और बता सकता है। परन्तु विस्मादो के लिए सर्वत्र सुन्दरता ही सुन्दरता है। इसलिए वह प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर आनन्द प्राप्त करता है, उसे यह भा पता नही कि उसे वह रस सुन्दरता के कारण मिल रहा है या सुन्दरता किन प्रसाधनो से होती है और किन बातो स नही। वह सुन्दरता का रस पान करता है। उसे यह ज्ञात नही कि उसे सुन्दरता का ज्ञान है या नही अथवा इस रस का भी आभास है या नही। विस्मादी का रस (स्वाद) परिपूर्ण रस या स्वाद है। वह न्यून अथवा अधूरा नही। इस रसास्वादन—आनन्द-परमानन्द—मे कोई शका-सन्देह नही उठता, कोई किन्तु अथवा प्रश्न या सन्देह उठता ही नही। भ्रम, सन्देह एव शका तो तब उठती है जब आनन्द नीरस हो पूर्ण न हो, अधूरा हो या किसी ओर से अपूर्ण हो। कलाकार के लिए पदार्थो मे से कुरूपता भी मिलती है और सुन्दरता भी। इसके कारण भी वह जानता है इनका उपचार भो। वह वस्तु अपने किसी निश्चित परिणाम से किसी माप से परखता है ताकि वह ऐसी कला का निर्माण करे कि वह दोष एव न्यूनता से स्वतन्त्र हो। इसी लिए कलाकार के प्रयत्न का परिणाम द्वैत है और विस्मादी के रस का कारण कार्य हो एकता है। सौन्दर्यानुभूति का आनन्द अद्वैत भाव मे ही होता है। भेदभाव मे यह आनन्द सम्भव ही नही है। विस्माद मार्ग जीव को सर्वव्यापक अस्तित्व से जोडता है और अभेदता मे ले जाता है। कलात्मक रुचि उत्पन्न ही भेदभाव से होती है। कलाकार सासारिक पदार्थों की छान-बीन करता है छान-बीन करके सुन्दर

और कुरूप मे उनका विभाजन करता है। कलाकार के लिए ससार एक माल गुदाम है, एक मिले जुले पदार्थों का ढेर है। इस ढेर मे से वह आवश्यक पदार्थ छाट लेता है और उनसे अपनी प्रयोजन सिद्धि करता है। विस्मादी का अपना निजि स्वार्थिक प्रयोजन कोई नही होता। वह तो सुन्दर स्वरूप सुघड सुजान प्रीतम की रचना से एक रूप होना चाहता है। अपना आप भूलना चाहता है। यह विस्मृति कैसे आए ? यह आती है प्रीतम को प्रत्येक वस्तु मे अपना आप आत्मसात कर देने मे, वाह वाह कह कर इस रस एव आनन्द प्राप्त करने से। विस्माद मार्ग का यात्री एक सर्वगुण—सादृश्य—वाली रुचि मे चलता है और सर्व पदार्थ साम्यता स्थापित करके अपना आप, अह, भुलाता है— अथवा नाम अवस्था मे आता है। उसका मन प्रत्येक वस्तु को प्रेम करता है, अपनाता है, और उसमे अपना अश रखता है। प्रत्येक ओर कादर की कुदरत सुन्दरता से परिपूर्ण उसे दिखाई देती है और इसके साथ एकरूप होकर वह आनन्द प्राप्त करता हुआ सदैव वाह वाह के मण्डल मे रहता है। विस्मादी मत का लक्ष्य ही एक ऐसा व्यक्तित्व उत्पन्न करना है जो प्रशसा के भाव से परिपूर्ण हो अर्थात् प्रशसापूर्ण व्यक्तित्व (Appreciative Personality) हो। ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्व ही जीव—जगत—ब्रह्म की एकता का भाव रख सकता है।

इस प्रकार नाम के रग मे रगा जीव मनुष्यो के साथ, समस्त ब्रह्माण्ड के साथ एकस्वर होकर रहता है। नाम जपने का भाव ही एकस्वरता का है, अभेदता की अनुभूति का है। प्रेम एव वाह वाह की रुचि इसका मूल है। ध्यान की अवस्था मे तत्व या सत्य वस्तु का ज्ञान है। प्रेम, ध्यान तथा विस्माद के प्रभाव स्वरूप जीव वाहिगुरु वाहिगुरु के शब्द पुकारने से अधिक अन्य कुछ कह सुन नही सकता। इस रुचि को दृढ करना है, ऐसी वृति को स्वाभाविक बनाना है, ताकि तार न टूटे, कार्य व्यवहार मे भी और प्रत्येक दुख सुख मे वाह वाह का प्रवाह ही रहे। इसी बात को ही जाप अथवा स्मरण कहा जाता है। यह रुचि दैनिक जीवन मे सेवा का रूप धारण करती है। समस्त कर्म अकाल पुरुष के हेतु होते हैं ताकि सांसारिक बन्धनो से छूट कर अह के जाल मे से जीव निकला रहे।

इस रुचि से सेवा भी सरल हो जाती है, क्योंकि सब अपने आप दिखाई देता है। इस प्रकार ज्ञान-ध्यान भीतर से और निष्काम कर्म तथा सेवा बाहर से सिक्ख का जीवन परिपूर्ण बनाते हैं। पूर्व मे धर्म का ज़ोर ध्यान पर रहा है और पश्चिम मे कर्म पर। गुरु साहिब ने सिक्ख के जीवन मे नाम सेवा द्वारा दोनो का मेल किया है। काम करना, नाम जपना और बाँट कर खाना सिक्ख के जीवन के तीन पहलु हैं। विस्माद मार्ग के ये तीन अंग है। कार्य-कर्म तथा सेवा नाम के आधार है। नाम इन का मूल है, अन्यथा व्यक्ति अहं मे ग्रस्त हो जाता है।*

(५)
लिव (एकता की निरन्तर भावना)

जब मनुष्य का अन्तर्मन ब्रह्माण्ड के अन्तर्मन से एकस्वर हो जाता है और यह एकस्वरता तोडने से टूटती नही और छोडने से छूटती नही तो इस एकचित अवस्था को लिव कहते हैं। यह अभेदवादी एकता का निरन्तर आभास है। जब मनुष्य इस परिपक्व अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह सन्यासी की भाति ससार का त्याग नही करता बल्कि गुरु साहिब बताते हैं कि सच्ची लिव (प्रीति) वाला व्यक्ति उसी प्रकार कार्य-व्यवहार करता है, परन्तु सब कुछ वाहिगुरु के आश्रय करता है। समस्त जीवन-कर्तव्य उसके हेतु करता है। इस लिव के बिना वह जीवन को निस्सार और व्यर्थ समझते हैं

साची लिवै बिनु देह निमाणी ॥
देह निमाणी लिवै बाझहु किआ करे वेचारीआ ॥
(रामकली ३ आनन्द)

---

* विस्तार के लिए देखें इस लेखनी का 'अमृत' मे प्रकाशित लेख "निरकारी माटो"।

हमारा जीवन लिव के बिना निराश्रित एव दुख का रूप हो जाता है। परन्तु क्यो ? कारण यह कि जीव लिव के बिना प्रत्यक्ष सस र को ही सत्य मान लेता है। जो व्यक्ति बाह्य ससार को ही अपना लक्ष्य बना ले उसके लिए परम सुख और शाँति लुप्त हो जाते हैं। उसके लिए ससार दुखो का घर और जीवन रोग दिखता है। भीतर तृष्णा की अग्नि प्रचण्ड होती है। साँसारिक पदार्थों के सेवन से तृष्णा शात होने की अपेक्षा भडकती है। न ही कोई तृष्णा पूर्णरूपेण तुष्ट (शात) होती है। भौतिक ससार मे कई विघ्न एव कठिनाइया होती है, जिनके कारण कोई इच्छा पूरी तरह पूण नही होती। इसका परिणाम नैराश्य एव दुख होता है। इस समस्त नैराश्य तथा दुख का कारण हमारा स्वार्थ अथवा स्वार्थान्धता है जहाँ से कि हमारी सकुचित तृष्णायें उत्पन्न होती हैं। स्वार्थपरता का कारण लिव का टूटना है, भाव यह कि अह के कारण सर्वैकता को छोड कर अपने भीतर एक सकुचित अपनत्व स्थापित करना है। लिव टूटने से अह की दीवार निर्मित होती है और लिव (प्रीति) लगने से गिरती है

लिव छुडकी लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ '।

कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माईआ पाइआ ॥

(आनन्द २९)

लिव लगने से यद्यपि वासनायें रहती हैं परन्तु उनमे से स्वार्थपरता समाप्त हो जाती है जिसके कारण उन तृष्णाओ के पूर्ण होने या न होने से दुख सुख का भाव उत्पन्न नही होता। द्वैत तथा भेद विरोध एव दुख सब एकस्वर होने की अवस्था मे समाप्त हो जाते है और 'सूत' 'सुख' तथा 'सहज' का फल प्राप्त होता है। इस यथार्थ लिव के आश्रित हम इस भौतिक ससार मे रहते हुए भी इसके बन्धनो से मुक्त रह सकते हैं। पानी और कीचड मे उत्पन्न हुआ कमल का फूल अपना मुख सूर्य की ओर रखता है इसी प्रकार सच्ची लिव वाला व्यक्ति साँसारिक कार्यव्यवहार मे व्यस्त होते हुए भी ईश्वर से अलग नही होता, भाव यह कि एकस्वरता की अवस्था में विघ्न नही पडने देते। इस एकस्वरता की अवस्था के कई प्रमाण

गुरबाणी मे आए हैं। पतग उडाता हुआ बालक साथियो मे बाते करता है, हास्य विनोद भी करता है परन्तु उसका मन पतग और उसकी डोर मे है। नवयुवती सिर पर पानी का घडा उठाए सखियो के साथ बाते करती और हास्य विलास मे मस्त कुए से घर को आता है परन्तु उसका मन ऊपर उठाए घडे मे है। गाए बाहर खेतो मे घास चरने के लिए जाती है परन्तु मन पीछे छोडे हुए बछडे मे रहता है। माँ घर का कार्य आदि करती फिरती है परन्तु उसका मन उस अभिजात (बालक) की ओर है जिसे दूध पिला कर पालने मे डाला हुआ है। इसी प्रकार हाथो पावो से काम करते हुए मन को निरजन अकाल पुरुष से साथ लिव को बनाए रखना है। पिण्ड ब्रह्माण्ड तथा लोक परलोक एव जीव-ईश्वर सब एक साथ ही चलते हैं और इनकी एकता का आभास सच्ची लिव द्वारा होता है।

इस प्रकार का जीवन, भौतिक ससार के पदार्थों का उपभोग करते हुए विस्मादी अनुभव द्वारा परमानन्द की अवस्था को बनाए रखना और सच्ची लिव तार लगाए रखने का जीवन, राज योगी जीवन है। राजयोगी अफलातून का परम मनुष्य फिलासफर किंग है। ऐसा परम मनुष्य ही गुरमुख है। ब्रह्म ज्ञानी है। न किसी से डरता है और न किसी को डराता है। दुख सुख को समान रूप मे जानता है। ऐसा गुरमुख पच भी है। गुरु साहिब द्वारा बताए गए जीवन साँचे मे ढला यथार्थ मनुष्य 'पच' है। पच एक आदर्श व्यक्ति है। गुरमुख, ब्रह्म ज्ञानी सन, सिक्ख सब इसी पद के योग्य हैं।

श्री जपुजी साहिब की 'पच वाली १६वी पौडी मे पच के गुण बताते हुए गुरु जी कहते है कि पच राजनीति मे निपुण होने के कारण राजदरबारो मे भी सत्कारा जाता है और धार्मिक स्थानो मे भी सम्मानित होता है। इस ससार मे भी और अगले ससार मे भी सन्तुष्ट रहता है। पच के समस्त कर्म-विवेक बुद्धि के आश्रित ध्यान वृत्ति की एकाग्रता का परिणाम होते है। वह जीवन मुक्त होता हुआ इसी ससार मे ही परम सुख प्राप्त करता है। शुभ गुणो एव परमानन्द की सीमा तक पहुच जाता है। हर्ष विषाद दुख सुख के भेदो एव लेशो से वह दूर रहता है

सुरग नरक अम्रित बिखु ए सम तिउ कचन अरु पैसा ॥
उसतति निंदा ए सम जाकै लोभु मोहु फुनि तैसा ॥२॥

• •

नानक मुकति ताहि तुम मानहु इह विधि को जो प्रानी ॥३॥७॥
(गउडी म ९ पृ० २२०)

प्रभ की आगिआ आतम हितावै ॥
जीवन मुकति सोउ कहावै ॥
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु ॥
सदा आनन्दु तह नही बिओगु ॥
(गउडी सुखमनी)

यद्यपि ससार एव शरीर की स्वाभाविक कठिनाइयो तथा न्यूनताओ के कारण वह देखने मे साधारण जीवन ही व्यतीत करता है, परन्तु मुक्ति पदार्थ तो आत्मा का विषय है और मन से सम्बन्धित है। इसलिए प्राकृतिक ससार उसके मानसिक जीवन मे विघ्न नही डालता। परमानन्द अथवा पूर्णता मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाला पदार्थ नही। यह तो पच अथवा गुरसिक्ख के जीवन मे ही प्राप्त हो जाते हैं। वह अपने दैनिक कार्य-व्यवहार मे ही अह को वश मे करके परम तत्व रूपी ज्योति से एकस्वर होता है और निरन्तर सुख प्राप्त करता है। वह जीवित ही मर जाता है और मर कर फिर जीता है। भाव यह कि अपने सकुचित अह से निकल कर सर्वव्यापक अस्तित्व का हकदार बन जाता है।

इस अवस्था मे जीवन मुक्त न केवल स्वयं ही ब्रह्म के साथ एक रूप अनुभव करता है, अपितु उसके लिए समस्त ससार ही एकता एव अभेदता के रग मे रगा हुआ दिखाई देता है

हरहट भी तू तू करहि बोलहि भली बाणि ॥
(सलोक म ३ पृ० १४२०)

पशु पक्षियो एव रहट की आवाजो मे सब कुछ प्रभु का स्मरण ही सुनाई देता है। प्रत्येक ओर तू ही तू, तेरा ही तेरा है। श्री दशमेश जी ने ऐसे रस मे आकर कई बार 'तू ही' 'तू ही" लिखा और गुरु नानक देव जी बारह के पश्चात तुला की तेरहवी ढेरी मे "तेरा ही तेरा" मे मस्त हो गए। ऐसी अवस्था मे प्रत्येक आवाज़ मे से

सतिनाम की गुजार सुनाई देती है और वाहिगुरु का आलाप कानो मे पड़ता है। मिश्र देश के महापुरुष इखनोटन और कुरान एव बाईबल ने भी ऐसे सर्व सांसारिक ईश्वर के स्मरण की ओर सकेत किए है। यह ठीक है कि यह सब कुछ अपने भीतर का प्रतिबिम्ब होता है। अपनी आन्तरिक उच्चावस्था और दैवी स्मरण स्वभाव का प्रतिबिम्ब होता है। यह जीव—ब्रह्म की अभेदता का क्रियात्मक प्रमाण होता है। किन्तु इस अभेदता मे सिक्ख धर्म के अनुसार जीव "मैं ब्रह्म हू" नही कहता। बल्कि सब तू तू ही पुकारता है। वेदान्ती और गुरमत की एकता अभेदता मे कोई अन्तर नही है, केवल कहने का ढग भिन्न है। मैं ही मैं हू कहने मे सूक्ष्म अह बना रहता है और तू ही तू है मे नम्रता तथा दीनता का भाव ओत प्रोत है। वेदांती सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मैं मे लाकर अभेद करता है और गुरसिक्ख अपने आपको ब्रह्माण्ड मे एक रूप कर देता है। वह कुल (सम्पूर्ण) को अश मे समाविष्ट करने का प्रयत्न है और यह अश को सम्पूर्ण मे मिलाना है। यह अभेदता अस्तित्व की अभेदता है, मैं और तू की एकता है। मै अथवा मेरे का विस्तार नही। यह कोई अधिकार जमाना नही है, कोई स्वामी बनना नही है। यह स्तो अधिकार मे होना है, अस्तित्व है, दास्य भाव है। इसके अन्तर्गत कुछ प्राप्त नही किया जाता, अपितु हुआ जाता है। सत्य को प्राप्त करने का भाव तो यह हुआ न कि सत्य और वस्तु है और प्राप्त करने वाला और। प्राप्ति मे द्वैत है। गुरमत के अनुसार सत्य स्वरूप होना है। सत्य होने मे स्वय ही सत्य मे समाविष्ट होना है। इस अस्तित्व मे अपनत्व समस्त प्राकृतिक,सामाजिक एव मानसिक सीमायें पार कर जाता है। मैं मेरी का भाव नष्ट कर लेता है। इस विनाश मे, इस अपत्व को मिटाने मे एक अनोखा आनन्द है, सर्वव्यापक एव वास्तविक अस्तित्व का आभास होता है सयोग होता है। विछड़े हुओ का मेल होता है। इस सयोग की, आनन्द, एव रस की अवस्था का चित्रण आखो मे नही किया जा सकता। यह अकथनीय होता है

मिलबे की महिमा बरनि न साकउ नानक परै परीला ॥
(गूजरी ५, पृ० ४६८)

यह तो गूगे के गुण खाने वाली बात है। यह परमानन्द की

अवस्था है। इसे गुरसिक्ख पच ही अनुभव करता है। अनुभव ही करता है, बता नही सकता। "पूछे ते किआ कहीऐ"।

इस प्रकार जब समस्त दृष्टिकोण बदल जाता है और गहन एव आन्तरिक एकता का आभास दृढ हो जाता है तो फिर मनुष्य के अज्ञान, सन्देह और सशयो की पूर्ण निवृति हो जाती है। "फूटो आण्डा भरम का मनहि भइओ परगासु ॥ काटी बेरी पगह ते गुरि कीनी बदि खलासु" ॥ जीव अह मे से मुक्त हो जाता है। दिखावे के कर्म धर्म, सस्कार सब अह को बढावा देते हैं

करम धरम सभि बधना पाप पुन्न सन बधु ॥
ममता मोहु सु बधना पुत्र कलत्र सु धधु ॥
जह देखा तह जेवरी माइआ का सन बधु ॥
नानक सचे नाम बिनु वरतणि वरतै अधु ॥

(श्लोक म॰ ३ पृ० ५५१)

किन्तु जीवन मुक्त गुरसिक्ख की रुचि इस ढग से सुधर जाती है कि पाप अथवा खोटे कर्म करने या उनके प्रति रुचि दिखाना उसके लिए एक असम्भव तथा न हो सकने वाली बात हो जाती है। उसका अन्त करण बिल्कुल शुद्ध तथा निर्मल हो जाता है। उसकी विचारधारा शुभ एव स्वाभाविक बन जाती है। दार्शनिक काट लिखता है कि शुभ विचार की अच्छाई उसके किए कर्मों मे नही है। कर्मों के फल मे नही है। परिणाम से विचारधारा की परख नही की जा सकती। परिणाम निकलने मे तो कई प्राकृतिक कठिनाइयाँ एव विघ्न पड जाते हैं। शुभ विचार अपने आप मे ही स्वाभाविक रूप मे शुभ है। विचार अथवा सकल्प का शुभ होना, या रुचि एव अन्त करण की शुद्धि अह की दीवारे गिराकर सर्वव्यापक ज्योति को अनुभव करने से अथवा परमात्मा की हजूरी मे रहने से या कहे नाम स्मरण से प्राप्त होती है। नाम पर आधारित जीवन मे जीवन मुक्त व्यक्ति के लिए अच्छाई और बुराई का भाव समाप्त हो जाता है। वह क्यो ?

कर्म अपने आप मे अच्छे या बुरे नही हैं। भाव यह कि पुण्य पाप के विचार का सम्बन्ध कर्म के साथ नही है, बल्कि मनुष्य द्वारा किए गए कर्मों के साथ है। कर्म का भाव है परिवर्तन। हमारे वातावरण मे किसी परिवर्तन का नाम कर्म है। आन्धी का चलना,

वर्षा का होना, भुचाल, शीत और गर्मी का पडना सब कर्म हैं। किन्तु इनके सम्बन्ध मे हम पाप पुण्य के विशेषण प्रयुक्त नही करते। यह तो मानव मस्तिष्क जब किसी परिवर्तन का कारण होता है या किसी आन्दोलन के साथ सम्बन्धित होता है तब हमे पुण्य पाप या नेकी बदी का विचार आता है। पुण्य पाप मन के विषय है। आत्मा इनसे निर्लिप्त है। जब तक मनुष्य मन के अधीन होकर कर्म करता है तब पुण्य पाप से प्रभावित होता है। यदि मन को आत्मा के अधीन कर दें, अथवा कर्मों का आदेश के अन्तगत ईश्वर के नाम समर्पित करें तो हम पुण्य पाप के भेद से ऊपर उठ जाते हैं। मानसिक मण्डल मे बधा जीव पुण्य पाप की जेवडा मे कैद है, परन्तु आत्मिक मण्डल मे पहुचा हुआ गुरसिक्ख इन सकुचित सीमाओ को पार कर जाता है और पुण्य पाप से निर्लिप्त हाकर कम करता है। या कहिए कि उसका अन्त करण इतना शुद्ध हो जाता है कि उस दुष्ट वासना और कुकर्म करने की रुचि ही नहो रहती। यह अवस्था तब होती है, जब मन एव आत्मा एकस्वर हो और हमारा आन्तरिक कल्पनाओ (विचारो) मे कोई विरोध न हो। समस्त कल्पनायें अथवा विचार एक लक्ष्य से सम्बन्धित हो। हमारे भीतर मन–आत्मा की एकस्वरता हो और फिर हमारे अन्तरमन को बाह्य प्रकृति से या कहो सर्वव्यापक ज्योति से एकस्वरता हो। मन जीवात्मा–जगतात्मा–परमात्मा समस्त एकस्वर हो फिर समस्त कर्म स्वत सिद्ध ही शुभ होते हैं। सहज स्वभाव रूप मे ही जीव आदेश मे रहता है। 'अचिंत' ही अर्थात् अचेतन रूप मे ही समस्त कर्म दैवी गुण सम्पन्न होते चले जाते हैं। कर्म, नाम, विस्मादी भाव यह सब स्वत सिद्ध जीवन का अग बन जाते हैं।

सतिगुरि मो कउ कीनो दानु ।।
अमोल रतनु हरि दीनो नामु ।।
सहज बिनोद चोज आनन्ता ।।
नानक कउ प्रभ मिलिउ अचिंता ।।१।।
कहु नानक कीरति हरि साची ।।
बहुरि बहुरि तिसु सगि मनु राची ।।१।।रहाउ।।
अचिंत हमारै भोजन भाउ ।।
अचिंत हमारै लीचै नाउ ।।

अचिंत हमारै सबदि उघार ॥
अचिंत हमारै भरे भडार ॥२॥

चिंत अचिंता सगली गई ॥
प्रभ नानक नानक नानक मई ॥८–३–६॥
(भैरउ म ५ पृ० ११५७)

समस्त शरीर, मानसिक एव आत्मिक सकल्प तथा कार्य-व्यवहार सब स्वत सिद्ध, अचेतन ही, आदेश (ईश्वरेच्छा) मे होने लग पडते है। अह की लेश उड जाती है। यह अचेतन अवस्था मनोवैज्ञानिक भिन्नता मे नही आ सकती। वैज्ञानिक पहुच से वह बहुत ऊची चली जाती है। एक प्रकार की यह अस्फूर्त अवस्था ही है। ऐसी अवस्था मे जीव के लिए ससार एक नए विस्मादी रूप मे दिखाई देने लग पडता है। वह चिन्तामुक्त स्थान (पाप रहित अथवा निर्भीक स्थान) का निवासी बन जाता है। यही स्थान अचल नगरी या सचखण्ड मे बदल जाता है। एक ही ससार मे अहकार वश जोव दुख सुख पाप पुण्य के चक्रजाल मे फसे भटकते रहते हैं और जीवन मुक्त गुर सिक्ख के लिए वह ससार सचखण्ड बन कर परमानन्द का स्रोत बन जाता है।

(६)
परम पद प्राप्ति की विधि

हम ऊपर देख आए हैं कि हमारे साधारण व्यवहार मे नाम का प्रभाव एक सुघड जीवन जाच मे प्रकट होता है। संसार मे नाम आश्रित जीवन व्यतीत करने मे एक विशेष प्रकार की मानसिक अभिरुचि और स्वभाव के आधार पर स्थिति व्यवहार वन जाता है। हमारे भीतर इस अवस्था का प्रभाव एक प्रकार के अद्भुत रसास्वादन तथा

आनन्द का अनुभव है जो कि कर्ता को सृष्टि की विस्मादी आखो से देख कर वाह वाह का भाव उत्पन्न करना है और भीतर वाहिगुरु वाहिगुरु की ध्वनि स्थापित करनी है। या इस प्रकार कहे कि मनुष्य जीवन मे नाम तीन प्रकार से प्रकट होता है हमारे आन्तरिक अनुभव या ज्ञान मे, हमारे शब्दो या अक्षरो मे वाह वाह के रग मे रगे भक्ति भावना वाले शबदो मे तथा हमारे कर्मों मे अह को त्याग कर अकाल पुरुष को प्रत्यक्ष निर्लिप्त तथा वैराग्य पूर्ण जीवन व्यतीत करने मे। भाव यह कि हृदय ज्ञान हो, मुख भक्ति हो और व्यवहार वैराग्य हो। यह है मन वचन कर्म का नाम के सहारे विस्मादी जीवन। ये तीनो पक्ष एक ही लडी मे पिरोए हुए अनेकता मे एकता के भाव को दृढ करते हैं। यह अनुभव दृढ होकर सम्पूर्ण जीवन का मानचित्र बदल देता है और स्वाभाविकत जीव के लिए विस्मादी मण्डल मे आनन्द का कारण बना रहता है। इस समस्त जीवन की गहरी नीव हमारे अचेतन मन मे स्थित हो जाती है। मन के अचेतन भाग तक पहुचे हुए स्वभाव के बीज फिर निकलते नही और फिर एकचित लिव मे कोई विघ्न नही पडता। किन्तु किसी स्वभाव को अचेतन मन तक पहुचाना बहुत कठिन है और कोई विशेष गुरसिक्ख ही किसी अच्छी सगति तथा महापुरुषो की सगति से पूर्व कर्मों के फल के कारण ही प्राप्त कर सकता है। जिस के मन के अचेतन भाग तक यह एकता तथा विस्मादी रुचि की जड पहुच गई है वह फिर जागृत, सुप्त, या अर्द्धचेतन समस्त अवस्थाओ मे नाम का रसास्वादन करता है। बल्कि इन तीनो से ऊपर, अर्थात् इनके पूर्ण सहयोग मे चौथे पद की प्राप्ति कर लेता है। उसका अन्त करण सर्वथा निचली तह तक निर्मल हो जाता है जिसके कारण उसकी एकचित लिव स्वप्न मे भी नही टूटती। इसी लिए तो कहा है

कबीर सुपनै हू बरडाइकै जिह मुख निकसै रामु ॥
ता के पग की पानहा मेरे तन कउ चामु ॥

यह एक उच्च अवस्था है और मन, वचन कर्म तथा मन की चेतन अचेतन, सचेतन समस्त अवस्थाओ की शुद्धि से इस मजिल पर पहुचा जा सकता है। यह एक बडी कठिन घाटी है और इस बात का प्रमाण आजकल का Psychoanalysis मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

भलीभाँति देता है।

डाक्टर टरम्प लिखता है कि गुरु साहिब ने एक अक्षर के जाप से ही मुक्ति का साधन बताया है। डाक्टर टरम्प ने किसी अक्षर को तोते की भांति रटते जाना नाम का जाप समझा। यह भ्रांति है। नाम के इन गलत अर्थों के सम्बन्ध मे हम ऊपर विचार कर आए हैं। नाम का भाव सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिवर्तन है और भीतर से लिवतार (प्रीति) लगानी है। यह कोई सरल कार्य नही।

नाम तो हमारे मानसिक एव आत्मिक जीवन की क्रमश उन्नति द्वारा क्रियात्मक रूप मे परम पद प्राप्ति का नाम है। इस उन्नति के मार्ग मे कई मजिले है। इस उन्नति रूपो सोपान के कई चरण है। यह तो एक क्रियात्मक जीवन जाच है। यह कोई पुस्तको तथा ग्रथो के अध्ययन से नही मिलती। हां सन्तो महापुरुषो की सगति से लाभ अवश्य होता है। श्रेष्ठ जीवन वाले महापुरुष—पाच प्यारे—दीक्षा देते हैं। ग्रह मत्र बताते हैं। यह एक प्रकार से Suggestion मार्ग पर चलने का सकेत होता है। जैसे कि हिप्नाटिजम तथा मैस्मरेजम वाले करते हैं। परन्तु हिप्नाटिजम तो असाधारण अवस्था मे पुरुष को सकेत करने से प्रयोग मे आता है। इधर एक नही, पाच प्यारे साधारण मन की अवस्था मे तथा पूर्ण ज्ञान मे अमृतपान कराने के समय जिज्ञासु को नाम या ग्रहमत्र बताते है। उसे कहा जाता है कि

"ੴ प्रसादि" मूल मत्र मे दिखाई गई अकाल पुरुष की हस्ती मे अडिग निश्चय रखना है और इस निश्चय पर अपना जीवन ढालना है ताकि वह खालसा 'भाई चारे' (भ्रातृभाव) का सदस्य बन सके। खालसे की सदैव जय होती है, सत्य कभी पराजित नही होता। खालसा वाहिगुरु का होने के कारण वह विजय भी वाहिगुरु की है। समस्त प्रयत्न वाहिगुरु के आदेश मे होते हैं। इसलिए खालसा प्रत्यक्ष (दृष्टिगत) के धोखे मे नही आता। वह इनसे बचकर सदा निर्लिप्त रहता है। वह सासारिक दिखने या सुनने मे ईश्वरीय ज्योति अनुभव करता है और इस जागृत ज्योति से सदा भीतर से सम्बद्ध रहता है। अकाल पुरुष से वियोग दुख है और उससे सयोग की अनुभूति, या उसकी स्मृति, त्रिकाल मे स्मृति सुख है। उसके चरणो

मे निवास मुक्ति है। अकाल पुरुष से अलग होकर आत्मा को शांति नही सुख नही। कोई भौतिक पदार्थ या आर्थिक सुख आत्मा की इस तडप को नही मिटा सकता। आत्मा की शाति आत्मा के माता पिता अकाल पुरुष की गोद मे है। उसका चिन्तन उसका मेल है। यह सयोग वाहिगुरु दर्शन भी ईश्वर की कृपा का ही परिणाम होता है, कोई अधिकार मानव प्रयत्नो का फल नही होता।

कोई करै उपाव अनेक बहुतेरे बिनु किरपा नामु न पावै ॥
(गउडी म ४, पृ० १७२)

किन्तु इसका अर्थ यह नही कि मनुष्य उद्यम ही न करे। पुरुषार्थ आवश्यक है परन्तु फलदाता वाहिगुरु ही है। उद्यम तो हमारे जीवन जाच की आत्मा है

उदम करत मनु निरमलु होआ ॥
हरि मारगि चलत भ्रमु सगला खोइआ ॥
(माझ म ५, पृ० ९९)

उदमु करत सीतल मन भए ॥
मारगि चलत सगल दुख गए ॥
(गउडी म ५ पृ० २०१)

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए
सु भलके उठि हरिनामु धिआवै ॥
उदमु करे भलके परभाती ॥
इसनानु करे अमृतसरि नावै ॥
(गउडी मः ४ पृ० ३०५)

उदमु करत होवै मनु निरमलु नाचै आपु निवारे ॥
पच जना ले वसगति राखै मन महि एककारे ॥
(आसा म ५ पृ० ३८१)

उदमु करेदिआ जीउ तू कमावदिआ सुख भुचु ॥
धिआइदिआ तू प्रभु मिलु नानक उतरी चित ॥
(गुजरी मः ५ पृ० ५२२)

इसलिए पुरुषार्थ बडा अनिवार्य है। हमारी हस्ती मे आत्मा, मन एव शरीर का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इन तीनो को अपना

भलीभाँति देता है।

डाक्टर टरम्प लिखता है कि गुरु साहिब ने एक अक्षर के जाप से ही मुक्ति का साधन बताया है। डाक्टर टरम्प ने किसी अक्षर को तोते की भाति रटते जाना नाम का जाप समझा। यह भ्राति है। नाम के इन गलत अर्थों के सम्बन्ध मे हम ऊपर विचार कर आए हैं। नाम का भाव सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिवर्तन है और भीतर से लिवतार (प्रीति) लगानी है। यह कोई सरल कार्य नही।

नाम तो हमारे मानसिक एव आत्मिक जीवन की क्रमश उन्नति द्वारा क्रियात्मक रूप मे परम पद प्राप्ति का नाम है। इस उन्नति के मार्ग मे कई मजिले है। इस उन्नति रूपी सोपान के कई चरण है। यह तो एक क्रियात्मक जीवन जाच है। यह कोई पुस्तको तथा ग्रथो के अध्ययन से नही मिलती। हाँ सन्तो महापुरुषो की सगति से लाभ अवश्य होता है। श्रेष्ठ जीवन वाले महापुरुष—पाच प्यारे—दीक्षा देते हैं। ग्रह मत्र बनाते है। यह एक प्रकार से Suggestion मार्ग पर चलने का सकेत होता है। जैसे कि हिप्नाटिजम तथा मैस्मरेज़म वाले करते हैं। परन्तु हिप्नाटिज़म तो असाधारण अवस्था मे पुरुष को सकेत करने से प्रयोग मे आता है। इधर एक नही, पाच प्यारे साधारण मन की अवस्था मे तथा पूर्ण ज्ञान मे अमृतपान कराने के समय जिज्ञासु को नाम या ग्रहमत्र बताते है। उसे कहा जाता है कि "१ਓੰ प्रसादि" मूल मत्र मे दिखाई गई अकाल पुरुष की हस्ती मे अडिग निश्चय रखना है और इस निश्चय पर अपना जीवन ढालना है ताकि वह खालसा 'भाई चारे' (भ्रातृभाव) का सदस्य बन सके। खालसे की सदैव जय होती है, सत्य कभी पराजित नही होता। खालसा वाहिगुरु का होने के कारण वह विजय भी वाहिगुरु की है। समस्त प्रयत्न वाहिगुरु के आदेश मे होते हैं। इसलिए खालसा प्रत्यक्ष (दृष्टिगत) के धोखे मे नही आता। वह इनसे बचकर सदा निर्लिप्त रहता है। वह सासारिक दिखने या सुनने मे ईश्वरीय ज्योति अनुभव करता है और इस जागृत ज्योति से सदा भीतर से सम्बद्ध रहता है। अकाल पुरुष से वियोग दुख है और उससे सयोग की अनुभूति, या उसकी स्मृति, त्रिकाल मे स्मृति सुख है। उसके चरणो

मे निवास मुक्ति है। अकाल पुरुष से अलग होकर आत्मा को शांति नही सुख नही। कोई भौतिक पदार्थ या आर्थिक सुख आत्मा की इस तडप को नही मिटा सकता। आत्मा की शाति आत्मा के माता पिता अकाल पुरुष की गोद मे है। उसका चिन्तन उसका मेल है। यह सयोग वाहिगुरु दर्शन भी ईश्वर की कृपा का ही परिणाम होता है, कोई अधिकार मानव प्रयत्नो का फल नही होता।

कोई करै उपाव अनेक बहुतेरे बिनु किरपा नामु न पावै ॥
(गउडी म ४, पृ० १७२)

किन्तु इसका अर्थ यह नही कि मनुष्य उद्यम ही न करे। पुरुषार्थ आवश्यक है परन्तु फलदाता वाहिगुरु ही है। उद्यम तो हमारे जीवन जाच की आत्मा है

उदम करत मनु निरमलु होआ ॥
हरि मारगि चलत भ्रमु सगला खोइआ ॥
(माझ म. ५, पृ० ९९)

उदमु करत सीतल मन भए ॥
मारगि चलत सगल दुख गए ॥
(गउडी म ५ पृ० २०१)

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए
सु भलके उठि हरिनामु धिआवै ॥
उदमु करे भलके परभाती ॥
इसनानु करे अमृतसरि नावै ॥
(गउडी म. ४ पृ० ३०५)

उदमु करत होवै मनु निरमलु नाचै आपु निवारे ॥
पंच जना ले वसगति राखै मन महि एककारे ॥
(आसा म ५ पृ० ३८१)

उदमु करेदिआ जीउ तू कमावदिआ सुख भुंचु ॥
धिआइदिआ तू प्रभु मिलु नानक उतरी चिंत ॥
(गुजरी म. ५ पृ० ५२२)

इसलिए पुरुषार्थ बडा अनिवार्य है। हमारी हस्ती मे आत्मा, मन एव शरीर का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इन तीनो को अपना

कर्तव्य पूरा करना चाहिए । इन तीनो को कही लगाना आवश्यक है। यह कर्तव्य पूरा करना, कही लगाना सब उद्यम का ही परिणाम है। जब तक व्यक्ति उद्यम नही करेगा ईश्वर भी उसकी सहायता नही करेगा। गुरवाणी मे स्थान स्थान पर गुरु साहिब ने किसान, वणजारे, व्यापारी के तथा अन्य कार्य करने वालो के प्रमाण देते हुए कहा कि इन को भांति उद्यम करो और अपना जीवन ऊचा करो और अपना लोक एव परलोक सुधारो। इसलिए अनुसधान, खोज, उद्यम व्यक्ति के लिए आवश्यक है। जो भी हृदय से खोज करेगा, ईमानदारी से तथा सच्चाई पवित्रता से खोजेगा, वह अवश्य फल प्राप्त करेगा। आवश्यकता है सच्चे एव पवित्र प्रेम की। निस्वार्थ प्रेम की। स्वार्थ केवल हरिनाम का, गुरु मिलन का हो। अन्य कोई स्वार्थ न हो। अन्य स्वार्थ होगा तो

विणु तुध होरु जि मगणा सिरि दुखा कै दुख ॥

इसलिए ईश्वर—खलक—प्रेम हृदय से उद्यम के साथ करे। पूरे अनुभव तथा मनोभाव से करे। सम्पूर्ण जीवन मे हरि प्यार ही प्रधान मनोभाव हो जाय। समस्त पुरुषार्थों का लक्ष्य यही हो और प्यार करे किस प्रकार ? जिस प्रकार बालक दूध के साथ करता है, पत्नी पति के साथ करती है, मच्छली पानी के साथ करती है। यह प्रेम अत्यन्त अन्तिम स्तर के हैं। इन्हे कोई हटा नही सकता। बस ऐसा ही प्रेम हो। इस प्रकार का एकचित उद्यम और पवित्र प्रेम अवश्य ही ईश्वर को कृपा का भागी बनता है।

बिलावल म ५ (पृ० ८३८)

प्रभ तुझ बिना नही होर ॥ मनि प्रीति चन्द चकोर ॥
जिउ मीन जल सिउ हेतु ॥ अलि कमल भिन्नु न भेतु ॥
जिउ चकवी सूरज आस ॥ नानक चरन पिआस ॥६॥
जिउ तरुनि भरत परान ॥ जिउ लोभीऐ धनु दानु ॥
जिउ दूध जलहि सजोगु । जिउ महा खुधिआरथ भोगु ॥
जिउ मात पूतहि हेतु । हरि सिमरि नानक नेत ॥७॥

ऐसा जीवन न्योछावर करने वाला जान त्यागने वाला प्रेम हो तभी व्यक्ति विस्माद मार्ग का पथक होकर नाम का रस ले सकता है। यह सब कुछ एकचित घोर परिश्रम (उद्यम) से ही हो सकता है।

उद्यम के साथ प्रार्थना भी आवश्यक है। अह तथा अहंकार भरा उद्यम सुख एव शांति नही देता। प्रार्थनापूर्ण उद्यम ही मन को सुखी रख सकता है। उद्यम तथा प्रार्थना गुरमत योग के अनिवार्य अग हैं। केवल मात्र उद्यम अह मे फसाता है और केवल प्रार्थना, छोटा, आन राहत और झूठी आशा वाला पतित जीवन बनाती है। इसलिए उद्यम और प्रार्थना साथ साथ चलते हैं। विनम्र होकर और ईश्वराश्रित होकर उद्यम करना है। अकाल पुरुष की कृपा के अभिलाशी होकर। जिज्ञासु अपने उद्यम का फल अपने परिश्रम का आवश्यक परिणाम या बदला नही समझता। उसके उद्यम का बदला या परिणाम अनिवाय सफलता नही है। विजय तो वाहिगुरु की है, फलदाता भगवान है, इसलिए उद्यम करते हुए सफलता के लिए प्रार्थना आवश्यक है गुरबाणी मे प्रार्थना पर बहुत बल दिया है

दुइ कर जोडि खडी तकै सचु कहै अरदासि ॥
(श्री राग म १—पृ० ५४)
साची दरगहि बैसई भगति सची अरदासि ॥ (पृ० ५५)
तू ठाकुरु तुम पहि अरदासि ॥
जीओ पिण्डु सभु तेरी रासि ॥ (सुखमनी)

तुध आगै अरदास हमारी जीओ पिण्ड सभ तेरा ॥
(आसा म ५)
दुइ कर जोडि करउ अरदासि ॥
तुधु भावै ता आणहि रासि ॥
करि किरपा अपनी भगती लाइ ॥
जन नानक प्रभु सदा धिआइ ॥
(सूही म ५ पृ० ७३६)

उद्यम करते हुए प्रार्थनायें करते हुए अकाल पुरुष और उसकी रचना के साथ प्रेम प्यार मे रमे रहना गुरसिक्ख के जीवन का

क्रियात्मक पक्ष है। गुरसिक्ख कोई काम भी विना प्रार्थना किए आरम्भ नही करता। सदा अग सग के लिए अर्थात रक्षा के लिए, प्रत्येक कार्य मे सफलता पाने के लिए गुरसिक्ख, दिन मे कम से कम तीन बार—प्रात, मध्याह्न और सोते समय— प्रार्थना करता है। ईश्वर प्रार्थनायें सुनता है। अपने भक्तो की लाज रखता आया है और सदा रखता है। यह उसका बिरद है, उसका धर्म है

हमारी गणत न गणीआ काई अपणा बिरदु पछाणि ॥

अपणे दास की आपि पैज राखो नानक सद कुरबाणु ॥
(सोरठ म ५)

बधन काटि बिसारे अउगन अपना बिरदु समारिआ ॥
होए क्रिपाल मात पित निआई बारिक जिउ प्रतिपारिआ ॥
(आसा म ५)

जो सरणि आवै तिसु कठि लावै इहु बिरदु सुआमी सदा ॥
(बिहागडा म ५)

इसलिए सदैव उन्नति की ओर प्रवृत होकर उद्यम करना चाहिए।

गुरमत मार्ग का यात्री अकेला नही होता। वह सगति मे आकर उत्साह प्राप्त करता है, सशय दूर करता है और सगति मे से सब कुछ प्राप्त करता है। जहा गुरसिक्ख ने प्रेम विस्माद के लिए उद्यम एव प्रार्थना करनो है वहा साथ ही सगति करनी भी आवश्यक है। सत सगति कदम कदम पर उसको सहायता करेगा। सत सगति किसकी ? उन गुरसिक्खो, गुरमुखो की, जिनका जीवन गुरमति के साचे मे ढला हुआ हो। गुरुद्वारे मे एकत्रित साधु-सगति जहा केवल एक नाम का विचार एव प्रचार हो, कथा कीर्तन हो। यह सगति गुरु रूप होती है और गुरसिक्ख स्वय इसी सगति का ही अश होता है। गुरु सिक्ख की समस्त उन्नति सगति के द्वारा होनी है। सगति मे प्रधान एव प्रमुख मनतव्य कीर्तन करना और सुनना होता है। गुरसिक्ख की पूजा पाठ के दो आवश्यक पहलु हैं प्रात नाम का जाप करना फिर सगति मे आकर कीर्तन सुनना।

एक Individual worshop व्यतिवादी है और दूसरी Congregational अथवा Group worship सामाजिक या सगति द्वारा पूजा है। ये दोनो ही आवश्यक है। भारतीय मतो मे सर्वप्रथम सिक्ख धर्म मे ही समूह पूजा पर बल दिया गया है। गुरु साहिब ने मानव मन मे सगति मे बैठने की शक्ति को अनुभव किया और इसे धर्म का भाग बनाया सगति से बाहर मनुष्य का जीवन नीरस ही नही प्रत्युत असम्भव है। इसलिए जीवन की सामूहिक उन्नति के लिए सगति मे आना आवश्यक है। साधु सगति, उच्च पवित्र सिक्खो गुरमुखो को सगति होती है। वहा ऊच नीच, बडे छोटे का कोई प्रश्न नही होता। सगति की नीव ही पारस्परिक प्रेम तथा स्वाधीनतापूर्ण स्वाभिमान पर रखी गई है। सगति मे पीर, फकीर, अमीर, गरीब राव रक सब एक समान हैं। सगति के समस्त सदस्यो मे सम्पूर्ण साम्यता तथा प्रेम होना आवश्यक है। इस साम्यता तथा प्रेम मे खाली होकर सगति करना व्यर्थ समय नष्ट करना है। इन गुणो से युक्त सगति करना अपने जीवन को उन्नति की विशाल सडक पर हवाई जहाज जैसी तेज गति से चलाना है। प्रेम तथा साम्यता रखते हुए सगति मे आकर कीर्तन सुनना चाहिए। यह कीर्तन ही एक ऐसा सरल एव सीधा ढग है जो मन को शीघ्र ही विस्माद की अवस्था मे ले आता है और गुरसिक्ख जल्दी ही वाह वाह के रग मे रगा जाता है।

गुरबाणी मे अनेक महावाको मे सतसंग एव कीर्तन पर बल दिया गया है और कीर्तन तथा सतसग की बहुत महत्ता बताई गई है। गुरु साहिब बताते हैं कि पाठो, वेद विचारो, धर्मो कर्मो, योगो तपो से थका हारा और उचाट जीव कीर्तन सुन कर शाति एव आनन्द प्राप्त करता है। यह कीर्तन आत्मा को सीधा आकर्षित करता है क्योकि इस मे भावो की सत्यता और भावनाओ की पवित्रता एव सरलता होती है। यह कीर्तन भीतर से हृदय की पुकार होता है। आन्तरिक ईश्वरीय अश सर्वव्यापक ईश्वर से एकस्वर होना चाहता है और यह एकस्वरता कीर्तन से सरलता से प्राप्त होती है। कीर्तन निर्जीव मन को प्रभावित करता है, सजीव करता है और कम्पन पैदा करता है। यह प्रभाव उसके मन मे से अन्य मनुष्यो के लिए, ईश्वर

को सम्पूर्ण सृष्टि के लिए प्रेम उत्पन्न करता है और सर्वेकता भाव उत्पन्न करता है। वास्तविक दैवी सर्व-सम्मत मानवता का ज्ञान कराता है। इस विधि से जब मनुष्य का भीतर जागृत हो जाता है तो वह सर्व-सम्मत मानवता के स्रोत और समस्त मानव जाति मे समान तत्व अकाल पुरुष के अस्तित्व को अनुभव करता है, उसके साथ प्रेम स्थापित करता है और उसके गुण गान करता है। गुर सगति मे जाकर मिल कर बैठने का यह पहला फल होना है। गुणो का विचार करता है, गुणो को धारण अथवा ग्रहण करने की लालसा उत्पन्न होती है। साथ ही साथ सगति मे 'श्रवण' की क्रिया भी चलती रहती है। गाता है, सुनता है, सुनाता है, गाता है। फिर मानने की, सुने हुए गान को धारण करने की अवस्था आ जाती है। परम पद प्राप्ति के लिए ये तीन साधन हैं— गावीऐ सुणीऐ मन रखीऐ भाउ ।। यथार्थ गुणो का, बुनियादी कीमतो (मूल्यो) Fundamental Values का चिन्तन करो— ईश्वर के गुण इन मूल्यो का ही दूसरा नाम हैं—इन्हे गाओ, इनके सम्बन्ध मे दूसरो से— सगति मे—सुनो और फिर प्यार से, भावपूर्ण पकड से इन्हे अपने भीतर लाओ।

उपर्युक्त तीनो साधनो पर क्रिया करते हुए जब व्यक्तित्व समूचे रूप मे उन्नति करेगा तो अनेक अवस्थाओ से गुजरेगा। ऐसी पाच अवस्थाओ का वर्णन श्री जपुजी साहिब मे किया गया है। या कहिए कि व्यक्तिगत उन्नति के ये पाच स्तर हैं। मानव ज्योति का विकास या आत्मज्ञान के ये पाच खण्ड हैं धर्म खण्ड, ज्ञान खण्ड, सरम (श्रम) खण्ड, कर्म खण्ड, सच्च खण्ड।

व्यक्तिगत उन्नति के लिए सबसे पहला कदम तो यह है कि मनुष्य को अपने आस पास का पूर्ण ज्ञान हो। प्राकृतिक ससार की पूरा सूझ हो। वह जब 'गुर एक धिआन' के विचाराधीन पृथ्वी और पृथ्वी के पदार्थो को देखता है तो उसे इस बात का ज्ञान होता है कि समस्त ब्रह्माण्ड नियमानुसार चल रहा है। यहा कोई बात अनियमित नही होती। गुरु साहिब बताते हैं कि कर्ता पुरुष का यह एक चमत्कार है कि यहा जो कुछ होता है सब नियम एव धर्म के अनुसार होता है। कोई अन्धेर खाता नही, कोई ऊट पटाग क्रम नही है। प्रत्येक वस्तु कारण कार्य के नियम मे बधी हुई दिखती है।

सब से प्रथम अवस्था साइंटिफिक—वैज्ञानिक दृष्टिकोण की है। सभी बातें, समस्त घटनाए नियमो के अधीन है। इसीलिए पृथ्वी धर्मशाला—ऐसा स्थान जहा सब कुछ धम-नियम के अनुसार हो रहा है। रात्रि, ऋतुए, दिन, पवन जल, अग्नि, आकाश पाताल सब कर्मानुसार अपने अपने नियमो मे बधे हुए हैं। छाटे नियम बडे नियमो के अधीन हैं, बडे और बडो के। इस प्रकार अन्त मे सबसे प्रधान नियम नाम का नियम है, अकाल पुरुष की चेतनता का नियम है। वह सब का आधार है और सब का उदगम स्रोत है, इसीलिए वह सच्चा है और उसका स्वरूप—प्रकाश— दरबार— भी सच्चा है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण आत्म विकास मे सबसे निचला स्तर है किन्तु है आवश्यक। जब तक मनुष्य को अपने वातावरण की वैज्ञानिक सूझ नही होगी वह उन्नति के मार्ग पर पाव रख ही नही सकता। यदि रखे भी तो अन्धविश्वास का शिकार होकर अन्ध कूप मे पडेगा।

यह नियमो की सूझ का मण्डल है, यहाँ पुण्य पाप की जानकारी आवश्यक है। इस ढग के अनुसार अच्छे बुरो को अपने कर्मों के फल भोगने पडते हैं। सृष्टि को देखने और समझने का यह साधारण परन्तु आवश्यक दृष्टिकोण है। इस अवस्था का सम्पूर्ण ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, भाव आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा आदि द्वारा प्राप्त होता है। यह भौतिक ज्ञान होता है। सम्पूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान अथवा विज्ञानो का विषय ही पच भौति ससार है, हमारा प्राकृतिक वातावरण है। परन्तु विज्ञानो का प्राप्त क्रिया ज्ञान अन्तिम ज्ञान नही है, केवल प्रत्यक्ष ज्ञान समस्त एव पूर्ण ज्ञान नही है। आत्मज्ञान रूपी सोपान का यह प्रथम चरण है। यहा से व्यक्ति ने चलना है। यह ज्ञान प्राप्त करके खडे नही हो जाना। आत्मज्ञानी के खजूर का वृक्ष बहुत लम्बा है और ऊचा है। वास्तविक फल खजूर के मूल मे नही शिखर पर होता है। विज्ञान तो ज्ञान का मूल है। यह धर्म खण्ड की अवस्था है, ससार को किसी नियमावली मे बधा प्रतीत करने की अवस्था है।

आगे के दो खण्ड हमारी चेतना के खण्ड हैं। 'Perception' प्रत्यक्ष ज्ञान के आश्रय से मन कल्पना 'Imagination' के सहारे

ऊचा होकर उडता है। कल्पना प्रत्शक्ष ज्ञान द्वारा दी गई सामग्री को नए रूपो मे जोडती है। हमारी कल्पना की उडान दो प्रकार की होती है। एक तो Reflective Imagination ध्यानाश्रित कल्पना अथवा विचार पूर्ण कल्पना और दूसरी है नवीन कृतिया अथवा आविष्कार करने वाली कल्पना—'Creative Imagination'। पहली प्रकार की कल्पना का फल ज्ञान होता है। केवल प्राकृतिक या पच भौतिक ज्ञान नही प्रत्युत उस ज्ञान के सहारे प्राप्त की गई कल्पना का ज्ञान। मनुष्य ज्ञान के साधन केवल ज्ञानेन्द्रिया नही हैं। यदि होती तो धर्म खण्ड से ऊपर कोई अवस्था नही होनी था और विज्ञान से बढकर अथवा उससे आगे कोई ज्ञान न होता। परन्तु ऐसा नही। हमारी कल्पना हमारे ज्ञान को बहुत दूर ले जाती है। वास्तविक सत्य वस्तु की झलक काल्पनिक—ध्यान—द्वारा ही प्राप्त होती है। इस काल्पनिक उडान का परिणाम यह निकलता है कि कल्पना प्रत्यक्ष मे ऊपर उठ कर ऊची मजिलो मे पहुचती है। यह वास्तविक ज्ञान अवस्था है। इस मण्डल—(लोक) मे केवल एक "धरती धरम साल' नही दिखती, एक पानी आदि नही दिखता, एक सूर्य, एक चाद नही, खाना पहनना पर्वत, नदिया, पैगम्बर, अवतार, औलिए आदि वही नही रहते जिनका वर्णन पृथ्वी के लोग या वैज्ञानिक रुचि वाले लेखक करते हैं। नही, यहा पर पहुचे हुए मनुष्य को प्रकृति की असीमता—विशालता का अनुभव होता है। इस विशालता के कारण वह विस्माद मे आता है और वाहिगुरु का अलाप करता है। ऐसी कल्पना के जागृत होने से वह केते पवण, पाणी वैसतर' देखता है। ब्रह्मा, कृष्ण आदि कितने हो दिखाई देते हैं। भूमि पर्वत आकाश, ध्रुव, इन्द्र चन्द्र सूर्य सब अनगिणत एव अनन्त दिखते हैं। सिद्ध, बुद्ध, नाथ देवी, देव, दानव मुनि, रत्न, समुद्र, खाने बाने, समस्त असीम एव अनगिणत दिखाई देते हैं। इन मे से किसी का भी अन्त नही आता। केवल ऐसा ज्ञान ही अहं को तोडता है और विस्मादक भाव उत्पन्न करता है। मनुष्य को विनम्र, अहकार रहित बनाता है और आदेश मे लाता है। बूअलीसीना की भाँति पुकार उठता है "ला आलम" मैं कुछ भी नही जानता। किसी नए विद्यार्थी ने सुकरात से पूछा कि आपने सब

पुस्तकें पढ ली है और समस्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है। बताओ आपने क्या समझा है। उसने कहा बस यही कि "मैं कुछ भी नही जानता"। ईश्वर की असीमता की तथा अपने अज्ञान की सूझ मनुष्य को इसी काल्पनिक उडान से इसी ज्ञान खण्ड मे आती है। वैज्ञानिक धरातल पर तो मन कारण कार्य की नियमावली मे ही उलझा रहता है। इस दूसरे खण्ड मे वह ऊपर उठ कर असीमता—विशालता को अनुभव करता है और विस्माद मे आकर अहं का त्याग करता है और नाम की ओर कदम बढाता है।

अकाल पुरुष की रचना के सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने मे मनुष्य की विवशता एव असमर्थता के कारण धर्म खण्ड तथा ज्ञान खण्ड मे से गुज़रे हुए जीव को कोई दुख नही होता, वह निराश एव व्यग्र नही होता, प्रत्युत इस अपनी विवशता और परमात्मा की अनन्तता की अनुभूति मे वह अकाल पुरुष की महानता, अगम्यता एव अगोचरता का ज्ञान प्राप्त करके प्रसन्न होता है तथा विस्माद मे आता है। बुद्धि की कलाबाजियो के निष्फल होने से और हिकमत हुज्जत के नीचा होने से आन्तरिक ज्योति जागृत होती है और अनुभव प्रकाश देना आरम्भ करता है तथा पवित्र एव उच्च भाव अकाल पुरुष की रचना की सुन्दरता, पवित्रता तथा सहजता को अनुभूति उत्पन्न करते हैं। इस अनुभूति के कारण वह कोमलता पूर्ण दृष्टिकोण बनाता है तथा प्रत्येक वस्तु को अनोखे रग वाली ऐनको द्वारा देखता है। यह सरम खण्ड— Creative Imagination का मण्डल है। इस दृष्टिकोण का प्रकटीकरण—प्रकाश—"रूप" है।

सरम खण्ड की बाणी रूपु ॥
तिथै घाडति घडीऐ बहुतु अनूपु ॥
ता कीआ गला कथीआ न जाहि ॥
जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
तिथै घडीऐ सुरति मति मनि बुधि ॥
तिथै घडीऐ सुरा सिधा की सुधि ॥

यह सुन्दरता एव रूप का क्षेत्र है। अफलातून के कथनानुसार (सिम्पोज़ियम) अन्त मे मनुष्य को ऐसी दृष्टि प्राप्त होती है जिसके द्वारा वह प्रत्येक वस्तु की परोक्ष सुन्दरता को देखता है और इस

सुन्दरता का ज्ञान समस्त ज्ञानभण्डार का शिरोमणी ज्ञान है। क्योंकि यह ज्ञान केवलमात्र अक्षरी ज्ञान नही यह क्रियात्मक ज्ञान है। इसके बल से अनेक अनुपम आविष्कार किए जाते है। ऐसे आविष्कार कि वे कहने सुनने से वाहर हैं। कोई कितना भी यत्न क्यो न करे इस अवस्था का वर्णन करने का, उसके मन मे यह पश्चाताप ही रहेगा कि वह पूरी तरह से जिस प्रकार अपेक्षित था उस सुन्दरता का बखान नही कर सका। कारण यह कि इस मण्डल मे स्थूल रचनायें नही रची जाती। यहा तो मन बुद्धि की सुघडता होती है। इस अवस्था मे मनुष्य को सिद्धो तथा देवताओं जैसी मन बुद्धि प्राप्त होती है, ऐसी सूझ बूझ मनोवैज्ञानिक या साधारण वैज्ञानिक विभाजन से वहुत दूर एव अगम्य होता है और इसी लिए यह अकथनीय है।

जब मन बुद्धि तथा काल्पनिक भाव स्वच्छ हो जाते हैं तो व्यक्ति चौथी अवस्था मे पहुचता है। यह वास्तविक धर्म का क्षेत्र अर्थात कर्मखण्ड है। यह कृपापूर्ण दयालुता पूण भूमिका है। धर्मखण्ड का धर्म कारण-कार्य की बधी नियमावली का नाम है और कर्मखण्ड का धर्म Grace कृपा का धर्म है। पहले धर्म के अर्थ Law नियम अथवा कानून हैं और इस धर्म के अर्थ Religion या आत्मिकता है। चौथे एव पाचवे मण्डल मे आत्मिकता और सत्य-कर्म एव सत्य प्रधान हैं। यही चेतन सत्ता के क्रियात्मक गुण हैं। तीसरे खण्ड मे रूप-सुन्दरता हमारा दृष्टिकोण बन जाता है। परन्तु सुन्दरता का अनुभव परमानन्द तभी प्रदान करेगा यदि यह सुन्दरता अकाल पुरुष की कृपा के कारण 'सच्च' स्वरूप होगी अथवा काल्पनिक नही प्रत्युत सत्य-क्रियात्मक अस्तित्व वाली होगी। सुन्दरता का अधिकार आनन्द इसी वात मे है कि हम यह जानते हो कि यह काल्पनिक नही अपितु सत्य है। यह सुन्दरता सच्ची, स्वच्छ तथा निर्मल होनी चाहिए, और आदि जुगादि त्रिकाल, अकाल सत्य होनी चाहिए। यदि यह बात न हो अर्थात् हमे सन्देह हो कि यह सुन्दर वस्तु नाशवान है, हम से छिन जाएगी अथवा इस का और हमारा मेल सदा नही रहेगा तो वह वास्तविक रस एव आनन्द का कारण नहीं बन सकती। इसलिए हमारी दशा पर कृपा की आवश्यकता है।

वह कृपा कहां से आयेगी। 'मेहरवान साहिब मेरा मेहरवान'— अकाल पुरुष ही इसका स्रोत है। अकाल पुरुष की दयालुता उसके आदेशानुसार है कृपा का प्रकाश (चमत्कार) आदेश मे है। इसी लिए कहा है करम खण्ड की बाणी जोरु। यह बल—शक्ति, आदेश—इच्छा समस्त-प्रत्यक्ष परोक्ष का कारण है। जब मनुष्य की कल्पना शक्ति विकसित होती हुई धर्म, ज्ञान तथा सरम की मजिलें पार करके चौथी अवस्था मे आती है तो फिर वह सब ओर आदेश की कृपा ही देखता है— अकाल पुरुष के बल—हुक्म—मे कर्म का प्रसार सब ओर दिखता है। समस्त प्रत्यक्ष परोक्ष ससार की सुन्दरता आदेश की कृपा के कारण सत्य स्वरूप की झलक देती है। दृष्टिगत के नष्ट होने से सुन्दरता नष्ट नहीं होती और सुन्दरता से उत्पन्न आनन्द किस प्रकार नष्ट हो? अकाल पुरुष के आदेश से चल रही इसी प्रणाली मे उसकी कृपा का प्रभाव है। मनुष्य जानता है कि पृथ्वी धर्मशाला है, नियमों में बधी चल रही है। वह इससे ऊपर उठ कर ज्ञान ध्यान के फल प्राप्त करता है और सुन्दरता तक पहुचता है। इससे आगे सब ओर आदेश के कारण कृपा ही प्रधान (प्रमुख) प्रतीत होती है। जब इस आदेश रूपी बल को समझ लिया जाता है तो फिर सब आदेश ही आदेश दिखता है। फिर अहं नही रहता। मनुष्य अपने आपको इस आदेश के साथ एकस्वर कर लेता है। जब आदेश (हुक्म) के साथ एकस्वर हो गया तो फिर सब आनन्द ही आनन्द है। क्योकि फिर तो सदा उस पर कृपा एव आशीर्वाद ही रहता है। यहा और कुछ नही होता। योद्धे महाबलि सूरमे तथा श्रेष्ठ गुण सम्पन्न सदैव राम के रग मे रगे जीव इस क्षेत्र मे आनन्द प्राप्त करते हैं। यहा कोई भ्रम नही, धोखा नही, ठग्गी नही, आवागमन नही, मरना उत्पन्न होना नही। यहाँ वह "करहि अनन्दु सच्चा मनि सोइ"।

इससे आगे की अवस्था सच्चखण्ड है। निरकार के सत्य स्वरूप की है। यहा मनुष्य विस्माद मे आकर "सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा" का चमत्कार (दृश्य) देखता है। यहा उसके दर्शन पाकर मनुष्य सदा प्रसन्न रहता है, क्योकि कर्ता पुरुष स्वय कृपालु है। यह अवस्था मनुष्य के आत्मिक अनुभूति जागृत होने से उत्पन्न होती

सुन्दरता का ज्ञान समस्त ज्ञानभण्डार का शिरोमणी ज्ञान है। क्योंकि यह ज्ञान केवलमात्र अक्षरी ज्ञान नही यह क्रियात्मक ज्ञान है। इसके बल से अनेक अनुपम आविष्कार किए जाते है। ऐसे आविष्कार कि वे कहने सुनने से बाहर हैं। कोई कितना भी यत्न क्यो न करे इस अवस्था का वर्णन करने का, उसके मन मे यह पश्चाताप ही रहेगा कि वह पूरी तरह से जिस प्रकार अपेक्षित था उस सुन्दरता का बखान नही कर सका। कारण यह कि इस मण्डल मे स्थूल रचनायें नही रची जाती। यहा तो मन बुद्धि की सुघडता होती है। इस अवस्था मे मनुष्य को सिद्धो तथा देवताओं जैसी मन बुद्धि प्राप्त होती है, ऐसी सूझ बूझ मनोवैज्ञानिक या साधारण वैज्ञानिक विभाजन से बहुत दूर एव अगम्य होता है और इसी लिए यह अकथनीय है।

जब मन बुद्धि तथा काल्पनिक भाव स्वच्छ हो जाते हैं तो व्यक्ति चौथी अवस्था मे पहुचता है। यह वास्तविक धर्म का क्षेत्र अर्थात कर्मखण्ड है। यह कृपापूर्ण दयालुता पूण भूमिका है। धर्मखण्ड का धर्म कारण–कार्य की बधी नियमावली का नाम है और कर्मखण्ड का धर्म Grace कृपा का धर्म है। पहले धर्म के अर्थ Law नियम अथवा कानून है और इस धर्म के अर्थ Religion या आत्मिकता है। चौथे एव पाचवे मण्डल मे आत्मिकता और सत्य-कर्म एव सत्य प्रधान हैं। यही चेतन सत्ता के क्रियात्मक गुण हैं। तीसरे खण्ड मे रूप–सुन्दरता हमारा दृष्टिकोण बन जाता है। परन्तु सुन्दरता का अनुभव परमानन्द तभी प्रदान करेगा यदि यह सुन्दरता अकाल पुरुष की कृपा के कारण 'सच्च' स्वरूप होगी अथवा काल्पनिक नही प्रत्युत सत्य—क्रियात्मक अस्तित्व वाली होगी। सुन्दरता का अधिकार आनन्द इसी बात मे है कि हम यह जानते हो कि यह काल्पनिक नही अपितु सत्य है। यह सुन्दरता सच्ची, स्वच्छ तथा निर्मल होनी चाहिए, और आदि जुगादि त्रिकाल, अकाल सत्य होनी चाहिए। यदि यह बात न हो अर्थात् हमे सन्देह हो कि यह सुन्दर वस्तु नाशवान है, हम से छिन जाएगी अथवा इस का और हमारा मेल सदा नही रहेगा तो वह वास्तविक रस एव आनन्द का कारण नहीं बन सकती। इसलिए हमारी दशा पर कृपा की आवश्यकता है।

वह कृपा कहाँ से आयेगी। 'मेहरबान साहिब मेरा मेहरबान'—अकाल पुरुष ही इसका स्रोत है। अकाल पुरुष की दयालुता उसके आदेशानुसार है कृपा. का प्रकाश (चमत्कार) आदेश मे है। इसी लिए कहा है करम खण्ड की बाणी ज़ोरु। यह बल—शक्ति, आदेश—इच्छा समस्त-प्रत्यक्ष परोक्ष का कारण है। जब मनुष्य की कल्पना शक्ति विकसित होती हुई धर्म. ज्ञान तथा सरम की मजिलें पार करके चौथी अवस्था मे आती है तो फिर वह सब ओर आदेश की कृपा ही देखता है— अकाल पुरुष के बल—हुक्म—मे कर्म का प्रसार सब ओर दिखता है। समस्त प्रत्यक्ष परोक्ष ससार की सुन्दरता आदेश की कृपा के कारण सत्य स्वरूप की झलक देती है। दृष्टिगत के नष्ट होने से सुन्दरता नष्ट नहीं होती और सुन्दरता से उत्पन्न आनन्द किस प्रकार नष्ट हो? अकाल पुरुष के आदेश से चल रही इसी प्रणाली मे उसकी कृपा का प्रभाव है। मनुष्य जानता है कि पृथ्वी धर्मशाला है, नियमों में बधो चल रही है। वह इससे ऊपर उठ कर ज्ञान ध्यान के फल प्राप्त करता है और सुन्दरता तक पहुचता है। इससे आगे सब ओर आदेश के कारण कृपा ही प्रधान (प्रमुख) प्रतीत होती है। जब इस आदेश रूपी बल को समझ लिया जाता है तो फिर सब आदेश ही आदेश दिखता है। फिर अह नही रहता। मनुष्य अपने आपको इस आदेश के साथ एकस्वर कर लेता है। जब आदेश (हुक्म) के साथ एकस्वर हो गया तो फिर सब आनन्द ही आनन्द है। क्योकि फिर तो सदा उस पर कृपा एव आशीर्वाद ही रहता है। यहा और कुछ नही होता। योद्धे महाबलि सूरमे तथा श्रेष्ठ गुण सम्पन्न सदैव राम के रग मे रगे जीव इस क्षेत्र मे आनन्द प्राप्त करते हैं। यहा कोई भ्रम नही, धोखा नही, ठगी नही, आवागमन नहीं मरना उत्पन्न होना नही। यहाँ वह "करहि अनन्दु सच्चा मनि सोइ"।

इससे आगे की अवस्था सचखण्ड है। निरकार के सत्य स्वरूप की है। यहा मनुष्य विस्माद मे आकर "सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा" का चमत्कार (दृश्य) देखता है। यहा उसके दर्शन पाकर मनुष्य सदा प्रसन्न रहता है, क्योकि कर्ता पुरुष स्वय कृपालु है। यह अवस्था मनुष्य के आत्मिक अनुभूति जागृत होने से उत्पन्न होती

है। बुद्धि तथा सौन्दर्य भाव निचले स्तर के है अथवा इस से नीचे हैं। यह आत्मिक अनुभूति मानसिक विश्लेषण मे नही आ सकती, इसलिए यह मनोविज्ञान या किसी अन्य पदार्थिक विज्ञान का विषय नही बन सकती। यह ज्ञान इन्द्रियो, मन बुद्धि तथा मानसिक क्षेत्र से ऊचा होने के कारण साधारण यत्नो तथा अक्षरो द्वारा न तो जाना जा सकता है और न जताया जा सकता है। आत्मिक अनुभव के जाग्रण से मनुष्य सचखण्ड के क्षेत्र मे चला जाता है और वहा निरकार प्रभु सदैव अखण्ड, अमर के साथ जुडा रहता है।

ये पाचो अवस्थाये हमारे जीवन अनुभव है, हमारे जीवन मे प्राप्त की जा सकने वाली अवस्थाये हैं। ये कोई परलोक या किसी अदृष्ट क्षेत्र की बाते नही है। जब चार अवस्थाए पाकर के मनुष्य पाचवी मे पहुचता है तो वह कोई जीवन त्याग नही कर जाता या ससार छोड नही जाता, वह इसी ससार मे रहता हुआ समस्त जीवन निर्माण करता है। पाचवे क्षेत्र (अवस्था) मे जाकर वह पिछली चारो अवस्थाओ के प्रभावो को भी अनुभव करता है। यह समस्त अवस्थाओ का पारस्परिक सम्बन्ध है। ये अवस्थाये कोई पाच भिन्न भिन्न भाग अथवा अलग अलग भाग नही है। यह तो जीवन प्रवाह की उन्नति (विकास) तथा नैतिक उन्नति के साथ साथ अन्तरात्मा का अपना ज्ञान तथा समूह ज्ञान है। मनुष्य वही जीवन और उसी ससार मे जीवन व्यतीत करता है। परन्तु इस निर्माण के के प्रभाव स्वरूप सम्पूर्ण दृष्टिकोण बदल जाता है। यहा 'सत सुहाण सदा मन चाव' की क्रीडा चलती रहती है। सच्चखण्ड की अवस्था मे मनुष्य धर्म, ज्ञान, श्रम तथा कर्म समस्त अवस्थाओ (खण्डो) का सम्मिश्रित रसास्वादन करता है और इसी ससार मे ही साधारण व्यक्तियो की भाति रहता हुआ तथा करता हुआ देखा जाता है। किन्तु अन्तरमन सदा प्रसन्न तथा मन सदैव उल्लसित रहता है। इसीलिए सच्चखण्ड मे आकर गुरु साहिब ने पहले समस्त खण्डो, मण्डलो, वरभण्डो लोको, आकारो आदि का वर्णन किया है। यह सब कुछ होते हुए मनुष्य अपना दृष्टिकोण बदल लेता है और 'जिव जिव हुकमु तिव तिव कार' मे निश्चय रख कर सदैव प्रसन्न रहता है—"वेखै विगसै करि वीचारु।"

इन पाँचो अवस्थाओ का वर्णन करके गुरु साहिब ने आगे की पौडी मे सुनार के आभूषण बनाने का अलकार प्रयुक्त करके बताया है कि व्यक्ति अपने आचरण मे 'जतु', 'धीरजु', 'मति', ज्ञान की सूझबूझ, प्रेम एव भय आदि, लाये, गुरु का उपदेश हृदय मे धारण करे। उसके आदेश को सर्वोपरि मान कर उद्यम करे और साथ प्रार्थना करे ताकि उसकी कृपा दृष्टि का पात्र बन सके। जो लोग यह सब कुछ करते है वे अपने जीवन का सुधार कर लेते है अर्थात परिष्कृत कर लेते है और पच भौतिक—पवन—पानी—पृथ्वी—आदि तत्वो के बने ससार मे उसकी इच्छा—आदेश मे विचरण करते है तथा सस्मत परिश्रमो एव कठिनाइयो का फल नाम की प्राप्ति करके उज्जवल मुख होते हैं और अपने कर्मो की शृखलाओ से मुक्ति पाकर अन्य अनेक लोगो को भी मुक्ति प्रदान कराते हैं

नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि ॥

❖